❀ श्रीः ❀

शौनकीया-

अथर्ववेदसंहिता

मूल मन्त्र-सायण-भाष्य

तथा-

सायणभाष्य के अनुकूल

भाषानुवादसहित

नवम-दशम-एकादशकाण्ड

जिसको-

ऋ० कु० प० रामस्वरूपशर्मात्मज

मुरादाबादनिवासी-सनातनधर्मपताका-सम्पादक

ऋ० कु० प० रामचन्द्र शर्माने

अनुवादित कर

सनातनधर्म-यन्त्रालय

मुरादाबाद में छाप कर

प्रकाशित किया.

सम्वत् १९८७

प्रथम वार

१०००

❁ श्रीः ❁

शौनकीया-

अथर्ववेदसंहिता

मूल मन्त्र-सायण-भाष्य

तथा-

सायणभाष्य के अनुकूल

भाषानुवादसहित

नवम-दशम-एकादशकाण्ड

जिसको-

ऋ० कु० प० रामस्वरूपशर्मात्मज

मुरादाबादनिवासी-सनातनधर्मपताका-सम्पादक

ऋ० कु० प० रामचन्द्र शर्माने

अनुवादित कर

सनातनधर्म-यन्त्रालय

मुरादाबाद में छाप कर

प्रकाशित किया.

सम्वत् १९८७

प्रथम वार

१०००

no: 19122
Khandas 1[illegible], [illegible] & [illegible]
in one
Rs 73-2-0 for
8 vols

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar

श्रीहरिः

सभाष्य अथर्ववेदकी विषयसूची

विषय पृष्ठ

नवमकाण्ड

प्रथम अनुवाक-

प्रथमसूक्त । इसमें मधुकशाका सोमरूपसे वर्णन है और इससे अश्विनीकुमार आदि देवताओंसे वर्चः की प्रार्थना भी की जाती है। इसका मेधाजननकर्ममें और उत्सर्जनकर्मके आज्यहोममें और सोमयागके सोमसवनमें भी विनियोग होता है। १

द्वितीय सूक्त। इसमें इच्छारूप देवतासे शत्रुक्षयकी प्रार्थना की गई है। इससे पीपलकी समिधाओंसे होम और कामदेवको नमस्कार किया जाता है। १३

द्वितीय अनुवाक-

प्रथम सूक्त। स्वर्गकी कामना वाला इससे शालासवको करे। १८

द्वितीयसूक्त। इसका वृषोत्सर्ग आदिमें विनियोग होता है। ३६

तृतीय अनुवाक—

प्रथमसूक्त। इससे गार्हपत्यके अग्निचयनमें चिनी जाने वाली ईंटोंका अनुमन्त्रण होता है। और इसमें पञ्चौदनसवके अजदान की प्रशंसा है। ५१

द्वितीय तृतीय चतुर्थ पञ्चम षष्ठ और सप्तम सूक्त। स्वर्गको चाहने वाला द्वितीय सूक्तका जप करे। और 'यहाँसे लेकर छः पर्यायसूक्तोंमें अतिथिका माहात्म्य, पूजन और पूजनका यज्ञकी समान फल देना वर्णित है। ७२

चतुर्थ अनुवाक—

प्रथमसूक्त। इसका गोष्ठकर्ममें विनियोग होता है और इससे

विषय पृष्ठ

अनुडुत्सवके कर्म होते हैं तथा इसमें वृषभके पवित्र अङ्गोंकी प्रशंसा है। ९१

द्वितीय सूक्त। इससे शिरोरोगकी चिकित्सा की जाती है और सर्वव्याधिचिकित्सामें भी इसका विनियोग होता है। ९७

पञ्चम अनुवाक–

प्रथम द्वितीय सूक्त। इस अनुवाकका क्षीरौदनके प्राशन आदि में विनियोग होता है। १०४

❋ दशमकाण्ड ❋

प्रथम अनुवाक–

प्रथम सूक्त। कृत्याको दूर करनेके शान्तिजलमें इस सूक्तका विनियोग होता है। १३५

द्वितीयसूक्त। इसमें पुरुषके माहात्म्यका वर्णन है, तथा इसका पुरुषमेधमें और शनैश्चरकी हवि और घृतके होममें विनियोग होता है। १४९

द्वितीय अनुवाक–

प्रथमसूक्त। इस सूक्तमें वरणनामक मणिका प्रताप वीर्य और शत्रुक्षयकी शक्ति तथा धारकके सब दुःखोंके नाशका वर्णन है और अभयानामक महाशान्तिके वरणमणिबंधनमें भी यह सूक्त पढ़ा जाता है। १६४

द्वितीय सूक्त। इसमें अनेक प्रकारके सर्प, उनके विष, विषनाशक उपाय, सर्पविष-चिकित्साके मन्त्र तथा सर्पविषनाशक कुछ औषधियोंका वर्णन है। १७४

तृतीय अनुवाक–

प्रथमसूक्त। इससे अभिचारकर्ममें जलवज्र बनाया जाता है। १८६

द्वितीयसूक्त। शत्रुनाशके लिये और सर्वकामप्राप्तिके लिये इससे खदिरफालमणि बाँधी जाती है। तथा भूमिकामक खादिर फालमणिबन्धनमें भी इसका विनियोग होता है। २१३

421
A3 58

विषय पृष्ठ

चतुर्थ अनुवाक-

प्रथम सूक्त। इसमें स्कंभ अर्थात् ज्येष्ठ ब्रह्मका वर्णन है। २२९

द्वितीय सूक्त। इसमें भी स्कंभका ज्येष्ठत्व श्रेष्ठत्व और सबका आश्रयभूतत्व, प्रतिपादन किया गया है। २४८

पञ्चम अनुवाक-

प्रथमसूक्त। इससे शतौदनसवमें निरूप्तहविका अभिमर्शन सम्पातन और दातृवाचन किया जाता है। २६७

द्वितीय सूक्त। इसमें वशामाहात्म्य है। २७९

❋ एकादशकाण्ड ❋

प्रथम अनुवाक-

प्रथम सूक्त। इससे ब्रह्मौदनसवमें निरूप्त हविका अभिमर्शन सम्पातन और दातृवाचन किया जाता है। इत्यादि। ब्रह्मौदनसवकी व्याख्या। २९२

द्वितीय सूक्त। इसका ब्रह्मौदनसवके चावलोंको छाजसे फटकने आदिमें विनियोग होता है। ३०९

तृतीय सूक्त। इससे ब्रह्मौदनसवमें ब्राह्मणोंके हाथ धुलाना आदि कर्म होते हैं। ३२५

चतुर्थ सूक्त। इससे ब्रह्मौदनसवमें ओदनके ऊपर गर्त आदि करे। आर्षेय ब्राह्मणोंकी व्याख्या। ३३९

पञ्चम षष्ठ और सप्तम सूक्त। स्वस्त्ययन चाहने वाला इनसे घृत पुरोडाश आदिकी आहुति देय। रुद्र भूत प्रेत राक्षस या लोकपालका अभिघात होने पर स्वस्त्ययन चाहने वाला इनसे अपने और बछड़ेके एकसे रंग वाली गौके दूधमें बनी हुई हविकी तीन आहुतियें देवे। महादेवजीकी आठ मूर्त्तियें। ३४९

द्वितीय अनुवाक-

प्रथम द्वितीय तृतीय सूक्त। इनसे बृहस्पतिसवमें हविका

विषय पृष्ठ

अभिमर्शन सम्पातन और दातृवाचन किया जाता है । तैंतीस देवताओंका बखान । ३८३

चतुर्थ पञ्चम और षष्ठसूक्त । आचार्य इनसे उपनयनकर्ममें माणवककी नाभिको छू कर जप करे, तथा आयुष्काम इनसे दाहिने कानका अनुमन्त्रण करे, आयुष्कामके शरीरका अभिमन्त्रण करे, घृतकी आहुति देय, अमृता नाम वाली महाशान्तिमें व्रीहियवमय मणिको बाँधे, ग्रहयज्ञमें शनैश्चरके लिये हवि और घृतका होम, समिदाधान वा उपस्थान करे और शान्त्यर्थ लक्षहोमको करे । ४३७

तृतीय अनुवाक-

प्रथम द्वितीय और तृतीय सूक्त । इनमें ब्रह्मचारीका माहात्म्य है इनका ब्रह्मयज्ञजपमें विनियोग होता है । ४६४

चतुर्थ पञ्चमसूक्त । इनका शान्त्युदकाभिमन्त्रण आदिमें विनियोग होता है । और अनुक्त विधि वाले दानोंमें इनसे होम किया जाता है । ४९३

चतुर्थ अनुवाक-

प्रथम द्वितीय और तृतीय सूक्त । इनसे ब्रह्मौदन नामक सवयज्ञके होमनेके पके हुए ओदनकी सर्वजगत्कारणभूत ब्रह्मके अभेद भावसे स्तुति की है । ऋक्, यजु और सामका अर्थ । राजसूय और वाजपेयके अधिकारी । ५१२

चतुर्थ पञ्चम और षष्ठ सूक्त । इनका ब्रह्मयज्ञजपमें विनियोग होता है । और ॐ नाम वाले शरीरमें आत्मरूपसे प्रविष्ट ब्रह्मका, इन्द्रियोंका तथा शरीरका वर्णन किया गया है । ५३८

पञ्चम अनुवाक-

प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ पञ्चम और षष्ठ सूक्त । विजयाभिलाषी राजा इनसे शत्रुको आज्ञा देय वा जप करे । इत्यादि ५८२

श्रीहरिः

अथर्ववेदसंहिता

नवम-काण्ड

भाषानुवाद-सहित

“दिवस्पृथिव्याः” इति चतुर्विंशत्यृचमकम्। तत्र प्रथमासु दशर्क्षु मधुकशाया गोरूपेण वर्णनम्। द्वितीये दशके वर्चस आशंसनम् अश्विभ्यां सकाशाद् इतरदेवेभ्यश्च। शिष्टास्वृक्षु कशायाः पुनरपि वर्णनम् ॥

सांप्रदायिकास्तु एवं विनियुञ्जन्ति। “दिवस्पृथिव्याः” इत्यर्थसूक्तस्य मेधाजननकर्मणि वर्चस्यकर्मणि च विनियोगः। एतद्विस्तरः “प्रातरग्निम्” इति सूक्ते [३, १६] द्रष्टव्यः ॥

उत्सर्जनकर्मणि “यथा सोमः प्रातःसवने” [६. १. ११–२४] इति सूक्तम् आज्यहोमे विनियुज्यते। तद् उक्तं कौशिकेन। “गिरावरगराटेषु [६. ६९] यथा सोमः प्रातःसवने” इति [कौ० १४. ३] ॥

तथा “दिवस्पृथिव्याः” इति सूक्तं सोमयागे सोमसवने विनियुज्यते। तद् उक्तं वैताने। “दिवस्पृथिव्या इति मधुसूक्तेन राजानं संश्रयति” इति [वै० ३. ६] ॥

“दिवस्पृथिव्याः” यह चौबीस ऋचाओं वाला सूक्त है। इसकी पहिली दश ऋचाओंमें मधुकशाका गोरूपसे वर्णन है। दूसरे दशकमें अश्विनीकुमारों तथा अन्य देवताओंसे वर्चस्‌की प्रार्थना की गई है। बाकी ऋचाओंमें कशाका ही फिर वर्णन किया है।

विषय पृष्ठ

अभिमर्शन सम्पातन और दातृवाचन किया जाता है। तैंतीस देवताओंका वर्णन। ३८३

चतुर्थ पञ्चम और षष्ठसूक्त। आचार्य इनसे उपनयनकर्ममें माणवककी नाभिको छू कर जप करे, तथा आयुष्काम इनसे दाहिने कानका अनुमन्त्रण करे, आयुष्कामके शरीरका अभिमन्त्रण करे, घृतकी आहुति देय, अमृता नाम वाली महाशान्तिमें व्रीहियवमय मणिको बाँधे, ग्रहयज्ञमें शनैश्चरके लिये हवि और घृतका होम, समिदाधान वा उपस्थान करे और शान्त्यर्थ लक्षहोमको करे। ४३७

तृतीय अनुवाक-

प्रथम द्वितीय और तृतीय सूक्त। इनमें ब्रह्मचारीका माहात्म्य है इनका ब्रह्मयज्ञजपमें विनियोग होता है। ४६४

चतुर्थ पञ्चमसूक्त। इनका शान्त्युदकाभिमन्त्रण आदिमें विनियोग होता है। और अनुक्त विधि वाले दानोंमें इनसे होम किया जाता है। ४९३

चतुर्थ अनुवाक-

प्रथम द्वितीय और तृतीय सूक्त। इनसे ब्रह्मौदन नामक सवयज्ञके होमनेसे बचे हुए ओदनकी सर्वजगत्कारणभूत ब्रह्मके अभेद भावसे स्तुति की है। ऋक्, यजुः और सामका अर्थ। राजसूय और वाजपेयके अधिकारी। ५१२

चतुर्थ पञ्चम और षष्ठ सूक्त। इनका ब्रह्मयज्ञजपमें विनियोग होता है। और छः कोश वाले शरीरमें आत्मरूपसे प्रविष्ट ब्रह्मका, इन्द्रियोंका तथा शरीरका वर्णन किया गया है। ५४६

पञ्चम अनुवाक-

प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ पञ्चम और षष्ठ सूक्त। विजयाभिलाषी राजा अपने भटोंको आज्ञा देय वा जप करे। इत्यादि ५८२

श्रीहरिः

अथर्ववेदसंहिता

नवम-काण्ड

भाषानुवाद-सहित

"दिवस्पृथिव्याः" इति चतुर्विंशत्यात्मकम्। तत्र प्रथमासु दशर्क्षु मधुकशाया गोरूपेण वर्णनम्। द्वितीये दशके वर्चस आशंसनम् अश्विभ्यां सकाशाद् इतरदेवेभ्यश्च। शिष्टास्वृक्षु कशायाः पुनरपि वर्णनम् ॥

सांप्रदायिकास्तु एवं विनियुञ्जन्ति। "दिवस्पृथिव्याः" इत्यर्थसूक्तस्य मेधाजननकर्मणि वर्चस्यकर्मणि च विनियोगः। एतद्विस्तरः "प्रातरग्निम्" इति सूक्ते [३, १६] द्रष्टव्यः ॥

उत्सर्जनकर्मणि "यथा सोमः प्रातःसवने" [९. १. ११-२४] इति सूक्तम् आज्यहोमे विनियुज्यते। तद् उक्तं कौशिकेन। "गिरावरगराटेषु [६. ६९] यथा सोमः प्रातःसवने" इति [कौ० १४. ३] ॥

तथा "दिवस्पृथिव्याः" इति सूक्तं सोमयागे सोमसवने विनियुज्यते। तद् उक्तं वैताने। "दिवस्पृथिव्या इति मधुसूक्तेन राजानं संश्रयति" इति [वै० ३. ६] ॥

"दिवस्पृथिव्याः" यह चौबीस ऋचाओं वाला सूक्त है। इसकी पहिली दश ऋचाओंमें मधुकशाका गोरूपसे वर्णन है। दूसरे दशकमें अश्विनीकुमारों तथा अन्य देवताओंसे वर्चस्की प्रार्थना की गई है। बाकी ऋचाओंमें कशाका ही फिर वर्णन किया है।

साम्प्रदायिक इस प्रकार विनियोग करते हैं, कि–"दिवस्पृथिव्याः" इस अर्थसूक्तका मेधाजननकर्ममें और वर्चस्यकर्ममें विनियोग है। इसका अधिक विस्तार "प्रातरग्निम्" इस ३ । १६ सूक्तमें देखना चाहिये।

उत्सर्जन कर्ममें "यथा सोमः प्रातः सवने" (इस नवम कांडके प्रथमसूक्तकी ग्यारहवीं ऋचासे चौबीसवीं ऋचा तकका) सूक्त घृतहोममें विनियुक्त होता है। इसी बातको कौशिकने कहा है, कि–"गिरावरगराटेषु (६ । ६९) यथा सोमः प्रातः सवने" (कौशिकसूत्र १४ । ३) ॥

तथा "दिवस्पृथिव्याः" यह सूक्त सोमयागमें सोमसवनमें विनियुक्त होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"दिवस्पृथिव्या इति मधुसूक्तेन राजानं संश्रयति" (वैतानसूत्र ३।६) ॥

दि॒वस्पृ॑थि॒व्या अ॒न्तरि॑क्षात् स॒मु॒द्राद॒ग्नेर्वाता॑न्मधुक॒शा
हि ज॒ज्ञे ।
तां॑ चा॑यि॒त्वा॒मृतं॒ वसा॑नां हृ॒द्भिः प्र॒जाः प्रति॑ नन्द॒न्ति
सर्वाः॑ ॥ १ ॥

दि॒वः । पृ॒थि॒व्याः । अ॒न्तरि॑क्षात् । स॒मु॒द्रात् । अ॒ग्नेः । वाता॑त् ।
म॒धु॒ऽक॒शा । हि । ज॒ज्ञे ।
ताम् । चा॒यि॒त्वा । अ॒मृत॑म् । वसा॑नाम् । हृ॒त्ऽभिः । प्र॒ऽजाः ।
प्रति॑ । न॒न्द॒न्ति । सर्वाः ॥ १ ॥

मधुकशा गौ स्वर्गसे पृथिवीसे अन्तरिक्षसे समुद्रसे और अग्निसे प्रकट हुई है। उस अमृतधारिणीकी पूजा करके सकल प्रजायें हृदयमें आनन्द पाया करती हैं ॥ १ ॥

महत् पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ।
यत ऐति मधुकशा रराणा तत् प्राणस्तदमृतं निविष्टम् २

महत् । पयः । विश्वऽरूपम् । अस्याः । समुद्रस्य । त्वा । उत । रेतः । आहुः ।
यतः । आऽएति । मधुऽकशा । रराणा । तत् । प्राणः । तत् । अमृतम् । निऽविष्टम् ॥ २ ॥

इस मधुरूप दुग्धसे सम्पन्न गौके बड़े भारी दुग्धको ही समुद्रका जल कहते हैं, जिस ओर यह मधुकशा स्तुति पाती हुई आती है उस स्थानमें रहने वालोंका प्राण अमृतमें प्रतिष्ठित हो जाता है ॥ २ ॥

पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथङ्नरो बहुधा मीमांसमानाः
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥३॥

पश्यन्ति । अस्याः । चरितम् । पृथिव्याम् । पृथक् । नरः । वहुऽधा । मीमांसमानाः ।
अग्नेः । वातात् । मधुऽकशा । हि । जज्ञे । मरुताम् । उग्रा । नप्तिः ३

मनुष्य इसके चरित्रकी अनेक प्रकारसे मीमांसा करके इसके चरित्रको पृथिवीमें अनेकरूप वाला देखते हैं, कि—यह मरुतोंकी प्रचण्ड नप्ति अग्निसे और वायुसे प्रकट हुई है ॥ ३ ॥

मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य
नाभिः ।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु

माता । आदित्यानाम् । दुहिता । वसूनाम् । प्राणः । प्रऽजानाम् ।
अमृतस्य । नाभिः ।
हिरण्यऽवर्णा । मधुऽकशा । घृताची । महान् । भर्गः । चरति ।
मर्त्येषु ॥ ४ ॥

यह मधुकशा आदित्योंकी माता है, वसुओंकी पुत्री है, प्रजाओंकी प्राण है और अमृतकी नाभि है, घृताची हित रमणीय वर्ण वाली मधुकशा महान् तेजके रूपमें मनुष्योंमें विचरण करती है ॥ ४ ॥

मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद्
विश्वरूपः ।
तं जातं तरुणं पिपर्ति माता स जातो विश्वा भुवना
वि चष्टे ॥ ५ ॥

मधोः । कशाम् । अजनयन्त । देवाः । तस्याः । गर्भः । अभवत् ।
विश्वऽरूपः ।
तम् । जातम् । तरुणम् । पिपर्ति । माता । सः । जातः । विश्वा ।
भुवना । वि । चष्टे ॥ ५ ॥

देवताओंने मधुकशाको प्रकट किया, उसका गर्भ विश्वरूप हुआ उस तरुण उत्पन्न हुएका माताने पालन किया, उसने उत्पन्न होते समय सकल प्राणियोंको प्रकाशित कर दिया ॥ ५ ॥

कस्तं प्र वे॑द॒ क उ॒ तं चि॑केत॒ यो अ॑स्या हृ॒दः क॒लशः॑
सोम॒धानो॒ अक्षि॑तः ।
ब्र॒ह्मा सु॑मे॒धाः सो अ॑स्मिन् मदेत ॥ ६ ॥

कः । तम् । प्र । वे॒द॒ । कः । ऊं॒ इति॑ । तम् । चि॒के॒त॒ । यः ।
अ॒स्याः॒ । हृ॒दः । क॒लशः॑ । सो॒म॒ऽधानः॑ । अक्षि॑तः ।
ब्र॒ह्मा । सु॒ऽमे॒धाः । सः । अ॒स्मि॒न् । म॒दे॒त॒ ॥ ६ ॥

उसको कौन जानता है उसको स्पष्टतासे कौन जानता है, इसका हृदय सोम रखनेका कलशरूप है और कभी क्षीण नहीं होता, सुन्दर बुद्धि वाला ब्रह्मा इसमें हर्ष पाता है ॥ ६ ॥

स तौ प्र वे॑द॒ स उ॒ तौ चि॑केत॒ याव॑स्या॒ः स्तनौ॑
स॒हस्र॑धारा॒वक्षि॑तौ ।
ऊर्जं॑ दुहाते॒ अन॑पस्फुरन्तौ ॥ ७ ॥

सः । तौ । प्र । वे॒द॒ । सः । ऊं॒ इति॑ । तौ । चि॒के॒त॒ । यौ ।
अ॒स्याः॒ । स्तनौ॑ । स॒हस्र॑ऽधारौ । अक्षि॑तौ ।
ऊर्ज॑म् । दु॒हा॒ते॒ इति॑ । अन॑पऽस्फुरन्तौ ॥ ७ ॥

इसके जो सहस्रों धारों वाले अक्षीण स्तन हैं, कि-जो अवि-

नाशी रहते हुए बलप्रद दुग्धको दुहाते हैं उनको वही ब्रह्मा जानता है ॥ ७ ॥

हि॒ङ्करि॑क्रती बृह॒ती व॑यो॒धा उ॒च्चैर्घो॑षा॒भ्येति॒ या व्र॒तम् ।
त्रीन् घ॒र्मान॒भि वा॑व॒शाना॒ मिमा॑ति मा॒युं पय॑ते॒
पयो॑भिः ॥ ८ ॥

हि॒ङ्ऽक॑रिक्रती । बृ॒ह॒ती । व॒यः॒ऽधाः । उ॒च्चैःऽघो॑षा । अ॒भि॒ऽए॑ति ।
या । व्र॒तम् ।

त्रीन् । घ॒र्मान् । अ॒भि । वा॒व॒शा॒ना । मिमा॑ति । मा॒युम् । पय॑ते ।
पय॑ःऽभिः ॥ ८ ॥

वारम्वार हिं हिं शब्द करती हुई, हविको धारण करने वाली उच्च स्वर करती हुई जो गौ कर्मस्थलमें आती है वह अग्नि चन्द्र सूर्य इन तीन तेजोंको वशमें करती हुई अपने दुग्धसे इन देवताओंकी शरणमें जाने वालोंके शब्दको शक्तिसम्पन्न करती है ८

यामापी॑नामुप॒सीद॒न्त्याप॑ः शाक्व॒रा वृ॑ष॒भा ये स्व॒राज॑ः ।
ते व॑र्षन्ति॒ ते व॑र्षयन्ति त॒द्विदे॒ काम॑मू॒र्ज॒माप॑ः ॥९॥

याम् । आ॑ऽपीनाम् । उ॒प॒ऽसी॑दन्ति । आप॑ः । शा॒क्व॒राः । वृ॒ष॒भाः ।
ये । स्व॒ऽराज॑ः ।

ते । व॒र्ष॒न्ति॒ । ते । व॒र्ष॒य॒न्ति॒ । त॒त्ऽविदे॑ । काम॑म् । ऊ॒र्ज॑म् । आप॑ः ९

जिस पुष्ट मधुकशाके पास अपनी कांतिसे दमकने वाले कामनाओंकी वर्षा करने वाले जल आते हैं, वे जल उस मधु-

कशाको जानने वालेके लिये कामनाओंकी और बलप्रद अन्नकी वर्षा करते और कराते हैं ॥ ९ ॥

स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः १०

स्तनयित्नुः । ते । वाक् । प्रजाऽपते । वृषा । शुष्मम् । क्षिपसि । भूम्याम् । अधि ।
अग्नेः । वातात् । मधुऽकशा । हि । जज्ञे । मरुताम् । उग्रा । नप्तिः १०

हे प्रजापते ! स्तनयित्नु (वज्रकी कड़क) ही आपकी वाणी हैं, आप वर्षा करने वाले हैं और भूमि पर बलकी वर्षा करते हैं अग्निसे और वायुसे मरुद्गणोंकी उग्र नप्ति मधुकशा हुई है १०

यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्भवति प्रियः ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ ११ ॥

यथा । सोमः । प्रातःऽसवने । अश्विनोः । भवति । प्रियः ।
एव । मे । अश्विना । वर्चः । आत्मनि । ध्रियताम् ॥ ११ ॥

प्रातःसवनमें सोम जैसे अश्विनीकुमारोंको प्रिय होता है, इसी प्रकार अश्विनीकुमार मुझमें वर्चको स्थापित करें ॥ ११ ॥

यथा सोमो द्वितीये सवन इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः ।
एवा म इन्द्राग्नी वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ १२ ॥

० सोमः । द्वितीये । सवने । इन्द्राग्न्योः । भवति । ० ।

० मे । इन्द्राग्नी इति । वर्चः । ० ॥ १२ ॥

द्वितीयसवनमें जैसे सोम इन्द्र और अग्निको प्रिय होता है इसी प्रकार इन्द्र और अग्नि मुझमें वर्चको स्थापित करें ॥ १२ ॥

यथा सोमस्तृतीये सवन ऋभूणां भवति प्रियः ।
एवा म ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ १३ ॥

यथा । सोमः । तृतीये । सवने । ऋभूणाम् । भवति । प्रियः ।
एव । मे । ऋभवः । वर्चः । आत्मनि । ध्रियताम् ॥ १३ ॥

जैसे तृतीयसवनमें सोम ऋभुदेवताओंको प्रिय होता है, इसी प्रकार ऋभुदेवता मुझमें वर्चको स्थापित करें ॥ १३ ॥

मधु जनिषीय मधु वंशिषीय ।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥ १४ ॥

मधु । जनिषीय । मधु । वंशिषीय ।
पयस्वान् । अग्ने । आ । अगमम् । तम् । मा । सम् । सृज । वर्चसा १४

मैं मधुको प्रकट करूँ, मधुसे कान्तिमान् होऊँ, हे अग्ने ! मैं पय आदिकी हवि वाला आगया हूँ, आप मुझे वर्चसे संयुक्त करिये ॥ १४ ॥

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः १५

सम् । मा । अग्ने । वर्चसा । सृज । सम् । प्रऽजया । सम् । आयुषा ।
विद्युः । मे । अस्य । देवाः । इन्द्रः । विद्यात् । सह । ऋषिऽभिः १५

हे अग्ने ! आप मुझे अन्नभक्षणसे होनेवाले तेजसे प्रजासे और आयुसे सम्पन्न करिये देवता और ऋषि मुझको यह जानें, कि यह इस (अग्नि) का (सेवक) है ॥ १५ ॥

यथा मधु मधुकृतः संभरन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ १६ ॥

यथा । मधु । मधुऽकृतः । सम्ऽभरन्ति । मधौ । अधि ।
एव । मे । अश्विना । वर्चः । आत्मनि । ध्रियताम् ॥ १६ ॥

जैसे मधुको करने वाले मधुके ऊपर ही मधुको डालते जाते हैं इसी प्रकार अश्विनीकुमार मेरे यहाँ वर्चकी स्थापना करें ॥ १६ ॥

यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम् १७

यथा । मक्षाः । इदम् । मधु । निऽअञ्जन्ति । मधौ । अधि ।
एव । मे । अश्विना । वर्चः । तेजः । बलम् । ओजः । च । ध्रियताम् ॥ १७ ॥

जैसे मधुमक्षिकायें मधुके ऊपर मधुको इकट्ठा करती जाती हैं, इसी प्रकार अश्विनीकुमार, मुझमें वर्च तेज बल और ओजको स्थापित करें ॥ १७ ॥

यद् गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन्मधु ।
सुरायां सिच्यमानायां यत् तत्र मधु तन्मयि ॥१८॥

यत् । गिरिषु । पर्वतेषु । गोषु । अश्वेषु । यत् । मधु ।

२ १२-८-३०

सुरायाम् । सिच्यमानायाम् । यत् । तत्र । मधु । तत् । मयि १८

गिरियोंमें, पर्वतोंमें, गौओंमें और घोड़ोंमें जो मधु है और खिचती हुई सुरामें जो मधु है वह मधु मुझमें हो ॥ १८ ॥

अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ॥ १९ ॥

अश्विना । सारघेण । मा । मधुना । अङ्क्तम् । शुभः । पती इति ।
यथा । वर्चस्वतीम् । वाचम् । आऽवदानि । जनान् । अनु ॥१९॥

हे शोभाके लिये धारण किये जाने वाले अलंकारोंके स्वामी अश्विनीकुमारो ! आप मुझको मधुमक्षिकाओंके एकत्रित किये हुए रससे सम्पन्न करिये,—जिस प्रकार मैं दीप्तिमयी मधुर वाणीको मनुष्योंसे कह सकूँ, तिस प्रकार आप मुझको मधुसे सींचिये ॥ १९ ॥

स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवि ।
तां पशव उप जीवन्ति सर्वे तेनो सेषमूर्जं पिपर्ति २०

स्तनयित्नुः । ते । वाक् । प्रजाऽपते । वृषा । शुष्मम् । क्षिपसि । भूम्याम् । दिवि ।
ताम् । पशवः । उप । जीवन्ति । सर्वे । तेनो इति । सा । इषम् । ऊर्जम् । पिपर्ति ॥ २० ॥

हे प्रजापते ! स्तनयित्नु ही आपकी वाणी है, तथा भूमिमें और स्वर्गमें बल-(दायक पदार्थ वृष्टि) की वर्षा करते हैं और आप कामनाओंकी वर्षा करने वाले हैं, उससे सब पशु आजीविका करते हैं और वह अन्न तथा बलको पुष्ट करती है २०

पृथिवी दण्डो३न्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा विद्युत् प्रकशो
हिरण्ययो बिन्दुः ॥ २१ ॥

पृथिवी । दण्डः । अन्तरिक्षम् । गर्भः । द्यौः । कशा । विऽद्युत् ।
प्रऽकशः । हिरण्ययः । बिन्दुः ॥ २१ ॥

पृथिवी दण्ड है, अन्तरिक्ष गर्भ है, द्यौ कशा है, विद्युत् प्रकाश है, और हिरण्यय बिन्दु है ॥ २१ ॥

यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति ।
ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चानड्वांश्च व्रीहिश्च यवश्च
मधु सप्तमम् ॥ २२ ॥

यः । वै । कशायाः । सप्त । मधूनि । वेद । मधुऽमान् । भवति ।
ब्राह्मणः । च । राजा । च । धेनुः । च । अनड्वान् । च । व्रीहिः ।
च । यवः । च । मधु । सप्तमम् ॥ २२ ॥

जो कशाके साथ मधुओंको जानता है वह मधुमान् होजाता है (वे सात मधु ये हैं) ब्राह्मण, राजा, धेनु, अनड्वान्, धान, जौं और सातवाँ मधु ॥ २२ ॥

मधुमान् भवति मधुमदस्याहार्यं भवति ।

मधु॑मतो लो॒कान् ज॑यति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ २३ ॥

मधु॑ऽमान् । भ॒व॒ति॒ । मधु॑ऽमत् । अ॒स्य॒ । आ॒ऽहा॒र्य॑म् । भ॒व॒ति॒ ।

मधु॑ऽमतः । लो॒कान् । ज॒य॒ति॒ । यः । ए॒वम् । वेद॑ ॥ २३ ॥

जो इस प्रकार जानता है वह मधुमान् होजाता है इसका भोजन भी मधुमय होता है और वह मधुमय लोकोंको जीतता है ॥

यद् वी॒ध्रे स्त॒नय॑ति प्र॒जाप॑ति॒रेव तत् प्र॒जाभ्यः॑ प्रा॒दुर्भ॑वति

तस्मा॑त् प्राचीनोपवी॒तस्ति॑ष्ठे॒ प्रजाप॑ते॒नु॑ मा बुध्य॒स्वेति॑ ।

अन्वे॑नं प्र॒जा अनु॑ प्र॒जाप॑तिर्बुध्यते॒ य ए॒वं वेद॑ २४

यत् । वी॒ध्रे । स्त॒नय॑ति । प्र॒जाऽप॑तिः । ए॒व । तत् । प्र॒ऽजाभ्यः॑ ।
प्रा॒दुः । भ॒व॒ति॒ ।

तस्मा॑त् । प्रा॒ची॒न॒ऽउ॒प॒वी॒तः । ति॒ष्ठे॒ । प्रजा॑ऽपते । अनु॑ । मा॒ । बु॒ध्य॒स्व॒ ।
इति॑ ।

अ॑नु । ए॒न॒म् । प्र॒ऽजाः । अनु॑ । प्र॒जाऽप॑तिः । बु॒ध्य॒ते॒ । यः । ए॒वम् । वेद॑

इति प्रथमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

जिसमें विविध प्रकारसे ग्रह नक्षत्र आदि दिपते हैं उस वीध्र—आकाश—में जो कड़क होती है वही प्रजापति प्रजाओंके लिये प्रादुर्भूत होते हैं, इस कारण प्राचीनोपवीत (दाहिने कंधे पर यज्ञोपवीतधारी) स्थित रहे, कि—प्रजापति मुझको जानें । जो इस प्रकार जानता है प्रजा उसको ही प्रजापतिसे उतरता हुआ समझती है ॥ २४ ॥ (२)

प्रथम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (४५४)

"सपत्नहनम्" इति सूक्तं कामदेवताकम्। कामइच्छारूपो देवः। तं संबोध्य सपत्नक्षयं प्रार्थयते। तद्ध एवम्। "सपत्नहनम्" इत्यर्थसूक्तेन अभिचारकर्मणि ऋषभं संपातवन्तं कृत्वा द्वेष्याभिमुखं विसृजति ॥ तथा तत्रैव कर्मणि आश्वत्थीः स्वयंपतिताः समिध आदधाति। तथा च सूत्रम्। "सपत्नहनम् इत्यृषभं संपातवन्तम् अतिसृजति। आश्वत्थीरवपन्नाः स्वयम्" इति [कौ० ६. ३]॥

तथा सोमयागे अनूबन्ध्यायाम् अपराजितायां तिष्ठन्त्यां कामदेवतानमस्कारे अस्य सूक्तस्य विनियोगः। तद् उक्तं वैताने। "अनूबन्ध्यायाम् अपराजितायां तिष्ठन्त्यां सपत्नहनम् इति कामं नमस्करोति" इति [वै० ३. १४]॥

"सपत्नहनम्" यह काम देवता वाला सूक्त है। इच्छारूपदेवको काम कहते हैं, उसको सम्बोधित करके शत्रुक्षयकी प्रार्थना की गई है। उसकी विधि इस प्रकार है। अभिचारकर्ममें 'सपत्नहनम्' अर्थसूक्तसे ऋषभको सम्पातित करके शत्रुकी ओर छोड़ देय और तहाँ ही कर्ममें अपने आप गिरी हुई पीपलकी समिधाओंको रक्खे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"सपत्नहनं इत्यृषभं सम्पातवन्तं अतिसृजति। आश्वत्थीरवपन्नाः स्वयम्" (कौशिकसूत्र ६। ३)॥

तथा सोमयागमें अपराजिता अनूबन्ध्याके स्थित होने पर "सपत्नहनम्" सूक्तका कामदेवको नमस्कार करनेमें विनियोग किया जाता है। इस विषयमें वैतानसूत्र ३। १४ का प्रमाण भी है, कि—"अनूबन्ध्यायां अपराजितायां तिष्ठन्त्यां सपत्नहनं इति कामं नमस्करोति"॥

सपत्नहनमृषभं घृतेन कामं शिक्षामि हविषाज्येन
नीचैः सपत्नान् मम पादय त्वमभिष्टुतो महता वीर्येण

सपत्नऽहनम् । ऋषभम् । घृतेन । कामम् । शिक्षामि । हविषा ।
आज्येन ।
नीचैः । सऽपत्नान् । मम । पादय । त्वम् । अभिऽस्तुता । महता ।
वीर्येण ॥ १ ॥

मैं शत्रुनाशक काम ऋषभको घृत और हविसे शिक्षित करता हूँ, हे ऋषभ ! तू हमसे स्तुति पाकर बड़े बलसे मेरे शत्रुओंको नीचे गिरा दे ॥ १ ॥

यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति ।
तद् दुष्वप्न्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम् ॥ २ ॥

यत् । मे । मनसः । न । प्रियम् । न । चक्षुषः । यत् । मे । बभस्ति ।
न । अभिऽनन्दति ।
तत् । दुःऽस्वप्न्यम् । प्रति । मुञ्चामि । सऽपत्ने । कामम् । स्तुत्वा ।
उत् । अहम् । भिदेयम् ॥ २ ॥

जो मेरे मन और चक्षुको प्रिय नहीं है, जो मुझको खाता (सा) है, मुझे प्रसन्न नहीं करता है, कामकी स्तुति करके मैं उस दुःस्वप्नको वैरीकी ओर छोड़ता हूँ और उसको विदारण करता हूँ ॥ २ ॥

दुष्वप्न्यं काम दुरितं च कामाप्रजास्तामस्वगतामवर्तिम्

उ॒ग्र ईशा॑न॒ः प्रति॑ मु॒ञ्च त॒स्मि॑न् यो अ॒स्मभ्यं॑हूर॒णा
चिकि॑त्सात् ॥ ३ ॥

दु॒ःऽस्व॑प्न्यम् । का॒म॒ । दु॒ःऽइ॒तम् । च॒ । का॒म॒ । अ॒प्र॒जस्ता॑म् ।
अ॒स्व॒गता॑म् । अव॑र्तिम् ।

उ॒ग्रः । ईशा॑नः । प्रति॑ । मु॒ञ्च॒ । तस्मि॑न् । यः । अ॒स्मभ्य॑म् ।
अं॒हू॒र॒णा । चि॒कि॑त्सात् ॥ ३ ॥

हे काम ! आप दुःस्वप्नको, दुरितको, प्रजाहीनताको, अस्वगताको, और वृत्तिकी अभावरूपा दरिद्रताको उस पर छोड़िये जो हमको पराजयनिमित्तक कुटिलतागतिसे सम्पन्न जाननेकी इच्छा करता है, क्योंकि–हे काम ! आप उग्र हैं और ईश हैं ३

नु॒दस्व॑ का॒म प्र णु॑दस्व॒ कामाव॑र्तिं य॒न्तु मम॒ ये स॒पत्ना॑ः
ते॒षां॑ नु॒त्ताना॑मध॒मा त॒मांस्य॑ग्ने॒ वास्तू॑नि॒ निर्द॑ह॒ त्वम् ४

नु॒दस्व॑ । का॒म॒ । प्र । नु॒द॒स्व॒ । का॒म॒ । अव॑र्तिम् । य॒न्तु॒ । मम॑ ।
ये । स॒ऽपत्ना॑ः ।

ते॒षा॑म् । नु॒त्ताना॑म् । अ॒ध॒मा । त॒मां॑सि । अ॒ग्ने॒ । वा॒स्तू॑नि । निः ।
द॒ह॒ । त्वम् ॥ ४ ॥

हे काम ! आप वृत्तिकी अभावरूप दरिद्रताको हमसे अलग प्रेरित करिये, हे काम ! मेरे जो शत्रु हैं वे इस जीविकाके अभावरूप दरिद्रताको प्राप्त होवें, हे काम ! आप मेरे शत्रुओंकी ओर इसको

प्रकृष्टतासे प्रेरित करिये । हे अग्ने ! उनकी गृहकी वस्तुओंको आप जला दीजिये, उन पीड़ितोंके लिये अधम अंधकार होजावें ॥४॥

सा ते काम दुहिता धेनुरुच्यते यामाहुर्वाचं कवयो
विराजम् ।
तया सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान् प्राणः
पशवो जीवनं वृणक्तु ॥ ५ ॥

सा । ते । काम । दुहिता । धेनुः । उच्यते । याम् । आहुः ।
वाचम् । कवयः । विऽराजम् ।
तया । सऽपत्नान् । परि । वृङ्ग्धि । ये । मम । परि । एनान् ।
प्राणः । पशवः । जीवनम् । वृणक्तु ॥ ५ ॥

कवि जिसको तपःसे ओजस्विनी वाणी कहते हैं, वह धेनु (वाणी) आपकी पुत्री है, उसको आप मेरे शत्रुओंको नष्ट करिये, इन मेरे शत्रुओंको प्राण पशु और जीवन भली प्रकार त्याग देय५

कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो विष्णोर्बलेन सवितुः सवेन
अग्नेर्होत्रेण प्र णुदे सपत्नांछम्बीव नावमुदकेषु धीरः ६

कामस्य । इन्द्रस्य । वरुणस्य । राज्ञः । विष्णोः । बलेन । सवितुः ।
सवेन ।
अग्नेः । होत्रेण । प्र । नुदे । सऽपत्नान् । शम्बीऽइव । नावम् ।
उदकेषु । धीरः ॥ ६ ॥

जैसे धीर और वज्ररूप पतवारको धारण करने वाला शम्बी जलमें नावको प्रेरित करता है, इसी प्रकार मैं कामके इन्द्रके वरुणके सोमके और विष्णुके बलसे सविता देवताके यज्ञसे तथा अग्निहोत्रसे शत्रुओंको खदेड़ता हूँ ॥ ६ ॥

अध्य॑क्षो वा॒जी मम॒ काम॑ उ॒ग्रः कृ॒णोतु॒ मह्य॑मसप॒त्नमे॒व

विश्वे॑ दे॒वा मम॑ ना॒थं भ॑वन्तु॒ सर्वे॑ दे॒वा ह॒वमा य॑न्तु

म इ॒मम् ॥ ७ ॥

अधि॑ऽअक्षः । वा॒जी । मम॑ । काम॑ः । उ॒ग्रः । कृ॒णोतु॑ । मह्य॑म् ।
अ॒स॒प॒त्नम् । ए॒व ।

विश्वे॑ः । दे॒वा । मम॑ । ना॒थम् । भ॒व॒न्तु॒ । सर्वे॑ । दे॒वाः । हव॑म् ।
आ । य॒न्तु॒ । मे॒ । इ॒मम् ॥ ७ ॥

यह यज्ञहविरूप अन्नसे सम्पन्न आँखोंके सामने होता हुआ प्रचंड याज्ञिक कर्म मुझको शत्रुरहित अवश्य कर देय सकलदेवता मेरे नाथ बनें और सकलदेवता मेरे इस यज्ञमें आवें ॥ १ ॥

इ॒दमाज्यं॑ घृ॒तव॑ज्जु॒षा॒णाः काम॑ज्येष्ठा इ॒ह मा॑दयध्वम् ।

कृ॒ण्वन्तो॒ मह्य॑मसप॒त्नमे॒व ॥ ८ ॥

इ॒दम् । आज्य॑म् । घृ॒तऽव॑त् । जु॒षा॒णाः । काम॑ऽज्येष्ठाः । इ॒ह । मा॒द॒य॒ध्व॒म्
कृ॒ण्व॑न्तः । मह्य॑म् । अ॒स॒प॒त्नम् । ए॒व ॥ ८ ॥

हे कामप्रमुख देवताओं ! इस घृत (आदि मिली हवि) को घृतकी समान सेवन करते हुए और मुझको शत्रुरहित करते हुए आनन्द पाओ ॥ ८ ॥

इन्द्राग्नी काम सरथं हि भूत्वा नीचैः सपत्नान् मम पादयाथः ।
तेषां पन्ना नामधमा तमांस्यग्ने वास्तून्यनुनिर्दह त्वम् ९

इन्द्राग्नी इति । काम । सऽरथम् । हि । भूत्वा । नीचैः । सऽपत्नान् । मम । पादयाथः ।
तेषाम् । पन्नानाम् । अधमा । तमांसि । अग्ने । वास्तूनि । अनुऽनिर्दह । त्वम् ॥ ९ ॥

हे काम ! इन्द्र और अग्निदेवता रथमें सवार होकर मेरे शत्रुओं को नीचे गिरावें और हे अग्ने ! जब वे गिर जावें तब उनके निमित्त अधम अंधकारोंको प्रकट कर उनके घरकी वस्तुओंको भस्म कर डालिये ॥ ९ ॥

जहि त्वं काम मम ये सपत्ना अन्धा तमांस्यव पादयैनान् ।
निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे मा ते जीविषुः कतमच्चनाहः ॥ १० ॥

जहि । त्वम् । काम । मम । ये । सऽपत्नाः । अन्ध । तमांसि । अव । पादय । एनान् ।
निःऽइन्द्रियाः । अरसाः । सन्तु । सर्वे । मा । ते । जीविषुः । कतमत् । चन । अहः ॥ १० ॥

हे काम ! मेरे जो शत्रु हैं उनको आप मार डालिये और घोर अंधकाररूप मृत्युके अधीन करिये, ये सब इन्द्रियोंकी शक्तिसे रहित और निर्वीर्य होजावें और वे किसी दिन भी जीवित न रह सकें ॥ १० ॥

अवधीत् कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकमकरन्मह्यमेधतुम् ।
मह्यं नमन्ता प्रदिशश्चतस्रो मह्यं षडुर्वीर्घृतमा वहन्तु

अवधीत् । कामः । मम । ये । सऽपत्नाः । उरुम् । लोकम् । अकरत् । मह्यम् । एधतुम् ।
मह्यम् । नमन्ताम् । प्रऽदिशः । चतस्रः । मह्यम् । षट् । उर्वीः । घृतम् । आ । वहन्तु ॥ ११ ॥

जो मेरे शत्रु थे उनको कामने मार डाला है और कामने वृद्धि पानेके लिये मुझे बड़ा भारी लोक दे दिया है, इस लिये चारों श्रेष्ठ दिशाएँ अर्थात् सकल दिशाओंके प्राणी मुझको प्रणाम करें और छः उर्वियें मुझको घृत प्रदान करें ॥ ११ ॥

ते धराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।
न सायकप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥ १२ ॥

ते । अधराञ्चः । प्र । प्लवन्ताम् । छिन्ना । नौःऽइव । बन्धनात् ।
न । सायकऽप्रनुत्तानाम् । पुनः । अस्ति । निऽवर्तनम् ॥ १२ ॥

जैसे बंधन टूट जाने पर नौका नीचेको बहने लगती है, इसी

प्रकार ये मेरे शत्रु अधोगतिमें पड़ते चले जावें, क्योंकि-बाणसे भेजे हुए फिर लौट नहीं सकते ॥ १२ ॥

अग्निर्यव इन्द्रो यवः सोमो यवः ।
यवयावानो देवा यावयन्त्वेनम् ॥ १३ ॥

अग्निः । यवः । इन्द्रः । यवः । सोमः । यवः ।

यवऽयावानः । देवाः । यवयन्तु । एनम् ॥ १३ ॥

अग्नि भी शत्रुओंको दूर करने वाले हैं, इन्द्र भी शत्रुओंको पृथक् करने वाले हैं और सोम भी शत्रुओंको दूर करने वाले हैं अतः आप शत्रुको दूर करिये और हमारी रक्षा करिये देवता इस शत्रुको दूर कर देंय ॥ १३ ॥

असर्ववीरश्चरतु प्रणुत्तो द्वेष्यो मित्राणां परिवर्ग्यः स्वानाम् ।
उत पृथिव्यामव स्यन्ति विद्युत उग्रो वो देवः प्र मृणत् सपत्नान् ॥ १४ ॥

असर्वऽवीरः । चरतु । प्रऽनुत्तः । द्वेष्यः । मित्राणाम् । परिऽवर्ग्यः । स्वानाम् ।

उत । पृथिव्याम् । अव । स्यन्ति । विऽद्युतः । उग्रः । वः । देवः । प्र । मृणत् । सऽपत्नान् ॥ १४ ॥

हमारा शत्रु इस मन्त्रशक्तिसे प्रेरित होकर पुत्र पौत्र आदि वीर्यसे उत्पन्न होने वाले सकल वीरोंसे रहित होकर विचरण करे और अपने बान्धवोंसे त्यागने योग्य हो जावे, बिजलियें

पृथिवीमें इसके खण्ड २ कर डालें और (हे यजमानों !) उग्र देवता आपके शत्रुओंको मथ डालें ॥ १४ ॥

च्युता चेयं बृहत्यच्युता च विद्युद् बिभर्ति स्तनयित्नूंश्च सर्वान् ।
उद्यन्नादित्यो द्रविणेन तेजसा नीचैः सपत्नान् नुदतां मे सहस्वान् ॥ १५ ॥

च्युता । च । इयम् । बृहती । अच्युता । च । विऽद्युत् । बिभर्ति । स्तनयित्नून् । च । सर्वान् ।
उत्ऽयन् । आदित्यः । द्रविणेन । तेजसा । नीचैः । सऽपत्नान् । नुदताम् । मे । सहस्वान् ॥ १५ ॥

जो सकल मेघगर्जनोंका भरण करती है वह बिजली च्युत वा अच्युत होने पर और उदय होते हुए अभिभव करने वाले आदित्य भी अपने तेजःस्वरूप धनसे शत्रुओंको नीचे गिरा देवें १५

यत् ते काम शर्म त्रिवरूथमुद्भु ब्रह्म वर्म विततमनतिव्याध्यं कृतम् ।
तेन सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥ १६ ॥

यत् । ते । काम । शर्म । त्रिऽवरूथम् । उत्ऽभु । ब्रह्म । वर्म । विऽततम् । अनतिऽव्याध्यम् । कृतम् ।

तेन । सऽपत्नान् । परि । वृङ्ग्धि । ये । मम । परि । एनान् ।
प्राणः । पशवः । जीवनम् । वृणक्तु ॥ १६ ॥

हे काम ! आपका जो सुखप्रद त्रिवरूथ अनतिव्याध्य विस्तृत ब्रह्ममय कवच बना हुआ है उससे आप मेरे शत्रुओंको नष्ट करिये, इन मेरे शत्रुओंको प्राण पशु और जीवन भली प्रकार त्याग देय १६

येन देवा असुरान् प्राणुदन्त येनेन्द्रो दस्यूनधमं तमो
निनाय ।
तेन त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र
णुदस्व दूरम् ॥ १७ ॥

येन । देवाः । असुरान् । प्रऽअनुदन्त । येन । इन्द्रः । दस्यून् ।
अधमम् । तमः । निनाय ।
तेन । त्वम् । काम । मम । ये । सऽपत्नाः । तान् । अस्मात् ।
लोकात् । प्र । नुदस्व । दूरम् ॥ १७ ॥

जिससे देवताओंने असुरोंको खदेड़ दिया था और जिससे इन्द्रदेवने दस्युओंको मृत्युरूप अधम तममें डाल दिया था, हे काम ! उस शक्तिसे आप मेरे शत्रुओंको इस लोकसे दूर फैंक दीजिये १७

यथा देवा असुरान् प्राणुदन्तः यथेन्द्रो दस्यूनधमं तमो
बबाधे ।
तथा त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र
णुदस्व दूरम् ॥ १८ ॥

यथा । देवाः । असुरान् । प्रऽअनुदन्त । यथा । इन्द्रः । दस्यून् ।

अधमम् । तमः । बबाधे ।

तथा । त्वम् । काम । मम । ये । सऽपत्नाः । तान् । अस्मात् ।

लोकात् । प्र । नुदस्व । दूरम् ॥ १८ ॥

जिस प्रकार देवताओंने असुरोंको खदेड़ा था और जिस प्रकार इन्द्रने दस्युओंको अधम तमसे पीड़ा दी थी, इसी प्रकार हे काम! आप जो मेरे शत्रु हैं उनको इस लोकसे दूर खदेड़ दीजिये ॥१८॥

कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः ।

ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम

नम इत् कृणोमि ॥ १९ ॥

कामः । जज्ञे । प्रथमः । न । एनम् । देवाः । आपुः । पितरः ।

न । मर्त्याः ।

ततः । त्वम् । असि । ज्यायान् । विश्वहा । महान् । तस्मै । ते ।

काम । नमः । इत् । कृणोमि ॥ १९ ॥

काम प्रथम उत्पन्न हुआ है, इसकी समता देवता और पितर भी नहीं कर सके, सम्पूर्ण प्राणियोंको प्राप्त होने वाले काम अत एव आप ज्येष्ठ और महान् हैं ऐसे आपके लिये मैं हविरूप अन्नको करता हूँ-देता हूँ-॥ १९ ॥

यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावदापः सिष्यदुर्यावदग्निः । ततस्त्वम्० ॥ २० ॥

यावती इति । द्यावापृथिवी इति । वरिम्णा । यावत् । आपः ।

सिस्यदुः । यावत् । अग्निः ।० ॥ २० ॥

जितने बड़े द्यावापृथिवी हैं अग्नि और जल जितनेमें विस्तृत होते हैं, हे काम ! आप उससे भी ज्येष्ठ और महान् हैं और सब भूतोंमें जाने वाले हैं अतः आपके लिये हम हविरूप अन्नको देते हैं ॥ २० ॥

यावतीर्दिशः प्रदिशो विषूचीर्यावतीराशा अभिचक्षणा

दिवः । ततस्त्वम्० ॥ २१ ॥

यावतीः । दिशः । प्रऽदिशः । विषूचीः । यावतीः । आशाः ।

अभिऽचक्षणाः। दिवः । ० ॥ २१ ॥

दिशा और प्रदिशाएँ जितने परिमाणमें अनेक प्रकारसे गई हैं और स्वर्गसे जितनी (दूरीको) दिशाएँ कहती हैं, हे काम ! आप उतनेसे भी ज्येष्ठ और महान् हैं और सबमें जाने वाले हैं, ऐसे आपको मैं नमस्कार ही करता हूँ ॥ २१ ॥

यावतीर्भृङ्गा जत्वः कुरूरवो यावतीर्वघा वृक्षसर्प्यो

बभूवुः । ततस्त्वम्० ॥ २२ ॥

यावतीः । भृङ्गाः । जत्वः । कुरूरवः । यावतीः । वघाः । वृक्षऽसर्प्यः । बभूवुः । ० ॥ २२ ॥

जितने परिमाणमें भृङ्ग जतु कुरूरु और वृक्षसर्पि वघा होती है, हे काम ! आप उससे भी ज्येष्ठ और महान् हैं और सबमें जाने वाले हैं ऐसे आपको मैं नमस्कार ही करता हूँ ॥ २२ ॥

ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्यायान्त्समुद्रादसि
काम मन्यो । ततस्त्वम्० ॥ २३ ॥

ज्यायान् । निऽमिषतः । असि । तिष्ठतः । ज्यायान् । समुद्रात् ।
असि । काम । मन्यो । इति ।० ॥ २३ ॥

हे काम और मन्यो ! आप पलक मारने वाले (प्राणियों) से भी ज्यायान् हैं, बैठे हुएसे भी बड़े हैं और समुद्रसे भी बड़े हैं आप इनसे बड़े हैं अर्थात् सबमें जाते हैं अत एव महान् हैं, ऐसे आपको मैं नमस्कार ही करता हूँ ॥ २३ ॥

न वै वातश्चन काममाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम
इत् कृणोमि ॥ २४ ॥

न । वै । वातः । चन । कामम् । आप्नोति । न । अग्निः । सूर्यः ।
न । उत । चन्द्रमाः ।

ततः । त्वम् । असि । ज्यायान् । विश्वहा । महान् । तस्मै ।
ते । काम । नमः । इत् । कृणोमि ॥ २४ ॥

वायु अग्नि सूर्य और चन्द्रमा भी कामकी बराबरी नहीं कर सकते अत एव हे काम आप बड़े हैं सबमें व्याप्त होसकते हैं ऐसे आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २४ ॥

यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति
यद् वृणीषे ।

ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्वान्यत्र पापीरप वेशया धियः ॥ २५ ॥

याः । ते । शिवाः । तन्वः । काम । भद्रा । याभिः । सत्यम् । भवति । यत् । वृणीषे ।

ताभिः । त्वम् । अस्मान् । अभिऽसंविशस्व । अन्यत्र । पापीः । अप । वेशय । धियः ॥ २५ ॥

प्रथमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

इति प्रथमोनुवाकः ॥

हे काम ! आपके जो कल्याणकारक मङ्गलमय शरीर हैं और जिनके द्वारा आप जिसका वरण करते हैं वह सत्य होता है, उन अपने शरीररूप बुद्धियोंसे आप हममें प्रवेश करिये और अपनी पापबुद्धियोंको हमसे अन्यत्र शत्रुओंमें प्रवेश कराइये २५ (५)

प्रथम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (४५५)

प्रथम अनुवाक समाप्त

"उपमिताम्" इति सूक्तेन शालासवं ददाति सवयज्ञविधानेन स्वर्गकामः इति विनियोगमाला । सूत्रमपि । "उपमिताम् इति यच्छालया सह दास्यन् भवति तदन्तर्भवत्यपिहितम्" इत्यादि [कौ० ८. ७] ॥

वंशसंदंशादिबद्धां शालां दाता प्रतिग्रहीत्रे उद्घाट्य प्रददाति । शाला नाम गृहम् ॥

विनियोगमालामें कहा है, कि-स्वर्गको चाहने वाला सवयज्ञ की विधिके अनुसार "उपमिताम्" सूक्तसे शालासवको देय । कौशिकसूत्र ८ । ७ में भी कहा है, कि-"उपमितां इति यच्छा-

लया सह दास्यन् भवति तदन्तर्भवत्यपिहितम्” शाला घरको कहते हैं और दाता प्रतिग्रहीताको बाँस आदिसे भली प्रकार बँधी हुई शालाको खोल कर देय । यह विधि है ।

उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत ।
शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि ॥१॥

उपऽमिताम् । प्रतिऽमिताम् । अथो इति । परिऽमिताम् । उत ।
शालायाः । विश्वऽवारायाः । नद्धानि । वि । चृतामसि ॥ १ ॥

उपमित प्रतिमित और परिमित शालाको हम खोलते हैं, सबसे वरण करने योग्य शालाके बन्दोंको हम खोलते हैं ॥ १ ॥

यत् ते नद्धं विश्ववारे पाशो ग्रन्थिश्च यः कृतः ।
बृहस्पतिरिवाहं बलं वाचा वि स्रंसयामि तत् ॥२॥

यत् । ते । नद्धम् । विश्वऽवारे । पाशः । ग्रन्थिः । च । यः । कृतः ।
बृहस्पतिःऽइव । अहम् । बलम् । वाचा । वि । स्रंसयामि । तत् २

हे सबसे वरणीय विश्ववारे शाले ! जो तुझमें बँध रहा है और जो (तेरे द्वारमें) गाँठ लगाई गई है, मैं बृहस्पतिकी समान उसको मन्त्ररूपा वाणीसे खोलता हूँ ॥ २ ॥

आ ययाम सं बबर्ह ग्रन्थींश्चकार ते दृढान् ।
परूंषि विद्वांछस्तेवेन्द्रेण चृतामसि ॥ ३ ॥

आ । ययाम । सम् । बबर्ह । ग्रन्थीन् । चकार । ते । दृढान् ।
परूंषि । विद्वान् । शस्ताऽइव । इन्द्रेण । वि । चृतामसि ॥३॥

विद्वान् शस्ता पुरुषने तुझको ठीक किया है लंबा बनाया है और तुझपें दृढ़ गाँठें लगाई है हम उन गाँठोंको इन्द्र (ऐश्वर्य) से खोलते हैं ॥ ३ ॥

वंशानां ते नहनानां प्राणाहस्य तृणस्य च ।
पक्षाणां विश्ववारे ते नद्धानि वि चृतामसि ॥४॥

वंशानाम् । ते । नहनानाम् । प्राणाहस्य । तृणस्य । च ।
पक्षाणाम् । विश्वऽवारे । ते । नद्धानि । वि । चृतामसि ॥ ४ ॥

हे सबसे वरणीय विश्ववारे ! तेरे बाँसोंके, बंधन स्थानोंके प्राणाहके तृणके और पक्षोंके बँधे हुए बन्दोंको हम खोलते हैं ४

संदंशानां पलदानां परिष्वञ्जल्यस्य च ।
इदं मानस्य पत्न्या नद्धानि वि चृतामसि ॥ ५ ॥

सम्ऽदंशानाम् । पलदानाम् । परिऽस्वञ्जल्यस्य । च ।
इदम् । मानस्य । पत्न्याः । नद्धानि । वि । चृतामसि ॥ ५ ॥

मानपत्नीसंबंधी संदंशोंके पलदोंके परिष्वञ्जल्यके बंधनोंको हम खोलते हैं ॥ ५ ॥

यानि तेन्तः शिक्यान्याबेधू रण्याय कम् ।
प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नी न उद्धिता
तन्वे भव ॥ ६ ॥

यानि । ते । अन्तः । शिक्यानि । आऽबेधुः । रण्याय । कम् ।

प्र । ते । तानि । चृतामसि । शिवा । मानस्य । पत्नी । नः । उद्धिता ।
तन्वे । भव ॥ ६ ॥

हे मानपत्नि ! तू कल्याण करने वाली है, तेरे अन्दर जो छींके सुख देनेके लिये बाँधे गए हैं उन (मचानों) को हम खोलते हैं, तू हमारे शरीरको ऊपरके लोक स्वर्गमें सुख देने वाली हो ॥ ६ ॥

हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः ।
सदो देवानामसि देवि शाले ॥ ७ ॥

हविःऽधानम् । अग्निऽशालम् । पत्नीनाम् । सदनम् । सदः ।
सदः । देवानाम् । असि । देवि । शाले ॥ ७ ॥

हे देवि शाले ! तू हविर्धान अग्निशाला और पत्नियोंके साथ बैठनेके कमरोंसे और देवताओंके बैठनेके आसनोंसे सम्पन्न है ७

अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति ।
अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि ॥ ८ ॥

अक्षुम् । ओपशम् । विऽततम् । सहस्रऽअक्षम् । विषुऽवति ।
अवऽनद्धम् । अभिऽहितम् । ब्रह्मणा । वि । चृतामसि ॥ ८ ॥

हे विषूवति ! सहस्र झरोखे वाले, शयनके कमरे विस्तृत अक्षुको कि जो बन्द था उसको हम मंत्रसे अभिमन्त्रित करके खोलते हैं ८

यस्त्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता त्वम् ।
उभौ मानस्य पत्नि तौ जीवतां जरदष्टी ॥ ९ ॥

यः । त्वा । शाले । प्रतिऽगृह्णाति । येन । च । असि । मिता । त्वम् ।
उभौ । मानस्य । पत्नि । तौ । जीवताम् । जरदष्टी इति जरत्ऽअष्टी

हे शाले ! जो तुझको ग्रहण कर रहा है और जिसने तुझको बनाया है, हे मानपत्नि ! वे दोनों बुढ़ापे तक जीवित रहें ॥९॥

अमुत्रैनमा गच्छताद् दृढा नद्धा परिष्कृता ।
यस्यास्ते विचृतामस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ॥ १० ॥

अमुत्र । एनम् । आ । गच्छतात् । दृढा । नद्धा । परिष्कृता ।
यस्याः । ते । विऽचृतामसि । अङ्गम्ऽअङ्गम् । परुःऽपरुः ॥ १० ॥

हम जिसके जोड़ २ को और अंगको ग्रंथिसे रहित कर रहे हैं–स्वच्छ कर रहे हैं–हे शाले ! ऐसी तू जिसके द्वारा दृढ़ नद्ध और परिष्कृत हुई है उसको स्वर्गमें प्राप्त होना ॥ १० ॥ (९)

यस्त्वा शाले निमिमाय संजभार वनस्पतीन् ।
प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ ११ ॥

यः । त्वा । शाले । निऽमिमाय । सम्ऽजभार । वनस्पतीन् ।
प्रऽजायै । चक्रे । त्वा । शाले । परमेऽस्थी । प्रजाऽपतिः ॥ ११ ॥

हे शाले ! जिसने तुझे बनाया है और जो (कड़ी आदिके लिये) वनस्पतियोंको लाया है (उसको तू स्वर्गमें प्राप्त होना) हे शाले ! परमेष्ठी प्रजापतिने तुझको प्रजाके लिये बनाया था ११

नमस्तस्मै नमो दात्रे शालापतये च कृण्मः ।
नमोऽग्नये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः ॥ १२ ॥

Library

नमः । तस्मै । नमः । दात्रे । शालाऽपतये । च । कृण्मः ।
नमः । अग्नये । प्रऽचरते । पुरुषाय । च । ते । नमः ॥ १२ ॥

उन दाताके लिये नमस्कार है और हम शाला पतिके लिये भी नमस्कार करते हैं, अग्निके लिये और विचरण करने वाले पुरुषके लिये और तेरे लिये नमस्कार है ॥ १२ ॥

गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते ।
विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥ १३ ॥

गोभ्यः । अश्वेभ्यः । नमः । यत् । शालायाम् । विऽजायते ।
विजाऽवति । प्रजाऽवति । वि । ते । पाशान् । चृतामसि ॥ १३ ॥

जो शालामें उत्पन्न होते हैं उन गौ और अश्वोंके लिये यह अन्नहै, हे विजावति! प्रजावति! हम तेरे पाशोंको खोलते हैं १३

अग्निमन्तश्छादयसि पुरुषान् पशुभिः सह ।
विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥१४॥

अग्निम् । अन्तः । छादयसि । पुरुषान् । पशुऽभिः । सह ।
विजाऽवति । प्रजाऽवति । वि । ते । पाशान् । चृतामसि ॥१४॥

हे विजावति प्रजावति शाले! तू अपने भीतर अग्नि पुरुष और पशुओंको ढ़क लेती है, हम तेरी ग्रन्थियोंको खोलते हैं १४

अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद्व्यचस्तेन शालां प्रति
गृह्णामि त इमाम् ।

यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत् कृण्वेहमुदरं शेवधिभ्यः ।
तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥ १५ ॥

अन्तरा । द्याम् । च । पृथिवीम् । च । यत् । व्यचः । तेन । शालाम् । प्रति । गृह्णामि । ते । इमाम् ।

यत् । अन्तरिक्षम् । रजसः । विऽमानम् । तत् । कृण्वे । अहम् । उदरम् । शेवधिऽभ्यः ।

तेन । शालाम् । प्रति । गृह्णामि । तस्मै ॥ १५ ॥

पृथिवी और द्यौके भीतर जो व्यच (यज्ञाग्निज्वाला) हैं उनके द्वारा मैं तेरी इस शालाको ग्रहण करता हूँ जो अन्तरिक्ष और पृथिवीकी निर्माणशक्ति है मानों उसको ही मैं (थजमान की) निधियोंके लिये उदरमें रखता हूँ । और इसी कारण उस स्वर्गकी प्राप्तिके लिये ही मैं इस शालाको ग्रहण करता हूँ ॥१५॥

ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता ।
विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः १६

ऊर्जस्वती । पयस्वती । पृथिव्याम् । निऽमिता । मिता ।

विश्वऽअन्नम् । बिभ्रती । शाले । मा । हिंसीः । प्रतिऽगृह्णतः १६

बलदायनी दुग्धवती पृथिवीमें नयी और बनी हुई सम्पूर्ण अन्नोंको धारण कर सकने वाली शाले ! तू प्रतिग्रह करने वालों को नष्ट न कर ॥ १६ ॥

तृ॒णैरावृ॑ता पल॒दान् वसा॑ना॒ रात्री॑व॒ शाला॒ जग॑तो
नि॒वेश॑नी ।
मि॒ता पृ॑थि॒व्यां तिष्ठ॑सि ह॒स्तिनी॑व प॒द्वती॑ ॥ १७ ॥

तृणैः॑ । आऽवृ॑ता । प॒ल॒दान् । वसा॑ना । रात्री॑ऽइव । शाला॑ ।
जग॑तः । नि॒ऽवेश॑नी ।
मि॒ता । पृ॒थि॒व्याम् । ति॒ष्ठ॒सि॒ । ह॒स्तिनी॑ऽइव । प॒त्ऽवती॑ ॥ १७ ॥

तृणोंसे आवृत, पलदोंको धारण करने वाली, रात्रिकी समान जगत्को आश्रय देने वाली हे शाले ! तू पद्वती हस्तिनी की समान पृथिवीमें बनी हुई खड़ी है ॥ १७ ॥

इट॑स्य ते॒ वि चृ॑ताम्यपि॑नद्धमपोर्णु॒वन् ।
वरु॑णे॒न समु॑ब्जितां मि॒त्रः प्रा॒तर्व्यु॑ब्जतु ॥ १८ ॥

इट॑स्य । ते॒ । वि । चृ॒ता॒मि॒ । अपि॑ऽनद्धम् । अ॒प॒ऽऊ॒र्णु॒वन् ।
वरु॑णेन । सम्ऽउ॑ब्जिताम् । मि॒त्रः । प्रा॒तः । वि । उ॒ब्ज॒तु ॥१८॥

विगत सम्वत्सरकी समान तेरे बंधोंको अलग करता हुआ मैं खोलता हूँ, वरुणके द्वारा उद्घाटित तुझको प्रातःकालके समय सूर्यदेवता उद्घाटित करें ॥ १८॥

ब्रह्म॑णा॒ शालां॒ निमि॑तां क॒विभि॒र्निमि॑तां मि॒ताम् ।
इ॒न्द्रा॒ग्नी र॑क्षतां॒ शाला॑म॒मृतौ॑ सो॒म्यं सद॑ः ।

ब्रह्म॑णा । शाला॑म् । नि॒ऽमि॑ताम् । क॒विऽभि॑ः । नि॒ऽमि॑ताम् । मि॒ताम् ।

५ १५,८,३०

इन्द्राग्नी इति । रक्षताम् । शालाम् । अमृतौ । सोम्यम् । सदः १९

मन्त्रके द्वारा और चतुर पुरुषोंके द्वारा निर्मित इस शालाको सोमपानस्थानमें बैठने वाले इन्द्र और अग्नि देवता रक्षा करें १९

कुलायेधि कुलायं कोशे कोशः समुब्जितः ।
तत्र मर्तो वि जायते यस्माद् विश्वं प्रजायते २०

कुलाये । अधि । कुलायम् । कोशे । कोशः । सम्ऽउब्जितः ।

तत्र । मर्तः । वि । जायते । यस्मात् । विश्वम् । प्रऽजायते ॥२०॥

कुलायमें (घर–घोंसलेमें) कुलाय (शरीररूप घोंसला) है उस कोशमें गर्भकोश नीचेको मुख करके स्थित है उसमें मरणधर्मी उत्पन्न होता है उससे सम्पूर्ण विश्व ही उत्पन्न होता है २०

या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।
अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवा शये ॥ २१ ॥

या । द्विऽपक्षा । चतुःऽपक्षा । षट्ऽपक्षा । या । निऽमीयते ।

अष्टाऽपक्षाम् । दशऽपक्षाम् । शालाम् । मानस्य । पत्नीम् । अग्निः ।

गर्भःऽइव । आ । शये ॥ २१ ॥

जो दो खन (मञ्जिल) वाली चार मञ्जिल वाली, छः कमरे वाली, आठ कमरे वाली, दश कमरे वाली शाला बनाई जाती है, उस मानपत्नी शालामें मैं इस इस प्रकार शयन करता हूँ जैसे जठराग्नि उदररूप गर्भाशयमें शयन करती है ॥ २१ ॥

प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् ।
अग्निर्ह्य१न्तरापश्चर्तस्य प्रथमा द्वाः ॥ २२ ॥

प्रतीचीम् । त्वा । प्रतीचीनः । शाले । प्र । एमि । अहिंसतीम् ।
अग्निः । हि । अन्तः । आपः । च । ऋतस्य । प्रथमा । द्वाः २२

हे शाले ! मैं प्रतीचीन अहिंसिका प्रतीची शालामें प्रवेश करता हूँ और मेरे साथ ब्रह्मसे पूर्व समयमें प्रकट हुए अग्नि और जल ये दोनों भी प्रवेश करते हैं ॥ २२ ॥

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥ २३ ॥

इमाः । आपः । प्र । भरामि । अयक्ष्माः । यक्ष्मऽनाशनीः ।
गृहान् । उप । प्र । सीदामि । अमृतेन । सह । अग्निना ॥२३॥

मैं इन क्षयरहित यक्ष्मारोगका नाश करने वाले जलोंको साथ में भरण कर रहा हूँ और अमृत अग्निके साथ घरोंके समीप बैठ रहा हूँ ॥ २३ ॥

मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव ।
वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि ॥ २४ ॥

मा । नः । पाशम् । प्रति । मुचः । गुरुः । भारः । लघुः । भव ।
वधूम्ऽइव । त्वा । शाले । यत्रऽकामम् । भरामसि ॥ २४ ॥

हे शाले ! हम तेरा वधूकी समान भरण कर रहे हैं अतः तू

अपने पाशोंको हमारी ओर न छोड़ना और तेरा भार गुरु है अतः तू लघु होजा ॥ २४ ॥

प्राच्यां दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २५ ॥

प्राच्याः । दिशः । शालायाः । नमः । महिम्ने । स्वाहा । देवेभ्यः । स्वाह्येभ्यः ॥ २५ ॥

शालाकी पूर्वदिशाकी महिमाके लिये नमस्कार है, स्वाहाके योग्य देवताओंके लिये यह आहुति स्वाहुत हो ॥ २५ ॥

दक्षिणाया दिशः० ॥ २६ ॥

दक्षिणायाः । दिशः । ० ॥ २६ ॥

शालाकी दक्षिणदिशाकी महिमाके लिये नमस्कार है, स्वाहाके योग्य देवताओंके लिये यह आहुति स्वाहुत हो ॥ २६ ॥

प्रतीच्यां दिशः० ॥ २७ ॥

प्रतीच्याः । दिशः । ० ॥ २७ ॥

शालाकी पश्चिम दिशाकी महिमाके लिये नमस्कार है, स्वाहाके योग्य देवताओंके लिये यह आहुति स्वाहुत हो ॥ २७ ॥

उदीच्या दिशः० ॥ २८ ॥

उदीच्याः । दिशः । ० ॥ २८ ॥

शालाकी उत्तरदिशाकी महिमाके लिये नमस्कार है, स्वाहाके योग्य देवताओंको यह आहुति प्राप्त हो ॥ २८ ॥

ध्रु॒वायां॑ दि॒शः० ॥ २९ ॥

ध्रु॒वाया॑ः । दि॒शः । ० ॥ २९ ॥

शालाकी ध्रुवा दिशाके लिये नमस्कार है, स्वाहाके योग्य देवताओंके निमित्त यह आहुति प्राप्त हो ॥ २९ ॥

ऊ॒र्ध्वायां॑ दि॒शः० ॥ ३० ॥

ऊ॒र्ध्वाया॑ः । दि॒शः । शाला॑याः । ० ॥ ३० ॥

शालाकी ऊर्ध्वादिशाके लिये नमस्कार है, स्वाहाके योग्य देवताओंके निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ३० ॥

दि॒शोदि॑शः शाला॑या॒ नमो॑ महि॒म्ने स्वाहा॑ दे॒वेभ्यः॑
स्वा॒ह्ये॑भ्यः ॥ ३१ ॥

दि॒शःऽदि॑शः । शाला॑याः । नमः॑ । म॒हि॒म्ने॑ । स्वाहा॑ । दे॒वेभ्यः॑ ।
स्वा॒ह्ये॑भ्यः ॥ ३१ ॥

इति द्वितीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

शालाकी प्रत्येक(अवान्तर दिशाकी महिमाके लिये नमस्कार है, स्वाहाके योग्य देवताओंके निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ३१ ॥ (८)

द्वितीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (४५६) ॥

ब्राह्मणो वृषभं हत्वा तन्मांसं भिन्नभिन्नदेवताभ्यो जुहोति। तत्र वृषभस्य प्रशंसा तदङ्गानां च कतमानि कतमदेवेभ्यः प्रियाणि भवन्ति तद्विवेचनम् । वृषभबलिहवनस्य महत्त्वं च वर्ण्यते । तदुत्पन्नं श्रेयश्च स्तूयते । सांप्रदायिकास्तु एवं विनियुञ्जन्ति सूक्तम्। तद्यथा । वृषोत्सर्गे "साहस्रः" इत्यर्थसूक्तेन ऋषभं संपात्य अभि-

मन्त्र्य विसृजेत् ॥ "रेतोधायै" इत्येतैः षड्भिः सौत्रमन्त्रैः "एतं वो युवानम्" [९. ४. २४] इत्यृचा च वत्सस्याभिमन्त्रणं कृत्वा मोक्षणं कुर्यात् ॥

तथा अनेन सूक्तेन पुष्टिकामो वशाविधानेन [कौ० ५. ८] ऋषभेण इन्द्रं यजते ॥

तथा अनेन सूक्तेन संपत्कामः पौर्णमास्यां वशाधिनेन श्वेतेन ऋषभेण इन्द्रं यजते ॥

तद् उक्तं कौशिकेन । "इन्द्रस्य कुक्षिः [७. ११६] साहस्रः [९. ४] इत्यृषभं संपातवन्तम् अतिसृजति । रेतोधायै "त्वातिसृजामि वयोधायै त्वातिसृजामि यूथत्वायै त्वातिसृजामि गणत्वायै त्वातिसृजामि सहस्रपोषायै त्वातिसृजाम्यपरिमितपोषायै त्वातिसृजामि । एतं वो युवानम् इति पुराणं प्रवृत्य नवम् उत्सृजति संप्रोक्षति । उत्तरेण पुष्टिकाम ऋषभेणेन्द्रं यजते । संपत्कामः श्वेतेन पौर्णमास्याम्" इति [कौ० ३. ७] ॥

तथा ऋषभसवे अनेन सूक्तेन निरुप्तहविरभिमर्शनं संपातं दातृवाचनं दानं च कुर्यात् । तद् आह कौशिकः । "साहस्र इत्यृषभम्" इति [कौ० ८. ७] ॥ अभिमर्शनादिषु सूत्रं तु "आशानाम्" [१. ३१] इति सूक्त उदाहृतम् ॥

परिशिष्टेपि वृषोत्सर्गे अस्य सूक्तस्य विनियोगः कृतः । तथा चोक्तम् । "साहस्रस्त्वेष इति ऋषभं संपातवन्तं कृत्वा" इति [प० १७] ॥

ब्राह्मण वृषभका हनन करके उसके मांसकी भिन्न २ देवताओंके लिये आहुति देय । इसमें उसके अङ्गोंकी प्रशंसा है, और कौन २ से अंग कौन २ से देवताओंको प्रिय होते हैं, उसका विवेचन है । और वृषभबलिहवनका महत्व भी वर्णित है । और उससे उत्पन्न होने वाले श्रेयको भी स्तुति की गई है । साम्प्रदायिक सूत्रके अनुसार इस प्रकार विनियोग करते हैं, कि-वृषो-

त्सर्गमें "साहस्रः" नामक अथर्वसूक्तसे ऋषभको सम्पातित और अभिमंत्रित करके छोड़ देय । "रेतोधायै" इन छः सूत्रोक्त मंत्रोंसे और "एतं वो युवानम्" इस नवम काण्डके चतुर्थसूक्तकी चौबीसवीं ऋचासे भी वत्सका अभिमंत्रण करके प्रोक्षण करे ।

इस सूक्तसे द्वारा पुष्टि चाहने वाला वशाविधानसे ऋषभसे इन्द्रका यजन करे (कौशिकसूत्र ५ । ८) ॥

तथा सम्पत्ति चाहने वाला पुरुष पूर्णिमाके दिन वशाविधानके अनुसार इस सूक्तसे श्वेत ऋषभसे इन्द्रका यजन करे ॥

इसी बातको कौशिकने कहा है, कि-"इन्द्रस्य कुक्षिः (७ । ११६) साहस्रः (९ । ४) इत्यृषभं सम्पातवंतं अतिसृजाति । रेतोधायै त्वातिसृजामि, वयोधायै त्वतिसृजामि, यूथत्वायै त्वातिसृजामि, गणत्वायै त्वतिसृजामि, सहस्रपोषायै त्वातिसृजामि, अपरिमितपोषायै त्वातिसृजामि । एतं वो युवानं इति प्रवृच्य नवं उत्सृजति । सम्प्रोक्षति । उत्तरेण पुष्टिकाम ऋषभेणेन्द्रं यजते । सम्पत्कामः श्वेतेन पौर्णमास्याम्" (कौशिकसूत्र ३ । ७) ॥

तथा ऋषभसवमें इस सूक्तसे निरुप्त हविका अभिमर्शन, सम्पात, दातृवाचन और दान करे । इसी बातको कौशिकने कहा है, कि-"साहस्र इत्यृषभम्" (कौशिकसूत्र ८ । ७) ॥ अभिमर्शन आदि का सूत्र "आशानाम्" (१ । ३) सूक्तमें कह दिया है ॥

परिशिष्टमें भी वृषोत्सर्गके अवसर पर इस सूक्तका विनियोग किया है । यथा "साहस्रस्त्वेष इति ऋषभं सम्पातवन्तं कृत्वा" (अथर्वपरिशिष्ट १७) ॥

साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान् विश्वा रूपाणि वक्षणासु बिभ्रत् ।

भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन् बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तुमातान् ॥ १ ॥

साहस्रः । त्वेषः । ऋषभः । पयस्वान् । विश्वा । रूपाणि । वक्षणासु । बिभ्रत् ।

भद्रम् । दात्रे । यजमानाय । शिक्षन् । बार्हस्पत्यः । उस्रियः । तन्तुम् । आ । अतान् ॥ १ ॥

यह सहस्रों (गौओंको गर्भ धारण करानेकी शक्ति वाला) कान्तिमान् ऋषभ हैं अत एव (परम्परासंबंधसे गौओंके द्वारा) दूध वाला हैं–दूध देसकता है, यह अपनी वीर्यवाहिनी नाड़ियों में अनेकों (वछड़े बछियाओं) के रूपोंको धारण कर रहा है अतएव यह बृहस्पतिप्रयुक्त मन्त्रसे सम्पन्न तथा गौओंके योग्य वृषभ यजमानको कल्याणकी शिक्षा देता हुआ, सन्तानतन्तुको विस्तृत करे ॥ १ ॥

अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु ॥ २ ॥

अपाम् । यः । अग्रे । प्रतिऽमा । बभूव । प्रऽभूः । सर्वस्मै । पृथिवीऽइव । देवी ।

पिता । वत्सानाम् । पतिः । अघ्न्यानाम् । साहस्रे । पोषे । अपि । नः । कृणोतु ॥ २ ॥

जो जलोंके आगे प्रतिमाकी समान खड़ा होजाता है और पृथिवी देवी जैसे सबके लिये प्रभु है तैसे ही जो सबके लिये प्रभु है, जो बछड़ोंका पिता है और न मारने योग्य गौओंका पति है, वह हमको सहस्र प्रकार प्रकारकी पुष्टिमें स्थापित करे ॥ २ ॥

पुमानन्तर्वान्त्स्थविरः पयस्वान् वसोः कबन्धमृषभो
बिभर्ति ।
तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः ३

पुमान् । अन्तःऽवान् । स्थविरः । पयस्वान् । वसोः । कबन्धम् ।
ऋषभः । बिभर्ति ।

तम् । इन्द्राय । पथिऽभिः । देवऽयानैः । हुतम् । अग्निः । वहतु ।
जातऽवेदाः ॥ ३ ॥

वृषभ पुमाम् अन्तर्वान् स्थविर और पयस्वान् है तथा यह वसुके कबन्धको धारण करता है ऐसे हुत ऋषभको जातवेदा अग्नि देवयान मार्गोंसे इन्द्रके पास पहुँचावें ॥ ३ ॥

पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामथो पिता महतां गर्गराणाम् ।
वत्सो जरायु प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा घृतं तद् वस्य
रेतः ॥ ४ ॥

पिता । वत्सानाम् । पतिः । अघ्न्यानाम् । अथो इति । पिता ।
महताम् । गर्गराणाम् ।

६ १८-८-३०

वत्सः । जरायु । प्रतिऽधुक् । पीयुषः । आमिक्षा । घृतम् । तत् ।
ऊं इति । अस्य । रेतः ॥ ४ ॥

वृषभ वत्सोंका पिता है, न मारने योग्य गौओंका स्वामी है और गरगर शब्द करने वाले मेघोंका (अपने आप साक्षात्-सम्बन्धसे कृषि आदिमें हविष्यान्नको उत्पन्न करके और परम्परा सम्बन्धसे दुग्ध घृतादिको उत्पन्न कर) पालन करने वाला है, इसका वीर्य वत्स जरायु प्रतिधुक, पीयूष, आमिक्षा (गरम दूधमें दही डालनेसे बना हुआ पदार्थ), और घृत ही है४

देवानां भाग उपनाह एषो३पां रस ओषधीनां घृतस्य ।
सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्नद्रिरभवद् यच्छरीरम्

देवानाम् । भागः । उपऽनाहः । एषः । अपाम् । रसः । ओषधीनाम् ।
घृतस्य ।
सोमस्य । भक्षम् । अवृणीत । शक्रः । बृहन् । अद्रिः । अभवत् ।
यत् । शरीरम् ॥ ५ ॥

यह उपनाह देवताओंका भाग है, तथा औषधि और घृतका रस जलोंका भाग है और जो पर्वताकार शरीर है इस सोमके भक्षको इन्द्रने वरण किया है॥ ५ ॥

सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि त्वष्टा रूपाणां जनिता
पशूनाम् ।
शिवास्ते सन्तु प्रजन्व इह या इमा न्य१स्मभ्यं
स्वधिते यच्छ या अमूः ॥ ६ ॥

सोमे॑न । पू॒र्णम् । क॒लश॑म् । बि॒भ॒र्षि॒ । त्वष्टा॑ । रू॒पाणा॑म् । ज॒नि॒ता । प॒शू॒नाम् ।

शि॒वाः । ते॒ । स॒न्तु॒ । प्र॒ऽज॒न्व॑ः । इ॒ह । याः । इ॒माः । नि । अ॒स्मभ्य॑म् । स्व॒ऽधि॒ते॒ । य॒च्छ॒ । याः । अ॒मूः ॥ ६ ॥

हे स्वधिते ! आप सोमपूर्ण कलशको धारण करते हैं, आप रूपोंको-शरीरोंको-बनाने वाले हैं और जीवोंको उत्पन्न करने वाले हैं, तुम्हारी सन्तान शुभ हों आपकी जो सन्तान हैं और जो वह सन्तान हैं उनको आप मुझे दीजिये ॥ ६ ॥

आज्यं॑ बिभर्ति घृ॒तम॑स्य रेतः॑ साह॒स्रः पोष॒स्तमु॑ य॒ज्ञमा॑हुः
इन्द्र॑स्य रू॒पमृ॑ष॒भो वसा॑नः॒ सो अ॒स्मान् दे॑वाः शि॒व
ऐतु॑ द॒त्तः ॥ ७ ॥

आज्य॑म् । बि॒भ॒र्ति॒ । घृ॒तम् । अ॒स्य॒ । रेतः॑ । सा॒ह॒स्रः । पोषः॑ । तम् । ऊं॑ इति॑ । य॒ज्ञम् । आ॒हुः॒ ।

इन्द्र॑स्य । रू॒पम् । ऋ॒ष॒भः । वसा॑नः । सः । अ॒स्मान् । दे॒वाः॒ । शि॒वः । आ । ए॒तु॒ । द॒त्तः ॥ ७ ॥

यह वृषभ घृतको धारण करता है, इसका वीर्य क्षरणशील है, और सहस्रों प्रकारकी पुष्टियोंको देने वाला है अत एव इसको यज्ञ कहते हैं वृषभ इन्द्रके रूपको धारण कर रहा है, हे देवताओं ! ऐसा दिया हुआ ऋषभ हमको कल्याणरूपमें प्राप्त हो ॥ ७ ॥

इन्द्रस्यौजो वरुणस्य बाहू अश्विनोरंसौ मरुतामियं ककुत् ।
बृहस्पतिं संभृतमेतमाहुर्ये धीरासः कवयो ये मनीषिणः

इन्द्रस्य । ओजः । वरुणस्य । बाहू इति । अश्विनोः । अंसौ । मरुताम् । इयम् । ककुत् ।
बृहस्पतिम् । सम्ऽभृतम् । एतम् । आहुः । ये । धीरासः । कवयः । ये । मनीषिणः ॥ ८ ॥

जो धीर कवि और विद्वान् पुरुष हैं, वे इस ऋषभके विषयमें कहते हैं, कि—इसका ओज इन्द्रका, बाहु वरुणका, अंस अश्विनीकुमारोंके, और ककुत् मरुद्गणोंका और संभृत् बृहस्पतिका (प्रिय वा भाग है) ॥ ८ ॥

दैवीर्विशः पयस्वाना तनोषि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः ।
सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति

दैवीः । विशः । पयस्वान् । आ । तनोषि । त्वाम् । इन्द्रम् । त्वाम् । सरस्वन्तम् । आहुः ।
सहस्रम् । सः । एकऽमुखाः । ददाति । यः । ब्राह्मणे । ऋषभम् । आऽजुहोति ॥ ९ ॥

हे ऋषभ ! तू दैवी प्रजाओंको—देवताओंको—पय आदि हवि

से सम्पन्न करता हुआ विस्तृत करता रहता है—पुष्ट करता रहता है, इस लिये तुझको ही सरस्वान् इन्द्र कहते हैं, जो मन्त्रोंके निष्पन्न होने वाले यज्ञमें ऋषभका हवन करता है वह एक मुख वाली सहस्र गौओंका ही दान कर देता है ॥ ९ ॥

बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ त्वष्टुर्वायो पर्यात्मा त आभृतः ।
अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि बर्हिष्टे द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ १० ॥

बृहस्पतिः । सविता । ते । वयः । दधौ । त्वष्टुः । वायोः । परि । आत्मा । ते । आऽभृतः ।
अन्तरिक्षे । मनसा । त्वा । जुहोमि । बर्हिः । ते । द्यावापृथिवी इति । उभे इति । स्ताम् ॥ १० ॥

तेरे वयको बड़े २ देवताओंके पति सविता देवताने धारण किया है, त्वष्टाका और वायुका आत्मा तेरे चारों ओर स्थित है, मैं मनके द्वारा अन्तरिक्षमें तेरी आहुति देता हूँ दोनों द्यावा पृथिवी तेरे बर्हि होवें ॥ १० ॥

य इन्द्र इव देवेषु गोष्वेति विवावदत् ।
तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया ॥ ११ ॥

यः । इन्द्रःऽइव । देवेषु । गोषु । एति । विऽवावदत् ।
तस्य । ऋषभस्य । अङ्गानि । ब्रह्मा । सम् । स्तौतु । भद्रया ११

जैसे इन्द्र देवताओंमें आगमन करते हैं ऐसे ही जो गौओंमें गर्जता हुआ आता है, उस ऋषभके अंगोंकी ब्रह्मा कल्याणमयी वाणीसे स्तुति करे ॥ ११ ॥

पार्श्वे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनूवृजौ ।
अष्ठीवन्तावब्रवीन्मित्रो ममैतौ केवलाविति ॥१२॥

पार्श्वे इति । आस्ताम् । अनुऽमत्याः । भगस्य आस्ताम् । अनुऽवृजौ ।
अष्ठीवन्तौ । अब्रवीत् । मित्रः । मम । एतौ । केवलौ । इति १२

पार्श्व अनुमतिके हैं, अनूवृज भगके हैं, टखनोंके विषयमें मित्रदेवताने कहा, कि-यह तो केवल मेरे ही हैं ॥ १२ ॥

भसदासीदादित्यानां श्रोणी आस्तां बृहस्पतेः ।
पुच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः ॥ १३ ॥

भसत् । आसीत् । आदित्यानाम् । श्रोणी इति । आस्ताम् । बृहस्पतेः ।
पुच्छम् । वातस्य । देवस्य । तेन । धूनोति । ओषधीः ॥ १३॥

भसत् (कटिप्रदेश) आदित्योंका है और श्रोणी बृहस्पतिके हैं, पूँछ वायुदेवताका है उसीसे वह औषधियोंको कंपित करते रहते हैं ॥ १३ ॥

गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन् ।
उत्थातुरब्रुवन् पद ऋषभं यदकल्पयन् ॥ १४ ॥

गुदाः । आसन् । सिनीवाल्याः । सूर्यायाः । त्वचम् । अब्रुवन् ।
उत्थातुः । अब्रुवन् । पदः । ऋषभम् । यत् । अकल्पयन् ।१४।

गुदा सिनीवालीके भागकी है और त्वचा सूर्याकी कहते हैं, पद उत्थाताके हैं, ऐसा वह कहते हैं, कि–जिन्होंने ऋषभकी कल्पना की है ॥ १४ ॥

क्रोड आसीज्जामिशंसस्य सोमस्य कलशो धृतः ।
देवाः संगत्य यत् सर्वे ऋषभं व्यकल्पयन् ॥ १५ ॥

क्रोडः । आसीत् । जामिऽशंसस्य । सोमस्य । कलशः । धृतः ।
देवाः । सम्ऽगत्य । यत् । सर्वे । ऋषभम् । विऽअकल्पयन् १५

क्रोड़ जामिशंसका था और कलशको सोमने धारण कर लिया, इस प्रकार सब देवताओंने एकत्रित होकर ऋषभकी कल्पनाकी थी ॥ १५ ॥

ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान् ।
ऊवध्यमस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन् ॥ १६ ॥

ते । कुष्ठिकाः । सरमायै । कूर्मेभ्यः । अदधुः । शफान् ।
ऊवध्यम् । अस्य । कीटेभ्यः । श्वऽवर्तेभ्यः । अधारयन् ॥१६॥

उन्होंने कुष्ठिकाओंको सरमाके लिये निश्चित किया और कूर्मोंको शफ दे दिये, और इसके ऊवध्यको मांससे आजीविका चलाने वाले कीटोंके लिये निश्चित किया ॥ १६ ॥

शृङ्गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा ।

शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥ १७ ॥

शृङ्गाभ्याम् । रक्षः । ऋषति । अवर्तिम् । हन्तिः । चक्षुषा ।
शृणोति । भद्रम् । कर्णाभ्याम् । गवाम् । यः । पतिः । अघ्न्यः १७

जो अघ्न्य गौओंका पति है वह सींगोंसे राक्षसोंको दूर कर देता है और अवर्ति (दरिद्रता) को नेत्रोंसे भगा देता है और कानोंसे कल्याणको सुनता है ॥ १७ ॥

शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः ।
जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति १८

शतऽयाजम् । सः । यजते । न । एनम् । दुन्वन्ति । अग्नयः ।
जिन्वन्ति । विश्वे । तम् । देवाः । यः । ब्राह्मणे । ऋषभम् ।
आऽजुहोति ॥ १८ ॥

जो ब्राह्मण ऋषभका दान करता है वह शतयाज यज्ञको करता है, अग्नियें उसको पीड़ा नहीं देती हैं और सकल देवता उसको तृप्त करते हैं ॥ १८ ॥

ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः ।
पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्ठेव पश्यते ॥ १९ ॥

ब्राह्मणेभ्यः । ऋषभम् । दत्त्वा । वरीयः । कृणुते । मनः ।
पुष्टिम् । सः । अघ्न्यानाम् । स्वे । गोऽस्थे । अव । पश्यते १९

जो ब्राह्मणोंके लिये ऋषभका दान करके अपने मनको उदार बनाता है, वह अपनी गोठमें गौओंकी पुष्टिको देखता है ॥ १९ ॥

गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूबलम् ।
तत् सर्वमनु मन्यन्तां देवा ऋषभदायिने ॥ २० ॥

गावः । सन्तु । प्रऽजाः । सन्तु । अथो इति । अस्तु । तनूऽबलम् ।
तत् । सर्वम् । अनु । मन्यन्ताम् । देवाः । ऋषभऽदायिने ॥ २० ॥

गौएँ होवें, प्रजा होवें और शारीरिकबल होवे, देवता ऋषभदाताके लिये इन सबका अनुमोदन करें ॥ २० ॥

अयं पिपान इन्द्र इद् रयिं दधातु चेतनीम् ।
अयं धेनुं सुदुघां नित्यवत्सां वशं दुहां विपश्चितं परो दिवः ॥ २१ ॥

अयम् । पिपानः । इन्द्रः । इत् । रयिम् । दधातु । चेतनीम् ।
अयम् । धेनुम् । सुऽदुघाम् । नित्यऽवत्साम् । वशम् । दुहाम् ।
विपःऽचितम् । परः । दिवः ॥ २१ ॥

यह (हविको) पीते हुए इन्द्र ज्ञानस्वरूप धनको देवें और यह इन्द्रदेव स्वर्गमें इस विद्वान् यजमानको ऐसी गौ (दें, कि वह) सरलतासे दुहाती हो, सदा बछड़ेसे सम्पन्न रहती हो और वश में रहकर दुहावे ॥ २१ ॥

पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन् ।

७ १८-८-३०

आयुरस्मभ्यं दधत् प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥ २२ ॥

पिशङ्गऽरूपः । नभसः । वयःऽधाः । ऐन्द्रः । शुष्मः । विश्वऽरूपः । नः । आ । अगन् ।

आयुः । अस्मभ्यम् । दधत् । प्रऽजाम् । च । रायः । च । पोषैः । अभि । नः । सचताम् ॥ २२ ॥

वानरकेसे रंग वाला, आकाशके अन्न (हवि) को धारण करने वाला विश्वरूप इन्द्रका बल हमारे समीप आरहा है, वह हमको आयु प्रजा देता हुआ हमको धनकी पुष्टियोंसे सम्पन्न करे २२

उपेहोपपर्चनास्मिन् गोष्ठ उप पृञ्च नः ।
उप ऋषभस्य यद् रेत उपेन्द्र तव वीर्यम् ॥ २३ ॥

उप । इह । उपऽपर्चन । अस्मिन् । गोऽस्थे । उप । पृञ्च । नः ! उप । ऋषभस्य । यत् । रेतः । उप । इन्द्र । तव । वीर्यम् २३

हे उपपर्चन ! यहाँ आइये और इस गोष्ठमें हमको संपृक्त करिये, ऋषभका जो वीर्य है, हे इन्द्र ! वह आपका ही वीर्य है ॥ २३ ॥

एतं वो युवानं प्रति दध्मो अत्र तेन क्रीडन्तीश्चरत वशाँ अनु ।
मा नो हासिष्ट जनुषा सुभागा रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥ २४ ॥

एतम् । वः । युवानम् । प्रति । दध्मः । अत्र । तेन । क्रीडन्तीः ।
चरत । वशान् । अनु ।
मा । नः । हासिष्ट । जनुषा । सुऽभागाः । रायः । च । पोषैः ।
अभि । नः । सचध्वम् ॥ २४ ॥

द्वितीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

इति द्वितीयोनुवाकः ॥

हे गौओ ! मैं इस युवा वृषभको तुम्हारे अर्थ रखता हूँ, इस गोठमें तुम उससे क्रीड़ा करती हुई वशमें रहने वाले बछड़ोंके पीछे घूमो, हे सुभागा गौओं ! तुम हमको मत त्यागो और धनकी पुष्टियोंसे हमको सम्पन्न करो ॥ २४ ॥

द्वितीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (४५७) ॥

द्वितीय अनुवाक समाप्त ॥

अस्मिन् सूक्ते पञ्चौदने नाम सवे हूयमानस्याजस्य जीवतो मारितस्य च प्रशंसा । अपराजिताया आनीयमानोजः प्रोक्तप्रकारेण हतः संस्कृतश्च इन्द्रं तर्पयित्वा तृतीयनाके नाम स्वर्गभागे यद्वा सुकृतां पुण्यलोके गच्छति । तत्र गतपूर्वस्य यजमानादेश्च तमोहन्ता भवतीत्यादि वर्णनम् ॥

सांप्रदायिका अप्येवमेव । पञ्चौदनसवे “आ नयैतम्” इत्यर्थसूक्तस्य विनियोगः । एतत्सूक्तेन निरुप्तहविरभिमर्शनं संपातं दातृवाचनं दानं च कुर्यात् । तथा च सूत्रम् । “आ नयैतम् इत्यपराजिताद् अजम् आनीयमानम् अनुमन्त्रयते” इत्यादि “आ नयैतम् इति सूक्तेन संपातवन्तम् आञ्जनान्तम्” इत्यन्तम् [कौ० ८.५] इति ॥

तथा पशौ अनेन सूक्तेन अपराजिताद् आनीयमानम् अजम्

अनुमन्त्रयेत । तद् उक्तं वैताने । "आ नयैतम् इत्याद्याञ्जनान्तम्" इति [वै० २. ६] ॥

तथा अग्निचयने पुनश्चितौ "येना सहस्रम्" इत्यनया गार्हपत्ये चीयमाना इष्टका ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । तद् उक्तं वैताने । "गार्हपत्य उक्तम् । अयम् अग्निः सत्पतिः [७. ६४] येना सहस्रम्" [९. ५. १७] इति [वै० ५. २] ॥

तथा तत्रैव वैश्वकर्मणहोमानुमन्त्रणे तस्या एव विनियोगः । तद् उक्तं वैताने । "ये भक्षयन्तः [२. ३५] एतं सधस्थाः [६. १२३] इति द्वे येना सहस्रम् [९. ५. १७] इति वैश्वकर्मणहोमान्" इति [वै० ५. २] ॥

इस सूक्तमें पञ्चौदन नामक सवमें आहुत होने वाले जीवित और मारित बकरेकी प्रशंसा है। अपराजितासे लाया हुआ अज–बकरा–उक्त रीतिसे हत और संस्कृत होने पर इन्द्रको तृप्त करके तृतीयनाक (स्वर्ग वा पुण्यात्माओंके पुण्यलोक) में जाता है और तहाँ पहिले पहुँचे हुए यजमान आदिके तम–पापको नष्ट करने वाला होता है । इत्यादि वर्णन है ।

साम्प्रदायिक इसका इस प्रकार विनियोग करते हैं, कि–"पञ्चौदनसवमें "आनयैतम्" इस अर्थसूक्तका विनियोग है । इस सूक्त से निरुप्त हविका (होमनेसे पहिले ही हविका) अभिमर्शन, सम्पात दातृवाचन और दान भी करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"आ नयैनं इत्यपराजितात् अजं आनीयमानं अनुमन्त्रयते" इत्यादि "आ नयैतम् इति सूक्तेन सम्पातयन्तं आञ्जनान्तं" इत्यन्तम् (कौशिकसूत्र ८ । ५) ॥

तथा पशुके विषयमें वैतानसूत्रमें भी कहा है, कि–इस सूक्त से अपराजितसे आनीयमान पशुका अनुमन्त्रण करे । "आनयैतं इत्याद्यांजनान्तम्" (वैतानसूत्र २ । ६) ॥

तथा अग्निचयनकी पुनश्चितिमें "येना सहस्रम्" ऋचासे गार्हपत्यमें चिनी जाती हुई ईंटका ब्रह्मा अनुमन्त्रण करे। इसी बात बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"गार्हपत्य उक्तम्। अयं अग्निः सत्पतिः (७ । ६४) येना सहस्रम् (९ । ५ । १७)" इति (वैतानसूत्र ५ । २)॥

तथा तहाँ ही वैश्वकर्मणहोमानुमन्त्रणमें भी इसका विनियोग है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"ये भक्षयन्तः (२। ३५) एतं सधस्थाः (६ । १२३) इति द्वे येना सहस्रम् (९ । ५ । १७) इति वैश्वकर्मणहोमान्" (वैतानसूत्र ५ । २)॥

50, यक

आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन्।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमा क्रमतां
तृतीयम् ॥ १ ॥

आ। नय। एतम्। आ। रभस्व। सुऽकृताम्। लोकम्। अपि।
गच्छतु। प्रऽजानन्।
तीर्त्वा। तमांसि। बहुऽधा। महान्ति। अजः। नाकम्। आ।
क्रमताम्। तृतीयम् ॥ १ ॥

इसको लाइये और यज्ञकर्मका आरंभ करिये, यह अज भी पुण्यात्माओंके लोकोंको जानता हुआ, बहुतसे अंधकारों (पापों) को तरता हुआ तृतीयनाक (स्वर्ग) में चढ़े ॥ १ ॥

इन्द्राय भागं परि त्वा नयाम्यस्मिन् यज्ञे यजमानाय
सूरिम्।

ये नो द्विषन्त्यनु तान् रभस्वानागसो यजमानस्य
वीराः ॥ २ ॥

इन्द्राय । भागम् । परि । त्वा । नयामि । अस्मिन् । यज्ञे । यजमानाय । सूरिम् ।

ये । नः । द्विषन्ति । अनु । तान् । रभस्व । अनागसः । यजमानस्य । वीराः ॥ २ ॥

हे अज ! तू विद्वान् है ऐसे तुझको मैं इन्द्रके भागके लिये इस यज्ञमें यजमानके पास लाता हूँ, जो हमसे द्वेष करते हों उन पर तू पैर रख और यजमानके वीर्यसे उत्पन्न हुए पुत्र आदि तो निष्पाप हैं ॥ २ ॥

प्र पदोव नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चचार शुद्धैः शफैरा
क्रमतां प्रजानन् ।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन्नजो नाकमा क्रमतां
तृतीयम् ॥ ३ ॥

प्र । पदः । अव । नेनिग्धि । दुःऽचरितम् । यत् । चचार । शुद्धैः । शफैः । आ । क्रमताम् । प्रऽजानन् ।

तीर्त्वा । तमांसि । बहुऽधा । विऽपश्यन् । अजः । नाकम् । आ । क्रमताम् । तृतीयम् ॥ ३ ॥

हे अज ! तूने जो दुश्चरित किये हैं उनके निमित्त अपने पैरोंको

शुद्ध कर और जानता हुआ शुद्ध शफोंसे स्वर्गमें चढ़, अंधकारों को पार कर यह अज अनेक प्रकारके लोकोंको देखता हुआ तृतीय नाक (स्वर्ग) पर आरूढ़ हो ॥ ३ ॥

अनु च्छ्य श्यामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथापर्व१सिना
माभि मंस्थाः ।
माभि द्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीये नाके अधि वि
श्रयैनम् ॥ ४ ॥

अनु । छ्य । श्यामेन । त्वचम् । एताम् । विऽशस्तः । यथाऽपरु ।
असिना । मा । अभि । मंस्थाः ।
मा । अभि । द्रुहः । परुऽशः । कल्पय । एनम् । तृतीये । नाके ।
अधि । वि । श्रय । एनम् ॥ ४ ॥

हे विशस्तः ! इस श्यामसे इसकी त्वचाको छेद, जिससे कि जोड़ तलवारका अनुभव न कर सकें, द्रोह न कर, इसको जोड़ जोड़से कल्पित कर और तीसरे नाकमें (पहुँचनेके लिये) इसको पचा ॥ ४ ॥

ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या सिञ्चोदकमव धेह्येनम् ।
पर्याधत्ताग्निना शमितारः शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र
लोकः ॥ ५ ॥

ऋचा । कुम्भीम् । अधि । अग्नौ । श्रयामि । आ । सिञ्च ।
उदकम् । अव । धेहि । एनम् ।

परिऽआधत्त । अग्निना । शमितारः । शृतः । गच्छतु । सुऽकृताम् ।
यत्र । लोकः ॥ ५ ॥

ऋचासे कुम्भीको मैं अग्नि पर चढ़ाता हूँ, जल छिड़क और इसको रख, हे शमिताओं ! तुम इसको रक्खो, यह अग्निसे पक कर तहाँ जावे जहाँ पुण्यात्माओंका लोक है ॥ ५ ॥

उत्क्रामातः परि चेदतप्तस्तप्ताच्चरोरधि नाकं तृतीयम् ।
अग्नेरग्निरधि सं बभूविथ ज्योतिष्मन्तमभि लोकं
जयैतम् ॥ ६ ॥

उत् । क्राम । अतः । परि । च । इत् । अतप्तः । तप्तात् । चरोः ।
अधि । नाकम् । तृतीयम् ।
अग्नेः । अग्निः । अधि । सम् । बभूविथ । ज्योतिष्मन्तम् ।
अभि । लोकम् । जय । एतम् ॥ ६ ॥

तू चारों ओर से न तपा हुआ हो तब भी इस तपे हुए चरुसे स्वर्गमें जानेके लिये उत्क्रमण कर, तू अग्निसे अग्नि (की समान तेजस्वी) होगया है अत एव इस ज्योतिष्मान् लोकको जीत ६

अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुरजं जीवता ब्रह्मणे
देयमाहुः ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिँल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ७

अजः । अग्निः । अजम् । ऊं इति । ज्योतिः । आहुः । अजम् ।
जीवता । ब्रह्मणे । देयम् । आहुः ।

अ॒जः । तमां॑सि । अप॑ । ह॒न्ति॒ । दू॒रम् । अ॒स्मिन् । लो॒के ।

श्र॒त्ऽद॑धानेन । द॒त्तः ॥ ७ ॥

अज ही अग्नि है, अजको ज्योति कहते हैं, और जीवित पुरुषको अजका दान करना चाहिये, ऐसा भी कहते हैं इस लोकमें श्रद्धालुके द्वारा दिया हुआ अज दूर स्वर्गलोकमें अंधकारों-पापोंको नष्ट करता है ॥ ७ ॥

पञ्चौ॑दनः पञ्च॒धा वि क्र॑मतामाक्रं॒स्यमा॑न॒स्त्रीणि॒
ज्योतीं॑षि ।
ई॒जा॒नानां॑ सु॒कृतां॑ प्रेहि॒ मध्यं॑ तृ॒तीये॒ नाके॒ अधि॒ वि
श्र॑यस्व ॥ ८ ॥

पञ्च॑ऽओदनः । प॒ञ्च॒ऽधा । वि । क्र॒म॒ता॒म् । आ॒ऽक्रं॒स्यमा॑नः । त्रीणि॑ ।

ज्योतीं॑षि ।

ई॒जा॒नाना॑म् । सु॒ऽकृता॑म् । प्र । इ॒हि॒ । मध्य॑म् । तृ॒तीये॑ । नाके॑ ।

अधि॑ । वि । श्र॒य॒स्व॒ ॥ ८ ॥

पञ्चौदन पाँच प्रकारसे विक्रमित हो, सूर्य चन्द्र अग्नि इन तीन ज्योतियों पर आरोहण करे और हे पञ्चौदन ! तू यजन करने वाले सुकृतोंके मध्यमें पहुँच और स्वर्गमें विश्रयण कर ॥ ८ ॥

अजा रो॑ह सु॒कृ॒तां॑ यत्र॑ लो॒कः श॑र॒भो न च॒त्तोति॑ दु॒र्गा-
ण्ये॑षः ।
पञ्चौ॑दनो ब्र॒ह्मणे॑ दी॒यमा॑न॒ः स दा॒ता॒रं॑ तृप्त्यां॑ तर्प॑याति

अज । आ । रोह । सुऽकृताम् । यत्र । लोकः । शरभः । न ।
चत्तः । अति । दुःऽगानि । एषः ।
पञ्चऽओदनः । ब्रह्मणे । दीयमानः । सः । दातारम् । तृप्त्या ।
तर्पयाति ॥ ९ ॥

हे अज ! तू तहाँ चढ़ जहाँ पुण्यात्माओंका लोक है, तहाँ शरभ नहीं पहुँच सकता, क्योंकि-यह स्वर्ग दुर्गम पदार्थोंसे सम्पन्न है । ब्रह्माके लिये किया हुआ पञ्चौदन दाताको तृप्तिसे तृप्त कर कर देता है ॥ ९ ॥

अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे नाकस्य पृष्ठे ददिवांसं दधाति ।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येका ॥ १० ॥

अजः । त्रिःऽनाके । त्रिऽदिवे । त्रिऽपृष्ठे । नाकस्य । पृष्ठे ।
ददिऽवांसम् । दधाति ।
पञ्चऽओदनः । ब्रह्मणे । दीयमानः । विश्वऽरूपा । धेनुः ।
कामऽदुघा । असि । एका ॥ १० ॥

अज दान करने वालेको त्रिनाक त्रिपृष्ठ आदि गुणसम्पन्न स्वर्गमें स्थापित करता है । हे अज ! ब्रह्माके लिये दिया हुआ पञ्चौदन दाताके लिये कामपूरिका मुख्या गौ बन जाता है ॥ १० ॥ (११)

एतद् वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं पञ्चौदनं ब्रह्मणेजं
ददाति ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिंल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः

एतत् । वः । ज्योतिः । पितरः । तृतीयम् । पञ्चऽओदनम् । ब्रह्मणे ।
अजम् । ददाति ।
अजः । तमांसि । अप । हन्ति । दूरम् । अस्मिन् । लोके ।
श्रत्ऽदधानेन । दत्तः ॥ ११ ॥

हे पितरो ! जो तृतीय पञ्चौदनरूप अजको ब्रह्माके लिये देता है, वह तुम्हारी ज्योति है, इस लोकमें श्रद्धालुका दिया हुआ अज इस लोकसे दूर परलोकमें अन्धकारको नष्ट कर डालता है ११

ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन् पञ्चौदनं ब्रह्मणेजं
ददाति ।
स व्याप्तिमभि लोकं जयैतं शिवो३स्मभ्यं प्रति-
गृहीतो अस्तु ॥ १२ ॥

ईजानानाम् । सुऽकृताम् । लोकम् । ईप्सन् । पञ्चऽओदनम् ।
ब्रह्मणे । अजम् । ददाति ।
सः । विऽआप्तिम् । अभि । लोकम् । जय । एतम् । शिवः ।
अस्मभ्यम् । प्रतिऽगृहीतः । अस्तु ॥ १२ ॥

यजन करने वाले पुण्यात्माओंके लोकको चाहता हुआ पुरुष

पञ्चौदनके अजको ब्रह्माके लिये देता है, वह ऐसा अज ! तू व्याप्तिरूप इस स्वर्गलोकको जीत और हमारे लिये कल्याणमय स्थान तेरे द्वारा ग्रहण किया हुआ होजावे ॥ १२ ॥

अजो ह्य१ग्नेरजनिष्ट शोकाद् विप्रो विप्रस्य सहसो विपश्चित्
इष्टं पूर्तमभिपूर्तं वषट्कृतं तद् देवा ऋतुशः कल्पयन्तु

अजः । हि । अग्नेः । अजनिष्ट । शोकात् । विप्रः । विप्रस्य । सहसः । विपःऽचित् ।

इष्टम् । पूर्तम् । अभिऽपूर्तम् । वषट्ऽकृतम् । तत् । देवाः । ऋतुऽशः । कल्पयन्तु ॥ १३ ॥

अग्निकी लपटसे अज प्रकट हुआ है, ब्राह्मणको जानने वाला है, बलका जानने वाला है (उसके द्वारा सम्पन्न) इष्टको पूर्तको अभिपूर्तको और वषट्कृतको देवता ऋतुशः कल्पित कर लें॥

अमोतं वासो दद्याद्धिरण्यमपि दक्षिणाम् ।
तथा लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः १४

अमाऽउतम् । वासः । दद्यात् । हिरण्यम् । अपि । दक्षिणाम् ।

तथा । लोकान् । सम् । आप्नोति । ये । दिव्याः । ये । च । पार्थिवाः १४

जो पुरुष वस्त्र लिपटी हुई सुवर्णकी दक्षिणाको भी साथमें देता है, वह दिव्य और पार्थिव लोकोंको पाता है ॥ १४ ॥

एतास्त्वाजोप यन्तु धाराः सोम्या देवीर्घृतपृष्ठा मधुश्चुतः

स्तभान पृथिवीमुत द्यां नाकस्य पृष्ठेधि सप्तरश्मौ १५

एताः । त्वा । अज । उप । यन्तु । धाराः । सोम्याः । देवीः ।
घृतऽपृष्ठाः । मधुऽश्चुतः ।

स्तभान । पृथिवीम् । उत । द्याम् । नाकस्य । पृष्ठे । अधि । सप्तऽरश्मौ

ये मधुश्च्युत् सोममय घृतपृष्ठा दमकती हुई सोममय धाराएँ हे अज ! तुझको प्राप्त हों और हे अज ! तू पृथिवीको और द्यौको सप्तरश्मि (सूर्य) के ऊपर विराजमान स्वर्गमें स्तंभित कर १५

अजो३स्यज स्वर्गोसि त्वया लोकमङ्गिरसः प्राजानन्
तं लोकं पुण्यं प्र ज्ञेषम् ॥ १६ ॥

अजः । असि । अज । स्वःऽगः । असि । त्वया । लोकम् । अङ्गिरसः । प्र । अजानन् ।
तम् । लोकम् । पुण्यम् । प्र । ज्ञेषम् ॥ १६ ॥

हे अज ! तू अज स्वर्ग है, तेरे द्वारा अंगिराओंने स्वर्गलोकको जाना था, उस ही पुण्यलोकको मैंने जान लिया है ॥ १६ ॥

येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम् ।
तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ १७ ॥

येन । सहस्रम् । वहसि । येन । अग्ने । सर्वऽवेदसम् ।
तेन । इमम् । । यज्ञम् । नः । वह । स्वः । देवेषु । गन्तवे ॥ १७ ॥

हे अग्ने ! जिस शक्तिके द्वारा आप सब प्रकारके धन (को देने

वाली हवि) को सहस्र (रीतिसे देवताओंके पास) पहुँचा देते हैं, उस शक्तिके द्वारा आप हमारे इस यज्ञको स्वर्गमें जानेके लिये, देवताओंके पास पहुँचाइये ॥ १७ ॥

अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति पञ्चौदनो निर्ऋतिं बाधमानः ।
तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम ॥ १८ ॥

अजः । पक्वः । स्वःऽगे । लोके । दधाति । पञ्चऽओदनः । निःऽऋतिम् । बाधमानः ।
तेन । लोकान् । सूर्यऽवतः । जयेम ॥ १८ ॥

पञ्चौदन अज पक्व होकर स्वर्गलोकमें स्थापित करता है और निर्ऋतिको बाधा देता है, इस अजके द्वारा हम सूर्यसे सम्पन्न लोकोंको जीतलें ॥ १८ ॥

यं ब्राह्मणे निदधे यं च विक्षु या विप्रुष ओदनानामजस्य ।
सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके जानीतान्नः संगमने पथीनाम् ॥ १९ ॥

यम् । ब्राह्मणे । निऽदधे । यम् । च । विक्षु । याः । विऽप्रुषः । ओदनानाम् । अजस्य ।
सर्वम् । तत् । अग्ने । सुऽकृतस्य । लोके । जानीतात् । नः । सम्ऽगमने । पथीनाम् ॥ १९ ॥

जिस धनको हमने ब्राह्मणोंमें स्थापित किया है, और जिस धनको हमने प्रजामें स्थापित किया है, और अजके ओदनकी जो बिन्दुएँ हैं हे अग्ने ! ये सब हमको, मार्गोंके संगमन पुण्यात्माओं के लोकमें हमको (फलदान करनेके निमित्त) जानें ॥ १९ ॥

अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत तस्योर इयमभवद्द्यौ पृष्ठम् ।
अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी ॥ २० ॥

अजः । वै । इदम् । अग्रे । वि । अक्रमत । तस्य । उरः । इयम् ।
अभवत् । द्यौः । पृष्ठम् ।
अन्तरिक्षम् । मध्यम् । दिशः । पार्श्वे इति । समुद्रौ । कुक्षी इति २०

अजने पहिले व्यक्रमण किया था, उसका उरःस्थल यह द्यौपृष्ठ हुई थी, अन्तरिक्ष मध्य हुआ, दिशाएँ पसलियें हुई और समुद्र कोख हुए ॥ २० ॥

सत्यं चर्तं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट्
शिरः ।
एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः ॥ २१ ॥

सत्यम् । च । ऋतम् । च । चक्षुषी इति । विश्वम् । सत्यम् ।
श्रद्धा । प्राणः । विऽराट् । शिरः ।
एषः । वै । अपरिऽमितः । यज्ञः । यत् । अजः । पञ्चऽओदनः २१

सत्य और ऋत नेत्र हुए, सम्पूर्ण सत्य और श्रद्धा प्राण हुआ, विराट् शिर हुआ अत एव यह पञ्चौदन अज, अपरिमित यज्ञ है—अपरिमित फलको देने वाला है ॥ २१ ॥

अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमव रुन्द्धे ।
यो३जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २२ ॥

अपरिऽमितिम् । एव । यज्ञम् । आप्नोति । अपरिऽमितम् । लोकम् । अव । रुन्द्धे ।

यः । अजम् । पञ्चऽओदनम् । दक्षिणाऽज्योतिषम् । ददाति २२

जो पुरुष दक्षिणासे दमकते हुए पञ्चौदन अजको देता है वह अपरिमित यज्ञफलको प्राप्त होता है और अपरिमित लोकको अपने लिये खोल लेता है ॥ २२ ॥

नास्यास्थीनि भिन्द्यान्न मज्ज्ञो निर्धयेत् ।
सर्वमेनं समादायेदमिदं प्र वेशयेत् ॥ २३ ॥

न । अस्य । अस्थीनि । भिन्द्यात् । न । मज्ज्ञः । निः । धयेत् ।
सर्वम् । एनम् । सम्ऽआदाय । इदम्ऽइदम् । प्र । वेशयेत् ।२३।

इस (अज) की अस्थियोंको न तोड़े और इसकी मज्जाको न धोवे, किंतु इस सबको लेकर यह है यह है कह कर (अग्निमें) प्रवेश कर देय ॥ २३ ॥

इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैनं सं गमयति ।
इषं मह ऊर्जमस्मै दुहे यो३जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २४ ॥

इदम्ऽइदम् । एव । अस्य । रूपम् । भवति । तेन । एनम् । सम् । गमयति ।

इषम् । महः । ऊर्जम् । अस्मै । दुहे । यः । अजम् । पञ्चऽओदनम् । दक्षिणाऽज्योतिषम् । ददाति ॥ २४ ॥

यही इसका रूप है, इसके द्वारा ही यह इसको फलसे संयुक्त करता है, जो दक्षिणासे दमकते हुए पञ्चौदन अजको देता है उसके लिये यह यज्ञ अन्न, महिमा और बलको प्रदान करता है ॥

पञ्च रुक्मा पञ्च नवानि वस्त्रा पञ्चास्मै धेनवः कामदुघा भवन्ति ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २५ ॥

पञ्च । रुक्मा । पञ्च । नवानि । वस्त्रा । पञ्च । अस्मै । धेनवः । कामऽदुघाः । भवन्ति ।
यः । अजम् ।० ॥ २५ ॥

जो दक्षिणासे दमकते हुए पञ्चौदन अजको देता है उसके पाँच सुवर्ण, पाँच नये वस्त्र और पाँच धेनुएँ इच्छाको पूर्ण करती रहती हैं ॥ २५ ॥

पञ्च रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति वर्म वासांसि तन्वे भवन्ति ।
स्वर्गं लोकमश्नुते योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २६ ॥

पञ्च । रुक्मा । ज्योतिः । अस्मै । भवन्ति । वर्म । वासांसि । तन्वे । भवन्ति ।

१६-८-३०

स्वःऽगम् । लोकम् । अश्नुते । यः । अजम् । पञ्चऽओदनम् । दक्षिणाऽज्योतिषम् । ददाति ॥ २६ ॥

जो दक्षिणासे दमकते हुए पञ्चौदन अजको देता है वह स्वर्गलोकको भोगता है पञ्चरुक्मा ज्योति उसके लिये होती है और उसके शरीरके लिये कवच और वस्त्र मिलते हैं ॥ २६ ॥

या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दतेपरम् ।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः ॥ २७ ॥

या । पूर्वम् । पतिम् । वित्त्वा । अथ । अन्यम् । विन्दते । अपरम् ।
पञ्चऽओदनम् । च । तौ । अजम् । ददातः । न । वि । योषतः ॥२७॥

जो वाग्दानसे पहिले पतिको जान कर फिर दूसरे पति को पाती है, वे दोनों पञ्चौदन अजको देनेसे वियुक्त नहीं होते हैं ॥ २७ ॥

समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः ।
यो३जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २८ ॥

समानऽलोकः । भवति । पुनःऽभुवा । अपरः । पतिः ।
यः । अजम् । पञ्चऽओदनम् । दक्षिणाऽज्योतिषम् । ददाति २८

जो ऐसा पुनर्भूका पति होता है दक्षिणासे दमकते हुए पञ्चौदन अजको देनेसे उस पुनर्भूके साथ समान लोकमें रहता है २८

अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम् ।
वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् ॥ २९ ॥

अनुपूर्वऽवत्साम् । धेनुम् । अनड्वाहम् । उपऽबर्हणम् ।
वासः । हिरण्यम् । दत्त्वा । ते । यन्ति । दिवम् । उत्ऽतमाम् २९

अनुपूर्ववत्सा धेनुको और उपबर्हण (उपसेक्ता) वृषभको और सुवर्णसहित वस्त्रको देकर वे दानी पुरुष उत्तम स्वर्गको जाते हैं२९

आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् ।
जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुप ह्वये ॥३०॥

आत्मानम् । पितरम् । पुत्रम् । पौत्रम् । पितामहम् ।
जायाम् । जनित्रीम् । मातरम् । ये । प्रियाः । तान् । उप । ह्वये ॥३०॥

मैं अपनेको, पिताको, पुत्रको, पौत्रको, पितामहको, स्त्रीको, माताको और जो मेरे प्रिय हैं उनको समीपमें बुलाता हूँ ३० (१३)

यो वै नैदाघं नामर्तुं वेद ।
एष वै नैदाघो नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३१ ॥

यः । वै । नैदाघम् । नाम । ऋतुम् । वेद ।
एषः । वै । नैदाघः । नाम । ऋतुः । यत् । अजः । पञ्चऽओदनः ।
निः । एव । अप्रियस्य । भ्रातृव्यस्य । श्रियम् । दहति । भवति ।
आत्मना ।

यः । अजम् । पञ्चऽओदनम् । दक्षिणाऽज्योतिषम् । ददाति २१

जो पञ्चौदन अज है यही नैदाघ ऋतु है। जो नैदाघ नामक–ग्रीष्म ऋतुको जानता है। और जो दक्षिणासे दमकते हुए पञ्चौदन नामक अजको देता है तो वह अपने कृत्योंसे अप्रिय शत्रुकी लक्ष्मीको भस्म कर डालता है॥ २१ ॥

यो वै कुर्वन्तं नामर्तुं वेद ।
कुर्वतींकुर्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै कुर्वन्नामर्तुर्यदजः ०।०।०॥ ३२ ॥

०। वै । कुर्वन्तम् । नाम ।०।
कुर्वतीम्ऽकुर्वतीम् । एव । अप्रियस्य । भ्रातृव्यस्य । श्रियम् । आ । दत्ते ।
०। वै । कुर्वन् । नाम ।०॥ ३२ ॥

जो कुर्वन्त नामक ऋतुको जानता है वह अप्रिय शत्रुकी संतान आदिको अबाधरूपसे करती हुई लक्ष्मीको ग्रहण कर लेता है, जो यह पञ्चौदन अज है यही कुर्वन्त नामक ऋतु है, जो दक्षिणासे दमकते हुए पञ्चौदन अजको देता है वह अपने कृत्यसे अप्रिय शत्रुकी लक्ष्मीको भस्म कर डालता है ॥ ३२ ॥

यो वै संयन्तं नामर्तुं वेद ।
संयतींसंयतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै संयन्नाम ०।०।०॥ ३३ ॥

०। वै । सम्ऽयन्तम् । नाम ।०।

संयतीम्ऽसंयतीम् । एव ।०।

०। वै । सम्ऽयन् । नाम ।० ॥ ३३ ॥

जो संयंत नामक ऋतुको जानता है वह अप्रिय शत्रुकी संयम की लक्ष्मीको हर लेता है, जो पञ्चौदन अज है संयंत नामक ऋतु है, जो दक्षिणासे दमकते हुए पञ्चौदन अजको देता है वह अपने कृत्यसे अप्रिय शत्रुकी लक्ष्मीको भस्म कर डालता है ॥ ३२ ॥

यो वै पिन्वन्तं नामर्तुं वेद ।
पिन्वतींपिन्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै पिन्वन्नाम०।०।० ॥ ३४ ॥

०। वै । पिन्वन्तम् । नाम ।०।

पिन्वतीम्ऽपिन्वतीम् । एव ।०।

०। वै । पिन्वन् । नाम ।०॥ ३४ ॥

जो पिन्वन्त नामक ऋतुको जानता है वह अप्रिय शत्रुकी पोषिका लक्ष्मीका हरण कर लेता है, जो पञ्चौदन अज है वही पिन्वन्त नामक ऋतु है, जो दक्षिणासे दमकते हुए पञ्चौदन अजको देता है वह अपने कृत्यसे अप्रिय शत्रुकी लक्ष्मीको भस्म कर डालता है ॥ ३४ ॥

यो वा उद्यन्तं नामर्तुं वेद ।
उद्यतीमुद्यतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।

एष वा उद्यन्नाम०।०।०॥ ३५ ॥

०। वै। उत्ऽयन्तम्। नाम।०।

उद्यतीम्ऽउद्यतीम्। एव।०।

०। वै। उत्ऽयन्। नाम।०॥ ३५॥

जो उद्यन्त, नामक ऋतुको जानता है वह अप्रिय शत्रुकी उद्यत रहनेसे प्राप्त होने वाली लक्ष्मीका हरण कर लेता है। जो पंचौदन अज है वही उद्यन्त नामक ऋतु है, जो दक्षिणासे दमकते हुये पञ्चौदन अजको देता है वह अपने कृत्यसे शत्रुकी लक्ष्मीको भस्म कर डालता है॥ ३५॥

यो वा अभिभुवं नामर्तुं वेद।
अभिभवन्तीमभिभवन्तीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते।
एष वा अभिभूर्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति॥ ३६॥

यः। वै। अभिऽभुवम्। नाम। ऋतुम्। वेद।

अभिभवन्तीम्ऽअभिभवन्तीम्। एव। अप्रियस्य। भ्रातृव्यस्य।
श्रियम्। आ। दत्ते।

एषः। वै। अभिऽभूः। नाम। ऋतुः। यत्। अजः। पञ्चऽओदनः।

निः । एव । अप्रियस्य । भ्रातृव्यस्य । श्रियम् । दहति । भवति ।
आत्मना ।

यः । अजम् । पञ्चऽओदनम् । दक्षिणाऽज्योतिषम् । ददाति ३६

अथवा जो अभिभू नामक ऋतुको अर्थात् समयको जानता है, वह अप्रिय शत्रुकी धर्षण करने वाली लक्ष्मीका हरण कर लेता है, जो पञ्चौदन अज है, यही अभिभू नामक ऋतु है, जो दक्षिणासे दमकते हुए पञ्चौदन अजको देता है वह शत्रुकी लक्ष्मी को पूर्णरूपसे भस्म कर डालता है ॥ ३६ ॥

अजं च पचत पञ्च चौदनान् ।
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीः सान्तर्देशाः प्रति
गृह्णन्तु त एतम् ॥ ३७ ॥

अजम् । च । पचत । पञ्च । च । ओदनान् ।
सर्वाः । दिशः । सम्ऽमनसः । सध्रीचीः सऽअन्तर्देशाः । प्रति ।
गृह्णन्तु । ते । एतम् ॥ ३७ ॥

अजका और पञ्चौदनका पचन करो । अन्तर्दिशाओं सहित सब दिशाएँ एकसा मन रख कर एक साथ इसका सत्कार करें ॥

तास्ते रक्षन्तु तव तुभ्यमेतं ताभ्य आज्यं हविरिदं
जुहोमि ॥ ३८ ॥

ताः । ते । रक्षन्तु । तव । तुभ्यम् । एतम् । ताभ्यः । आज्यम् ।
हविः । इदम् । जुहोमि ॥ ३८ ॥

इति तृतीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

वे दिशाएँ तेरे इस यज्ञकी रक्षा करें, मैं उनके लिये इस हवि का होम करता हूँ ॥ ३८ ॥ (१४)

तृतीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (४५८) ॥

"यो विद्याद्" इति सूक्तेन जपं करोति स्वर्गकामः इति विनियोगमाला संप्रदायानुसारेण । वस्तुतस्तु यो विद्यादित्यारभ्य यत्क्षत्तारम् इत्यन्तेषु षट्सु पर्यायेषु अतिथेर्माहात्म्यं तथा तस्य सभाजनं तत्सभाजनस्य च यज्ञफलतुल्यं फलं चेति आतिथ्यस्य प्रशंसा वर्ण्यते ॥

विनियोगमालामें कहा है, कि—स्वर्गको चाहने वाला सम्प्रदाय के अनुसार "यो विद्यात्" सूक्तसे जप करे । वास्तवमें तो 'यो विद्यात्' सूक्तसे लेकर "यत् क्षत्तारम्" तकके छः पर्याय सूक्तोंमें अतिथिका माहात्म्य तथा उसकी पूजा, उसकी पूजाका यज्ञ फलकी समान फल और अतिथिका माहात्म्य वर्णित है ।

यो वि॒द्याद् ब्रह्म॑ प्र॒त्यक्षं॒ परूं॑षि॒ यस्य॑ संभा॒रा ऋचो॒
यस्या॑नू॒क्य॑म् ॥ १ ॥

यः । वि॒द्यात् । ब्रह्म॑ । प्र॒ति॒ऽअ॒क्षम् । परूं॑षि । यस्य॑ । स॒म्ऽभा॒राः ।
ऋ॑चः । य॑स्य । अ॒नू॒क्य॑म् ॥ १ ॥

जो (अतिथिरूप) प्रत्यक्ष ब्रह्मको जानता है, कि जिसकी परुष (गाँठे) ही संभार हैं और अनूक्य (कन्धे और मध्यदेशकी संधि) ही ऋचाएँ हैं ॥ १ ॥

सामा॑नि॒ यस्य॒ लोमा॑नि॒ य॒जुर्हृद॑यमु॒च्यते॑ परि॒स्तर॑ण-
मि॒द्ध॒विः ॥ २ ॥

सामानि । यस्य । लोमानि । यजुः । हृदयम् । उच्यते । परिऽस्तरणम् । इत् । हविः ॥ २ ॥

जिसके लोम ही साम हैं, हृदय ही यजु कहलाता है और परिस्तरण ही हवि है ॥ २ ॥

यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रतिपश्यति देवयजनं प्रेक्षते ॥ ३ ॥

यत् । वै । अतिथिऽपतिः । अतिथीन् । प्रतिऽपश्यति । देवऽयजनम् । प्र । ईक्षते ॥ ३ ॥

अतिथिपति जो अतिथिको देखता है वह देवयजनको ही देखता है ॥ ३ ॥

यदभिवदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यपः प्र णयति

यत् । अभिऽवदति । दीक्षाम् । उप । एति । यत् । उदकम् । याचति । अपः । प्र । नयति ॥ ४ ॥

जो अतिथिसे भाषण करना है वही इसका दीक्षा लेना है, जो उदककी प्रार्थना करता है वह ही प्रणयन करता है ॥ ४ ॥

या एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः ॥ ५ ॥

याः । एव । यज्ञे । आपः । प्रऽनीयन्ते । ताः । एव । ताः ॥५॥

वह जल वही है जो यज्ञमें प्रणयन किया जाता है ॥ ५ ॥

यत् तर्पणमाहरन्ति य एवाग्नीषोमीयः पशुर्बध्यते स एव सः ॥ ६ ॥

१० २०-८-३

यत् । तर्पणम् । आऽहरन्ति । यः । एव । अग्नीषोमीयः । पशुः । बध्यते
सः । एव । सः ॥ ६ ॥

और जो तर्पणका–तृप्ति करने वाले पदार्थका आहरण किया जाता है वह अग्नीषोमीय पशुको बाँधना ही है ॥ ६ ॥

यदावसथान् कल्पयन्ति सदोहविर्धानान्येव तत् कल्पयन्ति ॥ ७ ॥

यत् । आऽवसथान् । कल्पयन्ति । सदःऽहविर्धानानि । एव । तत् ।
कल्पयन्ति ॥ ७ ॥

और जो आवसथ–टिकनेके स्थान–की कल्पना करते हैं वह मानो सदा हविर्धानीकी ही कल्पना करते हैं ॥ ७ ॥

यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत् ॥ ८ ॥

यत् । उपऽस्तृणन्ति । बर्हिः । एव । तत् ॥ ८ ॥

जो उपस्तृणन करता है वही बर्हि है ॥ ८ ॥

यदुपरिशयनमाहरन्ति स्वर्गमेव तेन लोकमव रुन्द्धे

यत् । उपरिऽशयनम् । आऽहरन्ति । स्वःऽगम् । एव । तेन ।
लोकम् । अव । रुन्द्धे ॥ ९ ॥

और जो उपरिशयनका आहरण करता है वह स्वर्गलोकको ही खोलता है ॥ ९ ॥

यत् कशिपूपबर्हणमाहरन्ति परिधय एव ते ॥१०॥

यत् । कशिपुऽउपबर्हणम् । आऽहरन्ति । परिऽधयः । एव । ते१०

और जो कशिपु-उपबर्हण लाते हैं वह परिधि ही हैं ॥ १० ॥

यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाहरन्त्याज्यमेव तत् ॥ ११ ॥

यत् । आञ्जनऽअभ्यञ्जनम् । आऽहरन्ति । आज्यम् । एव । तत् ११

और जो अञ्जनके अभ्यञ्जनको लाते हैं वह आज्य ही है ११

यत् पुरा परिवेषात् खादमाहरन्ति पुरोडाशावेव तौ १२

यत् । पुरा । परिऽवेषात् । खादम् । आऽहरन्ति । पुरोडाशौ । एव । तौ ॥ १२ ॥

और जो परोसनेसे पहिले खानेकी वस्तुओंको लाते हैं वह पुरोडाशोंको ही लाते हैं ॥ १२ ॥

यदशनकृतं ह्वयन्ति हविष्कृतमेव तद्ध्वयन्ति ॥१३॥

यत् । अशनऽकृतम् । ह्वयन्ति । हविःऽकृतम् । एव । तत् । ह्वयन्ति

और जो भोजन करनेको बुलाते हैं, वे हवि स्वीकार करनेके लिये ही आह्वान करते हैं ॥ १३ ॥

ये व्रीहयो यवा निरुप्यन्तेंशव एव ते ॥ १४ ॥

ये । व्रीहयः । यवाः । निःऽउप्यन्ते । अंशवः । एव । ते ॥ १४ ॥

और जो धान और जौं हैं वे अंशु (सोम) ही हैं ॥ १४ ॥

यान्युलूखलमुसलानि ग्रावाण एव ते ॥ १५ ॥

यानि । उलूखलऽमुसलानि । ग्रावाणः । एव । ते ॥ १५ ॥

और जो उलूखल और मूसल हैं वे ही ग्रावा (सोमरस निकालनेके पत्थर) हैं ॥ १५ ॥

शूर्पं पवित्रं तुषा ऋजीषाभिषवणीरापः ॥ १६ ॥

शूर्पम् । पवित्रम् । तुषाः । ऋजीषा । अभिऽसवनीः । आपः ॥

शूर्प (छाज) पवित्रा है, भूसी ऋजीषा है और अभिषवणी जल है ॥ १६ ॥

स्रुग् दर्विर्नेक्षणमायवनं द्रोणकलशाः कुम्भ्यो
वायव्यानि पात्राणीयमेव कृष्णाजिनम् ॥१७॥

स्रुक् । दर्विः । नेक्षणम् । आऽयवनम् । द्रोणऽकलशाः । कुम्भ्यः ।
वायव्यानि । पात्राणि । इयम् । एव । कृष्णऽअजिनम् ।१७।

इति तृतीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

दर्वी (ओदन उतारनेका साधन) ही स्रुवा है और पवित्र करना ही आयवन (जलमें डाले हुए चावलोंको मिलानेका साधनरूप काष्ठ) है, कलशियें ही द्रोणकलश हैं और कृष्णमृगचर्म ही वायव्य पात्र हैं ॥ १७ ॥ (१५)

तृतीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (४५९) ॥

यजमानब्राह्मणं वा एतदतिथिपतिः कुरुते यदाहार्याणि
प्रेक्षत इदं भूया३ इदा३मिति ॥ १ ॥

यजमानऽब्राह्मणम् । वै । एतत् । अतिथिऽपतिः । कुरुते । यत् ।
आऽहार्याणि । प्रऽईक्षते । इदम् । भूया३ः । इदा३म् । इति ॥१॥

अतिथिपति यह अधिक गुणमय है, यह आम् है इस प्रकार जो देखता है, वह यजमानब्राह्मणको ही करता है ॥ १ ॥

यदाह भूय उद्धरेति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते २

यत् । आह । भूयः । उत् । हर । इति । प्राणम् । एव । तेन । वर्षीयांसम् । कुरुते ॥ २ ॥

और फिर जो यह कहता है, कि–(भोजनको) उठाइये–खाइये-सो इससे प्राणको ही वर्षीयान्–बढ़ता हुआ-करता है २

उप हरति हवींष्या सादयति ॥ ३ ॥

उप । हरति । हवींषि । आ । सादयति ॥ ३ ॥

वह जो उपहरण करता है वह हविको ही प्राप्त कराता है ३

तेषामासन्नानामतिथिरात्मन् जुहोति ॥ ४ ॥

तेषाम् । आऽसन्नानाम् । अतिथिः । आत्मन् । जुहोति ॥ ४ ॥

उन परोसे हुए पदार्थोंका अतिथि अपनी आत्मामें होम करता है

स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण वषट्कारेण ॥ ५ ॥

स्रुचा । हस्तेन । प्राणे । यूपे । स्रुक्ऽकारेण । वषट्ऽकारेण ॥ ५ ॥

(वह) हाथरूपी स्रुवेसे, प्राणरूपी यूपसे और वषट्काररूपी स्रुक्कार से (उनका अपनी आत्मामें हवन करता है) ॥ ५ ॥

एते वै प्रियाश्चाप्रियाश्चर्त्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः ॥ ६ ॥

एते । वै । प्रियाः । च । अप्रियाः । च । ऋत्विजः । स्वःऽगम् । लोकम् । गमयन्ति । यत् । अतिथयः ॥ ६ ॥

इन प्रिय वा अप्रिय अतिथिरूप ऋत्विजोंको ही इसको स्वर्गलोकको लेजाना पड़ता है ॥ ६ ॥

स य एवं विद्वान् न द्विषन्नश्नीयान्न द्विषतोन्नमश्नीयान्न मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य ॥ ७ ॥

सः । यः । एवम् । विद्वान् । न । द्विषन् । अश्नीयात् । न । द्विषतः । अन्नम् । अश्नीयात् । न । मीमांसितस्य । न । मीमांसमानस्य ७

जो ऐसा जानता है उसको चाहिये कि—जिससे द्वेष करता हो और जो द्वेष करता हो और जिसने (गोत्र आदि बूझ कर) अपनी मीमांसा न करली हो वा जिसकी मीमांसा न करली हो उसके अन्नको न खावे ॥ ७ ॥

सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति ॥ ८ ॥

सर्वः । वै । एषः । जग्धऽपाप्मा । यस्य । अन्नम् । अश्नन्ति ॥८॥

जिसके अन्नको खाता है वह खाने वाला उसके सम्पूर्ण पापों का ही भक्षण करने वाला है ॥ ८ ॥

सर्वो वा एषोजग्धपाप्मा यस्यान्नं नाश्नन्ति ॥ ९ ॥

सर्वः । वै । एषः । अजग्धऽपाप्मा । यस्य । अन्नम् । न । अश्नन्ति ॥९॥

और जिसके अन्नको नहीं खाता है उसके वह किसी पाप का भक्षण नहीं करता है ॥ ९ ॥

सर्वदा वा एष युक्तग्रावार्द्रपवित्रो वितताध्वर आहृतयः क्रतुर्य उपहरति ॥ १० ॥

सर्वदा । वै । एषः । युक्तऽग्रावा । आर्द्रऽपवित्रः । विततऽअध्वरः ।
आहृतऽयज्ञक्रतुः । यः । उपऽहरति ॥ १० ॥

जो अतिथियोंके लिये अन्न देता रहता है वह सदा ग्रावाओं से युक्त, आर्द्रपवित्र यज्ञको करता रहने वाला और यज्ञको पूर्ण करने वाला रहता है ॥ १० ॥

प्राजापत्यो वा एतस्य यज्ञो विततो य उपहरति ११

प्राजाऽपत्यः । वै । एतस्य । यज्ञः । विऽततः । यः ।०॥ ११ ॥

जो अतिथिको बलि देता है, यह उसका प्राजापत्य यज्ञ होता है

प्रजापतेर्वा एष विक्रमाननुविक्रमते य उपहरति १२

प्रजाऽपतेः । वै । एषः । विऽक्रमान् । अनुऽविक्रमते । यः । उप-
ऽहरति ॥ १२ ॥

जो अतिथिसत्कार करता है वह प्रजापतिके कदम पर ही कदम रखता है ॥ १२ ॥

योतिथीनां स आहवनीयो यो वेश्मनि स गार्हपत्यो
यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाग्निः ॥ १३ ॥

यः । अतिथीनाम् । सः । आऽहवनीयः । यः । वेश्मनि । सः ।
गार्हऽपत्यः । यस्मिन् । पचन्ति । सः । दक्षिणऽअग्निः ।१३।

इति तृतीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

जो अतिथियोंका (आह्वान है) वही आहवनीय अग्नि है

और जो घरमें अग्नि होता है वह गार्हपत्य अग्नि होता है और जिसमें पाक होता है वह दक्षिणाग्नि होता है ॥ १३ ॥ (१८)

तृतीय अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (४६०) ॥

इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोतिथेरश्नाति ॥ १ ॥

इष्टम् । च । वै । एषः । पूर्तम् । च । गृहाणाम् । अश्नाति । यः । पूर्वः । अतिथेः । अश्नाति ॥ १ ॥

जो अतिथिसे पहिले खालेता है वह घर भरके पुरुषोंके इष्ट (श्रुतिविहित याग) कर्मके और पूर्त (स्मृतिविहित बावड़ी कुआ तालाव बनवाना आदि) कर्मके फलोंका भक्षण कर लेता है-फल को नष्ट कर डालता है ॥ १ ॥

पयश्च वा एष रसं च० ॥ २ ॥

पयः । च । वै । एषः । रसम् । च ।० ॥ २ ॥

जो अतिथिसे पहिले खालेता है वह घरके दुग्ध और रसका ही नाश कर डालता है ॥ २ ॥

ऊर्जां च वा एष स्फातिं च० ॥ ३ ॥

ऊर्जाम् । च । वै । एषः । स्फातिम् । च ।० ॥ ३ ॥

जो अतिथिसे पहिले खालेता है वह घरके बल और वृद्धिको ही नष्ट कर डालता है ॥ ३ ॥

प्रजां च वा एष पशूंश्च० ॥ ४ ॥

प्रऽजाम् । च । वै । एषः । पशून् । च ।० ॥ ४ ॥

जो अतिथिसे पहिले खाता है वह घरकी प्रजा और पशुओं का ही भक्षण करता है ॥ ४ ॥

कीर्तिं च वा एष यशश्च० ॥ ५ ॥

कीर्तिम् । च । वै । एषः । यशः । च ।० ॥ ५ ॥

जो अतिथिसे पहिले भोजन करता है वह घरकी कीर्ति वा यश को ही नष्ट करता है ॥ ५ ॥

श्रियं च वा एष संविदं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोतिथेरश्नाति ॥ ६ ॥

श्रियम् । च । वै । एषः । सम्ऽविदम् । च । गृहाणाम् । अश्नाति । यः । पूर्वः । अतिथेः । अश्नाति ॥ ६ ॥

जो अतिथिसे पहिले खाता है वह घरकी लक्ष्मी और एकमतिका ही नाश करता है ॥ ६ ॥

एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात् ७

एषः । वै । अतिथिः । यत् । श्रोत्रियः । तस्मात् । पूर्वः । न । अश्नीयात् ॥ ७ ॥

जो श्रोत्रिय है वह वास्तविक अतिथि है, उससे पहिले भोजन न करे ॥ ७ ॥

अशितावत्यतिथावश्नीयाद् यज्ञस्य सात्मत्वाय यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम् ॥ ८ ॥

अशितऽवति । अतिथौ । अश्नीयात् । यज्ञस्य । सात्मऽत्वाय । यज्ञस्य । अविऽछेदाय । तत् । व्रतम् ॥ ८ ॥

११ २०-८-३०

अतिथिके भोजन कर चुकने पर भोजन करे, यही गृहस्थका यज्ञके सात्मत्व और अविच्छेदके लिये व्रत होता है ॥ ८ ॥

ए॒तद् वा उ॒ स्वादी॑यो॒ यद॑धिग॒वं क्षी॒रं वा॑ मां॒सं वा॒

तदे॒व नाश्नी॑यात् ॥ ९ ॥

ए॒तत् । वै । ऊं॑ इति॑ । स्वादी॑यः । यत् । अ॒धि॒ऽग॒व॒म् । क्षी॒रम् ।

वा॒ । मां॒सम् । वा॒ । तत् । ए॒व । न । अ॒श्नी॒या॒त् ॥ ९ ॥

इति तृतीयेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

जो स्वादिष्ट वस्तु हों उनको (अपने आप) न खावे (जैसे) मांस वा गौका दूध ॥ ९ ॥ (१७)

तृतीय अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (४६१) ॥

स य ए॒वं वि॒द्वान् क्षी॒रमु॒पसि॒च्योप॒हर॑ति ॥ १ ॥

सः । यः । ए॒वम् । वि॒द्वान् । क्षी॒रम् । उ॒प॒ऽसि॒च्य । उ॒प॒ऽहर॑ति १

जो इस बातको जानता हुआ दुग्धका उपसेचन करके भक्ष्य पदार्थोंको अतिथिके निमित्त लाता है ॥ १ ॥

याव॑दग्निष्टो॒मेने॒ष्ट्वा सुस॑मृद्धेनाव॒रुन्द्धे॒ ताव॑दे॒नेनाव॑

रु॒न्द्धे ॥ २ ॥

याव॑त् । अ॒ग्नि॒ऽस्तो॒मेन॑ । इ॒ष्ट्वा । सुऽस॑मृद्धेन । अ॒व॒ऽरु॒न्द्धे॒ ।

ताव॑त् । ए॒ने॒न॒ । अव॑ । रु॒न्द्धे॒ ॥ २ ॥

तो सुसमृद्ध अग्निष्टोमसे यजन करने पर पुरुष स्वर्गके जितने स्थानको अपने लिये खोल सकता है उतने ही स्थानको इस अतिथिके द्वारा पाजाता है ॥ २ ॥

स य एवं विद्वान्त्सर्पिरुपसिच्योपहरति ॥ ३ ॥

०। विद्वान्। सर्पिः। उपऽसिच्य।०॥ ३ ॥

जो इस बातको जानता हुआ घृतका उपसेचन करके भक्ष्य पदार्थोंको अतिथिके लिये लाता है ॥ ३ ॥

यावदतिरात्रेणेष्ट्वा० ॥ ४ ॥

यावत्। अतिऽरात्रेण। इष्ट्वा।०॥ ४ ॥

तो सुसमृद्ध अतिरात्रको करने पर स्वर्गके जितने अधिकार मिल सकते हैं, उतने अधिकारोंको वह इस अतिथिके द्वारा पा जाता है ॥ ४ ॥

स य एवं विद्वान् मधूपसिच्योपहरति ॥ ५ ॥

०। विद्वान्। मधु। उपऽसिच्य।०॥ ५ ॥

जो इस बातको जानता हुआ मधु डालकर भक्ष्य पदार्थोंको अतिथिके लिये लाता है ॥ ५ ॥

यावत् सत्त्रसद्येनेष्ट्वा० ॥ ६ ॥

यावत्। सत्त्रऽसद्येन। इष्ट्वा।०॥ ६ ॥

तो सुसमृद्ध सत्रसद्य यज्ञके करनेसे जितने स्वर्गफलको पा सकता है उतने ही फलको वह इस अतिथिके द्वारा पाता है ॥६॥

स य एवं विद्वान् मांसमुपसिच्योपहरति ॥ ७ ॥

०। विद्वान्। मांसम्। उपऽसिच्य।० ॥ ७ ॥

जो इस बातको जानता हुआ मांसका उपसेचन करके भक्ष्य पदार्थोंको लाता है ॥ ७ ॥

यावद् द्वादशाहेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनावरुन्द्धे ॥ ८ ॥

यावत् । द्वादशऽअहेन । इष्ट्वा । सुऽसमृद्धेन । अवऽरुन्द्धे । तावत् । एनेन । अव । रुन्द्धे ॥ ८ ॥

तो सुसमृद्ध द्वादशाहको करनेसे जितने फलको पासकता है उतने फलको इस अतिथिके द्वारा पाजाता है ॥ ८ ॥

स य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥ ९ ॥

सः । यः । एवम् । विद्वान् । उदकम् । उपऽसिच्य । उपऽहरति ९

जो इस बातको जानता हुआ अतिथिके लिये भक्ष्य पदार्थों को जलका उपसेचन करके लाता है ॥ ९ ॥

प्रजानां प्रजननाय गच्छति प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां भवति य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥१०॥

प्रऽजानाम् । प्रऽजननाय । गच्छति । प्रतिऽस्थाम् । प्रियः । प्रऽजानाम् । भवति । यः । एवम् । विद्वान् । उदकम् । उपऽसिच्य । उपऽहरति ॥ १० ॥

इति तृतीयेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

वह प्रजाओंके प्रजननको पाता है प्रतिष्ठाको पाता है और प्रजाओंका प्रिय होजाता है । जो ऐसा जानकर उदकका उपसेचन करके अतिथिके लिये भक्ष्य पदार्थोंको लाता है ॥१०॥ (१८)

तृतीय अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (५६२) ॥

तस्मा उषा हिङ्कृणोति सविता प्र स्तौति ॥ १ ॥

तस्मै । उषाः । हिङ् । कृणोति । सविता । प्र । स्तौति ॥ १ ॥

उसके लिये प्रजा हिं शब्दको करती है, और सविता उसकी प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

बृहस्पतिरूर्जयोद्गायति त्वष्टा पुष्ट्या प्रति हरति विश्वे
देवा निधनम् ॥ २ ॥

बृहस्पतिः । ऊर्जया । उत् । गायति । त्वष्टा । पुष्ट्या । प्रति । हरति । विश्वे । देवाः । निऽधनम् ॥ २ ॥

बृहस्पति अन्नरसजनित पुष्टि—ऊर्जा—से उद्गायन करते हैं, त्वष्टा पुष्टि प्रदान करते हैं, और विश्वेदेवता जिस वाक्यसे साम परिसमाप्त किया जाता है उस निधनसे उसकी स्तुति करते हैं २

निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ३

निऽधनम् । भूत्याः । प्रऽजायाः । पशूनाम् । भवति । यः । एवम् । वेद

जो ऐसा जानता है वह भूतिका, प्रजाका और पशुओंका निधन होता है । अर्थात् सामपरिसमाप्तिवाक्यसे, भूति प्रजा और पशुओंका पाने वाला होता है ॥ ३ ॥

तस्मा उद्यन्त्सूर्यो हिङ्कृणोति संगवः प्र स्तौति ४

तस्मै । उत्ऽयत् । सूर्यः । हिङ् । कृणोति । सम्ऽगवः । प्र ।० ४

उदय होते हुए सूर्य उसके लिये (प्रसन्नतासूचक) हिं शब्द को करते हैं और किरणोंसे भली प्रकार सम्पन्न होने पर सूर्य उसकी प्रशंसा करते हैं ॥ ४ ॥

मध्यन्दिन उद्गायत्यपराह्णः प्रति हरत्यस्तंयन्निधनम् ।
निधनं० ॥ ५ ॥

मध्यन्दिनः । उत् । गायति । अपरऽअह्नः । प्रति । हरति । अस्तम्ऽयन् । निऽधनम् । निऽधनम् ।० ॥ ५ ॥

सूर्यदेव उसकी मृत्युका अस्त करते हुए मध्यन्दिनके समय उद्गान करते हैं और अपराह्णके समय भोजन देते हैं, जो ऐसा जानता है वह निधन नामक वाक्यके द्वारा भूति प्रजा और पशुओं को पाने वाला होजाता है ॥ ५ ॥

तस्मा अभ्रो भवन् हिङ्कृणोति स्तनयन् प्र स्तौति ६

तस्मै । अभ्रः । भवन् । हिङ् । कृणोति । स्तनयन् । प्र । स्तौति ६

अभ्र प्रादुर्भूत होता हुआ उसके लिये हिं करता है और गर्जना करता हुआ स्तुति करता है ॥ ६ ॥

विद्योतमानः प्रति हरति वर्षन्नुद्गायत्युद्गृह्णन् निधनम्
निधनं० ॥ ७ ॥

विऽद्योतमानः । प्रति । हरति । वर्षन् । उत् । गायति । उत्ऽगृह्णन् ॥ निऽधनम् ।० ॥ ७ ॥

दमकता हुआ प्रतिहरण करता है, बरसता हुआ गाता है और निधनका उद्ग्रहण करता है ॥ ७ ॥

अतिथीन् प्रति पश्यति हिङ्कृणोत्यभि वदति प्र स्तौत्युदकं याचत्युद्गायति ॥ ८ ॥

अतिथीन् । प्रति । पश्यति । हिङ् । कृणोति । अभि । वदति ।

प्र । स्तौति । उदकम् । याचति । उत् । गायति ॥ ८ ॥

अतिथियोंकी ओर देखता है हिंकार करता है, अभिवदन करता है, स्तुति करता है, याचना करता है, उद्गान करता है ८

उप हरति प्रति हरत्युच्छिष्टं निधनम् ॥ ९ ॥

उप । हरति । प्रति । हरति । उत्ऽशिष्टम् । निऽधनम् ॥ ९ ॥

तो उच्छिष्ट और निधनका प्रतिहरण और उपहरण सकता है ॥ ९ ॥

निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥

निऽधनम् । भूत्याः । प्रऽजायाः । पशूनाम् । भवति । यः ।०।१०।

इति तृतीये अनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

जो ऐसा जानता है वह भूति प्रजा और पशुओंका निधन सामसे पाने वाला होसकता है ॥ १० ॥ (१९)

तृतीय अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (४६३) ॥

यत् क्षत्तारं ह्वयत्या श्रावयत्येव तत् ॥ १ ॥

यत् । क्षत्तारम् । ह्वयति । आ । श्रावयति । एव । तत् ॥ १ ॥

जो अभिमत कार्यको करने वाले क्षत्ताका आह्वान करता है वह श्रुतिको ही सुनाता है ॥ १ ॥

यत् प्रतिशृणोति प्रत्याश्रावयत्येव तत् ॥ २ ॥

यत् । प्रतिऽशृणोति । प्रतिऽआश्रावयति । एव । तत् ॥ २ ॥

जो प्रतिज्ञा करता है वह प्रतिश्राव ही करता है ॥ २ ॥

यत् परिवेष्टारः पात्रहस्ताः पूर्वे चापरे च प्रपद्यन्ते चमसाध्वर्यव एव ते ॥ ३ ॥

यत् । परिऽवेष्टारः । पात्रऽहस्ताः । पूर्वे । च । अपरे । च । प्रऽपद्यन्ते । चमसऽअध्वर्यवः । एव । ते ॥ ३ ॥

और जो हाथमें पात्रको लिये हुए पहिले पीछे परोसने वाले विचरण करते हैं वह चमस और अध्वर्यु ही हैं ॥ ३ ॥

तेषां न कश्चनाहोता ॥ ४ ॥

तेषाम् । न । कः । चन । अहोता ॥ ४ ॥

इन अतिथियोंमें आहुति न देने वाला कोई नहीं है ॥ ४ ॥

यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् परिविष्य गृहानुपोदैत्यवभृथमेव तदुपावैति ॥ ५ ॥

यत् । वै । अतिथिऽपतिः । अतिथीन् । परिऽविष्य । गृहान् । उपऽउदैति । अवऽभृथम् । एव । तत् । उपऽअवैति ॥ ५ ॥

जो अतिथिपति अतिथियोंको परोस कर गृहोंके समीप आता है वह मानो अवभृथ स्नान करके ही घरमें बैठता है ॥ ५ ॥

यत् सभागयति दक्षिणाः सभागयति यदनुतिष्ठत उदवस्यत्येव तत् ६ ॥

यत् । सभागयति । दक्षिणाः । सभागयति । यत् । अनुऽतिष्ठते । उत्ऽअवस्यति । एव । तत् ॥ ६ ॥

और जो वह भोजनके पदार्थोंको अलग २ देता है वह भिन्न २ पुरुषोंको दक्षिणा देता है और जो अनुकूल होकर खड़ा रहता है वह उदवसान ही करता है ॥ ६ ॥

स उपहूतः पृथिव्यां भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यत् पृथिव्यां
विश्वरूपम् ॥ ७ ॥

सः । उपऽहूतः । पृथिव्याम् । भक्षयति । उपऽहूतः । तस्मिन् । यत् । पृथिव्याम् । विश्वऽरूपम् ॥ ७ ॥

वह पृथिवीमें बुलाने पर भक्षण करता है, पृथिवीमें जितने रूपधारी प्राणी हैं उनके आदरपूर्वक बुलाने पर उनके यहाँ भक्षण करता है ॥ ७ ॥

स उपहूतोन्तरिक्षे भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यदन्तरिक्षे
विश्वरूपम् ॥ ८ ॥

०। उपऽहूतः । अन्तरिक्षे । भक्षयति । उपऽहूतः । तस्मिन् । यत् । अन्तरिक्षे । विश्वऽरूपम् ॥ ८ ॥

वह अन्तरिक्षमें बुलाने पर भक्षण करता है अन्तरिक्षमें जितने रूपधारी प्राणी हैं उनके आदरपूर्वक बुलाने पर उनके यहाँ भक्षण करता है ॥ ८ ॥

स उपहूतो दिवि भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद् दिवि
विश्वरूपम् ॥ ९ ॥

०। उपऽहूतः । दिवि । भक्षयति । उपऽहूतः । तस्मिन् । यत् । दिवि । विश्वऽरूपम् ॥ ९ ॥

१२ २१-८-३०

वह उपहूत होने पर स्वर्गमें भक्षण करता है, स्वर्गमें जितने रूपवान् प्राणी हैं उनके यहाँ आदरपूर्वक निमन्त्रित होकर भोजन करता है ॥ ९ ॥

स उपहूतो देवेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद् देवेषु विश्वरूपम् ॥ १० ॥

०। उपऽहूतः। देवेषु। भक्षयति। उपऽहूतः। तस्मिन्। यत्। देवेषु। विश्वऽरूपम् ॥ १० ॥

वह उपहूत होने पर देवताओंमें भोजन करता है देवताओंमें जो रूपवान् प्राणिसमूह है उससे वह उपहूत होता है ॥ १० ॥

स उपहूतो लोकेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यल्लोकेषु विश्वरूपम् ॥ ११ ॥

०। उपऽहूतः। लोकेषु। भक्षयति। उपऽहूतः। तस्मिन्। यत्। लोकेषु। विश्वऽरूपम् ॥ ११ ॥

वह उपहूत होने पर लोकोंमें भक्षण करता है, जो लोकोंमें रूपवान् पदार्थ है वह उसका आदरपूर्वक आह्वान करता है ११

स उपहूत उपहूतः ॥ १२ ॥

सः। उपऽहूतः। उपऽहूतः ॥ १२ ॥

वह इस लोकमें आदरपूर्वक आहूत होता है, आदरपूर्वक परलोकमें आहूत होता है ॥ १२ ॥

आप्नोतीमं लोकमाप्नोत्यमुम् ॥ १३ ॥

आ॒प्नोति॑ । इ॒मम् । लो॒कम् । आ॒प्नोति॑ । अ॒मुम् ॥ १३ ॥

वह इस लोकको प्राप्त करता है और परलोकको प्राप्त करता है

ज्योति॑ष्मतो लो॒कान् ज॑यति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ १४ ॥

ज्योति॑ष्मतः । लो॒कान् । ज॒य॒ति॒ । यः ।० ॥ १४ ॥

तृतीयेनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

इति तृतीयोनुवाकः ॥

जो इस बातको जानता है वह ज्योतिर्मय लोकोंको जीतता है ॥ १४ ॥ (२०)

तृतीय अनुवाकमें सप्तम सूक्त समाप्त (४६४)

तृतीय अनुवाक समाप्त

"प्रजापतिश्च" इति सूक्तस्य गोष्ठकर्मणि विनियोगः । "प्रजापतिरिति गोष्ठकर्माणि" इत्यादिसूत्रात् [कौ० ३. २] । विस्तरस्तु "एह यन्तु पशवः" इति सूक्ते [२. २६] द्रष्टव्यः ॥

तथा अनडुत्सवे अनेन सूक्तेन निरुप्तहविरभिमर्शनं संपातं दातृवाचनं दानं च कुर्यात् । "प्रजापतिश्चेत्यनड्वाहम्" इति [कौ० ८. ७] सूत्रात् ॥

वस्तुतस्तु मेध्यवृषभस्य यानि भिन्नभिन्नान्यङ्गानि तानि भिन्नभिन्नदेवतारूपाणि भवन्तीति तस्य प्रशंसा ॥

"प्रजापतिश्च" सूक्तका गोष्ठकर्ममें विनियोग किया जाता है । इस विषयमें कौशिकसूत्र ३ । २ में कहा है, कि—"प्रजापतिरिति गोष्ठकर्माणि ।" इसका विस्तार दूसरे काण्डके २६ वें सूक्त "एह यन्तु पशवः" में देखना चाहिये ।

तथा अनुडुत्सवमें इस सूक्तसे निरुप्त हविका अभिमर्शन संपात दातृवाचन और दान भी करे । इस विषयमें कौशिकसूत्र ८ । ७ का प्रमाण भी है, कि—"प्रजापतिश्चेत्यनड्वाहम्" ।

वास्तवमें पवित्र वृषभके जो भिन्न २ अंग हैं वे भिन्न २ देवतारूप हैं इस प्रकार उसकी प्रशंसा की है ॥

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रः शिरो अग्निर्ललाटं
यमः कृकाटम् ॥ १ ॥

प्रजाऽपतिः । च । परमेऽस्थी । च । शृङ्गे इति । इन्द्रः । शिरः ।
अग्निः । ललाटम् । यमः । कृकाटम् ॥ १ ॥

प्रजापति और परमेष्ठी इस (वृषभ वा गौ) के सींग हैं, इन्द्र शिर है, अग्नि ललाट है, यम कृकाट है ॥ १ ॥

सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः २

सोमः । राजा । मस्तिष्कः । द्यौः । उत्तरऽहनुः । पृथिवी । अधरऽहनुः

राजा सोम मस्तिष्क है, द्यौ उत्तर हनु है, पृथिवी अधर हनु है २

विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृत्तिका स्कन्धा
घर्मो वहः ॥ ३ ॥

विऽद्युत् । जिह्वा । मरुतः । दन्ताः । रेवतीः । ग्रीवाः । कृत्तिकाः ।
स्कन्धाः । घर्मः । वहः ॥ ३ ॥

बिजली जिह्वा है, मरुत् दाँत हैं रेवती ग्रीवा है, कृत्तिका स्कंध है, और घर्म वह है ॥ ३ ॥

विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ४

विश्वम् । वायुः । स्वःऽगः । लोकः । कृष्णऽद्रम् । विऽधरणी । निऽवेष्यः

विश्व वायु है, स्वर्ग लोक है, कृष्णद्र विधरणी निवेष्य है ४

श्येनः क्रोडो३न्तरिक्षं पाजस्यं१ बृहस्पतिः ककुद् बृहतीः
कीकसाः ॥ ५ ॥

श्येनः । क्रोडः । अन्तरिक्षम् । पाजस्यम् । बृहस्पतिः । ककुत् ।
बृहतीः । कीकसाः ॥ ५ ॥

श्येन क्रोड है अन्तरिक्ष पाजस्य—बलप्रद ऊवध्य—है बृहस्पति ककुद है, बृहती अस्थियें हैं ॥ ५ ॥

देवानां पत्नीः पृष्टय उपसदः पर्शवः ॥ ६ ॥

देवानाम् । पत्नीः । पृष्टयः । उपऽसदः । पर्शवः ॥ ६ ॥

देवपत्नियें पसलियें हैं, और उपसद कोख है ॥ ६ ॥

मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महा-
देवो बाहू ॥ ७ ॥

मित्रः । च । वरुणः । च । अंसौ । त्वष्टा । च । अर्यमा । च ।
दोषणी इति । महाऽदेवः । बाहू इति ॥ ७ ॥

मित्र और वरुण कंधे हैं, त्वष्टा और अर्यमा भुजाएँ हैं और महादेव बाहु हैं ॥ ७ ॥

इन्द्राणी भसद् वायुः पुच्छं पवमानो बालाः ॥८॥

इन्द्राणी । भसत् । वायुः । पुच्छम् । पवमानः । बालाः ॥ ८ ॥

इन्द्राणी कटि है, वायु पूँछ है, और पवमान बाल हैं ॥८॥

ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू ॥ ९ ॥

ब्रह्म । च । क्षत्रम् । च । श्रोणी इति । बलम् । ऊरू इति ॥९॥

ब्राह्मण और क्षत्रिय श्रोणी-नितम्ब-हैं, बल ऊरुएँ हैं ॥९॥

धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जङ्घा गन्धर्वा अप्सरसः
कुष्ठिका अदितिः शफाः ॥ १० ॥

धाता । च । सविता । च । अष्ठीवन्तौ । जङ्घाः । गन्धर्वाः
अप्सरसः । कुष्ठिकाः । अदितिः । शफाः ॥ १० ॥

धाता और सविता ऊरु और पादके मध्यस्थ जानु (टखने) है, गंधर्व जंघाएँ हैं, अप्सराएँ कुष्ठिकायें हैं, अदिति शफ हैं १०

चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत् ॥ ११ ॥

चेतः । हृदयम् । यकृत् । मेधा । व्रतम् । पुरिऽतत् ॥ ११ ॥

चेतः हृदय है, मेधा यकृत् है, और व्रत पुरीतत् नाड़ी है ११

क्षुत् कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥ १२ ॥

क्षुत् । कुक्षिः । इरा । वनिष्ठुः । पर्वताः । प्लाशयः ॥ १२ ॥

क्षुधाके अभिमानी देवता कुक्षि हैं, इरा बड़ी आँत है, पर्वत प्लाशि हैं ॥ १२ ॥

क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः ॥ १३ ॥

क्रोधः । वृक्कौ । मन्युः । आण्डौ । प्रऽजा । शेपः ॥ १३ ॥

क्रोध वृक्क हैं, मन्यु अण्डकोश हैं, प्रजा लिंग है ॥ १३ ॥

नदी सूत्री वर्षस्य पतय स्तना स्तनयित्नुरूधः १४

नदी । सूत्री । वर्षस्य । पतयः । स्तनाः । स्तनयित्नुः । ऊधः १४

नदी सूत्री है, वर्षपति स्तन है, कड़क ऐन है ॥ १४ ॥

विश्वव्यचाश्चर्मौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् १५

विश्वऽव्यचाः । चर्म । ओषधयः । लोमानि । नक्षत्राणि । रूपम् १५

विश्वव्यचा चर्म है, ओषधियें लोम है, और नक्षत्र रूप है १५

देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् ॥१६॥

देवऽजनाः । गुदाः । मनुष्याः । आन्त्राणि । अत्राः । उदरम् १६

देवजन गुदा हैं, मनुष्य अँतड़ियें हैं, अत्र उदर है ॥ १६ ॥

रक्षांसि लोहितमितरजना ऊबध्यम् ॥ १७ ॥

रक्षांसि । लोहितम् । इतरऽजनाः । ऊबध्यम् ॥ १७ ॥

राक्षस लोहित हैं और इतरजन ऊबध्य (अर्धपक्व भुस आदि मिला गोबर) है ॥ १७ ॥

अभ्रं पीवो मज्जा निधनम् ॥ १८ ॥

अभ्रम् । पीवः । मज्जा । निऽधनम् ॥ १८ ॥

अभ्र पुष्टता है, निधन मज्जा है ॥ १८ ॥

अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना ॥ १९ ॥

अग्नि । आसीनः । उत्थितः । अश्विना ॥ १९ ॥

अग्नि आसीन है, उत्थित अश्विनीकुमार है ॥ १९ ॥

इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः ॥ २० ॥

इन्द्रः । प्राङ् । तिष्ठन् । दक्षिणा । तिष्ठन् । यमः ॥ २० ॥

पूर्वकी ओर जो वह ठहरता है वह इन्द्र है, उसका दक्षिण ओर खड़ा होना यम है ॥ २० ॥

प्रत्यङ् तिष्ठन् धातोदङ् तिष्ठन्त्सविता ॥ २१ ॥

प्रत्यङ् । तिष्ठन् । धाता । उदङ् । तिष्ठन् । सविता ॥ २१ ॥

पश्चिमकी ओर खड़ा हुआ वृषभ धाता है, उत्तरकी ओर खड़ा हुआ वृषभ सविता है ॥ २१ ॥

तृणानि प्राप्तः सोमो राजा ॥ २२ ॥

तृणानि । प्रऽआप्तः । सोमः । राजा ॥ २२ ॥

तृणोंको प्राप्त हुआ वृषभ राजा सोमरूप हैं ॥ २२ ॥

मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥ २३ ॥

मित्रः । ईक्षमाणः । आऽवृत्तः । आऽनन्दः ॥ २३ ॥

देखता हुआ मित्ररूप है, आवृत्त आनन्दरूप है ॥ २३ ॥

युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम् २४

युज्यमानः। वैश्वऽदेवः । युक्तः । प्रजाऽपतिः । विऽमुक्तः । सर्वम् २४

युज्यमान वैश्वदेवरूप है, युक्त प्रजापतिरूप है और विमुक्त सर्वरूप है ॥ २४ ॥

एतद् वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् ॥ २५ ॥

एतत् । वै । विश्वऽरूपम् । सर्वऽरूपम् । गोऽरूपम् ॥ २५ ॥

यह सब विश्वरूप सर्वरूप गोरूप ही है ॥ २५ ॥

उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवस्तिष्ठन्ति य एवं वेद ॥ २६ ॥

उप । एनम् । विश्वऽरूपाः । सर्वऽरूपाः । पशवः । तिष्ठन्ति । यः । एवम् । वेद ॥ २६ ॥

इति चतुर्थेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

जो ऐसा जानता है उसको सब प्रकारके सब रूपोंके पशु प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ (२१)

चतुर्थ अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (४६६) ॥

शिरोरोगादिसर्वभैषज्ये कर्मणि "शीर्षक्तिम्" इत्यर्थसूक्तेन व्याधितशरीरम् अभिमृशति । ततः "पादाभ्यां ते" इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्याम् आदित्यम् उपतिष्ठते । तथा च सूत्रम् । "शीर्षक्तिम् इत्यभिमृशति । उत्तमाभ्याम् [२१, २२] आदित्यम् उपतिष्ठते" इति [कौ० ४. ८] ॥

तथा अस्य सूक्तस्य अंहोलिङ्गगणे पाठात् तस्य गणस्य यत्रयत्र सर्वव्याधिभैषज्यादिषु विनियोग उक्तस्तत्र सर्वत्रास्य विनियोगोनुसंधेयः । विस्तरस्तु "अक्षीभ्याम्" इति सूक्ते [२. ३३] द्रष्टव्यः ॥

शिरोरोग आदि सर्वभैषज्यकर्ममें 'शीर्षक्तिम्' इस अर्थसूक्तसे रोगीके शरीरका अभिमर्शन करे । तदनन्तर "पादाभ्याम् ते" इन दो ऋचाओंसे आदित्यका उपस्थान करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि "शीर्षक्तिम् इत्यभिमृशति । उत्तमाभ्याम् (२१, २२) आदित्यम् उपतिष्ठते" (कौशिकसूत्र ४ । ८) ॥

तथा इस सूक्तका अंहोलिंगगणमें पाठ है अत एव उस गण का सर्वव्याधिचिकित्सा आदिमें जहाँ २ विनियोग होगा तहाँ २ सर्वत्र इसका विनियोग करना चाहिये । इनका विस्तार "अक्षीभ्याम्" इस दूसरे काण्डके तैंतीसवें सूक्तमें देखना चाहिये ।

शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ १ ॥

शीर्षक्तिम् । शीर्षऽआमयम् । कर्णऽशूलम् । विऽलोहितम्
सर्वम् । शीर्षण्यम् । ते । रोगम् । बहिः । निः । मन्त्रय महे १

शीर्षक्ति, शीर्षामय, कर्णशूल और विलोहित इन तेरे सकल शिरोरोगोंको हम बाहर निर्मंत्रित करते हैं–बाहर निकालते हैं १

कर्णाभ्यां ते कङ्कूषेभ्यः कर्णशूलं विसल्पकम् । सर्वं० २

कर्णाभ्याम् । ते । कङ्कूषेभ्यः । कर्णऽशूलम् । विऽसल्पकम् ।० २

तेरे कानोंसे तेरे कंकूषोंसे कर्णशूल और विसल्पक रोगको मैं निकालता हूँ ॥ २ ॥

यस्य हेतोः प्रच्यवते यक्ष्मः कर्णत आस्यतः । सर्वं० ३

यस्य । हेतोः । प्रऽच्यवते । यक्ष्मः । कर्णतः । आस्यतः ।० ।३।

जिसके कारण यक्ष्मा रोग कान और मुखसे प्रच्यवित होता है उस तेरे पूर्ण शीर्षण्य रोगको हम बाहर निकालते हैं ॥ ३ ॥

यः कृणोति प्रमोतमन्धं कृणोति पूरुषम् । सर्वं० ४

यः । कृणोति । प्रऽमोतम् । अन्धम् । कृणोति । पुरुषम् ।०॥४॥

जो रोग पुरुषको प्रमोत कर देता है और पुरुषको अंधा कर देता है उस शिरोरोगको हम पूर्णरूपसे बाहर निकालते हैं ॥४॥

अङ्गभेदमङ्गज्वरं विश्वाङ्ग्यं विसल्पकम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ५ ॥

अङ्गऽभेदम् । अङ्गऽज्वरम् । विश्वऽअङ्ग्यम् । विऽसल्पकम् ।
सर्वम् । शीर्षण्यम् । ते । रोगम् । बहिः ।०॥ ५ ॥

अङ्गको तोड़ने वाले अङ्गज्वरको, विश्वाङ्ग्य रोगको, विसल्पक रोगको और तेरे शीर्षरोगको हम पूर्णरूपसे बाहर निकालते हैं ५

यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरुषम् ।
तक्मानं विश्वशारदं बहि० ॥ ६ ॥

यस्य । भीमः । प्रतिऽकाशः । उत्ऽवेपयति । पुरुषम् ।
तक्मानम् । विश्वऽशारदम् । बहिः ।० ॥ ६ ॥

जिसका भयंकर प्रतीकाश पुरुषको कँपा देता है, उस भरपूर शरद् ऋतुमें होने वाले ज्वरको हम बाहर निकालते हैं ॥ ६ ॥

य ऊरू अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके ।
यक्ष्मं ते अन्तरङ्गेभ्यो बहि० ॥ ७ ॥

यः । ऊरू इति । अनुऽसर्पति । अथो इति । एति । गवीनिके इति ।
यक्ष्मम् । ते । अन्तः । अङ्गेभ्यः । बहिः ।० ॥ ७ ॥

जो ऊरुओंमें घूमता है, गवीनिका नामवाली नाड़ियोंमें घूमता है, उस यक्ष्मारोगको हम तेरे अंगोंके भीतरसे निकालते हैं ॥७॥

यदि कामादपकामाद्धृदयाज्जायते परि ।
हृदो बलासमङ्गेभ्यो बहि० ॥ ८ ॥

यदि । कामात् । अपऽकामात् । हृदयात् । जायते । परि ।
हृदः । बलासम् । अङ्गेभ्यः । बहिः ।०॥ ८ ॥

शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ १ ॥

शीर्षक्तिम् । शीर्षऽआमयम् । कर्णऽशूलम् । विऽलोहितम्

सर्वम् । शीर्षण्यम् । ते । रोगम् । बहिः । निः । मन्त्रय महे १

शीर्षक्ति, शीर्षामय, कर्णशूल और विलोहित इन तेरे सकल शिरोरोगोंको हम बाहर निर्मंत्रित करते हैं—बाहर निकालते हैं १

कर्णाभ्यां ते कङ्कूषेभ्यः कर्णशूलं विसल्पकम् । सर्वं० २

कर्णाभ्याम् । ते । कङ्कूषेभ्यः । कर्णऽशूलम् । विऽसल्पकम् ।० २

तेरे कानोंसे तेरे कंकूषोंसे कर्णशूल और विसल्पक रोगको मैं निकालता हूँ ॥ २ ॥

यस्य हेतोः प्रच्यवते यक्ष्मः कर्णत आस्यतः । सर्वं० ३

यस्य । हेतोः । प्रऽच्यवते । यक्ष्मः । कर्णतः । आस्यतः ।० ।३।

जिसके कारण यक्ष्मा रोग कान और मुखसे प्रच्यवित होता है उस तेरे पूर्ण शीर्षण्य रोगको हम बाहर निकालते हैं ॥ ३ ॥

यः कृणोति प्रमोतमन्धं कृणोति पूरुषम् । सर्वं० ४

यः । कृणोति । प्रऽमोतम् । अन्धम् । कृणोति । पुरुषम् ।०॥४॥

जो रोग पुरुषको प्रमोत कर देता है और पुरुषको अंधा कर देता है उस शिरोरोगको हम पूर्णरूपसे बाहर निकालते हैं ॥४॥

अङ्गभेदमङ्गज्वरं विश्वाङ्ग्यं विसल्पकम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ५ ॥

अङ्गऽभेदम् । अङ्गऽज्वरम् । विश्वऽअङ्ग्यम् । विऽसल्पकम् ।

सर्वम् । शीर्षण्यम् । ते । रोगम् । बहिः ।०॥ ५ ॥

अङ्गको तोड़ने वाले अङ्गज्वरको, विश्वाङ्ग्य रोगको, विसल्पक रोगको और तेरे शीर्षरोगको हम पूर्णरूपसे बाहर निकालते हैं ५

यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरुषम् ।

तक्मानं विश्वशारदं बहि० ॥ ६ ॥

यस्य । भीमः । प्रतिऽकाशः । उत्ऽवेपयति । पुरुषम् ।

तक्मानम् । विश्वऽशारदम् । बहिः ।० ॥ ६ ॥

जिसका भयंकर प्रतीकाश पुरुषको कँपा देता है, उस भरपूर शरद् ऋतुमें होने वाले ज्वरको हम बाहर निकालते हैं ॥ ६ ॥

य ऊरू अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके ।

यक्ष्मं ते अन्तरङ्गेभ्यो बहि० ॥ ७ ॥

यः । ऊरू इति । अनुऽसर्पति । अथो इति । एति । गवीनिके इति ।

यक्ष्मम् । ते । अन्तः । अङ्गेभ्यः । बहिः ।० ॥ ७ ॥

जो ऊरुओंमें घूमता है, गवीनिका नामवाली नाड़ियोंमें घूमता है, उस यक्ष्मारोगको हम तेरे अंगोंके भीतरसे निकालते हैं ॥७॥

यदि कामादपकामाद्धृदयाज्जायते परि ।

हृदो बलासमङ्गेभ्यो बहि० ॥ ८ ॥

यदि । कामात् । अपऽकामात् । हृदयात् । जायते । परि ।

हृदः । बलासम् । अङ्गेभ्यः । बहिः ।०॥ ८ ॥

जो कामवश वा अकामवश हृदयसे उत्पन्न होता है उस हृदयके बलको क्षीण करने वाले रोगको हम अंगोंसे बाहर निकालते हैं ॥ ८ ॥

हरिमाणं ते अङ्गेभ्योप्वामन्तरोदरात् ।
यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ९ ॥

हरिमाणम् । ते । अङ्गेभ्यः । अप्वाम् । अन्तरा । उदरात् ।
यक्ष्मऽधाम् । अन्तः । आत्मनः । बहिः । निः । मन्त्रयामहे ।९।

हम तेरे अंगोंसे हरिमा नामक रोगको और उदरके भीतरसे अप्वारोगको और अन्तरात्मासे यक्ष्मोधा रोगको निकालते हैं ९

आसो बलासो भवतु मूत्रं भवत्वामयत् ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥ १० ॥

आसः । बलासः । भवतु । मूत्रम् । भवतु । आमयत् ।
यक्ष्माणाम् । सर्वेषाम् । विषम् । निः । अवोचम् । अहम् । त्वत् १०

बलास क्षिप्त होजाय, मूत्ररोग नष्ट होजावे, सब यक्ष्मोंके विष को मैं मंत्रशक्तिके प्रभावसे तुझसे निकला हुआ बतलाता हूँ १०

बहिर्बिलं निर्द्रवतु काहाबाहं तवोदरात् । यक्ष्माणां०

बहिः । बिलम् । निः । द्रवतु । काहाबाहम् । तव । उदरात् ॥० ११

काहाबाह नामक रोग तेरे उदररूप बिलसे बाहर निकल जावे, सब यक्ष्माओंके विषको मैं मन्त्रप्रभाववश तुझसे निकला हुआ बतलाता हूँ ॥ ११ ॥

उदरात् ते क्लोम्नो नाभ्या हृदयादधि ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥ १२ ॥

उदरात् । ते । क्लोम्नः । नाभ्याः । हृदयात् । अधि ।
यक्ष्माणाम् । सर्वेषाम् । विषम् । निः । अवोचम् । अहम् । त्वत् १२

मैं तेरे उदर क्लोम नाभि और हृदयसे सकल यक्ष्माओंके विष को मन्त्रशक्तिसे निकला हुआ बतलाता हूँ ॥ १२ ॥

याः सीमानं विरुजन्ति मूर्धानं प्रत्यर्षणीः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥ १३ ॥

याः । सीमानम् । विऽरुजन्ति । मूर्धानम् । प्रति । अर्षणीः ।
अहिंसन्तीः । अनामयाः । निः । द्रवन्तु । बहिः । बिलम् ॥१३॥

जो सीमाओंको पीड़ित करती हैं और मस्तकमें जाती हैं वे हिंसा न करने वाली अस्थियें अनामय होती हुईं शरीररूप बिल से बाहर न निकलें ॥ १३ ॥

या हृदयमुपर्षन्त्यनुतन्वन्ति कीकसाः । अहिं० १४

याः । हृदयम् । उपऽऋषन्ति । अनुऽतन्वन्ति । कीकसाः । ० । १४ ।

जो हृदय और जत्रुकी संधिकी कीकस नामक अस्थियें हृदय को जाती हैं और हृदयमें फैली हुई हैं, वे अहिंसिका और अनामय होती हुईं शरीररूपी बिलके बाहर न निकलें ॥ १४ ॥

याः पार्श्वे उपर्षन्त्यनुनिक्षन्ति पृष्टीः । अहिं० १५

याः । पार्श्वे इति । उपऽऋषन्ति । अनुऽनिक्षन्ति । पृष्टीः । ० १५

जो पार्श्वमें जाती हैं पृष्टियोंको शुद्ध करती हैं वे अहिंसिका और अनामय रहती हुई शरीररूपी बिलके बाहर न निकलें १५

यास्तिरश्चीरुपर्षन्त्यर्षणीर्वक्षणासु ते । अहिं० ।१६।

याः । तिरश्चीः । उपऽअर्षन्ति । अर्षणीः । वक्षणासु । ते ।० १६

जो तिरछी जाती हैं और तेरी वक्षणाओंमें मिलती हैं वे अस्थियें अहिंसिक और अनामय रहती हुई तेरे शरीररूपी बिलसे बाहर न निकलें ॥ १६ ॥

या गुदा अनुसर्पन्त्यान्त्राणि मोहयन्ति च । अहिं० ।

याः । गुदाः । अनुऽसर्पन्ति । आन्त्राणि । मोहयन्ति । च ॥१७॥

जो अस्थिएँ गुदाके पीछे २ चलती हैं और आँतोंको मोहमें डालती हैं, वे अहिंसिका और अनामय रहती हुई शरीररूपी बिलसे बाहर न निकलें ॥ १७ ॥

याः मज्ज्ञो निर्धयन्ति परूंषि विरुजन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥ १८ ॥

याः । मज्ज्ञः । निःऽधयन्ति । परूंषि । विऽरुजन्ति । च ।
अहिंसन्तीः । अनामयाः । निः । द्रवन्तु । बहिः । बिलम् ।१८।

जो मज्जाको धोती हैं, गाँठोंको पीड़ारहित करती हैं, वे अस्थियें अहिंसिका अनामय रहती हुई शरीररूपी बिलके बाहर न निकलें ॥ १८ ॥

ये अङ्गानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणास्तव ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥ १९ ॥

ये । अङ्गानि । मदयन्ति । यक्ष्मासः । रोपणाः । तव ।

यक्ष्माणाम् । सर्वेषाम् । विषम् । निः । अवोचम् । अहम् । त्वत् १९

जो यक्ष्मा रोगको फेंकने वाली और अंगों पर मांस चढ़ाने वाली औषधियें तेरे अंगोंको आनन्दित कर सकती हैं, उनके द्वारा मैं सकल यक्ष्माओंके विषको मैं तुझसे निकला हुआ कहता हूँ ॥ १९ ॥

विसल्पस्य विद्रधस्य वातीकारस्य वालजेः ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥ २० ॥

विऽसल्पस्य । विऽद्रधस्य । वातीऽकारस्य । वा । अलजेः ।

यक्ष्माणाम् । सर्वेषाम् । विषम् । निः । अवोचम् । अहम् । त्वत् २०

विसल्प विद्रध वातीकार और अलजि इन सब यक्ष्माओंके विषको मैं तेरे शरीरसे मन्त्रशक्तिसे निकला हुआ कहता हूँ २०

पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः ।
अनूकादर्षणीरुष्णिहाभ्यः शीर्ष्णो रोगमनीनशम् २१

पादाभ्याम् । ते । जानुऽभ्याम् । श्रोणिऽभ्याम् । परि । भंससः ।

अनूकात् । अर्षणीः । उष्णिहाभ्यः । शीर्ष्णः । रोगम् । अनीनशम्

मैंने तेरे पैरोंसे, जानुओंसे श्रोणियोंसे कटिसे, अनूकसे, उष्णिहा नाड़ियोंसे और शिरसे रोगको नष्ट कर दिया है ॥२१॥

सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।

उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोङ्गभेद-
मशीशमः ॥ २२ ॥

सम् । ते । शीर्ष्णः । कपालानि । हृदयस्य । च । यः । विधुः ।
उत्ऽयन् । आदित्य । रश्मिऽभिः । शीर्ष्णः । रोगम् । अनीनशः ।
अङ्गऽभेदम् । अशीशमः ॥ २२ ॥

चतुर्थेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥ इति चतुर्थोनुवाकः ॥

तेरे शिरसे उदय होते हुए आदित्यने किरणोंके द्वारा रोगको नष्ट कर दिया है और जो चन्द्रमा है उसने तेरे कपालको और हृदयके अंगभेदको शान्त कर दिया है ॥ ६२ ॥ (२३)

चतुर्थ अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (४६६) ॥

चतुर्थ अनुवाक समाप्त

"अस्य वामस्य" इत्यनुवाकस्य सलिलगणमध्ये पाठः । अतः "०सलिलैः क्षीरौदनम् अश्नाति । मन्थान्तानि" इति [कौ० ३. १] "सलिलैः सर्वकामः" [कौ० ३. ७] इत्यादावस्य विनियोगः ॥ सलिलगणश्च "आपो हि ष्ठा" इति सूक्ते [१. ५] द्रष्टव्यः

अस्य वामस्येति सूक्तमन्त्रा ऋगन्तर्भूते तस्मिन्नेव सूक्ते [ऋ० १६४] दृष्टाः । तत्र तद्भाष्यं सायणीयं द्रष्टव्यम् ॥

"अस्य वामस्य" अनुवाकका सलिलगणमें पाठ है । अतः "सलिलैः क्षीरौदनं अश्नाति । मन्थनान्तानि" इति (कौशिकसूत्र ३ । १) "सलिलैः सर्वकामः" (कौशिकसूत्र ३ । ७) इत्यादिमें इसका विनियोग है । सलिलगणको "आपो हि ष्ठा" इस प्रथमकाण्डके पञ्चम सूक्तमें देखना चाहिये ।

अस्य वामस्य-सूक्तके मन्त्र ऋग्वेदके १६४ वें सूक्तमें है तहाँ पर इन पर सायण भाष्य भी है ।

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥

अस्य । वामस्य । पलितस्य । होतुः । तस्य । भ्राता । मध्यमः । अस्ति । अश्नः ।
तृतीयः । भ्राता । घृतऽपृष्ठः । अस्य । अत्र । अपश्यम् । विश्पतिम् । सप्तऽपुत्रम् ॥ १ ॥

यह सूर्य स्तुति आदिके द्वारा पालन करने वाले हैं, आह्वान करने योग्य हैं, इनका मध्यमस्थानीय भ्राता–भागहर्ता–व्यापक वायु है, वही द्युलोकसे आदित्यके द्वारा जलसे भरा जाता है और वही द्युलोकको जलको लेजाता है (वायु आदित्य और अग्नि इस प्रकार तीन भ्राताओंका वर्णन होनेसे) इस वायुका तीसरा भाई घृतपृष्ठा अग्नि है । इन तीन प्रकारसे विभक्त वायु आदित्य और अग्निरूप ज्योतियोंमें मैं प्रजाओंके पालक सर्पणशील किरणरूप पुत्र वाले सूर्यको ही मुख्यरूपसे देखता हूँ ॥ १ ॥

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः

सप्त । युञ्जन्ति । रथम् । एकऽचक्रम् । एकः । अश्वः । वहति । सप्तऽनामा
त्रिऽनाभि । चक्रम् । अजरम् । अनर्वम् । यत्र । इमा । विश्वा ।
भुवना । अधि । तस्थुः ॥ २ ॥

१४ २२-८-३०

उ॒द्यन्ना॑दित्य र॒श्मिभि॑ः शी॒र्ष्णो॑ रोग॑मनीनशोङ्गभे॒द-
म॑शीशमः ॥ २२ ॥

सम् । ते॒ । शी॒र्ष्णः । क॒पाला॑नि । हृदयस्य । च॒ । यः । वि॒धुः ।
उ॒त्ऽयन् । आ॒दि॒त्य॒ । र॒श्मिऽभि॑ः । शी॒र्ष्णः । रोग॑म् । अ॒नी॒न॒शः॒ ।
अ॒ङ्ग॒ऽभे॒दम् । अ॒शी॒श॒मः॒ ॥ २२ ॥

चतुर्थेऽनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

तेरे शिरसे उदय होते हुए आदित्यने किरणोंके द्वारा रोगको नष्ट कर दिया है और जो चन्द्रमा है उसने तेरे कपालको और हृदयके अंगभेदको शान्त कर दिया है ॥ २२ ॥ (२३)

चतुर्थ अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (४६६) ॥

चतुर्थ अनुवाक समाप्त

"अस्य वामस्य" इत्यनुवाकस्य सलिलगणमध्ये पाठः । अतः "०सलिलैः क्षीरौदनम् अश्नाति । मन्थान्तानि" इति [कौ० ३. १] "सलिलैः सर्वकामः" [कौ० ३. ७] इत्यादावस्य विनियोगः ॥ सलिलगणश्च "आपो हि ष्ठा" इति सूक्ते [१. ५] द्रष्टव्यः

अस्य वामस्येति सूक्तमन्त्रा ऋगन्तर्भूते तस्मिन्नेव सूक्ते [ऋ० १६४] दृष्टाः । तत्र तद्भाष्यं सायणीयं द्रष्टव्यम् ॥

"अस्य वामस्य" अनुवाकका सलिलगणमें पाठ है । अतः "सलिलैः क्षीरौदनं अश्नाति । मन्थनान्तानि" इति (कौशिकसूत्र ३ । १) "सलिलैः सर्वकामः" (कौशिकसूत्र ३ । ७) इत्यादिमें इसका विनियोग है । सलिलगणको "आपो हि ष्ठा" इस प्रथमकाण्डके पञ्चम सूक्तमें देखना चाहिये ।

अस्य वामस्य-सूक्तके मन्त्र ऋग्वेदके १६४ वें सूक्तमें है तहाँ पर इन पर सायण भाष्य भी है ।

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥

अस्य । वामस्य । पलितस्य । होतुः । तस्य । भ्राता । मध्यमः । अस्ति । अश्नः ।
तृतीयः । भ्राता । घृतऽपृष्ठः । अस्य । अत्र । अपश्यम् । विश्पतिम् । सप्तऽपुत्रम् ॥ १ ॥

यह सूर्य स्तुति आदिके द्वारा पालन करने वाले हैं, आह्वान करने योग्य हैं, इनका मध्यमस्थानीय भ्राता–भागहर्ता–व्यापक वायु है, वही द्युलोकसे आदित्यके द्वारा जलसे भरा जाता है और वही द्युलोकको जलको लेजाता है (वायु आदित्य और अग्नि इस प्रकार तीन भ्राताओंका वर्णन होनेसे) इस वायुका तीसरा भाई घृतपृष्ठा अग्नि है । इन तीन प्रकारसे विभक्त वायु आदित्य और अग्निरूप ज्योतियोंमें मैं प्रजाओंके पालक सर्पणशील किरणरूप पुत्र वाले सूर्यको ही मुख्यरूपसे देखता हूँ ॥ १ ॥

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः

सप्त । युञ्जन्ति । रथम् । एकऽचक्रम् । एकः । अश्वः । वहति । सप्तऽनामा
त्रिऽनाभि । चक्रम् । अजरम् । अनर्वम् । यत्र । इमा । विश्वा ।
भुवना । अधि । तस्थुः ॥ २ ॥

२२-८-३०

सर्पणशील किरणें इन अन्य ज्योतियोंको निस्तेज करके अकेले ही अंतरिक्षमें विचरण करने वाले एकचक्र सूर्य रूप रथमें लग जाती हैं और यह मुख्य व्यापक सूर्य सप्त ऋषियोंसे नमन पाते हुए विचरण करते हैं और यह सूर्य ग्रीष्म वर्षा हेमन्त नामक तीन ऋतुओंके चक्र वाले अजर और अनश्रित कालको करते रहते हैं इसी कालमें सकल भुवन ठहरे हुए हैं ॥ २ ॥

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्त यत्र गवां निहिता सप्त
नामा ॥ ३ ॥

इमम् । रथम् । अधि । ये । सप्त । तस्थुः । सप्तऽचक्रम् । सप्त । वहन्ति । अश्वाः ।

सप्त । स्वसारः । अभि । सम् । नवन्त । यत्र । गवाम् । निऽहिता । सप्त । नाम ॥ ३ ॥

इनके रथके पास जो सात ऋषि खड़े रहते हैं और सर्पणशील कालचक्रको सात घोड़े खींचते हैं, सर्पणशील किरणेरूप वहने इनकी स्तुति करती हैं और तहाँ किरणरूप गौएँ निहित हैं और वे सात किरणें रसका इनमें संनमन कराती हैं ॥ ३ ॥

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुप गात्
प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥

कः । ददर्श । प्रथमम् । जायमानम् । अस्थन्ऽवन्तम् । यत् ।
अनस्था । बिभर्ति ।

भूम्याः । असुः । असृक् । आत्मा । क्व । स्वित् । कः । विद्वांसम् । उप । गात् । प्रष्टुम् । एतत् ॥ ४ ॥

इन प्रथम उत्पन्न हुए अस्थन्वन्‌को कौन देखता है इनको अस्थिरहित अरुण वहन करते हैं ? भूमिके प्राणदाता जलकी सृष्टि करने वाला आत्मा कहाँ है ? कौन पुरुष इनको बूझनेके लिये विद्वान्‌के पास गया था ॥ ४ ॥

इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुहते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं
पदापुः ॥ ५ ॥

इह । ब्रवीतु । यः । ईम् । अङ्ग । वेद । अस्य । वामस्य । निऽहितम् ।
पदम् । वेः ।

शीर्ष्णः । क्षीरम् । दुहते । गावः । अस्य । वव्रिम् । वसानाः ।
उदकम् । पदा । अपुः ॥ ५ ॥

जो इन सूर्यको जानता हो वह इनके विषयमें कहे, कि—इन सेवनीय आकाशचारी सूर्यकी प्रतिष्ठा (कैसी है ?) इनके शिरोरूप मण्डल से (वर्षा होने पर) गौएँ क्षीरको दुहाती हैं, और वह रूपवती गौएँ इनकी चरणरूप किरणसे वर्षा होने पर जल का पान करती हैं ॥ ५ ॥

सर्पणशील किरणें इन अन्य ज्योतियोंको निस्तेज करके अकेले ही अंतरिक्षमें विचरण करने वाले एकचक्र सूर्य रूप रथमें लग जाती हैं और यह मुख्य व्यापक सूर्य सप्त ऋषियोंसे नमन पाते हुए बिचरण करते हैं और यह सूर्य ग्रीष्म वर्षा हेमन्त नामक तीन ऋतुओंके चक्र वाले अजर और अनश्रित कालको करते रहते हैं इसी कालमें सकल भुवन ठहरे हुए हैं ॥ २ ॥

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्त यत्र गवां निहिता सप्त
नामा ॥ ३ ॥

इमम् । रथम् । अधि । ये । सप्त । तस्थुः । सप्तऽचक्रम् । सप्त । वहन्ति । अश्वाः ।
सप्त । स्वसारः । अभि । सम् । नवन्त । यत्र । गवाम् । निऽहिता । सप्त । नाम ॥ ३ ॥

इनके रथके पास जो सात ऋषि खड़े रहते हैं और सर्पणशील कालचक्रको सात घोड़े खींचते हैं, सर्पणशील किरणेरूप वहने इनकी स्तुति करती हैं और तहाँ किरणरूप गौएँ निहित हैं और वे सात किरणें रसका इनमें संनमन कराती हैं ॥ ३ ॥

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था विभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुप गात्
प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥

कः । ददर्श । प्रथमम् । जायमानम् । अस्थन्ऽवन्तम् । यत् ।
अनस्था । बिभर्ति ।
भूम्याः । असुः । असृक् । आत्मा । क्व । स्वित् । कः । विद्वांसम् । उप । गात् । प्रष्टुम् । एतत् ॥ ४ ॥

इन प्रथम उत्पन्न हुए अस्थन्वन्को कौन देखता है इनको अस्थिरहित अरुण वहन करते हैं ? भूमिके प्राणदाता जलकी सृष्टि करने वाला आत्मा कहाँ है ? कौन पुरुष इनको बूझनेके लिये विद्वान्के पास गया था ॥ ४ ॥

इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥ ५ ॥

इह । ब्रवीतु । यः । ईम् । अङ्ग । वेद । अस्य । वामस्य । निऽहितम् ।
पदम् । वेः ।
शीर्ष्णः । क्षीरम् । दुह्रते । गावः । अस्य । वव्रिम् । वसानाः ।
उदकम् । पदा । अपुः ॥ ५ ॥

जो इन सूर्यको जानता हो वह इनके विषयमें कहे, कि—इन सेवनीय आकाशचारी सूर्यकी प्रतिष्ठा (कैसी है ?) इनके शिरोरूप मण्डल से (वर्षा होने पर) गौएँ क्षीरको दुहाती हैं, और वह रूपवती गौएँ इनकी चरणरूप किरणसे वर्षा होने पर जल का पान करती हैं ॥ ५ ॥

पाकः पृच्छामि मनसाविजानन् देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेधि सप्त तन्तून् वि तत्निरे कवय ओतवा उ

पाकः । पृच्छामि । मनसा । अविऽजानन् । देवानाम् । एना ।
निऽहिता । पदानि ।
वत्से । बष्कये । अधि । सप्त । तन्तून् । वि । तत्निरे । कवयः ।
ओतवै । ऊं इति ॥ ६ ॥

मैं सूर्यदेवके विषयमें पूर्णरूपसे न जानता हुआ मनसे सूर्यदेव के विषयमें बूझता हूँ, सम्पूर्ण देवताओंकी रक्षा इन्हीं सूर्यमें प्रतिष्ठित है, चतुर पुरुषोंने तरुण वत्समें विस्तार करनेके लिये सात तन्तुओं को स्थापित कर दिया है ॥ ६ ॥

अचिकित्वांश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मनो न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥ ७ ॥

अचिकित्वान् । चिकितुषः । चित् । अत्र । कवीन् । पृच्छामि ।
विद्मनः । न । विद्वान् ।
वि । यः । तस्तम्भ । षट् । इमा । रजांसि । अजस्य । रूपे । किम् ।
अपि । स्वित् । एकम् ॥ ७ ॥

मैं जानकार नहीं अतः जानकार चतुर पुरुषोंसे बूझता हूँ, मैं विद्वानोंसे बूझता हूँ क्योंकि—मैं स्वयं इस बातको नहीं जानता हूँ वह अजके रूपमें छः रजोंको स्तंभित कर देता है या एकको ? ७

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
स बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ८

माता । पितरम् । ऋते । आ । बभाज । धीती । अग्रे । मनसा । सम् । हि । जग्मे ।

सा । बीभत्सुः । गर्भऽरसा । निऽविद्धा । नमस्वन्तः । इत् । उपऽवाकम् । ईयुः ॥ ८ ॥

सत्यरूप सूर्य निर्मितकालमें ही माता, पिताकी सेवा करती है और मन बुद्धि संयुक्त होती है, यह बीभत्सु गर्भरससे निविद्ध होजाती है, इन उपवाकके पास हविरूप अन्न वाले प्राणी पहुँच जाते हैं ॥ ८ ॥

युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद् गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद् वत्सो अनु गामपश्यद् विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९ ॥

युक्ता । माता । आसीत् । धुरि । दक्षिणायाः । अतिष्ठत् । गर्भः । वृजनीषु । अन्तः ।

अमीमेत् । वत्सः । अनु । गाम् । अपश्यत् । विश्वऽरूप्यम् । त्रिषु । योजनेषु ॥ ९ ॥

दक्षिणदिशाके बोझमें माता युक्त हुई थी और गर्भ बलवती स्त्रियोंमें स्थित होता है बछड़ा गौकी ओर देखता है, और शब्द करता है तीन योजनोंमें विश्वरूप्य है ॥ ९ ॥

तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्त ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदो वाचमविश्वविन्नाम् ॥ १० ॥

तिस्रः । मातॄः । त्रीन् । पितॄन् । बिभ्रत् । एकः । ऊर्ध्वः । तस्थौ । न । ईम् । अव । ग्लपयन्त ।

मन्त्रयन्ते । दिवः । अमुष्य । पृष्ठे । विश्वऽविदः । वाचम् । अविश्वऽविन्नाम् ॥ १० ॥

तीन द्युलोकरूप तीन पिता और तीन पृथ्वीरूप तीन माताओं के बीचमें एक सूर्य ऊँचा स्थित है, विश्ववेत्ता द्युपृष्ठमें विश्वको न प्राप्त होने वाली वाणीकी यहाँ मन्त्रणा करते हैं ॥ १० ॥

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न च्छिद्यते सनाभिः ॥ ११ ॥

पञ्चऽअरे । चक्रे । परिऽवर्तमाने । यस्मिन् । आऽतस्थुः । भुवनानि । विश्वा ।

तस्य । न । अक्षः । तप्यते । भूरिऽभारः । सनात् । एव । न ।
छिद्यते । सऽनाभिः ॥ ११ ॥

जिसमें सकल विश्व स्थित है उस पाँच (ऋतु) अरे के चक्र के घूमने पर उसके भूरि भार वाला अक्ष स्वयं संतप्त नहीं होता है और वह (सूर्य) प्राचीन होने पर नाभिसहित छिन्नभिन्न नहीं होता है ॥ ११ ॥

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणे सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम् ॥

पञ्चऽपादम् । पितरम् । द्वादशऽआकृतिम् । दिवः । आहुः । परे ।
अर्धे । पुरीषिणम् ।
अथ । इमे । अन्ये । उपरे । विऽचक्षणे । सप्तऽचक्रे । षट्ऽअरे ।
आहुः । अर्पितम् ॥ १२ ॥

(ऋतुरूप) पाँच पैर वाले, पिता, (मासरूप) बारह आकृति वालेको, स्वर्गके परार्धरूप पुरीमें शयन करने वाला कहते हैं। दूसरे इसको विचक्षण मेघमें सप्तचक्रमें और ऋतुरूप छः अरोंमें अर्पित कहते हैं ॥ १२ ॥

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥ १३ ॥

द्वादशऽअरम् । नहि । तत् । जराय । वर्वर्ति । चक्रम् । परि ।
द्याम् । ऋतस्य ।
आ । पुत्राः । अग्ने । मिथुनासः । अत्र । सप्त । शतानि । विंशतिः ।
च । तस्थुः ॥ १३ ॥

वह बारह अरे वाला (स्वयं) जीर्णताको प्राप्त होनेके लिये आकाशमें नहीं चलता है, (दूसरोंको हीं जीर्ण कर देता है वह अमृतका चक्र है हे अग्ने ! इसमें पुत्रस्वरूप सातसौ बीस जोड़े (दिन) स्थित रहते हैं ॥ १३ ॥

सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥

सऽनेमि । चक्रम् । अजरम् । वि । ववृते । उत्तानायाम् । दश । युक्ताः । वहन्ति ।
सूर्यस्य । चक्षुः । रजसा । एति । आऽवृतम् । यस्मिन् । आऽतस्थुः । भुवनानि । विश्वा ॥ १४ ॥

नेमिसहित वह अजर चक्र बढ़ता रहता है उसको उत्तान अवस्था में दश युक्त होकर वहन करते हैं, सूर्यका चक्षु अन्धकारावृत आता है, उसमें सकल विश्व अवस्थित हैं ॥ १४ ॥

स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः ।

कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स
पितुष्पितासत् ॥ १५ ॥

स्त्रियः । सतीः । तान् । ऊँ इति । मे । पुंसः । आहुः । पश्यत् ।
अक्षण्ऽवान् । न । वि । चेतत् । अन्धः ।
कविः । यः । पुत्रः । सः । ईम् । आ । चिकेत । यः । ता ।
विऽजानात् । सः । पितुः । पिता । असत् ॥ १५ ॥

सती स्त्रियोंने मुझसे उनको पुरुष कहा है, उनको जो देख सकता है वह अक्षण्वान् (अक्षयत्ववाला) होता है अन्यथा ज्ञानांध होता है जो कविपुत्र इस तत्त्वको जानता है वह पालकों का भी पालक होजाता है ॥ १५ ॥

साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षडिद्यमा ऋषयो देवजा
इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामश स्थात्रे रेजन्ते विकृ-
तानि रूपशः ॥ १६ ॥

साकम्ऽजानाम् । सप्तथम् । आहुः । एकऽजम् । षट् । इत् ।
यमाः । ऋषयः । देवऽजाः । इति ।
तेषाम् । इष्टानि । विऽहितानि । धामऽशः । स्थात्रे । रेजन्ते ।
विऽकृतानि । रूपऽशः ॥ १६ ॥

जो देवज छः यम ऋषि हैं ये साकजोंके सप्तथको एकज कहते

हैं, उनके इष्ट धामपूर्वक विहित हैं, वे स्थात्रमें अनेक प्रकारके होकर शोभा पाते हैं ॥ १६ ॥

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि
यूथे अस्मिन् ॥ १७ ॥

अवः । परेण । परः । एना । अवरेण । पदा । वत्सम् । बिभ्रती ।
गौः । उत् । अस्थात् ।

सा । कद्रीची । कम् । स्वित् । अर्धम् । परा । आगात् । क्व ।
स्वित् । सूते । नहि । यूथे । अस्मिन् ॥ १७ ॥

पर पैरसे अन्नको और अवर पैरसे वत्सको धारण करती हुई श्वेतवर्णा गौ उठती है, वह कद्रीची किसी आधे भागमें जाती है, वह कहीं ब्याती है यूथमें नहीं ब्याती है ॥ १७ ॥

अवः परेण पितरं यो अस्य वेदावः परेण पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद् देवं मनः कुतो अधि
प्रजातम् ॥ १८ ॥

अवः । परेण । पितरम् । यः । अस्य । वेद । अवः । परेण ।
परः । एना । अवरेण ।

कविऽयमानः । कः । इह । प्र । वोचत् । देवम् । मनः । कुतः ।
अधि । प्रऽजातम् ॥ १८ ॥

परके द्वारा जो इसके पिता अन्नको जानता है और इस अवरके द्वारा जो परको जानता है, कवीयमान प्रजापतिने कहा, कि दिव्य मन कहाँसे हुआ है ॥ १८ ॥

ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥ १९ ॥

ये । अर्वाञ्चः । तान् । ऊं इति । पराचः । आहुः । ये । पराञ्चः । तान् । ऊं इति । अर्वाचः । आहुः ।
इन्द्रः । च । या । चक्रथुः । सोम । तानि । धुरा । न । युक्ताः । रजसः । वहन्ति ॥ १९ ॥

जो अर्वाङ् हैं वे पराञ्चोंको कहते हैं और जो पराङ् हैं वे अर्वाञ्चोंको कहते हैं, हे सोम ! तुम और इन्द्र जिनको करते हो उनको भारसे सम्पन्न न होकर लोक धारण करते हैं ॥ १९ ॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ २० ॥

द्वा । सुऽपर्णा । सऽयुजा । सखाया । समानम् । वृक्षम् । परि । सस्वजाते इति ।

तयोः । अन्यः । पिप्पलम् । स्वादु । अत्ति । अनश्नन् । अन्यः ।
अभि । चाकशीति ॥ २० ॥

समान ख्याति वाले और एकसी मायासे युक्त होसकने वाले दो शोभन पतन (आत्मा) एक ही वृक्ष पर बैठे हुए हैं, उनमें से एक स्वादु पिप्पलको खाता है (जीवात्मा संसारासक्तिमें फँस जाता है) और दूसरा न खाता हुआ द्रष्टा ही रहता है ॥२०॥

यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २१ ॥

यस्मिन् । वृक्षे । मधुऽअदः । सुऽपर्णाः । निऽविशन्ते । सुवते । च ।
अधि । विश्वे ।
तस्य । यत् । आहुः । पिप्पलम् । स्वादु । अग्रे । तत् । न । उत् ।
नशत् । यः । पितरम् । न । वेद ॥ २१ ॥

वृक्षके जिस भागको स्वादु पिप्पल कहते हैं, वृक्षके उस भाग में जो मधुभक्षी पक्षी बैठते हैं वे सृष्टिको फैलाते हैं, जो कारणको नहीं जानता है उसका वह संसार नष्ट नहीं होता है ॥ २१ ॥

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भक्षमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति
एना विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥ २२ ॥

यत्र । सुऽपर्णाः । अमृतस्य । भक्षम् । अनिऽमेषम् । विदथा । अभिऽस्वरन्ति ।

एना । विश्वस्य । भुवनस्य । गोपाः । सः । मा । धीरः । पाकम् । अत्र । आ । विवेश ॥ २२ ॥

इति पञ्चमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

जहाँ पर पक्षी कर्मोंको अमृतफलस्वरूप कहते हैं, वह सकल जगत्का रक्षक धीर सूर्यमें प्रवेश नहीं कर सकता ॥ २२ ॥

पञ्चम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (४६७)

"यद् गायत्रे" इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

'यद् गायत्रे' सूक्तका पहिले सूक्तके साथ विनियोग कह दिया है।

यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभं वा त्रैष्टुभान्निरतक्षत ।
यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥ १ ॥

यत् । गायत्रे । अधि । गायत्रम् । आऽहितम् । त्रैस्तुभम् । वा । त्रैस्तुभात् । निःऽअतक्षत ।

यत् । वा । जगत् । जगति । आऽहितम् । पदम् । ये । इत् । तत् । विदुः । ते । अमृतऽत्वम् । आनशुः ॥ १ ॥

जो गायत्रमें गायत्र आहित है, त्रैष्टुभ् त्रैष्टुभ्से निरतक्षित हुआ है अथवा जगती (छन्द वा पृथिवी) में जगत् आहित

है जो इस बातको यथार्थरीतिसे जानते हैं वे अमृतत्वका भोग करते हैं ॥ १ ॥

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम्
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त
वाणीः ॥ २ ॥

गायत्रेण । प्रति । मिमीते । अर्कम् । अर्केण । साम । त्रैस्तुभेन ।
वाकम् ।

वाकेन । वाकम् । द्विऽपदा । चतुःऽपदा । अक्षरेण । मिमते । सप्त ।
वाणीः ॥ २ ॥

गायत्रसे अर्कको, अर्कसे सामको, त्रैष्टुभसे वाकको, वाकसे वाकको और द्विपदा चतुष्पदा छन्दसे सात वाणियोंको शब्दित किया जाता है ॥ २ ॥

जगता सिन्धुं दिव्यस्कभायद् रथंतरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे
महित्वा ३ ॥

जगता । सिन्धुम् । दिवि । अस्कभायत् । रथम्ऽतरे । सूर्यम् । परि ।
अपश्यत् ।

गायत्रस्य । सम्ऽइधः । तिस्रः । आहुः । ततः । मह्ना । प्र ।
रिरिचे । महिऽत्वा ॥ ३ ॥

जगत्के द्वारा सिंधुको द्यौमें स्कम्भित किया रथन्तरमें सूर्यको

देखा, गायत्रीकी तीन समिधाओंको कहते हैं, तदन्तर वह अपनी महिमासे बढ़ता है ॥ ३ ॥

उप॑ ह्वये सु॒दुघां॑ धे॒नुमे॒तां॑ सु॒हस्तो॑ गो॒धुगु॒त दो॑हदेनाम्।
श्रेष्ठं॑ स॒वं स॑वि॒ता सा॑विष॒न्नो॒भीऽद्धो घ॒र्मस्तदु॒ षु प्र
वो॑चत् ॥ ४ ॥

उप॑ । ह्व॒ये॒ । सु॒ऽदु॒घा॑म् । धे॒नुम् । ए॒ताम् । सु॒ऽहस्तः॑ । गो॒ऽधुक् ।
उ॒त । दो॒ह॒त् । ए॒ना॒म् ।

श्रेष्ठ॑म् । स॒वम् । स॒वि॒ता । सा॒वि॒ष॒त् । नः॒ । अ॒भिऽइ॑द्धः । घ॒र्मः॑ ।
तत् । ऊं॒ इति॑ । सु । प्र । वो॒च॒त् ॥ ४ ॥

सुन्दर हाथ वाला गौओंको दुहने वाला दुहता हुआ मैं सरलता से दुहाने वाली धेनुको समीपमें बुलाता हूँ ॥ ४ ॥

हि॒ङ्कृ॒ण्व॒ती व॑सु॒पत्नी॒ वसू॑नां व॒त्समि॒च्छन्ती॒ मन॑सा॒-
भ्याग॑त् ।
दु॒हाम॒श्विभ्यां॒ पयो॑ अ॒घ्न्येयं सा व॑र्धतां मह॒ते सौभ॑गाय

हि॒ङ्ऽकृ॒ण्व॒ती । व॒सु॒ऽपत्नी॑ । वसू॑नाम् । व॒त्सम् । इ॒च्छन्ती॑ । मन॑सा ।
अ॒भि॒ऽआगा॑त् ।

दु॒हाम् । अ॒श्वि॒ऽभ्याम् । पयः॑ । अ॒घ्न्या । इ॒यम् । सा । व॒र्ध॒ता॒म् ।
म॒ह॒ते । सौभ॑गाय ॥ ५ ॥

धनसे पालन करने योग्य वनसे वत्सकी इच्छा करती हुई

यह गौ हिं करती हुई धनवानोंके यहाँ आगई है, यह अघ्न्या अश्विनीकुमारोंके लिये दूधको दुहे, और महासौभाग्यके लिये हमारे घरमें बढ़े ॥ ५ ॥

गौर॑मीमेद॒भि व॒त्सं मि॒षन्तं॑ मू॒र्धानं॒ हिङ्ङ॑कृणो॒न्मात॒वा उ॑ ।
सृक्वा॑णं घ॒र्मम॒भि वा॑वशा॒ना मिमा॑ति मा॒युं पय॑ते॒ पयो॑भिः

गौः । अ॒मी॒मे॒त् । अ॒भि । व॒त्सम् । मि॒षन्त॑म् । मू॒र्धान॑म् । हिङ् । अ॒कृ॒णो॒त् । मात॒वै । ऊं॑ इति॑ । सृक्वा॑णम् । घ॒र्मम् । अ॒भि । वा॒व॒शा॒ना । मिमा॑ति । मा॒युम् । पय॑ते । पयः॑ऽभिः ॥ ६ ॥

अपनी ओर देखते हुए बछड़ेकी ओर गौ शब्द करती है और उसके पास पहुँच कर उसको सूँघ कर हिं शब्दको करती है (इसका कारण यह है कि-) तू मेरा ही है यह जतानेके लिये शब्द करती है, वह सरणशील घमंके लिये शब्द करती है और वत्सको तथा हमको प्रतिदिन दुग्धसे बढ़ाती है ॥ ६ ॥

अ॒यं स शि॑ङ्क्ते॒ येन॒ गौर॒भीवृ॑ता॒ मिमा॑ति मा॒युं ध्व॒सना॒वधि॑ श्रि॒ता ।
सा चि॒त्तिभि॒र्नि हि च॒कार॒ मर्त्या॑न् वि॒द्युद्भव॑न्ती॒ प्रति॑ व॒व्रिमौ॑हत ॥ ७ ॥

अ॒यम् । सः । शि॒ङ्क्ते॑ । येन॑ । गौः । अ॒भिऽवृ॑ता । मि॒मा॑ति । मा॒युम् । ध्व॒सनौ॑ । अधि॑ । श्रि॒ता ।

सा । चित्तिऽभिः । नि । हि । चकार । मर्त्यान् । विऽद्युत् ।
भवन्ती । प्रति । वव्रिम् । औहत ॥ ७ ॥

यह मेघ शब्दसा करता है (वास्तवमें शब्द नहीं करता है, किंतु माध्यमिका वाणीके उसमें स्थित होकर शब्द करने पर उसके साहचर्यसे प्रतीत होता है, कि-मेघ ही शब्द कर रहा है) उस मेघने माध्यमिका वाणीको आच्छादित कर लिया है और वह उससे आच्छादित होकर शब्द करती है-वा अपनेको वायु वा आदित्यकी समान बना लेती है, इस कार्यको वह जलको बहाने वाले मेघमें अधिश्रित होकर करती है (इस प्रकार यह आधी ऋचाका मेघान्तर्वर्ती वाणी-अनभिव्यक्तरूपा विजलीकी अभिधायक है) यह मेघशरीरा वाणी चटचटा आदि शब्दकर्मों से मनुष्योंको भयसे नीचा बना देती है । इस प्रकार विजलीके रूपमें अपनेको प्रकट कर वर्षाके अन्तमें अपने रूपको अन्तर्धान कर लेती है ॥ ७ ॥

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः

अनत् । शये । तुरऽगातु । जीवम् । एजत् । ध्रुवम् । मध्ये । आ ।
पस्त्यानाम् ।

जीवः । मृतस्य । चरति । स्वधाभिः । अमर्त्यः । मर्त्येन । सऽयोनिः

मैं त्वरासे प्राप्त होने वाले यमलोकके भयसे काँपते हुए जीव मैं घरके मध्यमें श्वास लेता हुआ शयन करता हूँ, मर्त्यके साथ सयोनि हुआ अमर्त्य जीव मृतकोंके लोकमें पहुँच कर स्वधाके साथ भक्षण करता है ॥ ८ ॥

विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे युवानं सन्तं पलितो जगार
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान

विऽधुम् । दद्राणम् । सलिलस्य । पृष्ठे । युवानम् । सन्तम् । पलितः । जगार ।
देवस्य । पश्य । काव्यम् । महिऽत्वा । अद्य । ममार । सः । ह्यः । सम् । आन ॥ ९ ॥

विधमनशील, दमनशील सलिलपृष्ठ पर तरुण युवा चन्द्रमाको पलित आदित्य निगल लेता है, देवकी चतुरताको देखो जो चन्द्रमा आज मरता है उसकी महिमासे वही कलको भली प्रकार श्वास लेने लगता है ॥ ९ ॥

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिरा विवेश

यः । ईम् । चकार । न । सः । अस्य । वेद । यः । ईम् । ददर्श । हिरुक् । इत् । नु । तस्मात् ।
सः । मातुः । योना । परिऽवीतः । अन्तः । बहुऽप्रजाः । निःऽऋतिः । आ । विवेश ॥ १० ॥

जो गर्भको करता है, वह इस गर्भके तत्त्वको नहीं जानता है (क्योंकि-वह तो कामार्थी वा पुत्रार्थी होकर ही गर्भको करता है) और जो इस गर्भके भीतर होता है वह इस गर्भ (के दुःख) को देखता है और मातृयोनि-गर्भाशय-स्थानमें माताके अशित,

पीत, लीढ, भक्षण इन चार प्रकारके भोजन व्यवहारसे जरायुसे वेष्टित होकर समयानुसार उत्पन्न होता है (जो इस तत्त्वको नहीं जानता है वह) बहुत बार उत्पन्न होनारूप निर्ऋति-राक्षसीमें प्रवेश करता है ॥ (और जो गर्भतत्त्वको जानता है वह मुक्त होजाता है ॥ १० ॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः

अपश्यम् । गोपाम् । अनिऽपद्यमानम् । आ । च । परा । च । पथिऽभिः । चरन्तम् ।
सः । सध्रीचीः । सः । विषूचीः । वसानः । आ । वरीवर्ति । भुवनेषु । अन्तः ॥ ११ ॥

संरक्षक आत्माको हमने संसारचक्रमें विचरण न करते हुए देखा है, और उसको इसीलोकमें और परलोकमें सत्त्व रज तम आदिसे मिलने वाले मार्गोंमें घूमते हुए भी देखा है, वह साथमें जाने वाली और अपनेमें व्याप्त इन्द्रियोंको धारण करता हुआ भुवनोंमें घूमता है ॥ ११ ॥

द्यौर्नः पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्नो माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्

द्यौः । नः । पिता । जनिता । नाभिः । अत्र । बन्धुः । नः । माता । पृथिवी । मही । इयम् ।

उत्तानयोः । चम्वोः । योनिः । अन्तः । अत्र । पिता । दुहितुः ।
गर्भम् । आ । अधात् ॥ १२ ॥

यह जो उपरिस्थिति द्यौ है यही मेरा पिता है क्योंकि-यही वृष्टि करता हुआ परम्परा-क्रमसे सन्तानोत्पत्ति-क्षम वीर्यका उत्पादक है, और इस लोकमें बाँधने वाली नाभि है, और अंग से संबन्ध होनेके कारण बंधु है । और यह पृथिवी वर्षाके जल को औषधिरूपमें परिणत करा शरीरको स्थित रखनेके कारण माता है । ओर इन द्यावापृथिवीको सूत्रात्मा वायु उत्तान धारण किये रहता है, इनमें पितारूप द्यौ दूरमें स्थित अत एव दुहितामें पृथिवीमें वृष्टिरूप गर्भको स्थापित करता है ॥ १२ ॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि वृष्णो अश्वस्य रेतः ।
पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नाभिं पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ १३ ॥

पृच्छामि । त्वा । परम् । अन्तम् । पृथिव्याः । पृच्छामि । वृष्णः ।
अश्वस्य । रेतः ।
पृच्छामि । विश्वस्य । भुवनस्य । नाभिम् । पृच्छामि । वाचः । परमम् । विऽओम ॥ १३ ॥

मैं तुमसे पृथिवीके परमस्थानको, वर्षक व्यापकके वीर्यको बूझता हूँ, मैं तुमसे सकल विश्वकी नाभिको बूझता हूँ और वाणीसे पर व्योमको मैं तुमसें बूझता हूँ ॥ १३ ॥

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं सोमो वृष्णो
अश्वस्य रेतः ।
अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिर्ब्रह्मायं वाचः परमं
व्योम ॥ १४ ॥

इयम् । वेदिः । परः । अन्तः । पृथिव्याः । अयम् । सोमः । वृष्णः ।
अश्वस्य । रेतः ।
अयम् । यज्ञः । विश्वस्य । भुवनस्य । नाभिः । ब्रह्मा । अयम् ।
वाचः । परमम् । विऽओम ॥ १४ ॥

यह वेदी ही पृथिवीकी सबसे श्रेष्ठ वस्तु है, यह सोम ही व्यापक वर्षकका वीर्य है, यह यज्ञ ही सकल विश्वको बाँधे रहने वाली नाभि है और यह ब्रह्म वाणीसे पर परमव्योम है ॥१४॥

न वि जानामि यदि वेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा
चरामि ।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे
भागमस्याः ॥ १५ ॥

न । वि । जानामि । यत्ऽइव । इदम् । अस्मि । निण्यः । सम्ऽनद्धः । मनसा । चरामि ।
यदा । मा । आऽअगन् । प्रथमऽजाः । ऋतस्य । आत् । इत् ।
वाचः । अश्नुवे । भागम् । अस्याः ॥ १५ ॥

मैं इस बातको स्पष्टरीतिसे नहीं जान सका हूँ कि—मैं परब्रह्म नाम वाला कारण (इदम्—यह) हूँ वा उसका कार्य द्वैत हूँ । इन कार्यकारण द्वैताद्वैतके बीचमें वर्तमान अन्तर्हित और अविद्यासे और सन्देहग्रन्थियोंसे सन्नद्ध होकर मनसे द्वैत और अद्वैत दोनों के बीचमें घूमता रहता हूँ । ऐसी दशामें यदि सब इन्द्रियोंसे प्रथम होने वाली प्रथमजा बुद्धि कि—जो भगवान् सूर्यकी स्वभूता है उससे मैं कारणसतत्व हूँ वा द्वैतसतत्व हूँ इस बातको जान कर इस कृत्स्नमाज्ञता वाणीके भागको भोगूँ अर्थात् उस सबको मैं प्राप्त कर लूँ ॥ १५ ॥

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्य१न्यं चिक्युर्न
नि चिक्युरन्यम् ॥ १६ ॥

अपाङ् । प्राङ् । एति । स्वधया । गृभीतः । अमर्त्यः । मर्त्येन ।
सऽयोनिः ।
ता । शश्वन्ता । विषूचीना । विऽयन्ता । नि । अन्यम् । चिक्युः ।
न । नि । चिक्युः । अन्यम् ॥ १६ ॥

स्वधासे गृभीत अमरणधर्मा आत्मा कि—जो मर्त्य मनके साथ गर्भसे प्रकट होने वाला है उनमेंसे आत्मा ब्रह्मके पास पहुँचता है ब्रह्मस्वरूप होजाता है और मन उसके पास नहीं पहुँच सकता वे शाश्वत विषूची वियन्ता आत्मा अन्य (कार्य) को देखते हैं और (अविद्यावस्थामें) अन्य (कारण) को नहीं देखते हैं १६

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा
विधर्मणि ।

ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति
विश्वतः ॥ १७ ॥

सप्त । अर्धऽगर्भाः । भुवनस्य । रेतः । विष्णोः । तिष्ठन्ति । प्रऽदिशा ।
विऽधर्मणि ।

ते । धीतिऽभिः । मनसा । ते । विपःऽचितः । परिऽभुवः । परि ।
भवन्ति । विश्वतः ॥ १७ ॥

सात किरणें विधारक सूर्यमें व्यापक भुवनके वीर्यस्वरूप होकर स्थित रहती हैं, वे धीति और मनसे सब कर्मोंकी प्रादुर्भूत होनेकी कारण वृष्टिरूपमें सारे विश्वमें फैल जाती हैं ॥ १७ ॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे
निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्ते
अमी समासते ॥ १८ ॥

ऋचः । अक्षरे । परमे । विऽओमन् । यस्मिन् । देवाः । अधि ।
विश्वे । निऽसेदुः ।

यः । तत् । न । वेद । किम् । ऋचा । करिष्यति । ये । इत् ।
तत् । विदुः । ते । अमी इति । सम् । आसते ॥ १८ ॥

पूजनीय ॐकारके अक्षर परम व्योममें सम्पूर्ण देवता रहते हैं । जो इस बातको नहीं जानता वह ऋक् आदिके मन्त्रोंसे क्या

कर सकता है और जो इसको जानते हैं वे ये विद्वानोंको उपदेश दे रहे हैं ॥ तात्पर्य-वह अक्षर ॐ है, ॐ कारके अतिरिक्त पूजा नहीं की जाती है अतः ऋच् ॐ के जिसमें अनेक प्रकार शब्द-समूह ओत है उस परम व्योममें-अकार उकार मकाररूप तीन मात्राओंमें जो अवशिष्ट रहता है, वह अपर आकाशकी अपेक्षा परमव्योम है ऋक् आदिमें जो देवता हैं वे मन्त्रद्वारसे अक्षरमें निषण्ण हैं, क्योंकि-वह शब्दका कारण है, जैसे कि—उसकी प्रथम मात्रामें पृथिवी अग्नि ऋग्वेद पृथिवीलोकके निवासी निषण्ण हैं। दूसरी मात्रामें अन्तरिक्ष, वायु, यजुर्वेद और अन्तरिक्षलोक-निवासी हैं, तीसरी मात्रामें द्यौ, आदित्य, साम और सूर्यलोक-निवासी हैं। श्रुतिमें भी कहा है, कि-"ॐकार एवेदं सर्वम्"। जो इस विभूतिसे अक्षरको नहीं जानता वह ऋगादिमन्त्रोंसे क्या कर सकता है और जो उसके परिज्ञानसे तद्भाव्यको प्राप्त हो जाते हैं-प्रणवविग्रह आत्मामें प्रवेश कर सभीकृत होजाते हैं वे शान्तज्वाल अग्निकी समान निर्वाणको प्राप्त होजाते हैं ॥१८॥

ऋ॒चः प॒दं मात्र॑या क॒ल्पय॑न्तोर्ध॒र्चेन॑ चाक्लृपु॒र्विश्व॒मेज॑त् ।
त्रि॒पाद् ब्रह्म॑ पु॒रु॒रूपं॒ वि त॑ष्ठे॒ तेन जीवन्ति प्र॒दिश॒श्चत॑स्रः ॥ १९ ॥

ऋ॒चः । प॒दम् । मात्र॑या । क॒ल्पय॑न्तः । अ॒र्ध॒ऽऋ॒चेन॑ । च॒क्लृ॒पुः । विश्व॑म् । एज॑त् ।
त्रि॒ऽपात् । ब्रह्म॑ । पु॒रु॒ऽरूप॑म् । वि । त॒स्थे॒ । तेन॑ । जी॒व॒न्ति॒ । प्र॒ऽदिशः॑ । चत॑स्रः ॥ १९ ॥

इस ॐकारके पदकी मात्रासे कल्पना करते हुए उस अर्धसे इस चेष्टाशील जगत्की कल्पना की गई है, त्रिपाद् पुरुरूप ब्रह्म निश्चल रहता है और उसकी एक मात्रासे चारों दिशा (ओंके प्राणी) एँ जीवित रहती हैं ॥ १९ ॥

सूयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः
स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ २० ॥

सुयवसऽअत् । भगऽवती । हि । भूयाः । अथ । वयम् । भगऽवन्तः । स्याम ।

अद्धि । तृणम् । अघ्न्ये । विश्वऽदानीम् । पिब । शुद्धम् । उदकम् । आऽचरन्ती ॥ २० ॥

सुन्दर जल वाले आदित्यसे तू जलरूप धन वाली हो फिर हम भी तेरे जलसे धन वाले होवें, हे अघ्न्ये पृथिवि ! तू जिस पर तृण्णा (मारना) की जाती है उस मेघको सञ्चूर्णित कर और शुद्ध जलका सेवन करती हुई सूर्यरश्मियोंसे लाये हुए जलको पी २०

गौरिन्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा
चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा भुवनस्य
पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥ २१ ॥

गौः । इत् । मिमाय । सलिलानि । तक्षती । एकऽपदी । द्विऽपदी ।
सा । चतुःऽपदी ।
अष्टाऽपदी । नवऽपदी । बभूवुषी । सहस्रऽअक्षरा । भुवनस्य ।
पङ्क्तिः । तस्याः । समुद्राः । अधि । वि । क्षरन्ति ॥ २१ ॥

यह माध्यमिका वाणी गौ ही इस सब जगत्का निर्माण करती है। (उसकी रीति यह होती है, कि–) वह जलको करती है (क्योंकि–निर्माणोंके पहिले जल है उसके जलको निर्माण करने की परिपाटी यह है, कि–) मध्यमके साथ एकत्वको प्राप्त होकर वह एकपदी होती है, मध्यम आदित्यके साथ द्विपदी होजाती है और दिशाओंके साथ चतुष्पदी होजाती है, और अवान्तर दिशाओं से अष्टापदी होजाती है, दिशा विदिशा और सूर्यसे नवपदी हो जाती है और जो विभक्त भूतोंका परम अवन है उस परमव्योम सर्वभावोंके अविभक्त एक आत्मामें बहूदका होती हुई सलिल-निर्माणके द्वारा इस सबको रचती है वह भुवनकी पंक्ति है, उससे मेघ क्षरित होते रहते हैं ॥ २१ ॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद्घृतेन पृथिवीं व्यूदुः॥२२

कृष्णम् । निऽयानम् । हरयः । सुऽपर्णाः । अपः । वसानाः ।
दिवम् । उत् । पतन्ति ।
ते । आ । अववृत्रन् । सदनात् । ऋतस्य । आत् । इत् । घृतेन ।
पृथिवीम् । वि । ऊदुः ॥ २२ ॥

रसका हरण करने वाली शोभन पतन वाली सूर्यकी किरणें जलको लेती हुई (उत्तरायणमें) द्योतनवान् सूर्यमें जाती हैं और वे ही किरणें दक्षिणायनमें जब जलके निवासस्थान सूर्यमण्डल से लौटती हैं तो पृथिवी जलसे गीली होजाती है ॥ २२ ॥

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्या ऋतं पिपर्त्यनृतं नि पाति २३

अपात् । एति । प्रथमा । पत्ऽवतीनाम् । कः । तत् । वाम् । मित्रावरुणा । आ । चिकेत ।

गर्भः । भारम् । भरति । आ । चित् । अस्याः । ऋतम् । पिपर्ति । अनृतम् । नि । पाति ॥ २३ ॥

पैररहित किरण पैर बलियोंसे पहिले आजाती है, हे सूर्य और वरुण देवताओ ! तुम्हारे स्वरूपको कौन जान सकता है ? इस किरणके भारको पृथ्वीरूप गर्भ धारण करता है, वह सत्यवक्ताको पुष्ट करती है और असत्यवक्ताको नष्ट कर डालती है २३

विराड् वाग् विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः ।
विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्य भूतं भव्यं वशे स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु ॥ २४ ॥

विऽराट् । वाक् । विऽराट् । पृथिवी । विऽराट् । अन्तरिक्षम् ।

विऽराट् । प्रजाऽपतिः ।

विऽराट् । मृत्युः । साध्यानाम् । अधिऽराजः । बभूव । तस्य । भूतम् ।
भव्यम् । वशे । सः । मे । भूतम् । भव्यम् । वशे । कृणोतु २४

विराट् ही वाणी है, विराट् पृथिवी है, विराट् अन्तरिक्ष है, विराट् प्रजापति है, विराट् ही मृत्यु है, वही साध्योंका अधिराज है उस (सर्वव्यापक) विराट्के वशमें भूत और भविष्य है, वही विराट् भूत और भविष्यको मेरे वशमें कर देय ॥ २४ ॥

शकमयं धूममाराद्पश्यं विषूवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ २५ ॥

शकऽमयम् । धूमम् । आरात् । अपश्यम् । विषुऽवता । परः ।
एना । अवरेण ।
उक्षाणम् । पृश्निम् । अपचन्त । वीराः । तानि । धर्माणि । प्रथमानि । आसन् ॥ २५ ॥

विषुवत् और एनावर नामक यज्ञसे मैंने शकमय धूमको समीप में ही देखा है, उक्षाका और, पृश्निका धीरोंने पचन किया, ये ही धर्म ही (यज्ञके) मुख्य थे ॥ २५ ॥

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमन्यो अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥ २६ ॥

त्रयः । केशिनः । ऋतुऽथा । वि । चक्षते । सम्ऽवत्सरे । वपते ।
एकः । एषाम् ।
विश्वम् । अन्यः । अभिऽचष्टे । शचीभिः । ध्राजिः । एकस्य ।
ददृशे । न । रूपम् ॥ २६ ॥

जो अग्नि वायु सूर्यरूप तीन केशी समय २ पर स्वकर्माधिकारयुक्त अनुग्रहसे लोक पर अनुग्रह करते हैं । इनमेंसे एक पृथिवीस्थान अग्नि सम्वत्सरमें पृथ्वीको भस्म करता है, ऐसा करने पर वह कर्म करनेके योग्य होजाती है और एक आदित्य स्वाधिकारयुक्त कर्मोंसे अनुग्रह करता है और एककी (अर्थात् वायुकी) गति ही दीखती है रूप नहीं दीखता है । २६ ॥

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये
मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या
वदन्ति ॥ २७ ॥

चत्वारि । वाक् । परिऽमिता । पदानि । तानि । विदुः । ब्राह्मणाः ।
ये । मनीषिणः ।
गुहा । त्रीणि । निऽहिता । न । ईङ्गयन्ति । तुरीयम् । वाचः ।
मनुष्याः । वदन्ति ॥ २७ ॥

वाणीके चार परिमित पद हैं, पाँचवाँ पद नहीं है, जो बुद्धिमान् ब्राह्मण हैं वे ही उनको जानते हैं, उनमेंसे तीन पद गुहामें निहित हैं वे अर्थको नहीं जताते हैं, चौथी (वैखरी) वाणीको मनुष्य कहते हैं ॥ २७ ॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ २८ ॥

इन्द्रम् । मित्रम् । वरुणम् । अग्निम् । आहुः । अथो इति । दिव्यः । सः । सुऽपर्णः । गरुत्मान् ।
एकम् । सत् । विप्राः । बहुऽधा । वदन्ति । अग्निम् । यमम् । मातरिश्वानम् । आहुः ॥ २८ ॥

पञ्चमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥ पञ्चमोनुवाकः ॥

तत्ववेत्ता पुरुष अग्नि मित्र वरुण आदि नामोंसे इन एक अग्नि को ही कहते हैं और जो द्योमें होने वाला, शोभन पतन वाला, स्तुतियोंका पात्र सूर्य है वही अग्नि है यह कहते हैं । अधिक क्या इस एक ही अग्निको आत्मस्वरूपसे देखते हुए मेधावी आत्मवेत्ता अग्नि यम मातरिश्वा आदि अनेक नामोंसे कहते हैं ॥ २८ ॥ (२८)

पञ्चम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (४६८) ॥

पञ्चम अनुवाक समाप्त

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका नवम काण्ड ऋषिकुमार
प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका
सम्पादक कु० ऋ० प० रामचन्द्र
शर्मा कृत सायणभाष्यानुकूल
भाषानुवाद सहित
समाप्त.

॥ नवमः काण्डः समाप्तः ॥

❀ श्रीहरिः ❀

अथर्ववेदसंहिता

दशम-काण्ड

भाषानुवाद-सहित

“यां कल्पयन्ति” इत्यर्थसूक्तस्य कृत्याप्रतिहरणगणे पाठात् कृत्यानिर्हरणार्थे शान्त्युदक एतत् सूक्तं विनियुज्यते । तद् उक्तं कौशिकेन । “यां कल्पयन्तीति महाशान्तिम् आवपते” इति [कौ० ५. ३] ॥ कृत्याप्रतिहरणगणः “दूष्या दूषिरसि” इति इति सूक्ते [२. ११] द्रष्टव्यः । विनियोगान्तरं च तत्रैव द्रष्टव्यम् ॥

“यां कल्पयन्ति” इस अर्थसूक्तका कृत्याप्रतिहरणगणमें पाठ होनेसे कृत्याको दूर करनेके शान्तिजलमें इस सूक्तका विनियोग किया जाता है । इसी बातको कौशिक मुनिने कहा है, कि– “यां कल्पयन्ति इति महाशान्तिं आवपते ।” (कौशिकसूत्र ५ । ३ ॥ और कृत्याप्रतिहरणगणको “दूष्या दूषिरसि” इस दूसरे काण्डके ग्यारहवें सूक्तमें देखना चाहिये ।

यां क॒ल्पय॑न्ति वह॒तौ व॒धूमि॑व वि॒श्वरू॑पां॒ हस्तकृतां
चि॒कि॒त्सव॑: ।
सारा॒दे॒त्वप॑ नुदाम एनाम् ॥ १ ॥

याम् । क॒ल्पय॑न्ति । व॒ह॒तौ । व॒धूम्ऽइ॑व । वि॒श्वऽरू॑पाम् । हस्त॑ऽकृताम् । चि॒कि॒त्सव॑: ।

सा । आरात् । एतु । अप । नुदामः । एनाम् ॥ १ ॥

चिकित्सक पुरुष जिस विश्वरूपा हाथसे की हुई कृत्याको दहेजमें वधूकी समान मानते हैं, वह कृत्या हमारे समीपसे चली जावे, इसको हम खदेड़ते हैं ॥ १ ॥

शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥ २ ॥

शीर्षण्ऽवती । नस्वती । कर्णिनी । कृत्याऽकृता । सम्ऽभृता । विश्वऽरूपा ॥
सा । आरात् । एतु । अप । नुदामः । एनाम् ॥ २ ॥

शीर्ष वाली, नाक वाली, कान वाली सम्पादित की हुई कृत्या आपत्ति अनेक प्रकारकी होती है, वह हमारे समीपसे चली जावे इसको हम अपने पाससे खदेड़ते हैं ॥ २ ॥

शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता ।
जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्ध्वृच्छतु ॥ ३ ॥

शूद्रऽकृता । राजऽकृता । स्त्रीऽकृता । ब्रह्मऽभिः । कृता ।
जाया । पत्या । नुत्ताऽइव । कर्तारम् । बन्धु । ऋच्छतु ॥ ३ ॥

शूद्रसे की हुई, राजासे की हुई, स्त्रियोंसे की हुई और मंत्रोंके द्वारा की हुई कृत्या इस प्रकार कर्ताके पास जावे, जिस प्रकार पतिसे प्रेरित की हुई स्त्री अपने भाई बान्धवोंके पास जाती है ३

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥ ४ ॥

अनया । अहम् । ओषध्या । सर्वाः । कृत्याः । अदूदुषम् ।
याम् । क्षेत्रे । चक्रुः । याम् । गोषु । याम् । वा । ते । पुरुषेषु ४

अभिचारकोंने जिसको क्षेत्रमें गौओंमें वा पुरुषोंमें किया था उन सब कृत्याओंको मैं इस औषधिसे दूषित कर चुका हूँ ॥ ४ ॥

अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते ।
प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत् ॥ ५ ॥

अघम् । अस्तु । अघऽकृते । शपथः । शपथिऽयते ।
प्रत्यक् । प्रतिऽप्रहिण्मः । यथा । कृत्याऽकृतम् । हनत् ॥ ५ ॥

हिंसारूप पाप हिंसा करने वालेके पास पहुँच जावे, शपथ शपथ देने वालेके पास पहुँचे, हम कृत्याको इस प्रकार पीछेको लौटाते हैं जिस प्रकार वह कृत्याका प्रयोग करने वालेको ही मार डाले ॥ ५ ॥

प्रतीचीन आङ्गिरसोध्यक्षो नः पुरोहितः ।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून् कृत्याकृतो जहि ॥ ६ ॥

प्रतीचीनः । आङ्गिरसः । अधिऽअक्षः । नः । पुरःऽहितः ।
प्रतीचीः । कृत्याः । आऽकृत्य । अमून् । कृत्याऽकृतः । जहि ६

हमारा अध्यक्ष पुरोहित अंगिरावंशी है, पश्चिमका है, हे ऐसे

२६-८-३०

पुरोहित आप सामने आती हुई कृत्याओंको खण्डित करके कृत्या करने वालोंको ही मार डालिये ॥ ६ ॥

यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम् ।
तं कृत्येभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागसः ॥७॥

यः । त्वा । उवाच । परा । इहि । इति । प्रतिऽकूलम् । उत्ऽआय्यम् ।
तम् । कृत्ये । अभिऽनिवर्तस्व । मा । अस्मान् । इच्छः । अनागसः ७

हे कृत्ये ! जिसने तुझसे कहा है, कि-तू मेरे ऊपरको आते हुए प्रतिकूल पुरुषके पास जा, हे कृत्ये ! तू उसी पर लौट जा और हम निरपराधोंकी इच्छा न कर ॥ ७ ॥

यस्ते परूंषि संदधौ रथस्येवर्भुर्धिया ।
तं गच्छ तत्र तेयनमज्ञातस्तेयं जनः ॥ ८ ॥

यः । ते । परूंषि । सम्ऽदधौ । रथस्यऽइव । ऋभुः । धिया ।
तम् । गच्छ । तत्र । ते । अयनम् । अज्ञातः । ते । अयम् । जनः ८

जैसे ऋभु बुद्धिसे रथके पर्वोंको जोड़ता है, इसी प्रकार जिसने तेरी अस्थियोंके जोड़ोंको (मन्त्रपूर्वक) जोड़ा है, तू उसके ही पास जा वही तेरा स्थान है, और यह जन तो तुझसे अपरिचित ही है ॥ ८ ॥

ये त्वा कृत्वा लेभिरे विद्वला अभिचारिणः ।
शंभ्वी३दं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनःसरं तेन त्वा स्नपयामासि ॥ ९ ॥

ये । त्वा । कृत्वा । आऽलेभिरे । विद्वलाः । अभिऽचारिणः ।
शम्ऽभु । इदम् । कृत्याऽदूषणम् । प्रतिऽवर्त्म । पुनःऽसरम् । तेन ।
त्वा । स्नपयामसि ॥ ९ ॥

हे कृत्ये ! जिन विद्वल अभिचारकोंने तुझको पाया है, तो यह कृत्याको दूषित करने वाला कृत्याके मार्गको उल्टा करने वाला कल्याणकारक पुनःसर है, उससे हम तुझको स्नान कराते हैं ९

यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम ।
अपैतु सर्वं मत् पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥ १० ॥

यत् । दुःऽभगाम् । प्रऽस्नपिताम् । मृतऽवत्साम् । उपऽएयिम ।
अप । एतु । सर्वम् । मत् । पापम् । द्रविणम् । मा । उप । तिष्ठतु १०

हम जिस मृतवत्सतारूप दुर्भाग्यको प्राप्त होगए हैं और (शोक-में) स्नान कराने वाली जिस कृत्याको प्राप्त होगए हैं, वह मेरा सब पाप दूर होजाय और धन मेरे पास स्थित रहे ॥ १० ॥ (१)

यत् ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः ।
संदेश्या३त् सर्वस्मात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ११

यत् । ते । पितृऽभ्यः । ददतः । यज्ञे । वा । नाम । जगृहुः ।
सम्ऽदेश्या/त् । सर्वस्मात् । पापात् । इमाः । मुञ्चन्तु । त्वा । ओषधीः

पितरोंके निमित्त देते समय जो नाम लिया था उस पूर्ण सन्देश्य पापसे ये औषधियें तुझको मुक्त करें ॥ ११ ॥

देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात् संदेश्या)दभिनिष्कृतात्

मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मण ऋग्भिः पयस
ऋषीणाम् ॥ १२ ॥

देवऽएनसात् । पित्र्यात् । नामऽग्राहात् । सम्ऽदेश्यात् । अभिनिष्कृतात् ।

मुञ्चन्तु । त्वा । वीरुधः । वीर्येण । ब्रह्मणा । ऋक्ऽभि । पयसा । ऋषीणाम् ॥ १२ ॥

देवताओंके अपराधसे, पितरोंका नाम लेनेसे, सन्देश्यसे, अभिनिष्कृतसे उनसे ये औषधियें तुझको, मन्त्रबल, ऋषियोंके सारभूत तपोबल और ऋचाओंके द्वारा मुक्त करें ॥ १२ ॥

यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम् ।
एवा मत् सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥ १३ ॥

यथा । वातः । च्यावयति । भूम्याः । रेणुम् । अन्तरिक्षात् । च । अभ्रम् ।

एव । मत् । सर्वम् । दुःऽभूतम् । ब्रह्मऽनुत्तम् । अप । अयति १३

जैसे वायु भूमिसे धूलिको उड़ा देता है और अन्तरिक्षसे मेघको उड़ा देता है, इसी प्रकार मेरे सब दुष्कृत्य मन्त्रसे प्रेरित होकर उड़ जावें ॥ १३ ॥

अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव ।
कर्तॄन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता ॥ १४ ॥

अप । क्राम । नानदती । विऽनद्धा । गर्दभीऽइव ।

कर्तॄन् । नक्षस्व । इतः । नुत्ता । ब्रह्मणा । वीर्यऽवता ॥ १४ ॥

जैसे बंधनरहित गधैया (ताड़ना करने पर) रेंकती हुई दुलत्तिएँ चलाती है, इसी प्रकार हे कृत्ये ! तू वीर्यवान् मन्त्रसे पिट कर दौड़ती हुई अपने कर्ताओंको नष्ट कर ॥ १४ ॥

अयं पन्थाः कृत्येति त्वा नयामोऽभिप्रहितां प्रति त्वा
प्र हिण्मः ।
तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव वाहिनी विश्वरूपा
कुरूटिनी ॥ १५ ॥

अयम् । पन्थाः । कृत्ये । इति । त्वा । नयामः । अभिऽप्रहिताम् । प्रति ।
त्वा । प्र । हिण्मः ।
तेन । अभि । याहि । भञ्जती । अनस्वतीऽइव । वाहिनी । विश्वरूपा । कुरूटिनी ॥ १५ ॥

यह तेरा मार्ग है इस प्रकार हम तुझको भेजते हैं, शत्रुकी प्रेरित की हुई तुझको हम शत्रुकी ओर ही प्रेरित करते हैं, इस कर्मसे तू गाड़ी वाली, अनेक प्रकारके (हाथी घोड़े आदि) शरीरोंसे सम्पन्न, पृथ्वीमें शब्द करती हुई सेनाकी समान शत्रु पर झपट ॥ १५ ॥

पराक् ते ज्योतिरपथं ते अर्वागन्यत्रास्मदयना कृणुष्व।
परेणेहि नवतिं नाव्या३ अति दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः
परेहि ॥ १६ ॥

पराक् । ते । ज्योतिः । अपथम् । ते । अर्वाक् । अन्यत्र । अस्मत् ।
अयना । कृणुष्व ।
परेण । इहि । नवतिम् । नाव्याः । अति । दुःऽगाः । स्रोत्याः ।
मा । क्षणिष्ठाः । परा । इहि ॥ १६ ॥

तेरी ज्योति शत्रुओंके पास पहुँचे, तेरा कुमार्ग नीचेको होजाय, तू हमसे अन्यत्र अपना निवासस्थान बना तू परम दुर्गम नौकाओंसे तरने योग्य नब्भै नदियोंके पार जा, हमारी हिंसा न कर दूर जा १६

वात इव वृक्षान् नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुष-
मुच्छिष एषाम् ।
कर्तॄन् निवृत्येतः कृत्ये प्रजास्त्वाय बोधय ॥ १७ ॥

वातःऽइव । वृक्षान् । नि । मृणीहि । पादय । मा । गाम् ।
अश्वम् । पुरुषम् । उत् । शिषः । एषाम् ।
कर्तॄन् । निऽवृत्य । इतः । कृत्ये । अप्रजाःऽत्वाय । बोधय १७

जैसे वायु वृक्षोंको तोड़ डालता है, इसी प्रकार तू शत्रुओंको मार इन शत्रुओंके गौ घोड़े और पुरुषको शेष न रख, अपने कर्ताओंको यहाँसे हटाकर तुम सन्तानहीन होगए हो यह उनको जता दे ॥ १७ ॥

यां ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचख्नुः
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा
अनागसम् ॥ १८ ॥

याम् । ते॒ । ब॒र्हिषि॑ । याम् । श्म॒शा॒ने । क्षेत्रे॑ । कृ॒त्याम् । व॒ल॒गम् ।
वा॒ । नि॒ऽच॒ख्नुः ।

अ॒ग्नौ । वा॒ । त्वा॒ । गार्ह॑ऽपत्ये । अ॒भि॒ऽचे॒रुः । पाक॑म् । सन्त॑म् ।
धीर॑ऽतराः । अ॒ना॒गस॑म् ॥ १८ ॥

अभिचारकोंने तुझको अग्निमें, श्मशानमें वा खेतमें दुवका कर किया है वा गार्हपत्य अग्निमें अभिचरित किया है, मैं निरपराध हूँ और अपनी अवस्थासे पक रहा हूँ (ऐसे मुझ पर अभिचार करने वाले नष्ट होजावें) ॥ १८ ॥

उ॒पाहृ॑त॒मनु॑बुद्धं॒ निखा॑तं॒ वैरं॑ त्सा॒र्य॑न्वविदाम॒ कर्त्र॑म् ।
त॒दे॑तु॒ यत॒ आभृ॑तं॒ तत्राश्व॑ इ॒व वि व॑र्तता॒ं हन्तु कृ॒त्या॑-
कृतः॑ प्र॒जाम् ॥ १९ ॥

उ॒प॒ऽआहृ॑तम् । अनु॑ऽबुद्धम् । निऽखा॑तम् । वैर॑म् । त्सा॒रि । अनु॑ ।
अ॒वि॒दा॒म॒ । कर्त्र॑म् ।

तत् । ए॒तु॒ । यतः॑ । आऽभृ॑तम् । तत्र॑ । अश्वः॑ऽइव । वि । व॒र्त॒ता॒म् ।
हन्तु॑ । कृ॒त्या॒ऽकृतः॑ । प्र॒ऽजाम् ॥ १९ ॥

उपाहृत, अनुबुद्ध निखात और कपटपूर्वक गमन करने वाले वैरको हम कर्ता पर प्राप्त कराते हैं, वह जहाँसे आया है तहाँ ही घोड़ेकी समान (अपने स्थानको पहिचानता हुआ) लौट जावे और कृत्याका प्रयोग करने वालेकी प्रजाको नष्ट कर डाले ॥ १९ ॥

स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते कृत्ये यतिधा
परूंषि ।
उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि ॥ २० ॥

सुऽआयसाः । असयः । सन्ति । नः । गृहे । विद्म । ते । कृत्ये । यतिऽधा ।
परूंषि ।
उत् । तिष्ठ । एव । परा । इहि । इतः । अज्ञाते । किम् । इह ।
इच्छसि ॥ २० ॥

हे कृत्ये ! हमारे घरमें अच्छे लोहेकी तलवारें हैं और हम तेरे अस्थिपर्वोंको भी जानते हैं, अतः तू यहाँसे उठकर शत्रुके पास भाग जा, हे हमसे अज्ञाते ! तू यहाँ पर क्या चाहती है? २०

ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव ।
इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजापती २१

ग्रीवाः । ते । कृत्ये । पादौ । च । अपि । कृत्स्यामि । निः । द्रव ।
इन्द्राग्नी इति । अस्मान् । रक्षताम् । यौ । प्रऽजानाम् । प्रजापती
इति प्रजाऽपती ॥ २१ ॥

हे कृत्ये ! मैं तेरे ग्रीवा और दोनों पैरोंको काटूँगा, अतः तू भाग जा, जो प्रजाओंके पालक इन्द्र और अग्निदेव हैं वे हमारी रक्षा करें ॥ २१ ॥

सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु

सोमः । राजा । अधिऽपाः । मृडिता । च । भूतस्य । नः । पतयः । मृडयन्तु ॥ २२ ॥

राजा सोम प्राणियोंको सुख देने वाले हैं अत एव प्राणियोंके अधिप हैं, वे हमारे स्वामी हमको सुख देवें ॥ २२ ॥

भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते ।
दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥ २३ ॥

भवाशर्वौ । अस्यताम् । पापऽकृते । कृत्याऽकृते ।

दुःऽकृते । विऽद्युतम् । देवऽहेतिम् ॥ २३ ॥

भव और शर्व नामक देवता कृत्याका प्रयोग करने वाले पापी दुष्कर्मी पर देवायुध बिजलीको प्रेरित करें ॥ २३ ॥

यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा
सेतो३ष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥ २४ ॥

यदि । आऽइयथ । द्विऽपदी । चतुःऽपदी । कृत्याऽकृता । सम्ऽभृता । विश्वऽरूपा ।

सा । इतः । अष्टाऽपदी । भूत्वा । पुनः । परा । इहि । दुच्छुने २४

कृत्याको करने वालेके द्वारा दो और चार पैर वालोंमें भरी हुई विश्वरूपा कृत्ये ! यदि तू आरही है, तो दुच्छुने ! तू यहाँसे आठ पैर वाली बनकर फिर लौट जा ॥ २४ ॥

अभ्य१क्ताक्ता स्वरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि ।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥ २५ ॥

अभिऽअक्ता । आऽअक्ता । सुऽअरंकृता । सर्वम् । भरन्ती । दुःऽइतम् । परा । इहि ।

जानीहि । कृत्ये । कर्तारम् । दुहिताऽइव । पितरम् । स्वम् ॥२५॥

घृतसे अक्त भली प्रकार अलंकृत सकल दुष्कृतोंको धारण करने वाली कृत्ये ! दूर हट और जैसे पुत्री अपने पिताको जानती है तिस प्रकार अपने उत्पादकको जान ॥ २५ ॥

परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय ।
मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति ॥ २६ ॥

परा । इहि । कृत्ये । मा । तिष्ठः । विद्धस्यऽइव । पदम् । नय ।

मृगः । सः । मृगऽयुः । त्वम् । न । त्वा । निऽकर्तुम् । अर्हति २६

हे कृत्ये ! तू दूर हट यहाँ मत खड़ी हो और जैसे व्याधा विंधे हुए मृगके स्थान पर जाता है, इसी प्रकार तू शत्रुके स्थान पर जा, तेरा प्रयोग करने वाला मृग है और तू व्याधरूपा है अत एव वह तेरा नाश नहीं कर सकेगा ॥ २६ ॥

उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा ।
उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति ॥ २७ ॥

उत । हन्ति । पूर्वऽआसिनम् । प्रतिऽआदाय । अपरः । इष्वा ।

उत । पूर्वस्य । निऽघ्नतः । नि । हन्ति । अपरः । प्रति ॥२७॥

पहिले बैठे हुएको दूसरा बाणको लेकर मार देता है और पहिले मारने वालेको दूसरा मार डालता है ॥ २७ ॥

एतद्धि शृणु मे वचोथेहि यत एयथ ।
यस्त्वा चकार तं प्रति ॥ २८ ॥

एतत् । हि । शृणु । मे । वचः । अथ । इहि । यतः । आऽइयथ ।
यः । त्वा । चकार । तम् । प्रति ॥ २८ ॥

मेरे इस वचनको सुन और फिर तू तहाँ जा जहाँसे तू आई है जिसने तुझको किया है उसकी ओर जा ॥ २८ ॥

अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव ॥ २९ ॥

अनागःऽहत्या । वै । भीमा । कृत्ये । मा । नः । गाम् ।
अश्वम् । पुरुषम् । वधीः ।
यत्रऽयत्र । असि । निऽहिता । ततः । त्वा । उत् । स्थापयामसि ।
पर्णात् । लघीयसी । भव ॥ २९ ॥

हे कृत्ये ! निरपराधकी हिंसा भयंकर होती है, अतः तू हमारी गौ घोड़े और पुरुषका वध न कर, तू जहाँ २ पर स्थापित की गई है हम तुझको तहाँसे उठाते हैं, तू पत्तेसे भी हलकी होजा २९

यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव ।
सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ३०

यदि । स्थ । तमसा । आऽवृता । जालेन । अभिहिताःऽइव ।

सर्वाः । सम्ऽलुप्य । इतः । कृत्याः । पुनः । कर्त्रे । प्र । हिण्मसि ३०

हे कृत्याओं ! यदि तुम अंधकार वा जालसे आवृत हो, तो उन सब कृत्याओंको हम यहाँसे लुप्त करके कर्ताके पास ही लौटाते हैं ३०

कृत्याकृतो वलगिनोभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोमून् कृत्याकृतो जहि ॥ ३१ ॥

कृत्याऽकृतः । वलगिनः । अभिऽनिष्कारिणः । प्रऽजाम् ।
मृणीहि । कृत्ये । मा । उत् । शिषः । अमून् । कृत्याऽकृतः ।
जहि ॥ ३१ ॥

हे कृत्ये ! तू कपटी अभिनिष्कारी कृत्याकृत्की सन्तानका नाश कर इनको बाकी न छोड़, इन कृत्या करने वालोंको मार डाल ॥ ३१ ॥

यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून्
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो
दुरितं जहामि ॥ ३२ ॥

यथा । सूर्यः । मुच्यते । तमसः । परि । रात्रिम् । जहाति । उषसः ।
च । केतून् ।
एव । अहम् । सर्वम् । दुःऽभूतम् । कर्त्रम् । कृत्याऽकृता । कृतम् ।
हस्तीऽइव । रजः । दुःऽइतम् । जहामि ॥ ३२ ॥

इति प्रथमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

जैसे सूर्य राहुसे (वा अंधकारसे) मुक्त होजाता है तथा रात्रिको और उषाके करने वाले कारणोंको भी त्याग देता है और जिस प्रकार हाथी धूलको झाड़ देता है, इसी प्रकार मैं कृत्याकृत्के किये हुए कर्तक पूर्णपापको झाड़ता हूँ ॥ ३२ ॥ (३)

प्रथम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (४६९)

अस्मिन् सूक्ते पुरुषस्य अर्थात् मनुष्यस्य माहात्म्यं वर्ण्यते। तच्च तद्भिन्नभिन्नावयवान् को देवोकरोद् इत्यादिप्रश्नरूपेण तत्तत्प्रश्नानाम् उत्तररूपेण च ॥

यज्ञलम्पटाः सांप्रदायिकास्तु एतत् सूक्तं पुरुषमेधे विनियोजयन्ति। तद् यथा। पुरुषमेधे स्नातालंकृतम् उत्सृज्यमानं पुरुषपशुं "केन पार्ष्णी" इत्यर्थसूक्तेन अनुमन्त्रयते। तद् उक्तं वैताने। "तं ह स्नातम् अलंकृतम् उत्सृज्यमानं सहस्रबाहुः पुरुषः [१९.६] केन पार्ष्णी [१०. २] इत्यनुमन्त्रयते" इति [वै० ७. २] ॥

तथा अस्य सूक्तस्य शनैश्चरग्रहदेवत्यहविराज्यहोमे समिदाधानोपस्थानयोश्च विनियोगः। "अथाज्यभागान्ते विषासहिम् [१७. १] इत्यादित्याय हविषो हुत्वाज्यं जुहुयात् समिध आधायोपतिष्ठते" इति प्रक्रम्य शान्तिकल्पे सूत्रितम्। "सहस्रबाहुः पुरुषः [१९. ६] केन पार्ष्णी [१०. २] प्राणाय नमः [११. ६] इति शनैश्चराय" इति [शा० क० १५] ॥

इस सूक्तमें पुरुषका अर्थात् मनुष्यका माहात्म्य वर्णन किया गया है। मनुष्योंके भिन्न २ अवयवोंको किस देवताने बनाया? इत्यादि प्रश्नोत्तरके रूपमें वह माहात्म्य वर्णन किया गया है।

यज्ञलम्पट साम्प्रदायिक इस सूक्तका पुरुषमेधमें विनियोग करते हैं, कि—पुरुषमेधमें स्नान करके अलंकृत उत्सृज्यमान पुरुषपशुका 'केन पार्ष्णी' इस अर्थसूक्तसे अनुमन्त्रण किया जाता है, इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है कि—"तं ह स्नातं अलंकृतं

उत्सृज्यमानं सहस्रबाहुः पुरुषः (१९ । ६) केन पार्ष्णी (१० । २) इत्यनुमन्त्रयते" (वैतानसूत्र ७ । २) ॥

तथा इस सूक्तका शनैश्चरग्रहदेवताकी हवि आज्यहोम समिदाधान तथा उपस्थानमें विनियोग होता है। शान्तिकल्पमें 'आज्यभागके अन्तमें 'विषासहिम्' (१७ । १) से आदित्यके लिये हविकी आहुति देकर घृतकी आहुति देय समिधाओंको रख कर उपस्थान करे' का आरम्भ करके कहा है, कि—"सहस्रबाहुः पुरुषः (१९ । ६) केन पार्ष्णी (१० । २) प्राणाय नमः (११ । ६) इति शनैश्चराय" (शान्तिकल्प १५) ॥

केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ ।
केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि केनोच्छ्लङ्खौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ॥ १ ॥

केन । पार्ष्णी इति । आभृते इत्याऽभृते । पुरुषस्य । केन । मांसम् । सम्ऽभृतम् । केन । गुल्फौ ।
केन । अङ्गुलीः । पेशनीः । केन । खानि । केन । उत्ऽश्लङ्खौ । मध्यतः । कः । प्रतिऽस्थाम् ॥ १ ॥

मनुष्यकी पार्ष्णियों (एड़ियों) को किसने भरा है, मांसको किसने भरा है घुटनोंको किसने भरा है, रूपवती अंगुलियों को किसने पुष्ट किया है, श्लंखोंको और मध्यमें प्रतिष्ठाको किसने किया है ॥ १ ॥

कस्मान्नु गुल्फावधराववकृण्वन्नष्ठीवन्तावुत्तरौ पूरुषस्य

जङ्घे निर्ऋत्य न्यदधुः क्व स्विज्जानुनोः संधी क उ तच्चिकेत ॥ २ ॥

कस्मात् । नु । गुल्फौ । अधरौ । अकृण्वन् । अष्ठीवन्तौ । उत्ऽतरौ । पुरुषस्य ।
जङ्घे इति । निःऽऋत्य । नि । अदधुः । क्व । स्वित् । जानुनोः । संधी इति सम्ऽधी । कः । ऊं इति । तत् । चिकेत ॥ २ ॥

देवताओंने नीचेके घुटनोंको किससे निर्मित किया है और ऊरु तथा पादकी मध्यस्थ जानुओंको किससे किया है, जंघाओंको निर्ऋत करके किससे किया है, जानुओंकी संधि कहाँ है और उसको कौन जानता है ? ॥ २ ॥

चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम् ।
श्रोणी यदूरू क उ तज्जजान याभ्यां कुसिन्धं सुदृढं बभूव ॥ ३ ॥

चतुष्टयम् । युज्यते । संहितऽअन्तम् । जानुऽभ्याम् । ऊर्ध्वम् । शिथिरम् । कबन्धम् ।
श्रोणी इति । यत् । ऊरू इति । कः । ऊं इति । तत् । जजान । याभ्याम् । कुसिन्धम् । सुऽदृढम् । बभूव ॥ ३ ॥

संहितान्त, जानुओंसे ऊपरका भाग, शिथिर और कबन्ध ये

चारों युक्त होते हैं, जिनसे कुसिंध दृढ़ होगया है उन श्रोणी और ऊरुओंको कौन जानता है ॥ ३ ॥

कति॑ दे॒वा क॑त॒मे त आ॑स॒न् य उरो॑ ग्री॒वाश्चि॒क्युः
पूरु॑षस्य ।
कति॒ स्तनौ॒ व्य॑दधुः कः क॑फौ॒डौ कति॑ स्क॒न्धान् कति॑
पृ॒ष्ठीर॑चिन्वन् ॥ ४ ॥

कति॑ । दे॒वाः । क॒त॒मे । ते । आ॒स॒न् । ये । उरः॑ । ग्री॒वाः । चि॒क्युः ।
पुरु॑षस्य ।
कति॑ । स्तनौ॑ । वि । अ॒द॒धुः॒ । कः । क॒फो॒डौ । कति॑ । स्क॒न्धान् ।
कति॑ । पृ॒ष्टीः । अ॒चि॒न्व॒न् ॥ ४ ॥

जो पुरुषकी ग्रीवा और उरःस्थलको जानते हैं, वे देवता कितने हैं और वे कितने प्रकारके हैं, कितने देवताओंने स्तनोंको बनाया है कफोड़ोंको कितने देवताओंने बनाया है, कितने देवताओं ने स्कंधोंको बनाया है और कितने देवताओंने पृष्टियोंको ठीक किया है ॥ ४ ॥

को॑ अ॒स्य बा॒हू सम॑भरद् वी॒र्यं॑ करवा॒दिति॑ ।
अंसौ॒ को अ॒स्य तद् दे॒वः कुसि॑न्धे॒ अध्या द॑धौ ॥ ५ ॥

कः॑ । अ॒स्य । बा॒हू इति॑ । सम् । अ॒भ॒र॒त् । वी॒र्य॑म् । क॒र॒वा॒त् । इति॑ ।
अंसौ॑ । कः । अ॒स्य । तत् । दे॒वः । कुसि॑न्धे । अधि॑ । आ । द॒धौ॒ ५

किस देवताने इसकी भुजाओंको पुष्ट किया है, और किसने

वीर्यको किया है, किस देवताने इसके कंधोंको किया है, और कुसिंध पर किसने रक्खा है ॥ ५ ॥

कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके
चक्षणी मुखम् ।
येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति
यामम् ॥ ६ ॥

कः । सप्त । खानि । वि । ततर्द । शीर्षणि । कर्णौ । इमौ । नासिके इति । चक्षणी इति । मुखम् ।
येषाम् । पुरुऽत्रा । विऽजयस्य । मह्मनि । चतुःऽपादः । द्विऽपदः । यन्ति । यामम् ॥ ६ ॥

किस देवताने मनुष्यके शिरमें दो कान, दो नथौड़े, दो नेत्र और एक मुख इस प्रकार सात छिद्रोंको शिर फाड़ कर किया है कि–इन देवताओंकी विजयकी महिमारूप अनेक स्थानोंमें होकर दो और चार पैर वाले जीव यमके निवासस्थानको चले जाते हैं ॥ ६ ॥

हन्वोर्हि जिह्वामदधात् पुरूचीमधा महीमधि शिश्राय
वाचम् ।
स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरपो वसानः क उ
तच्चिकेत ॥ ७ ॥

हन्वोः । हि । जिह्वाम् । अदधात् । पुरूचीम् । अध । महीम् । अधि । शिश्राय । वाचम् ।

चारों युक्त होते हैं, जिनसे कुसिंध दृढ़ होगया है उन श्रोणी और ऊरुओंको कौन जानता है ॥ ३ ॥

कति देवा कतमे त आसन् य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य ।
कति स्तनौ व्यदधुः कः कफोडौ कति स्कन्धान् कति पृष्ठीरचिन्वन् ॥ ४ ॥

कति । देवाः । कतमे । ते । आसन् । ये । उरः । ग्रीवाः । चिक्युः । पुरुषस्य ।
कति । स्तनौ । वि । अदधुः । कः । कफोडौ । कति । स्कन्धान् ।
कति । पृष्टीः । अचिन्वन् ॥ ४ ॥

जो पुरुषकी ग्रीवा और उरःस्थलको जानते हैं, वे देवता कितने हैं और वे कितने प्रकारके हैं, कितने देवताओंने स्तनोंको बनाया है कफोड़ोंको कितने देवताओंने बनाया है, कितने देवताओं ने स्कंधोंको बनाया है और कितने देवताओंने पृष्टियोंको ठीक किया है ॥ ४ ॥

को अस्य बाहू समभरद् वीर्यं करवादिति ।
अंसौ को अस्य तद् देवः कुसिन्धे अध्या दधौ ॥५॥

कः । अस्य । बाहू इति । सम् । अभरत् । वीर्यम् । करवात् । इति ।
अंसौ । कः । अस्य । तत् । देवः । कुसिन्धे । अधि । आ । दधौ ५

किस देवताने इसकी भुजाओंको पुष्ट किया है, और किसने

वीर्यको किया है, किस देवताने इसके कंधोंको किया है, और कुसिंध पर किसने रक्खा है ॥ ५ ॥

कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम् ।
येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥ ६ ॥

कः । सप्त । खानि । वि । ततर्द । शीर्षणि । कर्णौ । इमौ । नासिके इति । चक्षणी इति । मुखम् ।
येषाम् । पुरुऽत्रा । विऽजयस्य । मह्मनि । चतुःऽपादः । द्विऽपदः । यन्ति । यामम् ॥ ६ ॥

किस देवताने मनुष्यके शिरमें दो कान, दो नथौड़े, दो नेत्र और एक मुख इस प्रकार सात छिद्रोंको शिर फाड़ कर किया है कि–इन देवताओंकी विजयकी महिमारूप अनेक स्थानोंमें होकर दो और चार पैर वाले जीव यमके निवासस्थानको चले जाते हैं ॥ ६ ॥

हन्वोर्हि जिह्वामदधात् पुरूचीमधा महीमधि शिश्राय वाचम् ।
स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरपो वसानः क उ तच्चिकेत ॥ ७ ॥

हन्वोः । हि । जिह्वाम् । अदधात् । पुरूचीम् । अध । महीम् । अधि । शिश्राय । वाचम् ।

२० २७-८-३०

सः । आ । वरीवर्ति । भुवनेषु । अन्तः । अपः । वसानः । कः ।
ऊं इति । तत् । चिकेत ॥ ७ ॥

अनेक स्थानोंमें जाने वाली जिह्वाको ठोड़ीमें किसने रक्खा है, फिर उसमें बड़ी भारी वाणीको किसने स्थापित किया है, जल को धारण करने वाला वह देव प्राणियोंके भीतर घूमता रहता है, उसको कौन जानता है ? ॥ ७ ॥

मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटं ककाटिकां प्रथमो यः कपालम् ।
चित्वा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य दिवं रुरोह कतमः स देवः ॥ ८ ॥

मस्तिष्कम् । अस्य । यतमः । ललाटम् । ककाटिकाम् । प्रथमः । यः । कपालम् ।
चित्वा । चित्यम् । हन्वोः । पुरुषस्य । दिवम् । रुरोह । कतमः । सः । देवः ॥ ८ ॥

जो प्रथम देवता इस पुरुषके मस्तिष्कका जितना भाग ललाट है उसका, ककाटिकाका, कपालका और हनुओंके चयनीय अंशका चयन करके स्वर्गको गया है वह कौनसा देवता है ॥ ८ ॥

प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संबाधतन्द्र्यः ।
आनन्दानुग्रो नन्दांश्च कस्माद् वहति पूरुषः ॥ ९ ॥

प्रियऽअप्रियाणि । बहुला । स्वप्नम् । संबाधऽतन्द्र्यः ।

आऽनन्दान् । उग्रः । नन्दान् । च । कस्मात् । वहति । पुरुषः ९

यह उग्र पुरुष किस देवतासे बहुतसी प्रिय और अप्रिय बातों को, स्वप्नको सम्बाधतन्द्रियोंको आनन्दोंको और हर्षोंको धारण करता है ॥ ९ ॥

आर्तिरवर्तिर्निर्ऋतिः कुतो नु पुरुषे मतिः ।
राद्धिः समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः ॥ १० ॥

आर्तिः । अवर्तिः । निःऽऋतिः । कुतः । नु । पुरुषे । अमतिः ।
राद्धिः । सम्ऽऋद्धिः । अविऽऋद्धिः । मतिः । उत्ऽइतयः कुतः १०

पुरुषमें पीड़ा, आजिविकारहितत्व, पाप और मति कहाँसे आती है, सिद्धि समृद्धि विशेष ऋद्धि, मति और उदिति कहाँसे आती है ॥ १० ॥ (४)

को अस्मिन्नापो व्यदधाद् विषूवृतः पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः ।
तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रधूम्रा ऊर्ध्वा अवाची पुरुषे तिरश्चीः ॥ ११ ॥

कः । अस्मिन् । आपः । वि । अदधात् । विषुऽवृतः । पुरुऽवृतः ।
सिन्धुऽसृत्याय । जाताः ।
तीव्राः । अरुणाः । लोहिनीः । ताम्रऽधूम्राः । ऊर्ध्वाः । अवाचीः ।
पुरुषे । तिरश्चीः ॥ ११ ॥

जो जल सिंधुकी ओर बहनेके लिये हुए हैं, अनेकोंका वरण करने वाले हैं, सब ओर वर्तमान हैं, उस जलको तीव्र अरुण, लोहित, ताम्रधूम वर्णमें ऊपर नीचे और तिरछे जानेके लिये पुरुषमें किसने स्थापित किया है ॥ ११ ॥

को अ॑स्मिन् रू॒पम॑दधा॒त् को म॒ह्मानं॑ च॒ नाम॑ च ।
गा॒तुं को अ॑स्मि॒न् कः के॒तुं कश्च॒रित्रा॑णि॒ पूरु॑षे १२

०अ॒स्मि॒न् । रू॒पम् । अ॒द॒धा॒त् । कः । म॒ह्मान॑म् । च॒ । नाम॑ । च॒ ।
गा॒तुम् । कः । अ॒स्मि॒न् । कः । के॒तुम् । कः । च॒रि॑त्राणि । पुरु॑षे १२

किस देवताने इस पुरुषमें रूपको, महिमाको, नामको ज्ञानको, चरित्रोंको, और गतिको स्थापित किया है ॥ १२ ॥

को अ॑स्मिन् प्रा॒णम॑वय॒त् को अ॑पा॒नं व्या॒नमु॑ ।
स॒मा॒नम॑स्मि॒न् को दे॒वोधि॑ शिश्राय॒ पूरु॑षे ॥ १३ ॥

०अ॒स्मि॒न् । प्रा॒णम् । अ॒व॒य॒त् । कः । अ॒पा॒नम् । वि॒ऽआ॒नम् । उ॒ं
इति॑ ।
स॒म्ऽआ॒नम् । अ॒स्मि॒न् । कः । दे॒वः । अधि॑ । शि॒श्रा॒य॒ । पुरु॑षे १३

किस देवताने इस पुरुषमें प्राण अपान व्यान और समान-वायुको प्रतिष्ठित किया है (ब्रह्माने किया है) ॥ १३ ॥

को अ॑स्मिन् य॒ज्ञम॑दधा॒देको॑ दे॒वोधि॒ पूरु॑षे ।
को अ॑स्मिन्त्स॒त्यं कोनृ॑तं॒ कुतो॑ मृ॒त्युः कु॒तोमृत॑म् १४

कः । अ॒स्मि॒न् । य॒ज्ञम् । अ॒द॒धा॒त् । एकः॑ । दे॒वः । अधि॑ । पुरु॑षे ।

कः । अस्मिन् । सत्यम् । कः । अनृतम् । कुतः । मृत्युः । कुतः । अमृतम् ॥ १४ ॥

किस प्रधानदेवने इस पुरुषमें यज्ञको स्थापित किया है, और सत्य, झूँठ, मृत्यु और अमरत्वको भी इस पुरुषमें स्थापित किया है ॥ १४ ॥

को अस्मै वासः पर्यदधात् को अस्यायुरकल्पयत् ।
बलं को अस्मै प्रायच्छत् को अस्याकल्पयज्जवम् १५

कः । अस्मै । वासः । परि । अदधात् । कः । अस्य । आयुः । अकल्पयत् ।
बलम् । कः । अस्मै । प्र । अयच्छत् । कः । अस्य । अकल्पयत् । जवम् ॥ १५ ॥

इसमें जिससे शरीर ढका हुआ है उस चर्मको किसने स्थापित किया है, इसकी आयुकी कल्पना किसने की है, इसको बल किसने दिया है और इसमें वेगकी कल्पना किसने की है ॥ १५ ॥

केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद् रुचे ।
उषसं केनान्वैन्द्ध केन सायंभवं ददे ॥ १६ ॥

केन । आपः । अनु । अतुनुत । केन । अहः । अकरोत् । रुचे ।
उषसम् । केन । अनु । ऐन्द्ध । केन । सायम्ऽभवम् । ददे ॥१६॥

किसके द्वारा जल इसमें विस्तृत हुए हैं, किसके द्वारा देवता ने कान्तिके लिये इसके अर्थ दिनको किया है । किसके द्वारा उषाको दीप्त किया है और किसके द्वारा सायंभवको दिया है १६

को अस्मिन् रेतो न्यदधात् तन्तुरा तायतामिति ।
मेधां को अस्मिन्नध्यौहत् को बाणं को नृतो दधौ १७

कः । अस्मिन् । रेतः । नि । अदधात् । तन्तुः । आ । तायताम् ।
इति ।
मेधाम् । कः । अस्मिन् । अधि । औहत् । कः । बाणम् । कः ।
नृतः । दधौ ॥ १७ ॥

प्रजातन्तुको विस्तृत करो इस लिये इसमें वीर्यको किसने स्थापित किया है इसमें मेधाको किसने स्थापित किया है किस नृत ने इसमें बाणको स्थापित किया है (उत्तर-ब्रह्माने) ॥ १७ ॥

केनेमां भूमिमौर्णोत् केन पर्यभवद् दिवम् ।
केनाभि मह्ना पर्वतान् केन कर्माणि पूरुषः ॥१८॥

केन । इमाम् । भूमिम् । और्णोत् । केन । परि । अभवत् । दिवम् ।
केन । अभि । मह्ना । पर्वतान् । केन । कर्माणि । पुरुषः ॥१८॥

किस प्रभावके द्वारा इसने भूमिको आच्छादित कर लिया है, और किस प्रभावसे यह स्वर्ग पर आरूढ़ होजाता है और पुरुष किस महिमासे पुरुष पर्वत पर चढ़ता है और कर्मोंको करता है १८

केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम् ।
केन यज्ञं च श्रद्धां च केनास्मिन् निहितं मनः १९

केन । पर्जन्यम् । अनु । एति । केन । सोमम् । विऽचक्षणम् ।

केन । यज्ञम् । च । श्रद्धाम् । च । केन । अस्मिन् । निऽहितम् ।
मनः ॥ १९ ॥

किससे यह पुरुष पर्जन्यको प्राप्त होता है और किससे विचक्षण सोमको प्राप्त होता है, किससे यज्ञ और श्रद्धाको प्राप्त होता है, और ब्रह्मने इस सत्कर्ममें इसके मनको प्रेरित किया है ॥ १९ ॥

केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम् ।
केनेममग्निं पूरुषः केन संवत्सरं ममे ॥ २० ॥

केन । श्रोत्रियम् । आप्नोति । केन । इमम् । परमेऽस्थिनम् ।
केन । इमम् । अग्निम् । पुरुषः । केन । सम्ऽवत्सरम् । ममे २०

किस (कर्म वा देवता) के द्वारा यह श्रोत्रियको प्राप्त होरहा है, और किसके द्वारा यह परमेष्ठीको प्राप्त होरहा है, किसके द्वारा यह पुरुष अग्निको प्राप्त होरहा है और किसके द्वारा यह सम्वत्सर का मान कर रहा है ॥ २० ॥ (५)

ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम् ।
ब्रह्मेममग्निं पूरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे ॥ २१ ॥

ब्रह्म । श्रोत्रियम् । आप्नोति । ब्रह्म । इमम् । परमेऽस्थिनम् ।
ब्रह्म । इमम् । अग्निम् । पुरुषः । ब्रह्म । सम्ऽवत्सरम् । ममे २१

ब्रह्म ही श्रोत्रियको प्राप्त होता है, ब्रह्म ही इस परमेष्ठीको प्राप्त होता हो, ब्रह्म ही इस अग्निको प्राप्त होरहा है और ब्रह्म ही सम्वत्सरका मान करता है । (ब्रह्मके द्वारा ही पुरुष इन सबको प्राप्त होता है) ॥ २१ ॥

केन देवाँ अनु क्षियति केन दैवजनीर्विशः ।
केनेदमन्यन्नक्षत्रं केन सत् क्षत्रमुच्यते ॥ २२ ॥

केन । देवान् । अनु । क्षियति । केन । दैवऽजनीः । विशः ।
केन । इदम् । अन्यत् । नक्षत्रम् । केन । सत् । क्षत्रम् । उच्यते २२

किस कर्मके द्वारा देवताओंके अनुकूल निवास कर सकता है, किस प्रकार देवप्रजाओंके अनुकूल रह सकता है, किसके द्वारा और क्षत्र नहीं होता और किसके द्वारा सत् क्षत्र होजाता है ॥२२॥

ब्रह्म देवाँ अनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः ।
ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत् क्षत्रमुच्यते ॥ २३ ॥

ब्रह्म । देवान् । अनु । क्षियति । ब्रह्म । दैवऽजनीः । विशः ।
ब्रह्म । इदम् । अन्यत् । नक्षत्रम् । ब्रह्म । सत् । क्षत्रम् । उच्यते २३

मन्त्र देवताओंके अनुकूल निवास करता है, मन्त्र देवसंबंधी प्रजाओंके अनुकूल रहता है, ब्रह्म ही यह है और क्षत्र नहीं है, सत् ब्रह्म ही क्षत्र कहलाता है ॥ २३ ॥

केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता ।
केनेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥२४॥

केन । इयम् । भूमिः । विऽहिता । केन । द्यौः । उत्ऽतरा । हिता ।
केन । इदम् । ऊर्ध्वम् । तिर्यक् । च । अन्तरिक्षम् । व्यचः ।
हितम् ॥ २४ ॥

इस भूमिको किसने स्थापित किया है, उत्तर द्यौको किसने

स्थापित किया है, ऊपरके भागको, तिर्यक्भागको और जिसमें अनेक प्रकारके प्राणी गमन करते हैं उस अन्तरिक्षको किसने बनाया है ॥ २४ ॥

ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता ।
ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥२५॥

ब्रह्मणा । भूमिः । विऽहिता । ब्रह्म । द्यौः । उत्ऽतरा । हिता । ब्रह्म । इदम् । ऊर्ध्वम् । तिर्यक् । च । अन्तरिक्षम् । व्यचः । हितम् ॥ २५ ॥

ब्रह्मने ही भूमिको बनाया है और ब्रह्मने ही श्रेष्ठ द्यौको बनाया है और ब्रह्मने ऊपरके भागको, तिरछे भागको और जिसमें अनेक प्रकारके प्राणी गमन करते हैं उस अन्तरिक्षको बनाया है२५

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः ॥२६॥

मूर्धानम् । अस्य । सम्ऽसीव्य । अथर्वा । हृदयम् । च । यत् । मस्तिष्कात् । ऊर्ध्वः । प्र । ऐरयत् । पवमानः । अधि । शीर्षतः २६

अथर्वा (प्रजापतिने) इसके मूर्धा और हृदयको सियाँ, फिर उस ऊर्ध्व पवमानने मस्तिष्कसे और शिरसे प्रेरणा की । २६ ।

तद् वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः ।
तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः २७

तत् । वै । अथर्वणः । शिरः । देवऽकोशः । सम्ऽउब्जितः ।

२१ २८-८-३०

तत् । प्राणः । अभि । रक्षति । शिरः । अन्नम् । अथो इति ।
मनः ॥ २७ ॥

वह यह अथर्वाका दिया हुआ शिर भली प्रकार सरलतासे स्थित है और देव (इन्द्रिय वा देवताओं) का कोशरूप है, प्राण उसकी रक्षा करता है और अन्न और मन भी उस शिरकी रक्षा करता है ॥ २७ ॥

ऊर्ध्वो नु सृष्टा३स्तिर्यङ् नु सृष्टा३ः सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवाँ३ ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ २८ ॥

ऊर्ध्वः । नु । सृष्टा३ः । तिर्यङ् । नु । सृष्टा३ः । सर्वाः । दिशः ।
पुरुषः । आ । बभूवाँ३ ।
पुरम् । यः । ब्रह्मणः । वेद । यस्याः । पुरुषः । उच्यते ॥२८॥

जिसका पुरुष कहलाता है उस ब्रह्माकी पुरीको जो जानता है वह पुरुष ऊपरकी रची दिशामें, तिरछी रची हुई दिशामें अधिक क्या सब दिशाओंमें प्रकट होजाता है, अपने प्रभावको प्रकट करता है ॥ २८ ॥

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः २९

यः । वै । ताम् । ब्रह्मणः । वेद । अमृतेन । आऽवृताम् । पुरम् ।
तस्मै । ब्रह्म । च । ब्राह्माः । च । चक्षुः । प्राणम् । प्रऽजाम् । ददुः २९

ब्रह्माकी अमृतसे भरी उस पुरीको जो जानता है उसको ब्रह्म और मन्त्रमय कर्म, चक्षुः प्राण और प्रजाको देते हैं ॥ २९ ॥

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ ३० ॥

न । वै । तम् । चक्षुः । जहाति । न । प्राणः । जरसः । पुरा ।
पुरम् । यः । ब्रह्मणः । वेद । यस्याः । पुरुषः । उच्यते ॥३०॥

जिस ब्रह्मपुरमें शयन करनेसे (पुरि शेते पुरुषः) पुरुष जिसका पुरुष कहलाता है उस ब्रह्मपुर (हृदयपुण्डरीक) को जो जानता है, बुढ़ापेसे पहिले प्राण चक्षु उसको नहीं छोड़ते हैं ३०

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥ ३१ ॥

अष्टाऽचक्रा । नवऽद्वारा । देवानाम् । पूः । अयोध्या ।
तस्याम् । हिरण्ययः । कोशः । स्वःऽगः । ज्योतिषा । आऽवृतः ३१

आठ चक्र वाली और नौ द्वार वाला देवताओंकी (इन्द्रियोंकी) अयोध्या पुरी है, उसमें हिरण्मय स्वर्गप्रद कोश ज्योतिसे आवृत है

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ३२

तस्मिन् । हिरण्यये । कोशे । त्रिऽअरे । त्रिऽप्रतिस्थिते ।
तस्मिन् । यत् । यक्षम् । आत्मन्ऽवत् । तत् । वै । ब्रह्मऽविद । विदुः ३२

उस त्र्यर त्रिप्रतिष्ठित हिरण्मय कोशमें जो पूजनीय आत्माका स्थान है उसको ब्रह्मवेत्ता जानते हैं ॥ ३२ ॥

प्र॒भ्राज॑मानां॒ हरि॑णीं॒ यश॑सा सं॒परी॑वृताम् ।
पुरं॑ हिर॒ण्ययीं॒ ब्रह्मा वि॑वे॒शाप॑राजिताम् ॥ ३३ ॥

प्र॒ऽभ्राज॑मानम् । हरि॑णीम् । यश॑सा । स॒म्ऽपरि॑वृताम् ।
पुर॑म् । हि॒र॒ण्ययी॑म् । ब्रह्म॑ । आ । वि॒वे॒श॒ । अप॑राऽजिताम् ३३

प्रथमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥ इति प्रथमोनुवाकः ॥

पापहारक, यशसे सम्पन्न होनेके कारण दमकते हुए हिरण्यमय अपराजित पुरमें ब्रह्म प्रवेश करता है ॥ २२ ॥ (६)

प्रथम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (४७०)

प्रथम अनुवाक समाप्त ॥

अस्मिन् सूक्ते वरणस्य नाम मणेः प्रतापो वीर्यं शत्रुक्षयसामर्थ्यं धारयितृसर्वदुःखपरिहरणं च वर्ण्यते । तदनुसारेणैव सांप्रदायिकास्तद् विनियोजयन्ति । तद् यथा ।

शत्रुक्षयादिकामः "अयं मे वरणः" इत्यर्थसूक्तेन दध्नि मधुनि च त्रिरात्रं वासितं वरणमणिं संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् । सूत्रितं हि । "अयं मे वरणः [१०. ३] अरातीयोः [१०. ६] इति मन्त्रोक्तान् वासितान् बध्नाति" इति [कौ० ३. २]॥

तथा "अभयां भयार्तस्य" इति [न० क० १७] विहितायाम् अभयाख्यायां महाशान्तौ वरणमणिबन्धनेपि एतत् सूक्तम् । उक्तं नक्षत्रकल्पे । "अयं मे वरणो मणिरिति वारणम् अभयायाम्" इति [न० क० १९] ॥

इस सूक्तमें वरणनामक मणिका प्रताप वीर्य, इस मणिकी शत्रुओंका क्षय करनेकी शक्ति तथा अपने धारण करने वालोंके

सब दुःखोंके हरणका वर्णन किया जावेगा। इसी लिये साम्प्रदायिक विनियोग करते हैं, कि–

शत्रुक्षय आदिको चाहने वाला "अयं मे वरणः" इस अर्थसूक्तसे दही और मधुमें तीन रात तक बसाई हुई वरणमणिको संपातित और अभिमन्त्रित करके बाँधे। इस विषयमें। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"अयं मे वरणः (१०। ३) अरातीयो (१० । ६) इति मन्त्रोक्तान् वासितान् बध्नाति" (कौशिकसूत्र ३ । २) ॥

तथा "अभयां भयार्तस्य–भयार्तके लिये अभया शान्तिको करे" इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित अभया नाम वाली महाशान्तिके वरणमणिबन्धनमें भी यह सूक्त आता है। इसी बात को नक्षत्रकल्पमें कहा है, कि–"अयं मे वरणो मणिरिति वारणं अभयायाम्" (नक्षत्रकल्प १६) ॥

अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा ।
तेना रभस्व त्वं शत्रून् प्र मृणीहि दुरस्यतः ॥ १ ॥

अयम् । मे । वरणः । मणिः । सपत्नऽक्षयणः । वृषा ।
तेन । आ । रभस्व । । त्वम् । शत्रून् । प्र । मृणीहि । दुरस्यतः १

यह वरण नामक वृक्षकी बनी हुई मेरी मणि शत्रुओंका संहार करनेकी शक्ति रखती है और अभिमत फलोंकी वर्षा करने वाली है, उससे तू उद्योगका आरम्भ कर और दुष्टताकी बौछार करने वाले शत्रुओंका मर्दन कर डाल ॥ १ ॥

प्रैणान्छृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरएता
पुरस्तात् ।

अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वःश्वः

प्र । एनान् । शृणीहि । प्र । मृण । आ । रभस्व । मणिः । ते ।
अस्तु । पुरःऽएता । पुरस्तात् ।
अवारयन्त । वरणेन । देवाः । अभिऽआचारम् । असुराणाम् ।
श्वःऽश्वः ॥ २ ॥

तू इन शत्रुओंको मसल, इनको दबाना आरम्भ कर, मणि तेरे आगे २ चलने वाला हो, देवता इस वरण नामक मणिकी सहायतासे दूसरे दिन ही असुरोंके अभ्याचारको दूर कर देते थे २

अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः ।
स ते शत्रूनधरान् पादयाति पूर्वस्तान् दभ्नुहि ये त्वा द्विषन्ति ॥ ३ ॥

अयम् । मणिः । वरणः । विश्वऽभेषजः । सहस्रऽअक्षः । हरितः ।
हिरण्ययः ।
सः । ते । शत्रून् । अधरान् । पादयाति । पूर्वः । तान् । दभ्नुहि ।
ये । त्वा । द्विषन्ति ॥ ३ ॥

यह वरणमणि सब प्रकारके दुःखोंकी चिकित्सारूप है, सहस्राक्षकी समान पराक्रमी है, हरित है और हित रमणीय है, यह तेरे शत्रुओंको नीचेको गिरा देगी, जो तुझसे द्वेष करते है, पहिले तू उनको मार डाल ॥ ३ ॥

अयं ते कृत्यां विततां पौरुषेयादयं भयात् ।
अयं त्वा सर्वस्मात् पापाद् वरणो वारयिष्यते ॥४॥

अयम् । ते । कृत्याम् । विऽतताम् । पौरुषेयात् । अयम् । भयात् ।
अयम् । त्वा । सर्वस्मात् । पापात् । वरणः वारयिष्यते ॥ ४ ॥

यह वरणमणि तेरे लिये फैलाई हुई कृत्याको निवारण कर देगी और पुरुषसे होने वाले भयसे तुझको निर्भय कर देगी और यह वरणमणि तुझको सकल पापोंसे भी अलग रक्खेगी ४

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥५॥

वरणः । वारयातै । अयम् । देवः । वनस्पतिः ।
यक्ष्मः । यः । अस्मिन् । आऽविष्टः । तम् । ऊं इति । देवाः । अवीवरन् ॥ ५ ॥

यह सामने वर्तमान दानादिगुण युक्त वरणमणि हमारे रोग शत्रु आदिको हटा देय, इस पुरुषमें जो यक्ष्मा आदि रोग प्रविष्ट होगया है, उसको देवता निवारण करें ॥ ५ ॥

स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम् ।
परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते

स्वप्नम् । सुप्त्वा । यदि । पश्यासि । पापम् । मृगः । सृतिम् ।
यति । धावात् । अजुष्टाम् ।

परिऽक्षवात् । शकुनेः । पापऽवादात् । अयम् । मणिः । वरणः ।
वारयिष्यते ॥ ६ ॥

हे पुरुष ! यदि तू सोकर पापमय स्वप्नको देख चुका है और आभीतिकर दिशाकी ओर यदि मृग दौड़ गया है तो इन दोनों दुर्निमित्तोंसे और छींकसे, कौए आदि पक्षियों पापवादसे यह वरणमणि तुझको बचावेगा ॥ ६ ॥

अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात् ।
मृत्योरोजीयसो वधाद् वरणो वारयिष्यते ॥ ७ ॥

अरात्याः । त्वा । निःऽऋत्याः । अभिऽचारात् । अथो इति । भयात् ।
मृत्योः । ओजीयसः । वधात् । वरणः । वारयिष्यते ॥ ७ ॥

हे पुरुष ! यह वरणमणि तुझको शत्रुसे, निर्ऋतिसे अभिचारसे भयसे और मृत्युके ओजभरे बलसे बचावेगी ॥ ७ ॥

यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरो यच्च मे स्वा यदेनश्चकृमा वयम् ।
ततो नो वारयिष्यतेयं देवो वनस्पतिः ॥ ८ ॥

यत् । मे । माता । यत् । मे । पिता । भ्रातरः । यत् । च । मे ।
स्वाः । यत् । एनः । चकृम । वयम् ।
ततः । नः । वारयिष्यते । अयम् । देवः । वनस्पतिः ॥ ८ ॥

यह वनस्पतिदेव मणि, मेरी माता मेरे पिता, भाई और मेरे आत्मीयोंने जो कुछ पाप किया है, उससे मेरी रक्षा करेगी ॥८॥

वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः ।
असूर्तं रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधमं तमः ॥ ९ ॥

वरणेन । प्रऽव्यथिताः । भ्रातृव्याः । मे । सऽबन्धवः ।
असूर्तम् । रजः । अपि । अगुः । ते । यन्तु । अधमम् । तमः ।९।

इस वरणमणिसे मेरे गोत्रके बंधुरूप शत्रु मुझसे व्यथित हो रहे हैं, वे विस्तृत रजको प्राप्त होरहे हैं और वे भयंकर अंधकार को प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

अरिष्टोहमरिष्टगुरायुष्मान्त्सर्वपूरुषः ।
तं मायं वरणो मणिः परि पातु दिशोदिशः ॥१०॥

अरिष्टः । अहम् । अरिष्टऽगुः । आयुष्मान् । सर्वऽपुरुषः ।
तम् । मा । अयम् । वरणः । मणिः । परि । पातु । दिशःऽदिशः

मैं रिष्ट–हिंसा–से रहित होगया हूँ, शान्तिको प्राप्त होरहा हूँ मैं आयुष्मान् होऊँ और पुत्र भृत्य आदि सब पुरुषोंसे सम्पन्न रहूँ, उस मुझको यह वरणमणि दिशा प्रदिशामें रक्षित रक्खे १०

अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः ।
स मे शत्रून् वि बाधतामिन्द्रो दस्यूनिवासुरान् ११

अयम् । मे । वरणः । उरसि । राजा । देवः । वनस्पतिः ।
सः । मे । शत्रून् । वि । बाधताम् । इन्द्रः । दस्यून्ऽइव । असुरान्

यह वनस्पतिकी बनी वरणमणि दानादिगुणयुक्त है, दमकती

रहती है यह मेरे वक्षःस्थलमें विराजमान है, अतः जैसे इन्द्र असुरोंको पीड़ा देते हैं, तिस प्रकार मेरे शत्रु-डाँकुओं-को बाधा देय ११

इमं बिभर्मि वरणमायुष्मान्छतशारदः ।
स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत् ॥ १२ ॥

इमम् । बिभर्मि । वरणम् । आयुष्मान् । शतऽशारदः ।
सः । मे । राष्ट्रम् । च । क्षत्रम् । च । पशून् । ओजः । च । मे । दधत्

मैं सौ वर्षकी आयु पा आयुष्मान् होनेके लिये इस वरणमणि को धारण करता हूँ, यह मणि मुझमें राष्ट्र, रक्षकशक्ति, पशु और बलको स्थापित करे ॥ १२ ॥

यथा वातो वनस्पतीन् वृक्षान् भनक्त्योजसा ।
एवा सपत्नान् मे भङ्ग्धि पूर्वान् जाताँ उतापरान्
वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥ १३ ॥

यथा । वातः । वनस्पतीन् । वृक्षान् । भनक्ति । ओजसा ।
एव । सऽपत्नान् । मे । भङ्ग्धि । पूर्वान् । जातान् । उत । अपरान् । वरणः । त्वा । अभि । रक्षतु ॥ १३ ॥

जैसे वायु अपने बलसे वनस्पतियोंको और वृक्षोंको तोड़ डालता है, इसी प्रकार यह वरणमणि मेरे पहिले उत्पन्न हुए और पीछे उत्पन्न होने वाले शत्रुओंको नष्ट कर डाले (हे यजमान!) यह वरणमणि तेरी रक्षा करे ॥ १३ ॥

यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षान् प्सातो वनस्पतीन् ।

एवा सपत्नान् मे प्साहि पूर्वान्० ॥ १४ ॥

यथा । वातः । च । अग्निः । च । वृक्षान् । प्सातः । वनस्पतीन् ।

० । सऽपत्नान् । मे । प्साहि । पूर्वान् । ० ॥ १४ ॥

जैसे अग्नि और वायु वृक्ष और वनस्पतियोंके पास जा उनका भक्षण कर-डाल-ते हैं, इसी प्रकार हे वरणमणे ! तू मेरे पहिले और पीछेके शत्रुओंको नष्ट कर (उत्तरमें पुरोहित यजमानसे कहता है, कि-) वरणमणि तेरी रक्षा करे ॥ १४ ॥

यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्यर्पिताः ।
एवा सपत्नांस्त्वं मम प्र क्षिणीहि न्यर्पय पूर्वान् जाताँ
उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥ १५ ॥

यथा । वातेन । प्रऽक्षीणाः । वृक्षाः । शेरे । निऽअर्पिताः ।

एव । सऽपत्नान् । त्वम् । मम । प्र । क्षिणीहि । नि । अर्पय ।

पूर्वान् । जातान् । उत । अपरान् । वरणः । त्वा । अभि । रक्षतु १५

जैसे वायुसे क्षीण हुए वृक्ष पृथ्वीके अर्पित होकर सोजाते हैं हे वरणमणि ! तू इस प्रकार मेरे पूर्वजात और परजात शत्रुओं को क्षीण कर पृथ्वीके अर्पण करदे (उत्तरमें पुरोहित यजमान को आशीर्वाद देता है, कि-) वरणमणि तेरी रक्षा करे ॥१५॥

तांस्त्वं प्र च्छिन्द्धि वरण पुरा दिष्टात् पुरायुषः ।
य एनं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः १६

तान् । त्वम् । प्र । छिन्द्धि । वरण । पुरा । दिष्टात् । पुरा । आयुषः ।
ये । एनम् । पशुषु । दिप्सन्ति । ये । च । अस्य । राष्ट्रऽदिप्सवः १६

जो इस यजमानके पशुओंको छीनना चाहते हैं और इसके राष्ट्रका हरण करना चाहते हैं हे वरणमणे! तू उनको आयु और प्रारब्धसे पहिले ही नष्ट कर ॥ १६ ॥

यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन् तेज आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१७॥

यथा । सूर्यः । अतिऽभाति । यथा । अस्मिन् । तेजः । आऽहितम् ।
एव । मे । वरणः । मणिः । कीर्तिम् । भूतिम् । नि । यच्छतु ।
तेजसा । मा । सम् । उक्षतु । यशसा । सम् । अनक्तु । मा १७

जिस प्रकार सूर्य बहुत दमकते हैं और जिस प्रकार इनमें तेज अधिष्ठित है इसी प्रकार यह वरणमणि मुझको कीर्ति और भूति देवे, तेजसे मुझको सम्पन्न करे, यशसे मुझको सम्पन्न करे १७

यथा यशश्चन्द्रमस्यादित्ये च नृचक्षसि । एवा मे० १८

यथा । यशः । चन्द्रमसि । आदित्ये । च । नृऽचक्षसि ॥०॥ १८

जैसे सब प्राणियोंके साक्षी और चन्द्रमामें यश प्रतिष्ठित है, उसी प्रकार यह वरणमणि मुझको कीर्ति और भूति देवे, तेजसे और यशसे मुझको सम्पन्न करे ॥ १८ ॥

यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिन् जातवेदसि । एवा० १९

०। यशः। पृथिव्याम्। यथा। अस्मिन्। जातऽवेदसि ॥० १९

जैसे पृथिवीमें यश प्रतिष्ठित है और जिस प्रकार जातवेदा अग्निमें यश प्रतिष्ठित है इसी प्रकार यह वरणमणि मुझको कीर्ति और भूति देवे, तेजसे और यशसे मुझको सम्पन्न करे १९

यथा यशः कन्यायां यथास्मिन्त्संभृते रथे। एवा० २०

०। यशः। कन्यायाम्। यथा। अस्मिन्। सम्ऽभृते। रथे ॥० २०

जिस कन्यामें यश है और जिस प्रकार संभृत रथमें यश है इसी प्रकार यह वरणमणि मुझको भूति और कीर्ति देवे, तेजसे और यशसे सम्पन्न करे ॥ २० ॥

यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः। एवा० २१

०। यशः। सोमऽपीथे। मधुऽपर्के। यथा। यशः ॥०॥ २१ ॥

जिस प्रकार सोमपीथमें और मधुपर्कमें यश प्रतिष्ठित है इसी प्रकार यह वरणमणि मुझको भूति और कीर्ति देवे तथा तेज और यशसे मुझको सम्पन्न करे ॥ २१ ॥

यथा यशोग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः। एवा० २२

०। यशः। अग्निऽहोत्रे। वषट्ऽकारे। यथा। यशः ॥ ० ॥२२॥

अग्निहोत्रमें और वषट्कारमें जिस प्रकार यश प्रतिष्ठित है, इसी प्रकार वरणमणि मुझको कीर्ति और भूति देवे तेजसे और यशसे मुझे सम्पन्न करे ॥ २० ॥

यथा यशो यजमाने यथास्मिन् यज्ञ आहितम्। एवा०

०। यशः। यजमाने। यथा। अस्मिन्। यज्ञे। आऽहितम् ॥० २३

यजमानमें जैसा यश होता है और जिस प्रकार इस यजमान में यज्ञ आहित होता है, इसी प्रकार यह वरण मणि मुझको कीर्ति और भूति देवे तथा तेज और यशसे मुझे सम्पन्न करे ॥ २३ ॥

यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन् परमेष्ठिनि । एवा०

यथा । यशः । प्रजाऽपतौ । यथा । अस्मिन् । परमेऽस्थिनि ॥० २४

जिस प्रकार प्रजापतिमें यश है और जिस प्रकार परमेष्ठीमें यश है इसी प्रकार यह मेरी वरणमणि मुझको कीर्ति और भूति देवे तथा तेज और यशसे मुझे सम्पन्न रक्खे ॥ २४ ॥

यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा
मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २५ ॥

यथा । देवेषु । अमृतम् । यथा । एषु । सत्यम् । आऽहितम् ।
एव । मे । वरणः । मणिः । कीर्तिम् । भूतिम् । नि । यच्छतु ।
तेजसा । मा । सम् । उक्षतु । यशसा । सम् । अनक्तु । मा २५

इति द्वितीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

अमृत जिस प्रकार देवताओंमें है और जिस प्रकार देवताओं में सत्य प्रतिष्ठित है, इसी प्रकार वरणमणि मुझको कीर्ति और भूति देवे, मुझको तेज और यशसे सम्पन्न करे ॥ २५ ॥ (९)

द्वितीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (४७१) ॥

अस्मिन् सूक्ते नानासर्पास्तेषां च विषाणि तत्तत्प्रतीकाराश्च कविवाग्विषयः । सर्पविषभैषज्ये च मन्त्राः । सर्पविषहारिकाश्च काश्चिदोषधयः ॥ सांपदायिका एवं विनियोजयन्ति । तद् यथा ।

विषभैषज्ये कर्मणि "इन्द्रस्य प्रथमः" इत्यर्थसूक्तस्य "ब्राह्मणो जज्ञे" इति [४, ६] सूक्तवद् विनियोगोऽवगन्तव्यः ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन सूक्तेन पैद्वं पिष्ट्वा अभिमन्त्र्य दक्षिणेनाङ्गुष्ठेन दक्षिणनासापुटे नस्यं ददाति ॥ "पैद्वं कीटकम् । तलिणीति लोके प्रसिद्धा । तं पिष्ट्वा" इति केशवः "पैद्वः हिरण्यवर्णसदृशः कीटश्चित्रितो वा । स पैद्व इत्युच्यते" इति च ॥

तथा "अहिभये अनेन सूक्तेन श्वेतवस्त्रवेष्टितं पैद्वम् अभिमन्त्र्य यत्राहिभयं तत्र निखनति" इति केशवः ॥ "सर्पाद्भये पैद्व वस्त्रे बद्ध्वा स्थापयति तस्मिन् वेश्मनि" इति दारिलः ॥

शङ्काविषभैषज्ये कर्मणि "अङ्गादङ्गात् प्र च्यावय" इति ऋचा [२५] सर्पदष्टं शिरःप्रभृति आप्रपदान्तं हस्तेन मार्ष्टि ।

तत्रैव कर्मणि "आरे अभूत्" इति ऋचा [२६] उल्मुकं प्रताप्य अभिमन्त्र्य ततो विषव्रणं दृष्ट्वा तत्संमुखं क्षिपति । सर्पादर्शने यतो दष्टस्ततो निरस्यति उल्मुकम् ॥

तद् उक्तं कौशिकेन । "इन्द्रस्य प्रथम इति तक्षकायेति [कौ० ४. ४] उक्तम् [४, ६]। पैद्वं प्रकृष्य दक्षिणेनाङ्गुष्ठेन दक्षिणस्यां नस्तः । अहिभये सिच्यवगूहयति । अङ्गादङ्गाद् इत्या प्रपदात् । दंश्मोत्तमया निताप्याहिम् अभि निरस्यति यतो दष्टः" इति [कौ० ४. ८] ॥

इस सूक्तमें अनेक प्रकारके सर्प, उनके विष और उनके प्रतीकारके उपाय वर्णित हैं । और सर्पविषकी चिकित्साके मन्त्र भी हैं और सर्पविषको दूर करने वालीं कुछ औषधियें भी हैं, साम्प्रदायिक यहाँ इस प्रकार विनियोग करते हैं, कि–

विषभैषज्यकर्ममें "इन्द्रस्य प्रथमः" इस अर्थसूक्तका "ब्राह्मणे जज्ञे" इस चतुर्थकाण्डके छठे सूक्तकी समान विनियोग करना चाहिये ।

तथा तहाँ ही कर्ममें इस सूक्तसे पैद्वको पीस कर और अभिमन्त्रित करके दाहिने अँगूठेसे दाहिने नथौड़ेमें नस्यको देवे । पैद्व कीटको कहते हैं वह लोकमें तलिणीके नामसे प्रसिद्ध है । केशव का मत है, कि-सुवर्णकी समान वर्णमाला कीट पैद्व कहलाता है वा सुवर्णकी समान चित्रित कीट पैद्व कहलाता है ।

तथा केशवका मत है, कि-सर्पभय होने पर इस सूक्तसे श्वेत वस्त्रमें पैद्वको लपेट कर और अभिमन्त्रित करके सर्पभयस्थानमें गाढ़ देय । और दारिलका मत है, कि-सर्पका भय होने पर पैद्व को वस्त्रमें लपेट कर घरमें रक्खे ।

शंकाविषभैषज्यकर्ममें "अङ्गादङ्गात् प्रच्यावय" इस पच्चीसवीं ऋचासे सर्पदष्टके शिरसे लेकर पैरोंके अग्रभाग तक हाथसे मार्जन करे ।

तहाँ ही कर्ममें "आरे अभूत्" इस छब्बीसवीं ऋचासे उल्मुक को तपा कर और अभिमन्त्रित करके विषव्रणको देख उसकी ओर फेंके । सर्प न दीखने पर जिधरसे डसा हो उस ओर उल्मुक को फैंक देय ।

इसी बातको कौशिकने कहा है, कि-

"इन्द्रस्य प्रथम इति तक्षकायेति कौ० ४।४) उक्तम् (४।६)। पैद्वं प्रकर्ष्य दक्षिणेनाङ्गुष्ठेन दक्षिणस्यां नस्तः । अहिभये सिच्यवगूहयति । अङ्गादङ्गादित्यामपदात् । दंशमोत्तमया निताप्याहिम् अभि निरस्यति यतो दष्टः" (कौशिकसूत्र ४ । ८) ॥

इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरुणस्य तृतीय इत्
अहीनामपमा रथ स्थाणुमारदथार्षत् ॥ १ ॥

इन्द्रस्य । प्रथमः । रथः । देवानाम् । अपरः । रथः । वरुणस्य । तृतीयः । इत् ।

अहीनाम् । अपऽमा । रथः । स्थाणुम् । आरत् । अथ । अर्षत्१

प्रथम रथ इन्द्रका, अपर रथ देवताओंका है, वरुणका रथ तीसरा है, सर्पोंका रथ अपमा है वह स्थाणुमें भी चला जाता है फिर भाग जाता है ॥ १ ॥

दर्भः शोचिस्तरूणकमश्वस्य वारः परुषस्य वारः ।
रथस्य बन्धुरम् ॥ २ ॥

दर्भः । शोचिः । तरूणकम् । अश्वस्य । वारः । परुषस्य । वारः ।
रथस्य । बन्धुरम् ॥ २ ॥

यह दर्भ सर्पोंको शोक देने वाला है, अश्वनामक सर्पके विष को रोकने वाला है, परुष नामक विषको हटाने वाला है, रथका बंधुर है, तरूणक है ॥ २ ॥

अव श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च ।
उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ॥ ३ ॥

अव । श्वेत । पदा । जहि । पूर्वेण । च । अपरेण । च ।
उदप्लुतम्ऽइव । दारु । अहीनाम् । अरसम् । विषम् । वाः । उग्रम्

हे श्वेतसर्षप ! तू पूर्वप्रक्षेपरूप अपने पूर्व पैरसे और अपरप्रक्षेपरूप अपरपदसे सर्पोंको मार। जैसे उतराता हुआ काठ होता है इसी प्रकार (मन्त्रशक्तिसे) सर्पोंको विष नीरस होगया है तू इस उग्र विषका निवारण कर ॥ ३ ॥

अरंघुषो निमज्योन्मज्य पुनरब्रवीत् ।
उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ॥ ४ ॥

अरम्ऽघुषः । निऽमज्य । उत्ऽमज्य । पुनः । अब्रवीत् ।
उद्प्लुतम्ऽइव । दारु । अहीनाम् । अरसम् । विषम् । वाः । उग्रम्

अरंघुषने गोता लगा निकल कर फिर कहा, कि-उतराते हुए काठकी समान सर्पोंका विष नीरस होगया है (हे औषधे !) तू इस सर्पके विषको हटा ॥ ४ ॥

पैद्वो हन्ति कसर्णीलं पैद्वः श्वित्रमुतासितम् ।
पैद्वो रथर्व्याः शिरः सं बिभेद पृदाक्वाः ॥ ५ ॥

पैद्वः । हन्ति । कसर्णीलम् । पैद्वः । श्वित्रम् । उत । असितम् ।
पैद्वः । रथर्व्याः । शिरः । सम् । बिभेद । पृदाक्वाः ॥ ५ ॥

पैद्व कसर्णील नामक सर्पको नष्ट कर देता है, पैद्व श्वित्र और काले सर्पको नष्ट कर डालता है, पैद्वने रथर्व्याके और पृदाकुके शिरको फोड़ डाला था ॥ ५ ॥

पैद्व प्रेहि प्रथमोनु त्वा वयमेमसि ।
अहीन् व्यस्यतात् पथो येन स्मा वयमेमसि ॥ ६ ॥

पैद्व । प्र । इहि । प्रथमः । अनु । त्वा । वयम् । आ । ईमसि ।
अहीन् । वि । अस्यतात् । पथः । येन । स्म । वयम् । आऽईमसि

हे पैद्व ! तू मुख्य है अतः तू यहाँ आ हम तेरी प्रार्थना करते हैं तू उस मार्गसे सर्पोंको फेंक दें, जिस मार्गसे हम जाना चाहते हैं ६

इदं पैद्वो अजायतेदमस्य परायणम् ।
इमान्यर्वतः पदाहिघ्न्यो वाजिनीवतः ॥ ७ ॥

इदम् । पैद्वः । अजायत । इदम् । अस्य । पराऽअयनम् ।

इमानि । अर्वतः । पदा । अहिऽघ्न्यः । वाजिनीऽवतः ॥ ७ ॥

सर्प विनाशक पैद्व प्रकट होगया है, यह इसका परायण है, पैरोंसे वेह इन बलसम्पन्न शीघ्रगामी विक्रमोंको वर्तता है ॥७॥

संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमत् ।
अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा ८

सम्ऽयतम् । न । वि । स्परत् । विऽआत्तम् । न । सम् । यमत् ।

अस्मिन् । क्षेत्रे । द्वौ । अही इति । स्त्री । च । पुमान् । च । तौ । उभौ । अरसा ॥ ८ ॥

सर्पका बन्द मुख हमें काटनेके लिये खुले नहीं, और खुला हुआ मुख बन्द न होवे अर्थात् मन्त्रकी शक्तिसे बँधा हुआ हो जावे । इस क्षेत्रमें नर और मादा दो सर्प हैं वे दोनों मन्त्रशक्तिसे निर्वीर्य होजावें ॥ ८ ॥

अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके ।
घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम् ॥ ९ ॥

अरसासः । इह । अहयः । ये । अन्ति । ये । च । दूरके ।

घनेन । हन्मि । वृश्चिकम् । अहिम् । दण्डेन । आऽगतम् ॥९॥

जो सर्प यहाँ पासमें हैं और जो दूर हैं वे सब सर्प विषरहित होजावें, मैं वीछूको मुद्गरसे मारता हूँ और आये हुए साँपको दण्डेसे मारता हूँ ॥ ९ ॥

अ॒घा॒श्वस्ये॒दं भे॑ष॒जमु॒भयोः॑ स्व॒जस्य॑ च ।
इन्द्रो॒ मेहि॑मघा॒यन्त॒माहिं॑ पै॒द्वो अ॑रन्धयत् ॥ १० ॥

अ॒घ॒ऽअ॒श्वस्य॑ । इ॒दम् । भे॒ष॒जम् । उ॒भयोः॑ । स्व॒जस्य॑ । च॒ ।
इन्द्रः॑ । मे॒ । अहि॑म् । अ॒घ॒ऽयन्त॑म् । अहि॑म् । पै॒द्वः । अ॒र॒न्ध॒य॒त्

अघाश्व और विना किसी कारणके उत्पन्न होने वाले स्वज इन दोनों दोनोंकी भेषज (मेरे पास है) इन्द्रदेवने वधरूप पाप करना चाहने वाले सर्पके लिये पैद्वको मेरे वशमें कर दिया है । १० ॥ (१०)

पै॒द्वस्य॑ मन्महे व॒यं स्थि॒रस्य॑ स्थि॒रधा॑म्नः ।
इ॒मे प॒श्चा पृदा॑कवः प्र॒दीध्य॑त आसते ॥ ११ ॥

पै॒द्वस्य॑ । म॒न्म॒हे॒ । व॒यम् । स्थि॒रस्य॑ । स्थि॒रऽधा॑म्नः ।
इ॒मे । प॒श्चा । पृदा॑कवः । प्र॒ऽदीध्य॑तः । आ॒स॒ते॒ ॥ ११ ॥

हम यह समझते हैं, कि-स्थिर प्रभाव वाले स्थिर पैद्वके पीछे ये सर्प शोक ही करते रह जाते हैं ॥ ११ ॥

न॒ष्टास॑वो न॒ष्टवि॑षा ह॒ता इन्द्रे॑ण व॒ज्रिणा॑ ।
ज॒घानेन्द्रो॑ जघ्नि॒मा व॒यम् ॥ १२ ॥

न॒ष्टऽअ॑सवः । न॒ष्टऽवि॑षाः । ह॒ताः । इन्द्रे॑ण । व॒ज्रिणा॑ ।
ज॒घान॑ । इन्द्रः॑ । ज॒घ्नि॒म । व॒यम् ॥ १२ ॥

वज्रधारी इन्द्रने इन सर्पोंसे विष और प्राणको नष्ट कर दिया था, इन्द्रके मारे हुए ही इनको अब हम मारते हैं ॥ १२ ॥

हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ।
दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि ॥ १३ ॥

हताः । तिरश्चिऽराजयः । निऽपिष्टासः । पृदाकवः ।
दर्विम् । करिक्रतम् । श्वित्रम् । दर्भेषु । असितम् । जहि ॥१३॥

तिरछी अलवेटें वाले तिरश्चिराजि नामक सर्प मन्त्रशक्तिसे मारे गए, कुत्सित शब्द करने वाले पृदाकु नामक सर्प पीस दिये गए, (हे यजमान !) तू करिक्रत् श्वित्र और काले सर्पको कुशाओंमें मार डाल ॥ १३ ॥

कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम् ।
हिरण्ययीभिरभ्रिभिर्गिरीणामुप सानुषु ॥ १४ ॥

कैरातिका । कुमारिका । सका । खनति । भेषजम् ।
हिरण्ययीभिः । अभ्रिऽभिः । गिरीणाम् । उप । सानुषु ॥१४॥

किरातोंके देशोंमें रहने वाली सका कुमारी सुवर्णके खोदने के आयुधसे पर्वतोंके शिखरों पर औषधियोंको खोदती है १४

आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहापराजितः ।
स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च ॥ १५ ॥

आ । अयम् । अगन् । युवा । भिषक् । पृश्निऽहा । अपराऽजितः ।
सः । वै । स्वजस्य । जम्भनः । उभयोः । वृश्चिकस्य । च ॥१५॥

जिसमें मन्त्र व्याप्त हैं ऐसा यह युवा वैद्य आगया है यह कभी

पराजित नहीं हुआ है, यह स्वज नामक सर्प और वृश्चिक (बीछू) दोनोंका नाश करने वाला है ॥ १५ ॥

इन्द्रो मेहिमरन्धयन्मित्रश्च वरुणश्च ।
वातापर्जन्यो३भा ॥ १६ ॥

इन्द्रः । मे । अहिम् । अरन्धयत् । मित्रः । च । वरुणः । च ।
वातापर्जन्या । उभा ॥ १६ ॥

इन्द्र मित्र वरुण तथा दोनों वायु और पर्जन्यने मेरे (शत्रु) सर्पको वशमें कर लिया है ॥ १६ ॥

इन्द्रो मेहिमरन्धयत् पृदाकुं च पृदाक्वम् ।
स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम् ॥ १७ ॥

इन्द्रः । मे । अहिम् । अरन्धयत् । पृदाकुम् । च । पृदाक्वम् ।
स्वजम् । तिरश्चिऽराजिम् । कसर्णीलम् । दशोनसिम् ॥ १७ ॥

इन्द्रने मेरे कल्याणके लिये पृदाकु पृदाक्व स्वज तिरश्चिराजि कसर्णील और दशोनसि नामक सर्पको वशमें कर लिया है १७

इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव ।
तेषामु तृह्यमाणानां कः स्वित् तेषामसद् रसः १८

इन्द्रः । जघान । प्रथमम् । जनितारम् । अहे । तव ।
तेषाम । ऊं इति । तृह्यमाणानाम् । कः । स्वित् । तेषाम् । असत् ।
रसः ॥ १८ ॥

हे सर्प ! तेरे उत्पादकको पहिले इन्द्रने मार डाला था । उन

सर्पोंके मारे जानेके समय उनमेंसे नष्ट होता हुआ कौनसा सर्प बलवान् बना था ? ॥ १८ ॥

सं हि शीर्षाण्यग्रभं पौञ्जिष्ठ इव कर्वरम् ।
सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यनिजमहेर्विषम् ॥ १९ ॥

सम् । हि । शीर्षाणि । अग्रभम् । पौञ्जिष्ठःऽइव । कर्वरम् ।
सिन्धोः । मध्यम् । पराऽइत्य । वि । अनिजम् । अहेः । विषम् १९

जैसे पौञ्जिष्ठ कर्वरको ग्रहण कर लेता है, इसी प्रकार मैंने सिंधु के मध्यमें लौट कर सर्पके विषको शुद्ध कर दिया है ॥ १९ ॥

अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धवः ।
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ॥ २० ॥

अहीनाम् । सर्वेषाम् । विषम् । परा । वहन्तु । सिन्धवः ।
हताः । तिरश्चिऽराजयः । निऽपिष्टासः । पृदाकवः ॥ २० ॥

जितनी नदियें हैं वे सब सर्पोंके विषको बहा लेजावें, तिरश्चिराजि नामक सर्प मारे गए और पृदाकु इस मन्त्रशक्तिसे कुचल जावें ॥ २० ॥ (११)

ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया ।
नयाम्यर्वतीरिवाहे निरैतु ते विषम् ॥ ॥ २१ ॥

ओषधीनाम् । अहम् । वृणे । उर्वरीःऽइव । साधुऽया ।
नयामि । अर्वतीःऽइव । अहे । निःऽऐतु । ते । विषम् ॥ २१ ॥

मैं अपनी साधुता भरी बुद्धिसे !औषधियोंमेंसे उर्वरी औष-

धियोंका वरण करता हूँ, मैं उनको शीघ्रगामिनी नदियोंकी समय भेजता हूँ, समान हे सर्प ! तेरा विष दूर होजावे ॥ २१ ॥

यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु यत् ।
कान्दाविषं कनक्नकं निरैत्वैतु ते विषम् ॥ २२ ॥

यत् । अग्नौ । सूर्ये । विषम् । पृथिव्याम् । ओषधीषु । यत् ।
कान्दाऽविषम् । कनक्नकम् । निःऽऐतु । आ । एतु । ते । विषम् २२

सूर्यमें अग्निमें पृथिवीमें और औषधियोंमें जो विष है और जो कन्दविष तथा कनक्नक विष है वह सब विष तुझमें आजावे (अर्थात् विषसे विष नष्ट होजावे) तेरा विष पूर्णरूपसे निकल जावे ॥

ये अग्निजा ओषधिजा अहीनां ये अप्सुजा विद्युत आबभूवुः ।
येषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम ॥ २३ ॥

ये । अग्निऽजाः । ओषधिऽजाः । अहीनाम् । ये । अप्सुऽजाः । विऽद्युतः । आऽबभूवुः ।
येषाम् । जातानि । बहुऽधा । महान्ति । तेभ्यः । सर्पेभ्यः । नमसा । विधेम ॥ २३ ॥

जो अग्नि औषधि और जलमें सर्पोंसे उत्पन्न हुई विजलिएँ (मनुष्यको कँपाने वाले विष) हैं और जिनसे बड़े २ कर्म हुए हैं उन सर्पोंकी हम हविसे–नमस्कारसे–सेवा करते हैं ॥ २३ ॥

तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि ।
अधस्पदेन ते पदमा ददे विषदूषणम् ॥ २४ ॥

तौदी । नाम । असि । कन्या । घृताची । नाम । वै । असि ।
अधःऽपदेन । ते । पदम् । आ । ददे । विषऽदूषणम् ॥ २४ ॥

हे औषधे ! तू तौदी या घृताची नाम वाली कमनीय औषधि है मैं नीचेको पैर करके तेरे विषदूषण स्थानको ग्रहण करता हूँ २४

अङ्गादङ्गात् प्र च्यावय हृदयं परि वर्जय ।
अधा विषस्य यत् तेजोवाचीनं तदेतु ते ॥ २५ ॥

अङ्गात्ऽअङ्गात् । प्र । च्यवय । हृदयम् । परि । वर्जय ।
अध । विषस्य । यत् । तेजः । अवाचीनम् । तत् । एतु । ते २५

हे रोगिन् ! तू हृदयको बचाता हुआ प्रत्येक अङ्गोंसे विषको प्रच्यवित कर फिर उस विषका तेज नीचेको जाता हुआ नष्ट हो जावे ॥ २५ ॥

आरे अभूद् विषमरौद् विषे विषमप्रागपि ।
अग्निर्विषमहेर्निरधात् सोमो निरणयीत् ।
दंष्टारमन्वगाद् विषमहिरमृत ॥ २६ ॥

आरे । अभूत् । विषम् । अरौत् । विषे । विषम् । अप्राक् । अपि ।
अग्निः । विषम् । अहेः । निः । अधात् । सोमः । निः । अनयीत् ।
दंष्टारम् । अनु । अगात् । विषम् । अहिः । अमृत ॥ २६ ॥

द्वितीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥ इति द्वितीयोनुवाकः ॥

२४ ३०-८-३०

विष दूर होगया है जो नवीन विष था वह भी विषमें रुक गया है अग्निने सर्पके विषको अलग कर दिया है, सोम उसको अलग लेगया है, वह विष काटने वाले सर्पको पहुँच गया है, इस लिये सर्प मर गया है ॥ २६ ॥ (१२)

द्वितीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (४७२) ॥

द्वितीय सूक्त समाप्त

अभिचारकर्मैतत् । शत्रुनाशनसमर्थबलम् उदके प्रवेश्य तदुदके वज्रत्वं कल्पयित्वा शत्रुम् अभिलक्ष्य तत् प्रक्षिपति । तद् एवम् । आदावपः संबोध्य यस्माद् यूयम् इन्द्रस्यौजो भवथ इन्द्रस्य सहआदि भवथ तस्माद् इन्द्रबलैर्युष्मान् युक्ताः करोमीत्याह। अनन्तरम् इन्द्रस्य भागः अर्थाद् अंशो भवथ सोमस्य भागः स्थ वरुणस्य भागः स्थ मित्रावरुणयोर्भागः स्थ यमस्य भागः स्थ पितॄणां सवितुश्च भागः स्थेत्याह। अनन्तरं योऽपां त्रैलोक्यस्थसकलजलानां भागः पूजनीयो युष्मासु अर्थात् पूर्वोक्तास्वप्सु भवति यश्च तादृश ऊर्मिः यश्च तादृशो वत्सः अर्थाद् अपां नपान्नाम वैद्युतोग्निः यश्च तादृशो वृषभः महाबलः कश्चित् पशुः यश्च अपां मध्य उदपद्यतेति वेदप्रसिद्धो हिरण्यगर्भ इति बलवान् आद्यो देवः यश्च अप्सु वर्तमानो नानावर्णोशमप्रतीको मेघः ये च अपां मध्ये वर्तमाना अग्नयस्तान् सर्वान् प्रत्येकं शत्रुं प्रति क्षिपामि तं शत्रुम् अहं हन्यां तम् अनेन मन्त्रेण अनेन कर्मणा अनेन उदवज्रेण विदारयाणीत्याह । अनन्तरं स्वकृतात् त्रैहायणाद् अनृतवचनपापाद् रक्षणं याचते । अनन्तरं शत्रोरुपरि उदवज्रं प्रक्षेप्तुं प्रक्रामति यच्च प्रक्रामति स्वक्रमं संबोध्य तम् आह त्वं विष्णोः क्रमो सि अर्थाद् येन क्रमेण विष्णुस्त्रीन् लोकान् आक्रमत तादृशो बलवान् असि स्वयं पृथ्व्या च तीक्ष्णीकृतं शस्त्रम् असि तेन त्वया शत्रुं पृथिव्याः सकाशान्निर्णोदयामीति । तथैव त्वम् अन्तरिक्षतीक्ष्णीकृतोसि द्यौसंशितोसि दिवसंशितोसि आशासंशितोसि

ऋक्संशितोसि यज्ञसंशितोसि ओषधीसंशितोसि अप्संशितोसि कृषिसंशितोसि प्राणसंशितोसि तस्मात् तत्तदभिमानिप्रदेशात् तं शत्रुं निर्णोद्यानीति । एतदुक्त्वा जितमस्माभिर्जिताः शत्रुसेना इत्याह । अनन्तरं दक्षिणां दिशं सरति किंचित्सृत्वा ताम् अभिमुखो भवतीत्यर्थः । तथैव इतरदिशश्च सप्तर्षिनाम नक्षत्रं ब्राह्मणांश्च अभिमुखो भवति प्रत्येकं च तेभ्यः सकाशाद् द्रविणं याचते । यं च शत्रुम् अन्विष्यामि तं हनानि इयं समित् तं हेतिर्भूत्वा भक्षतु इत्याह । अनन्तरं भुवस्पतिमन्नं याचते तथैव अग्निं वर्चः प्रजाम् आयुश्च याचते । अग्निं च यातुधानभेदनं याचते । अन्ते च पूर्वोक्तानि यान्युदकानि तान्येव चतुर्भृष्टिं वज्रं कल्पयित्वा शत्रुशिरश्छेदाय प्रक्षिपति स च शत्रोरङ्गानि भिनत्तु देवाश्च तत् सर्वं मेऽनुजानन्त्वित्याशास्ते ॥

सांप्रदायिकास्तु वक्ष्यमाणप्रकारेण तस्मिन्नेव कर्मणि विनियुञ्जन्ति सूक्तम् ।

अभिचारकर्मणि उदवज्राणां विधानम् उच्यते । “इन्द्रस्यौजः” इति सूक्तस्य आद्यानां षण्णाम् ऋचाम् पूर्वार्धर्चैः कांस्यघटं प्रक्षालयति । “जिष्णवे योगाय” इति उत्तरार्धर्चैः षड्भिः कांस्यघटम् उदकसमीपे निदधाति । “इदम् अहं यो मा प्राच्या दिशः” इत्यष्टर्चेन कल्पजेन सूक्तेन उदकमध्ये निदधाति घटम् । “इदम् अहम्” इति सूक्तेन उदकमध्ये घटस्य मुखं करोति । “इदमहं यो मा प्राच्या दिशः” इति सूक्तेन घटम् उदकपूर्णं कृत्वा अपक्रामति । “इदमहम्” इति सूक्तेन उदकपूर्णं घटं मण्डपे स्थापयति । एतद् अभिचारे उदकाहरणम् । तदनन्तरं वज्रप्रहरणविधिः । “इन्द्रस्यौजः” इति सर्वं कृत्वा “इदमहम्” इति स्थापनान्तं कृत्वा “अग्नेर्भागः” [७-१४] इत्याद्यष्टाभिर्ऋग्भिः आनीतोदकस्य द्विधाकरणम् । अर्धं घटे कृत्वा अर्धं भाजने करोति । तद्भाजनम् अग्नौ तापयति ।

विष दूर होगया है जो नवीन विष था वह भी विषमें रुक गया है अग्निने सर्पके विषको अलग कर दिया है, सोम उसको अलग लेगया है, वह विष काटने वाले सर्पको पहुँच गया है, इस लिये सर्प मर गया है ॥ २६ ॥ (१२)

द्वितीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (४७२) ॥

द्वितीय सूक्त समाप्त

अभिचारकर्मैतत् । शत्रुनाशनसमर्थबलम् उदके प्रवेश्य तदुदके वज्रत्वं कल्पयित्वा शत्रुम् अभिलक्ष्य तत् प्रक्षिपति । तद् एवम् । आदावपः संबोध्य यस्माद् यूयम् इन्द्रस्यौजो भवथ इन्द्रस्य सहआदि भवथ तस्माद् इन्द्रबलैर्युष्मान् युक्ताः करोमीत्याह। अनन्तरम् इन्द्रस्य भागः अर्थाद् अंशो भवथ सोमस्य भागः स्थ वरुणस्य भागः स्थ मित्रावरुणयोर्भागः स्थ यमस्य भागः स्थ पितॄणां सवितुश्च भागः स्थेत्याह। अनन्तरं योऽपां त्रैलोक्यस्थसकलजलानां भागः पूजनीयो युष्मासु अर्थात् पूर्वोक्तास्वप्सु भवति यश्च तादृश ऊर्मिः यश्च तादृशो वत्सः अर्थाद् अपां नपान्नाम वैद्युतोग्निः यश्च तादृशो वृषभः महाबलः कश्चित् पशुः यश्च अपां मध्य उदपद्यतेति वेदप्रसिद्धो हिरण्यगर्भ इति बलवान् आद्यो देवः यश्च अप्सु वर्तमानो नानावर्णोश्मप्रतीको मेघः ये च अपां मध्ये वर्तमाना अग्नयस्तान् सर्वान् प्रत्येकं शत्रुं प्रति क्षिपामि तं शत्रुम् अहं हन्यां तम् अनेन मन्त्रेण अनेन कर्मणा अनेन उदवज्रेण विदारयाणीत्याह । अनन्तरं स्वकृतात् त्रैहायणाद् अनृतवचनपापाद् रक्षणं याचते । अनन्तरं शत्रोरुपरि उदवज्रं प्रक्षेप्तुं प्रक्रामति यच्च प्रक्रामति स्वक्रमं संबोध्य तम् आह त्वं विष्णोः क्रमोसि अर्थाद् येन क्रमेण विष्णुस्त्रीन् लोकान् आक्रमत तादृशो बलवान् असि स्वयं पृथ्व्या च तीक्ष्णीकृतं शस्त्रम् असि तेन त्वया शत्रुं पृथिव्याः सकाशान्निर्णोदयामीति । तथैव त्वम् अन्तरिक्षतीक्ष्णीकृतोसि द्यौसंशितोसि दिवसंशितोसि आशासंशितोसि

ऋक्संशितोसि यज्ञसंशितोसि ओषधीसंशितोसि अप्संशितोसि कृषिसंशितोसि प्राणसंशितोसि तस्मात् तत्तदभिमानिप्रदेशात् तं शत्रुं निर्णोदयानीति । एतदुक्त्वा जितमस्माभिर्जिताः शत्रुसेना इत्याह । अनन्तरं दक्षिणां दिशं सरति किंचित्सृत्वा ताम् अभिमुखो भवतीत्यर्थः । तथैव इतरदिशश्च सप्तर्षिनाम नक्षत्रं ब्राह्मणांश्च अभिमुखो भवति प्रत्येकं च तेभ्यः सकाशाद् द्रविणं याचते । यं च शत्रुम् अन्विष्यामि तं हनानि इयं समित् तं हेतिर्भूत्वा भक्षतु इत्याह । अनन्तरं भुवस्पतिमन्नं याचते तथैव अग्निं वर्चः प्रजाम् आयुश्च याचते । अग्निं च यातुधानभेदनं याचते । अन्ते च पूर्वोक्तानि यान्युदकानि तान्येव चतुर्भृष्टिं वज्रं कल्पयित्वा शत्रुशिरश्छेदाय प्रक्षिपति स च शत्रोरङ्गानि भिनत्तु देवाश्च तत् सर्वं मेऽनुजानन्त्वित्याशास्ते ॥

सांप्रदायिकास्तु वक्ष्यमाणप्रकारेण तस्मिन्नेव कर्मणि विनियुञ्जन्ति सूक्तम् ।

अभिचारकर्मणि उदवज्राणां विधानम् उच्यते । "इन्द्रस्यौजः" इति सूक्तस्य आद्यानां षण्णाम् ऋचाम् पूर्वार्धर्चैः कांस्यघटं प्रक्षालयति । "जिष्णवे योगाय" इति उत्तरार्धर्चैः षड्भिः कांस्यघटम् उदकसमीपे निदधाति । "इदम् अहं यो मा प्राच्या दिशः" इत्यष्टर्चेन कल्पजेन सूक्तेन उदकमध्ये निदधाति घटम् । "इदम् अहम्" इति सूक्तेन उदकमध्ये घटस्य मुखं करोति । "इदमहं यो मा प्राच्या दिशः" इति सूक्तेन घटम् उदकपूर्णं कृत्वा अपक्रामति । "इदमहम्" इति सूक्तेन उदकपूर्णं घटं मण्डपे स्थापयति । एतद् अभिचारे उदकाहरणम् । तदनन्तरं वज्रप्रहरणविधिः । "इन्द्रस्यौजः" इति सर्वं कृत्वा "इदमहम्" इति स्थापनान्तं कृत्वा "अग्नेर्भागः" [७-१४] इत्याद्यष्टाभिर्ऋग्भिः आनीतोदकस्य द्विधाकरणम् । अर्धं घटे कृत्वा अर्धं भाजने करोति । तद्भाजनम् अग्नौ तापयति ।

घटम् अन्यस्मै पुरुषाय प्रदापयति । "अग्नेर्भागः" इत्यादयोष्टौ तापने मन्त्राः । ततो बहिर्दक्षिणामुख उपविश्य भाजनम् अग्रे कृत्वा "वातस्य रंहितस्य" इति सौत्रमन्त्रेण उदकं संगृह्य "शम् अग्नये" इति कल्पजेन सूक्तेन सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽभयं दद्यात् । "यो व आपोपाम्" [१५] इत्यृचा वज्रप्रक्षेपः ॥ पुनरपि "वातस्य रंहितस्य" इत्यादि कृत्वा "यो व आपोपामूर्मिः" [१६] इति ऋचा वज्रक्षेपः । एवम् उत्तराभिर्ऋग्भिः [१७—२१] वज्रप्रक्षेपः । "एनानधराचः पराचः" इति कल्पजया ऋचा भाजनस्थम् उदकं भूमौ निनयति । एवमेव "यं वयम्" [४२] इति सूक्तेन अन्त्यृचम् "अपामस्मै वज्रम्" [५०।] इति ऋचा च वज्रप्रक्षेपः । "विष्णोः क्रमोसि" [२५—३६] इति द्वादशभिर्विष्णुक्रमान् क्रमते शत्रोरभिमुखम् । तद् उक्तं कौशिकेन । "इन्द्रस्यौज इति प्रक्षालयति । जिष्णवे योगायेत्यपो युनक्ति । वातस्य रंहितस्यामृतस्य योनिरिति प्रतिगृह्णाति । उत्तमाः प्रताप्याधराः प्रदायैनमेनानधराचः पराचोवाश्वस्तपसस्तमूनयत देवाः पितृभिः संविदानः प्रजापतिः प्रथमो देवतानाम् इत्यतिसृजति । इदम् अहं यो मा प्राच्या दिशोघायुरभिदासादपवादीदिषुगूहः । तस्येमौ प्राणापानावपक्रामामि ब्रह्मणा । दक्षिणायाः प्रतीच्या उदीच्या ध्रुवाया व्यध्वाया ऊर्ध्वायाः । इदम् अहं यो मा दिशाम् अन्तर्देशेभ्य इत्यपक्रामामीति । एवम् अभिष्ठानापोहननिवेष्टनानि । सर्वाणि खलु शश्वद् भूतानि ब्राह्मणाद् वज्रम् उद्यच्छमानाच्छङ्कन्ते मां हनिष्यसि मां हनिष्यसीति । तेभ्योभयं वदेच्छम् अग्नये शं पृथिव्यै शम् अन्तरिक्षाय शं वायवे शं दिवे शं सूर्याय शं चन्द्राय शं नक्षत्रेभ्यः शं गन्धर्वाप्सरोभ्यः शं सर्पेतरजनेभ्यः शिवं मह्यम् इति । यो व आपोपां यं वयम् अपाम् अस्मै वज्रम् इत्यन्त्यृचम् उदवज्रान् । विष्णोः क्रमोसीति विष्णुक्रमान्" इति [कौ० ६. ३] ॥

"यदर्वाचीनम्" इति ऋचा [२२] आचामयति अनृतभाषणसंजातपापापनोदनकामम् ॥

"समुद्रं वः प्र हिणोमि" इति ऋचा [२३] पत्न्यञ्जलावुदपात्रं निनयति सर्वेषु तन्त्रेषु । "बर्हिषि पत्न्यञ्जलौ निनयति समुद्रं वः प्र हिणोमि" इति [कौ० १. ६] सूत्रात् ॥

"सूर्यस्यावृतम्" इति पञ्चभिः [३७-४१] प्रदक्षिणम् आवर्तते सर्वेषु तन्त्रेषु । "सूर्यस्यावृतम् इत्यभिदक्षिणम् आवर्तते" इति [कौ० १. ६] सूत्रात् ॥

यह अभिचार कर्म है, कि—शत्रुनाशनसमर्थ बलको जलमें प्रवेश करा कर उसको वज्रमान कर शत्रुकी ओर लक्ष्य करके फेंके। उस की रीति यह है, कि—आरंभमें जलको संबोधित करके कहे, कि—क्यों कि-तुम इन्द्रके ओज हो, इन्द्रकी अभिभवनशक्ति हो इस लिये मैं तुमको इन्द्रके बलसे सम्पन्न करता हूँ। फिर कहे, कि—तुम इन्द्रके भाग हो, सोमके भाग हो, वरुणके भाग हो, मित्रावरुण दोनोंके भाग हो, यमके भाग हो, पितरोंके भाग हो और सविता देवताके भाग हो। फिर कहे, कि—त्रिलोकीमें स्थित सकल जलोंका जो पूजनीय भाग तुममें स्थित है और जो तुममें तैसी लहरें हैं और जो तुममें तैसा वत्स है अर्थात् अपान्नपात् नामक जो वैद्युत अग्नि है और तैसा महाबली कोई वृषभ पशु है, और जो जलके मध्यमें उत्पन्न हुए वेदप्रसिद्ध हिरण्यगर्भ नामक बलवान् आदिदेव हैं और जो जलमें वर्तमान अनेक वर्ण वाला पर्वताकार मेघ है और जो जलमें वर्तमान अग्नियें हैं, इन सबमेंसे प्रत्येकको मैं शत्रुकी ओर छोड़ता हूँ, उस शत्रुको मैं मार डालूँ, उस शत्रुको मैं इस मन्त्रसे इस कर्मसे और इस जलरूपी वज्रसे विदीर्ण कर डालूँ। तदनन्तर अपने तीन वर्षके असत्यभाषणसे रक्षा पानेके लिये प्रार्थना करे। तदनन्तर शत्रुके ऊपर जलवज्र फेंकनेके लिये पैर

घटम् अन्यस्मै पुरुषाय प्रदापयति । "अग्नेर्भागः" इत्यादयोष्टौ तापने मन्त्राः । ततो बहिर्दक्षिणामुख उपविश्य भाजनम् अग्रे कृत्वा "वातस्य रंहितस्य" इति सौत्रमन्त्रेण उदकं संगृह्य "शम् अग्नये" इति कल्पजेन सूक्तेन सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽभयं दद्यात् । "यो व आपोपाम्" [१५] इत्यृचा वज्रप्रक्षेपः ॥ पुनरपि "वातस्य रंहितस्य" इत्यादि कृत्वा "यो व आपोपामूर्मिः" [१६] इति ऋचा वज्रक्षेपः । एवम् उत्तराभिर्ऋग्भिः [१७–२१] वज्रप्रक्षेपः । "एनानधराचः पराचः" इति कल्पजया ऋचा भाजनस्थम् उदकं भूमौ निनयति । एवमेव "यं वयम्" [४२] इति सूक्तेन अन्त्यृचम् "अपामस्मै वज्रम्" [५०।] इति ऋचा च वज्रप्रक्षेपः । "विष्णोः क्रमोसि" [२५–३६] इति द्वादशभिर्विष्णुक्रमान् क्रमते शत्रोरभिमुखम् । तद् उक्तं कौशिकेन । "इन्द्रस्यौज इति प्रक्षालयति । जिष्णवे योगायेत्यपो युनक्ति । वातस्य रंहितस्यामृतस्य योनिरिति प्रतिगृह्णाति । उत्तमाः प्रताप्याधराः प्रदायैनमेनानधराचः पराचोवाश्वस्तपसस्तपूंनयत देवाः पितृभिः संविदानः प्रजापतिः प्रथमो देवतानाम् इत्यतिसृजति । इदम् अहं यो मा प्राच्या दिशोघायुरभिदासादपवादीदिषुगूहः । तस्येमौ प्राणापानावपक्रामामि ब्रह्मणा । दक्षिणायाः प्रतीच्या उदीच्या ध्रुवाया व्यध्वाया ऊर्ध्वायाः । इदम् अहं यो मा दिशाम् अन्तर्देशेभ्य इत्यपक्रामामीति । एवम् अभिष्ठानापोहननिवेष्टनानि । सर्वाणि खलु शश्वद् भूतानि ब्राह्मणाद् वज्रम् उद्यच्छमानाच्छङ्कन्ते मां हनिष्यसि मां हनिष्यसीति । तेभ्योभयं वदेच्छम् अग्नये शं पृथिव्यै शम् अन्तरिक्षाय शं वायवे शं दिवे शं सूर्याय शं चन्द्राय शं नक्षत्रेभ्यः शं गन्धर्वाप्सरोभ्यः शं सर्पेतरजनेभ्यः शिवं मह्यम् इति । यो व आपोपां यं वयम् अपाम् अस्मै वज्रम् इत्यन्त्यृचम् उदवज्रान् । विष्णोः क्रमोसीति विष्णुक्रमान्" इति [कौ० ६. ३] ॥

"यदर्वाचीनम्" इति ऋचा [२२] आचामयति अनृतभाषणसंजातपापापनोदनकामम् ॥

"समुद्रं वः प्र हिणोमि" इति ऋचा [२३] पत्न्यञ्जलावुदपात्रं निनयति सर्वेषु तन्त्रेषु । "बर्हिषि पत्न्यञ्जलौ निनयति समुद्रं वः प्र हिणोमि" इति [कौ० १. ६] सूत्रात् ॥

"सूर्यस्यावृतम्" इति पञ्चभिः [३७–४१] प्रदक्षिणम् आवर्तते सर्वेषु तन्त्रेषु । "सूर्यस्यावृतम् इत्यभिदक्षिणम् आवर्तते" इति [कौ० १. ६] सूत्रात् ॥

यह अभिचार कर्म है, कि–शत्रुनाशनसमर्थ बलको जलमें प्रवेश करा कर उसको वज्रमान कर शत्रुकी ओर लक्ष्य करके फेंके । उस की रीति यह है, कि–आरंभमें जलको संबोधित करके कहे, कि–क्यों कि-तुम इन्द्रके ओज हो, इन्द्रकी अभिभवनशक्ति हो इस लिये मैं तुमको इन्द्रके बलसे सम्पन्न करता हूँ । फिर कहे, कि–तुम इन्द्रके भाग हो, सोमके भाग हो, वरुणके भाग हो, मित्रावरुण दोनोंके भाग हो, यमके भाग हो, पितरोंके भाग हो और सविता देवताके भाग हो । फिर कहे, कि–त्रिलोकीमें स्थित सकल जलोंका जो पूजनीय भाग तुममें स्थित है और जो तुममें तैसी लहरें हैं और जो तुममें तैसा वत्स है अर्थात् अपान्नपात् नामक जो वैद्युत अग्नि है और तैसा महाबली कोई वृषभ पशु है, और जो जलके मध्यमें उत्पन्न हुए वेदप्रसिद्ध हिरण्यगर्भ नामक बलवान् आदिदेव हैं और जो जलमें वर्तमान अनेक वर्ण वाला पर्वताकार मेघ है और जो जलमें वर्तमान अग्नियें हैं, इन सबमेंसे प्रत्येकको मैं शत्रुकी ओर छोड़ता हूँ, उस शत्रुको मैं मार डालूँ, उस शत्रुको मैं इस मन्त्रसे इस कर्मसे और इस जलरूपी वज्रसे विदीर्ण कर डालूँ । तदनन्तर अपने तीन वर्षके असत्यभाषणसे रक्षा पानेके लिये प्रार्थना करे । तदनन्तर शत्रुके ऊपर जलवज्र फेंकनेके लिये पैर

उठावे जो पैर उठावे उस अपने पैर धरनेको सम्बोधित करके उससे कहे, कि–तू विष्णुका क्रम (पादविक्षेप) है अर्थात् जिस क्रमसे विष्णुने तीनों लोकोंको आक्रमित किया था तू तैसा ही बलवान् है स्वयं पृथ्वीका तीक्ष्ण किया हुआ शस्त्र है उस तुझसे मैं शत्रुको पृथिवीसे निर्णोदन करता हूँ इसी प्रकार तू अन्तरिक्ष-तीक्ष्णीकृत है, द्यौ संशित है, दिक्संशित है, आशासंशित है, ऋक्-संशित है, यज्ञसंशित है ओषधिसंशित है, अप्संशित है, कृषि-संशित है, प्राणसंशित है, इस कारण मैं उन २ के अभिमानी देवताओंके प्रदेशसे उस शत्रुको निर्णोदित करता हूँ। इस बात को कह कर कहे, कि–हमने शत्रसेनाको जीत लिया। तदनन्तर दक्षिणदिशाकी ओर सरके और कुछ सरक कर उस दिशाकी ओर मुख कर लेय। तदनन्तर प्रत्येक दिशाकी ओर, सप्तर्षि नामक नक्षत्रोंकी ओर और ब्राह्मणोंकी ओर मुख करे और इनमें से प्रत्येकके पाससे धनकी याचना करे और कहे, कि–मैं जिस शत्रुको खोजता हूँ उसको मारूँगा, यह समिधा आयुध होकर उसको खा डाले। तदनन्तर भुवस्पतिसे अन्नकी याचना करे तथा अग्नि वर्च प्रजा और आयुकी याचना करे। और अग्निसे राक्षसोंमें भेद डालनेकी याचना करे। अंतमें जो पूर्वोक्त उदक है उसको चतुर्भृष्टिवज्र मान कर शत्रुका शिर काटनेके लिये फैंक देय और आशा करे, कि–यह शत्रुके अंगोंको काट देय और सब देवता भी मुझे इस कामके लिये अनुमति देवें ॥

साम्प्रदायिक इसी कर्ममें इस सूक्तका इस प्रकार विनियोग करते हैं, कि—

अभिचारकर्ममें जलवज्रोंका विधान कहा जाता है, कि–“इन्द्रस्यौजः” इस सूक्तकी पहिली छः ऋचाओंकी आधी ऋचाओंसे काँसीके कलशका प्रक्षालन करे। ‘जिष्णवे योगाय’ इन आधी

छः ऋचाओंसे कांस्यघटको जलके समीप रक्खे। "इदं अहम्" इस सूक्तसे जलमें घटके मुखको करे। "इदमहं यो मा प्राच्या दिशः" इस सूक्तसे घटको जलसे भर कर अपक्रमण करे। "इदमहम्" सूक्तसे घटको मण्डपमें स्थापित करे। इस प्रकार घटमें जलका आहरण किया जाता है। तदनन्तर वज्रप्रहरणकी विधि है, कि—"इन्द्रस्यौजः" इस मन्त्रको करके "इदमहमहम्" से स्थापनतकके कर्मको करे और "अग्नेर्भागः" इस सातवीं ऋचासे १४ वीं ऋचा तककी आठ ऋचाओंसे लाये हुए जलको दो भागोंमें बाँटे। आधेको घड़ेमें करके आधेको पात्रमें रक्खे। उस पात्रको अग्निमें गरम करे। घटको दूसरे पुरुषको दिला देय। "अग्नेर्भागः" इत्यादि आठ ऋचाएँ तापनके मन्त्र हैं। तदनन्तर बाहरकी ओर दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके बैठे और पात्रको आगे रख कर "वातस्य रंहितस्य" इस सूत्रमें कहे हुए मन्त्रसे उदकका संग्रह करके "शम् अग्नये" इस कल्पज सूक्तसे सब प्राणियोंको अभय देवे। "यो व आपोपाम्" इस पन्द्रहवीं ऋचासे वज्रको फेंके। फिर भी "वातस्य रंहितस्य" इत्यादि करके "यो वः आपोपामूर्मिः" इस सोलहवीं ऋचासे वज्रको फेंके। इसी प्रकार अगली सत्रहवींसे इकीसवीं तककी छः ऋचाओंसे वज्रप्रक्षेप होता है। 'एनानधराचः पराचः' इस कल्पकी ऋचासे भाजनमें स्थित जलको भूमिमें डाल देय। इसी प्रकार 'यं वयम्' (४२) सूक्तसे प्रत्येक ऋचा पर और "अपामस्मै वज्रम्" इस पचासवीं ऋचासे भी वज्रप्रक्षेप होता है। "विष्णोः क्रमोऽसि" इस पच्चीसवींसे छत्तीसवीं तककी बारह ऋचाओंसे शत्रुके अभिमुख विष्णुक्रमोंको कदम उठा कर रक्खे। इसी बातको कौशिकने कहा है, कि—"इन्द्रस्यौज इति प्रक्षालयति। जिष्णवे योगायेत्यपो युनक्ति। वातस्य रंहितस्यामृतस्य योनिरिति प्रतिगृह्णाति। उत्तमाः प्रतप्या-

उठावे जो पैर उठावे उस अपने पैर धरनेको सम्बोधित करके उससे कहे, कि-तू विष्णुका क्रम (पादविक्षेप) है अर्थात् जिस क्रमसे विष्णुने तीनों लोकोंको आक्रमित किया था तू तैसा ही बलवान् है स्वयं पृथ्वीका तीक्ष्ण किया हुआ शस्त्र है उस तुझसे मैं शत्रुको पृथिवीसे निर्णोदन करता हूँ इसी प्रकार तू अन्तरिक्ष-तीक्ष्णीकृत है, द्यौ संशित है, दिक्संशित है, आशासंशित है, ऋक्-संशित है, यज्ञसंशित है ओषधिसंशित है, अप्संशित है, कृषि-संशित है, प्राणसंशित है, इस कारण मैं उन २ के अभिमानी देवताओंके प्रदेशसे उस शत्रुको निर्णोदित करता हूँ। इस बात को कह कर कहे, कि-हमने शत्रसेनाको जीत लिया। तदनन्तर दक्षिणदिशाकी ओर सरके और कुछ सरक कर उस दिशाकी ओर मुख कर लेय। तदनन्तर प्रत्येक दिशाकी ओर, सप्तर्षि नामक नक्षत्रोंकी ओर और ब्रह्मणोंकी ओर मुख करे और इनमें से प्रत्येकके पाससे धनकी याचना करे और कहे, कि-मैं जिस शत्रुको खोजता हूँ उसको मारूँगा, यह समिधा आयुध होकर उसको खा डाले। तदनन्तर भुवस्पतिसे अन्नकी याचना करे तथा अग्नि वर्च प्रजा और आयुकी याचना करे। और अग्निसे राक्षसोंमें भेद डालनेकी याचना करे। अंतमें जो पूर्वोक्त उदक है उसको चतुर्भृष्टिवज्र मान कर शत्रुका शिर काटनेके लिये फैंक देय और आशा करे, कि-यह शत्रुके अंगोंको काट देय और सब देवता भी मुझे इस कामके लिये अनुमति देवें॥

साम्प्रदायिक इसी कर्ममें इस सूक्तका इस प्रकार विनियोग करते हैं, कि—

अभिचारकर्ममें जलवज्रोंका विधान कहा जाता है, कि-"इन्द्रस्यौजः" इस सूक्तकी पहिली छः ऋचाओंकी आधी ऋचाओंसे काँसीके कलशका प्रक्षालन करे। 'जिष्णवे योगाय' इन आधी

छः ऋचाओंसे कांस्यघटको जलके समीप रक्खे। "इदं अहम्" इस सूक्तसे जलमें घटके मुखको करे। "इदमहं यो मा प्राच्या दिशः" इस सूक्तसे घटको जलसे भर कर अपक्रमण करे। "इदमहम्" सूक्तसे घटको मण्डपमें स्थापित करे। इस प्रकार घटमें जलका आहरण किया जाता है। तदनन्तर वज्रप्रहरणकी विधि है, कि—"इन्द्रस्यौजः" इस सत्रको करके "इदमहमहम्" से स्थापनतकके कर्मको करे और "अग्नेर्भागः" इस सातवीं ऋचासे १४ वीं ऋचा तककी आठ ऋचाओंसे लाये हुए जलको दो भागोंमें बाँटे। आधेको घड़ेमें करके आधेको पात्रमें रक्खे। उस पात्रको अग्निमें गरम करे। घटको दूसरे पुरुषको दिला देय। "अग्नेर्भागः" इत्यादि आठ ऋचाएँ तापनके मन्त्र हैं। तदनन्तर बाहरकी ओर दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके बैठे और पात्रको आगे रख कर "वातस्य रंहितस्य" इस सूत्रमें कहे हुए मन्त्रसे उदकका संग्रह करके "शम् अग्नये" इस कल्पज सूक्तसे सब प्राणियोंको अभय देवे। "यो व आपोपाम्" इस पन्द्रहवीं ऋचासे वज्रको फेंके। फिर भी "वातस्य रंहितस्य" इत्यादि करके "यो वः आपोपामूर्मिः" इस सोलहवीं ऋचासे वज्रको फेंके। इसी प्रकार अगली सत्रहवींसे इकीसवीं तककी छः ऋचाओंसे वज्रप्रक्षेप होता है। 'एनानधराचः पराचः' इस कल्पकी ऋचासे भाजनमें स्थित जलको भूमिमें डाल देय। इसी प्रकार 'यं वयम्' (४२) सूक्तसे प्रत्येक ऋचा पर और "अपामस्मै वज्रम्" इस पचासवीं ऋचासे भी वज्रप्रक्षेप होता है। "विष्णोः क्रमोऽसि" इस पच्चीसवींसे छत्तीसवीं तककी बारह ऋचाओंसे शत्रुके अभिमुख विष्णुक्रमोंको कदम उठा कर रक्खे। इसी बातको कौशिकने कहा है, कि— "इन्द्रस्यौज इति प्रक्षालयति। जिष्णवे योगायेत्यपो युनक्ति। वातस्य रंहितस्यामृतस्य योनिरिति प्रतिगृह्णाति। उत्तमाः प्रतप्या-

धराः प्रदायैनमेनानधराचः पराचोऽवाञ्चस्तमूं नयत देवाः पितृभिः सम्विदानः प्रजापतिः प्रथमो देवतानाम् इत्यतिसृजति । इदं अहं यो मा प्राच्यादिशोघायुरभिदासादपवादीदिषुगूहः तस्येमौ प्राणापानावपक्रामामि ब्रह्मणा । दक्षिणायाः प्रतीच्या उदीच्या ध्रुवाया व्यध्वाया ऊर्ध्वायाः । इदं अहं यो मा दिशां अन्तर्देशेभ्य इत्यपक्रामामीति । एवं अभिष्ठानापोहननिवेष्टनानि । सर्वाणि खलु शश्वद् भूतानि ब्राह्मणाद् वज्रम् “उद्यच्छमानाच्छङ्कन्ते मां हनिष्यसि मां हनिष्यसीति । तेभ्योभयं वदेच्छं अग्नये शम् पृथिव्यै शम् अन्तरिक्षाय शम् वायवे शम् दिवे शम् सूर्याय शम् चन्द्राय शं नक्षत्रेभ्यः शं गंधर्वाप्सरोभ्यः शम् सर्पेतरजनेभ्यः शिवं मह्यम् इति । यो व अपोपां यं वयं अपां अस्मै वज्रं इत्यन्वृचम् उदवज्रान् । विष्णोः क्रमोसि विष्णुक्रमान्” (कौशिकसूत्र ६ । ३) ॥

अनृतभाषणसे होने वाले पापको दूर करना चाहने वालेको “यदर्वाचीनम्” इस छब्बीसवीं ऋचासे आचमन करावे ।

सब तन्त्रोंमें । “समुद्रं वः प्रहिणोमि”। इस तेईसवीं ऋचासे पत्नीकी अञ्जलिमें जलपात्रको रक्खे। कौशिकसूत्र १ । ६ में कहा है, कि–“बर्हिषि पत्न्यञ्जलौ निनयति समुद्रं वः प्र हिणोमि” ॥

सकल तन्त्रोंमें “सूर्यस्यावृतम्” इन सैंतीसवींसे इकतालीसवीं तककी ऋचाओंसे प्रदक्षिण परिक्रमा करे । कौशिकसूत्र १ । ६ में कहा है, कि–“सूर्यस्यावृत इत्यभिदक्षिणं आवर्तते” ॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्यः बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१
स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।

जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युनज्मि ॥ १ ॥

इन्द्रस्य । ओजः । स्थ । इन्द्रस्य । सहः । स्थ । इन्द्रस्य । बलम् ।

स्थ । इन्द्रस्य । वीर्यम् । स्थ । इन्द्रस्य । नृम्णम् । स्थ ।
जिष्णवे । योगाय । ब्रह्मऽयोगैः । वः । युनज्मि ॥ १ ॥

हे जलों ! तुम इन्द्रके ओज हो, इन्द्रके बल हो, इन्द्रकी अभिभव करनेकी शक्ति हो, इन्द्रके वीर्य हो, इन्द्रके धन हो, ऐसे तुमको मैं जयशील योगके लिये ब्रह्मयोगोंसे युक्त करता हूँ ॥ १ ॥

इन्द्रस्यौज० । जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वो युनज्मि २

०योगाय । क्षत्रऽयोगैः । वः ।० ॥ २ ॥

हे जलों ! तुम इन्द्रके ओज हो, इन्द्रकी तिरस्कार करनेकी शक्ति हो, इन्द्रके बल हो, इन्द्रके वीर्य हो और इन्द्रके धन हो, ऐसे तुमको मैं जयशील योगके लिये क्षत्रयोगसे युक्त करता हूँ २

इन्द्रस्यौज० । जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर्वो युनज्मि ३

०योगाय । इन्द्रऽयोगैः । वः ।० ॥ ३ ॥

हे जलों ! तुम इन्द्रके ओज हो, इन्द्रकी तिरस्कार करनेकी शक्ति हो, इन्द्रके बल हो, इन्द्रके वीर्य हो, और इन्द्रके धन हो, ऐसे तुमको मैं जीतनेके लिये इन्द्रयोगोंसे युक्त करता हूँ ॥ ३ ॥

इन्द्रस्यौज० । जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वो युनज्मि ४

०योगाय । सोमऽयोगैः । वः ।० ॥ ४ ॥

हे जलों ! तुम इन्द्रके ओज हो, इन्द्रकी तिरस्कार करनेकी शक्ति हो, इन्द्रके बल हो, इन्द्रके वीर्य हो, और इन्द्रके धन हो, ऐसे तुमको मैं जयशील योगके लिये सोमयोगोंसे युक्त करता हूँ ४

इन्द्रस्यौज ० । जिष्णवे योगायाप्सुयोगैर्वो युनज्मि ५

धराः प्रदायैनमेनानधराचः पराचोऽवाञ्चस्तमू नयत देवाः पितृभिः सम्विदानः प्रजापतिः प्रथमो देवतानाम् इत्यतिसृजति । इदं अहं यो मा प्राच्यादिशोघायुरभिदासादघवादीदिषुगूहः तस्येमौ प्राणापानावपक्रामामि ब्रह्मणा । दक्षिणायाः प्रतीच्या उदीच्या ध्रुवाया व्यध्वाया ऊर्ध्वायाः । इदं अहं यो मा दिशां अन्तर्देशेभ्य इत्यपक्रामामीति । एवं अभिष्ठानापोहननिवेष्टनानि । सर्वाणि खलु शश्वद् भूतानि ब्राह्मणाद् वज्रम् उद्यच्छमानाच्छङ्कन्ते मां हनिष्यसि मां हनिष्यसीति । तेभ्योभयं वदेच्छं अग्नये शम् पृथिव्यै शम् अन्तरिक्षाय शम् वायवे शम् दिवे शम् सूर्याय शम् चन्द्राय शं नक्षत्रेभ्यः शं गंधर्वाप्सरोभ्यः शम् सर्पेतरजनेभ्यः शिवं मह्यम् इति । यो व अपोपां यं वयं अपां अस्मै वज्रं इत्यन्वृचम् उदवज्रान् । विष्णोः क्रमोसि विष्णुक्रमान्” (कौशिकसूत्र ६ । ३) ॥

अनृतभाषणसे होने वाले पापको दूर करना चाहने वालेको “यदर्वाचीनम्” इस छब्बीसवीं ऋचासे आचमन करावे ।

सब तन्त्रोंमें । “समुद्रं वः।प्रहिणोमि”। इस तेईसवीं ऋचासे पत्नीकी अञ्जलिमें जलपात्रको रक्खे। कौशिकसूत्र १ । ६ में कहा है, कि-“बर्हिर्षि पत्न्यञ्जलौ निनयति समुद्रं वः प्र हिणोमि” ॥

सकल तन्त्रोंमें “सूर्यस्यावृतम्” इन सैंतीसवींसे इकतालीसवीं तककी ऋचाओंसे प्रदक्षिण परिक्रमा करे । कौशिकसूत्र १ । ६ में कहा है, कि-“सूर्यस्यावृत इत्यभिदक्षिणं आवर्तते” ॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्यः बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१
स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युनज्मि ॥ १ ॥

इन्द्रस्य । ओजः । स्थ । इन्द्रस्य । सहः । स्थ । इन्द्रस्य । बलम् ।

स्थ । इन्द्रस्य । वीर्यम् । स्थ । इन्द्रस्य । नृम्णम् । स्थ ।

जिष्णवे । योगाय । ब्रह्मऽयोगैः । वः । युनज्मि ॥ १ ॥

हे जलों ! तुम इन्द्रके ओज हो, इन्द्रके बल हो, इन्द्रकी अभिभव करनेकी शक्ति हो, इन्द्रके वीर्य हो, इन्द्रके धन हो, ऐसे तुमको मैं जयशील योगके लिये ब्रह्मयोगोंसे युक्त करता हूँ ॥ १ ॥

इन्द्रस्यौज० । जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वो युनज्मि २

०योगाय । क्षत्रऽयोगैः । वः ।० ॥ २ ॥

हे जलों ! तुम इन्द्रके ओज हो, इन्द्रकी तिरस्कार करनेकी शक्ति हो, इन्द्रके बल हो, इन्द्रके वीर्य हो और इन्द्रके धन हो, ऐसे तुमको मैं जयशील योगके लिये क्षत्रयोगसे युक्त करता हूँ २

इन्द्रस्यौज० । जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर्वो युनज्मि ३

०योगाय । इन्द्रऽयोगैः । वः ।० ॥ ३ ॥

हे जलों ! तुम इन्द्रके ओज हो, इन्द्रकी तिरस्कार करनेकी शक्ति हो, इन्द्रके बल हो, इन्द्रके वीर्य हो, और इन्द्रके धन हो, ऐसे तुमको मैं जीतनेके लिये इन्द्रयोगोंसे युक्त करता हूँ ॥ ३ ॥

इन्द्रस्यौज० । जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वो युनज्मि ४

०योगाय । सोमऽयोगैः । वः ।० ॥ ४ ॥

हे जलों ! तुम इन्द्रके ओज हो, इन्द्रकी तिरस्कार करनेकी शक्ति हो, इन्द्रके बल हो, इन्द्रके वीर्य हो, और इन्द्रके धन हो, ऐसे तुमको मैं जयशील योगके लिये सोमयोगोंसे युक्त करता हूँ४

इन्द्रस्यौज ० । जिष्णवे योगायाप्सुयोगैर्वो युनज्मि ५

०योगाय । अप्सुऽयोगैः । वः । युनज्मि ॥ ५ ॥

हे जलों ! तुम इन्द्रके ओज हो, इन्द्रकी तिरस्कार करनेकी शक्ति हो, इन्द्रके बल हो, इन्द्रके वीर्य हो, और इन्द्रके धन हो, ऐसे तुमको मैं जयशील योगके लिये अप्योगोंसे युक्त करता हूँ५

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१
स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगाय विश्वानि मा भूतान्युप तिष्ठन्तु
युक्ता म आप स्थ ॥ ६ ॥

इन्द्रस्य । ओजः । स्थ । इन्द्रस्य । सहः । स्थ । इन्द्रस्य । बलम् ।
स्थ । इन्द्रस्य । वीर्यम् । स्थ । इन्द्रस्य । नृम्णम् । स्थ ।
जिष्णवे । योगाय । विश्वानि । मा । भूतानि । उप । तिष्ठन्तु ।
युक्ताः । मे । आपः । स्थ ॥ ६ ॥

हे जलों ! तुम इन्द्रके ओज हो, इन्द्रकी तिरस्कार करनेकी शक्ति हो, इन्द्रके बल हो, इन्द्रके वीर्य हो, और इन्द्रके धन हो, जयशीलयोगके लिये सकलभूत मेरे पास रहे जल मेरे पास उचित रूपमें उपस्थित रहें ॥ ६ ॥

अग्नेर्भाग स्थ ।
अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ ७ ॥

अग्नेः । भागः । स्थ ।

अपाम् । शुक्रम् । आपः । देवीः । वर्चः । अस्मासु । धत्त ।
प्रजाऽपतेः । वः । धाम्ना । अस्मै । लोकाय । सादय ॥ ७ ॥

हे जलों ! तुम अग्निके भाग हो, प्रजापतिके तेजसे इस लोक को नष्ट करनेके लिये जलोंके वीर्य, वर्च और दमकते हुए जलों को हममें स्थापित करो ॥ ७ ॥

इन्द्रस्य भाग स्थ ।०।०। ॥ ८ ॥

इन्द्रस्य । भागः ।० ॥ ८ ॥

हे जलों ! तुम इन्द्रके भाग हो, प्रजापतिके तेजसे इस लोकको नष्ट करनेके लिये जलोंके वीर्य, वर्च और दमकते हुए जलोंको हममें स्थापित करो ॥ ८ ॥

सोमस्य भाग स्थ ।०।०। ॥ ९ ॥

सोमस्य । भागः ।० ॥ ९ ॥

हे जलों ! तुम सोमके भाग हो, प्रजापतिके तेजसे इस लोक को नष्ट करनेके लिये जलोंके वीर्य, वर्च और दमकते हुए जलों को हममें स्थापित करो ॥ ९ ॥

वरुणस्य भाग स्थ ।०।० ॥ १० ॥

वरुणस्य । भागः ।० ॥ १० ॥

हे जलों ! तुम वरुणके भाग हो, प्रजापतिके तेजसे इस लोक को नष्ट करनेके लिये जलोंके वीर्य, वर्च और दमकते हुए जलों को हममें स्थापित करो ॥ १० ॥

मित्रावरुणयोर्भाग स्थ ।०।० ॥ ११ ॥

मित्रावरुणयोः । भागः ।० ॥ ११ ॥

हे जलों ! तुम मित्रावरुणके भाग हो प्रजापतिके तेजसे इस लोकको नष्ट करनेके लिये जलोंके वीर्य, वर्च और दमकते हुए जलोंको हममें स्थापित करो ॥ ११ ॥

यमस्यं भाग स्थं ।०।० ॥ १२ ॥

यमस्य । भागः ।० ॥ १२ ॥

हे जलों ! तुम यमके भाग हो प्रजापतिके तेजसे इस लोकको नष्ट करनेके लिये जलोंके वीर्य, वर्च और दमकते हुए जलोंको हममें स्थापित करो ॥ १२ ॥

पितृणां भाग स्थं ।०।०। ॥ १३ ॥

पितृणाम् । भागः ।० ॥ १३ ॥

हे जलों ! तुम पितरोंके भाग हो प्रजापतिके तेजसे इस लोकको नष्ट करनेके लिये जलोंके वीर्य, वर्च और दमकते हुए जलोंको हममें स्थापित करो ॥ १३ ॥

देवस्यं सवितुर्भाग स्थं ।
अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकायं सादये ॥ १४ ॥

देवस्य । सवितुः । भागः । स्थ ।
अपाम् । शुक्रम् । आपः । देवीः । वर्चः । अस्मासु । धत्त ।
प्रजाऽपतेः । वः । धाम्ना । अस्मै । लोकाय । सादये ॥ १४ ॥

हे जलों ! तुम सविता देवके भाग हो, प्रजापतिके तेजसे इस लोकको नष्ट करनेके लिये जलोंके वीर्य, वर्च और दमकते हुए जलोंको हममें स्थापित करो ॥ १४ ॥

यो व आपोपां भागो३प्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या

यः । वः । आपः । अपाम् । भागः । अप्ऽसु । अन्तः । यजुष्यः । देवऽयजनः ।
इदम् । तम् । अति । सृजामि । तम् । । मा । अभिऽअवनिक्षि ।
तेन । तम् । अभिऽअतिसृजामः । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ।
तम् । वधेयम् । तम् । स्तृषीय । अनेन । ब्रह्मणा । अनेन । कर्मणा । अनया । मेन्या ॥ १५ ॥

हे जलों ! जो तुममें जलीय भाग है जो जलीय भाग यजुर्वेद के मन्त्रोंसे सेवन करने योग्य है, देवताओंकी संगति करनेवाला है, उस जलीय भागको, जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते है उस पर छोड़ता हूँ, उस जलीय अंशसे मैं अपनेको पुष्ट करता हूँ । इस मन्त्रसे इस अभिचारकर्मसे और इस जलरूप आयुधसे उस शत्रुको आच्छादित कर दूं और मार डालूँ ॥

यो व॑ आपोपामूर्मिरप्सु ०।०।०।० ॥ १६ ॥

०अपाम् । ऊर्मिः । अप्ऽसु ।० ॥ १६ ॥

हे जलों ! जो तुममें लहरें हैं जो लहरें यजुर्वेदके मन्त्रोंसे सेवन करने योग्य हैं, देवताओंकी संगति करने वाली हैं, उन लहरों को, जो हमसे द्वेष करते हैं और हम जिससे द्वेष करते हैं उस पर छोड़ता हूँ, उन लहरोंसे मैं अपनेको पुष्ट करता हूँ । इस मन्त्र से इस अभिचारकर्मसे और इस जलरूप आयुधसे शत्रुको आच्छादित कर दूँ और मार डालूँ ॥ १६ ॥

यो व॑ आपोपां वत्सो३प्सु ०।०।०।० ॥ १७ ॥

०अपाम् । वत्सः । अप्ऽसु ।० ॥ १७ ॥

हे जलों ! जो तुममें वत्स है जो वत्स यजुर्वेदके मन्त्रोंसे सेवन करने योग्य है, देवताओंकी संगति करने वाला है, उस वत्सको, जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं उस पर छोड़ता हूँ, उस वत्ससे मैं अपनेको पुष्ट करता हूँ । इस मन्त्रसे इस अभिचारकर्मसे और इस जलरूप आयुधसे उस शत्रुको आच्छादित कर दूँ और मार डालूँ ॥ १७ ॥

यो व॑ आपोपां वृषभो३प्सु ०।०।०।० ॥ १८ ॥

०अपाम् । वृषभः । अप्ऽसु ।० ॥ १८ ॥

हे जलों ! जो तुममें वृषभ है जो वृषभ यजुर्वेदके मन्त्रोंसे सेवन करने योग्य है, देवताओंकी संगति करने वाला है उस वृषभको, जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं उस पर छोड़ता हूँ, उस वृषभसे मैं अपनेसे पुष्ट करता हूँ । इस मन्त्रसे इस अभिचारकर्मसे और इस जलरूप आयुधसे उस शत्रुको आच्छादित कर दूँ और मार डालूँ ॥ १८ ॥

यो वं आपोपां हिरण्यगर्भो३प्सु ०।०।०।० ॥१६॥

०अपाम् । हिरण्यऽगर्भः । अप्ऽसु ।० ॥ १६ ॥

हे जलों ! जो तुममें हिरण्यगर्भ है जो हिरण्यगर्भ यजुर्वेदके मन्त्रोंसे सेवन करने योग्य है, देवताओंकी संगति करने वाला है, उस हिरण्यगर्भको, जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं उस पर छोड़ता हूँ, उस हिरण्यगर्भसे मैं अपनेको पुष्ट करता हूँ । इस मन्त्रसे इस अभिचारकर्मसे और इस जलरूप आयुधसे उस शत्रुको आच्छादित कर दूँ और मार डालूँ १६

यो वं आपोपामश्मा पृश्निर्दिव्यो३प्सु ०।०।०।० २०

यः । वः । आपः । अपाम् । अश्मा । प्रश्निः । दिव्यः । अप्ऽसु ।

अन्तः । यजुष्यः । देवऽयजनः ।

इदम् । तम् । अति । सृजामि । तम् । मा ।० ॥ तेन । तम् । २०

हे जलों ! जो तुममें अग्नियें हैं जो अग्नियें यजुर्वेदके मन्त्रोंसे सेवन करने योग्य हैं, देवताओंकी संगति करने वाली हैं, उन अग्नियोंको, जो हमसे द्वेष करता है, और हम जिससे द्वेष करते हैं उस पर छोड़ता हूँ, उन अग्नियोंसे मैं अपनेको पुष्ट करता हूँ। इस मन्त्रसे इस अभिचारकर्मसे और इस जलरूप आयुधसे उस शत्रको आच्छादित कर दूँ और मार डालूँ ॥ २० ॥

ये वं आपोपामग्नयोप्स्व१न्तर्यजुष्या देवयजनाः ।

इदं तानति सृजामि तान् माभ्यवनिक्षि ।

तैस्तमभ्यतिसृजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।

तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या॥

ये । वः । आपः । अपाम् । अग्नयः । अप्ऽसु । अन्तः । यजुष्याः । देवऽयजनाः ।

इदम् । तान् । अति । सृजामि । तान् । मा । अभिऽअवनिक्षि ।

तैः । तम् । अभिऽअतिसृजामः । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ।

तम् । वधेयम् । तम् । स्तृषीय । अनेन । ब्रह्मणा । अनेन । कर्मणा । अनया । मेन्या ॥ २१ ॥

हे जलो ! जो तुममें दिव्य पृश्नि पत्थर है जो दिव्य पृश्नि पत्थर यजुर्वेदके मन्त्रोंसे सेवन करने योग्य है, देवताओंकी संगति करने वाला है, उस दिव्य पृश्नि पत्थरको, जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं उस पर छोड़ता हूँ उस दिव्य पृश्नि पत्थरसे मैं अपनेको पुष्ट करता हूँ । इस मन्त्रसे इस अभिचारकर्मसे और इस जलरूप आयुधसे उस शत्रुको आच्छादित कर दूँ और मार डालूँ ॥ २१ ॥

यदर्वाचीनं त्रैहायणादनृतं किं चोदिम ।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः २२

यत् । अर्वाचीनम् । त्रैहायनात् । अनृतम् । किम् । च । ऊदिम । आपः । मा । तस्मात् । सर्वस्मात् । दुःऽइतात् । पान्तु । अंहसः २२

जो हमने तीन वर्षके भीतर अत एव नवीन असत्यभाषण किया है उस दुर्गति देने वाले सकल पापसे जल मुझको मुक्त करे ॥

समुद्रं वः प्र हिणोमि स्वां योनिमपीतन ।
अरिष्टाः सर्वहायसो मा च नः किं चनाममत् २३

समुद्रम् । वः । प्र । हिणोमि । स्वाम् । योनिम् । अपि । इतन ।
अरिष्टाः । सर्वऽहायसः । मा । च । नः । किम् । चन । आममत् २३

हे जलों ! मैं तुमको समुद्रकी ओर प्रेरित करता हूँ, तुम अपनी योनि (समुद्र) में लीन होजाओ, हे जलों ! तुम्हारी गति सर्वत्र है और तुम हिंसाको दूर करने वाले हो, हमको कोई भक्षण न कर सके ॥ २३ ॥

अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ।
प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुष्वप्न्यं प्र मलं
वहन्तु ॥ २४ ॥

अरिप्राः । आपः । अप । रिप्रम् । अस्मत् ।
प्र । अस्मत् । एनः । दुःऽइतम् । सुऽप्रतीकाः । प्र । दुःऽस्वप्न्यम् ।
प्र । मलम् । वहन्तु ॥ २४ ॥

हे निष्पाप जलों ! तुम हमसे पापको दूर करो, हे सुप्रतीक जलों ! तुम हमसे दुर्गतिप्रद पाप, दुःस्वप्नजनित दुःख और मल को बहा दो ॥ २४ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोग्नितेजाः ।
पृथिवीमनु वि क्रमेहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो यो ३
स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।

स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ २५ ॥

विष्णोः । क्रमः । असि । सपत्नऽहा । पृथिवीऽसंश्रितः । अग्निऽतेजाः ।
पृथिवीम् । अनु । वि । क्रमे । अहम् । पृथिव्याः । तम् । निः ।
भजामः । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ।
सः । मा । जीवीत् । तम् । प्राणः । जहातु ॥ २५ ॥

तू शत्रुओंका नाश करने वाला विष्णुका ही क्रम है पृथिवीने तुझको काम लेनेके लिये तीक्ष्ण किया है तुझमें अग्निका तेज भरा हुआ है, तू पृथ्वी पर विक्रमण कर मैं पृथिवीसे उसको दूर करता हूँ, कि-जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं वह जीवित न रहे, प्राण उसको त्याग देय ॥ २५ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहान्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः ।
अन्तरिक्षमनु वि क्रमेहमन्तरिक्षात् तं निर्भजामो० ।०

०सपत्नऽहा । अन्तरिक्षऽसंशितः । वायुऽतेजाः ।
अन्तरिक्षम् । अनु । वि । क्रमे । अहम् । अन्तरिक्षात् । तम् ।०२६

तू शत्रुओंका नाश करने वाला विष्णुका ही क्रम है, अन्तरिक्षने तुझको काम लेनेके लिये तीक्ष्ण किया है तुझमें वायुका तेज भरा हुआ है, तू अन्तरिक्ष पर विक्रमण कर मैं अन्तरिक्षसे उसको दूर करता हूँ, कि-जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं वह जीवित न रहे, प्राण उसको त्याग देय ॥ २६ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजाः ।

दिवमनु वि क्रमेहं दिवस्तं ०।० ॥ २७ ॥

० सपत्नऽहा । द्यौऽसंशितः । सूर्यऽतेजाः ।

दिवम् । अनु । वि । क्रमे । अहम् । दिवः । तम् ।० ॥ २७ ॥

तू शत्रुओंका नाश करने वाला विष्णुका ही क्रम है द्यौने तुझको काम लेनेके लिये तीक्ष्ण किया है तुझमें सूर्यका तेज भरा हुआ है, तू द्यौ पर विक्रमण कर मैं द्यौसे उसको दूर करता हूँ, कि-जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं वह जीवित न रहे, प्राण उसको त्याग देय ॥ २७ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः ।
दिशोनु वि क्रमेहं दिग्भ्यस्तं ०।० ॥ २८ ॥

०सपत्नऽहा । दिक्ऽसंशितः । मनःऽतेजाः ।

दिशः । अनु । वि । क्रमे । अहम् । दिक्ऽभ्यः । तम् ।० ॥२८॥

तू शत्रुओंका नाश करने वाला विष्णुका ही क्रम है, दिक्ने तुझको काम लेनेके लिये तीक्ष्ण किया है तुझमें मनका तेज भरा हुआ है, तू दिक् पर विक्रमण कर मैं दिक्से उसको दूर करता हूँ, कि-जो हमसे द्वेष करता है, और हम जिससे द्वेष करते हैं वह जीवित न रहे, प्राण उसको त्याग देय ॥ २८ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहाशासंशितो वाततेजाः ।
आशा अनु वि क्रमेहमाशाभ्यस्तं ०।० ॥ २९ ॥

० सपत्नऽहा । आशाऽसंशितः । वातऽतेजाः ।

आशाः । अनु । वि । क्रमे । अहम् । आशाभ्यः । तम् ।० ।२९।

तू शत्रुओंका नाश करने वाला विष्णुका ही क्रम है, आशाने तुझको काम लेनेके लिये तीक्ष्ण किया है तुझमें वातका तेज भरा हुआ है, तू आशा पर विक्रमण कर मैं आशासे उसको दूर करता हूँ, कि-जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं वह जीवित न रहे, प्राण उसको त्याग देय ॥ २९ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा ऋक्संशितः सामतेजाः ।
ऋचोनु वि क्रमेहमृग्भ्यस्तं ०।० ॥ ३० ॥

० सपत्नऽहा । ऋक्ऽसंशितः । सामऽतेजाः ।

ऋचः । अनु । वि । क्रमे । अहम् । ऋक्ऽभ्यः । तम् ।० ।३०।

तू शत्रुओंका नाश करने वाला विष्णुका ही क्रम है, ऋक्ने तुझको काम लेनेके लिये तीक्ष्ण किया है तुझमें सामका तेज भरा हुआ है, तू ऋक् पर विक्रमण कर मैं ऋक्से उसको दूर करता हूँ, कि-जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं, वह जीवित न रहे, प्राण उसको त्याग देय ॥ ३० ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः ।
यज्ञमनु वि क्रमेहं यज्ञात् तं ०।० ॥ ३१ ॥

० सपत्नऽहा । यज्ञऽसंशितः । ब्रह्मऽतेजाः ।

यज्ञम् । अनु । वि । क्रमे । अहम् । यज्ञात् । तम् ।०॥ ३१ ॥

तू शत्रुओंका नाश करने वाला विष्णुका ही क्रम है, यज्ञने तुझको काम लेनेके लिये तीक्ष्ण किया है तुझमें ब्रह्मका तेज

भरा हुआ है, तू यज्ञ पर विक्रमण कर मैं यज्ञसे उसको दूर करता हूँ, कि–जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं वह जीवित न रहे, प्राण उसको त्याग देय ॥ ३१ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहौषधीसंशितः सोमतेजाः ।
ओषधीरनु वि क्रमेहमोषधीभ्यस्तं ०।० ॥ ३२ ॥

० सपत्नऽहा । ओषधीऽसंशिनः । सोमऽतेजाः ।
ओषधीः । अनु । वि । क्रमे । अहम् । ओषधीभ्यः ।तम् ।० ३२

तू शत्रुओंका नाश करने वाला विष्णुका ही क्रम है, औषधिने तुझको काम लेनेके लिये तीक्ष्ण किया है तुझमें सोमका तेज भरा हुआ है, तू औषधि पर विक्रमण कर मैं औषधिसे उसको दूर करता हूँ, कि–जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं वह जीवित न रहे, प्राण उसको त्याग देय ॥ ३२ ॥

विष्णो क्रमोसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः ।
अपोनु वि क्रमेहमद्भ्यस्तं ०।० ॥ ३३ ॥

० सपत्नऽहा । अप्सुऽसंशितः । वरुणऽतेजाः ।
अपः । अनु । वि । क्रमे । अहम् । अत्ऽभ्यः । तम् ।० ॥३३॥

तू शत्रुओंका नाश करने वाला विष्णुका ही क्रम है, जलने तुझको काम लेनेके लिये तीक्ष्ण किया है तुझमें वरुणका तेज भरा हुआ है, तू जल पर विक्रमण कर मैं जलसे उसको दूर करता हूँ, कि–जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं वह जीवित न रहे, प्राण उसको त्याग देय ॥ ३३ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा कृषिसंशितोन्नतेजाः ।

कृषिमनु वि क्रमेहं कृष्यास्तं ०।० ॥ ३४ ॥

०सपत्नऽहा । कृषिऽसंशितः । अन्नऽतेजाः ।

कृषिम् । अनु । वि । क्रमे । अहम् । कृष्याः । तम् ।० ॥ ३४ ॥

तू शत्रुओंका नाश करने वाला विष्णुका ही क्रम है, कृषिने तुझको काम लेनेके लिये तीक्ष्ण किया है तुझमें अन्नका तेज भरा हुआ है, तू कृषि पर विक्रमण कर मैं कृषिसे उसको दूर करता हूँ, कि–जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं वह जीवित न रहे, प्राण उसको त्याग देय ॥ ३४ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः ।
प्राणमनु वि क्रमेहं प्राणात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ ३५ ॥

विष्णोः । क्रमः । असि । सपत्नऽहा । प्राणऽसंशितः । पुरुषऽतेजाः । प्राणम् । अनु । वि । क्रमे । अहम् । प्राणात् । तम् । निः । भजामः । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः । सः । मा । जीवीत् । तम् । प्राणः । जहातु ॥ ३५ ॥

तू शत्रुओंका नाश करने वाला विष्णुका ही क्रम है, प्राणने तुझको काम लेनेके लिये तीक्ष्ण किया है तुझमें पुरुषका तेज भरा हुआ है, तू प्राण पर विक्रमण कर मैं प्राणसे उसको दूर करता हूँ, कि–जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं वह जीवित न रहे, प्राण उसको त्याग देय ॥ ३५ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ।
इदमहमामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ३६ ॥

जितम् । अस्माकम् । उत्ऽभिन्नम् । अस्माकम् । अभि । अस्थाम् । विश्वाः । पृतनाः । अरातीः ।
इदम् । अहम् । आमुष्यायणस्य । अमुष्याः । पुत्रस्य । वर्चः । तेजः । प्राणम् । आयुः । नि । वेष्टयामि । इदम् । एनम् । अधराञ्चम् । पादयामि ॥ ३६ ॥

जीता हुआ पदार्थसमूह हमारा है, विदारण करके लाया हुआ पदार्थसमूह हमारा है, मैं शत्रुकी सम्पूर्ण सेनाओंको दबा रहा हूँ मैं अमुक गोत्र वाले और अमुकीके पुत्र शत्रुके वर्च तेज प्राण और आयुको (इस अभिचारकर्मसे) घेर रहा हूँ, इस शत्रुको मैं यह नीचेको गिराये देता हूँ ॥ ३६ ॥

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम् ।
सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३७॥

सूर्यस्य । आऽवृतम् । अनुऽआवर्ते । दक्षिणाम् । अनु । आऽवृतम् ।
सा । मे । द्रविणम् । यच्छतु । सा । मे । ब्राह्मणऽवर्चसम् ३७

दक्षिणकी ओर फैले हुए सूर्यसे सञ्चरित मार्गका मैं अनुवर्तन करता हूँ, वह दक्षिण दिशा मुझको धन और ब्रह्मवर्च देवे ३७

कृषिमनु वि क्रमेहं कृष्यास्तं ०।० ॥ ३४ ॥

०सपत्नऽहा । कृषिऽसंशितः । अन्नऽतेजाः ।

कृषिम् । अनु । वि । क्रमे । अहम् । कृष्याः । तम् ।० ॥ ३४ ॥

तू शत्रुओंका नाश करने वाला विष्णुका ही क्रम है, कृषिने तुझको काम लेनेके लिये तीक्ष्ण किया है तुझमें अन्नका तेज भरा हुआ है, तू कृषि पर विक्रमण कर मैं कृषिसे उसको दूर करता हूँ, कि-जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं वह जीवित न रहे, प्राण उसको त्याग देय ॥ ३४ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः ।
प्राणमनु वि क्रमेहं प्राणात् तं निर्भजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ ३५ ॥

विष्णोः । क्रमः । असि । सपत्नऽहा । प्राणऽसंशितः । पुरुषऽतेजाः ।
प्राणम् । अनु । वि । क्रमे । अहम् । प्राणात् । तम् । निः । भजामः । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ।
सः । मा । जीवीत् । तम् । प्राणः । जहातु ॥ ३५ ॥

तू शत्रुओंका नाश करने वाला विष्णुका ही क्रम है, प्राणने तुझको काम लेनेके लिये तीक्ष्ण किया है तुझमें पुरुषका तेज भरा हुआ है, तू प्राण पर विक्रमण कर मैं प्राणसे उसको दूर करता हूँ, कि-जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं वह जीवित न रहे, प्राण उसको त्याग देय ॥ ३५ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ।

इदमहमामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ३६ ॥

जितम् । अस्माकम् । उत्ऽभिन्नम् । अस्माकम् । अभि । अस्थाम् । विश्वाः । पृतनाः । अरातीः ।

इदम् । अहम् । आमुष्यायणस्य । अमुष्याः । पुत्रस्य । वर्चः । तेजः । प्राणम् । आयुः । नि । वेष्टयामि । इदम् । एनम् । अधराञ्चम् । पादयामि ॥ ३६ ॥

जीता हुआ पदार्थसमूह हमारा है, विदारण करके लाया हुआ पदार्थसमूह हमारा है, मैं शत्रुकी सम्पूर्ण सेनाओंको दबा रहा हूँ मैं अमुक गोत्र वाले और अमुकीके पुत्र शत्रुके वर्च तेज प्राण और आयुको (इस अभिचारकर्मसे) घेर रहा हूँ, इस शत्रुको मैं यह नीचेको गिराये देता हूँ ॥ ३६ ॥

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम् ।
सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३७॥

सूर्यस्य । आऽवृतम् । अनुऽआवर्ते । दक्षिणाम् । अनु । आऽवृतम् । सा । मे । द्रविणम् । यच्छतु । सा । मे । ब्राह्मणऽवर्चसम् ३७

दक्षिणकी ओर फैले हुए सूर्यसे सञ्चरित मार्गका मैं अनुवर्तन करता हूँ, वह दक्षिण दिशा मुझको धन और ब्रह्मवर्च देवे ३७

दिशो ज्योतिष्मतीरभ्यावर्ते ।
ता मे द्रविणं यच्छन्तु ता मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३८॥

दिशः । ज्योतिष्मतीः । अभिऽआवर्ते ।

ताः । मे । द्रविणम् । यच्छन्तु । ताः । मे ।० ॥ ३८ ॥

मैं ज्योतिष्मती दिशाओंकी ओर प्रदक्षिणा करता हूँ-उनसे प्रार्थना करता हूँ, वे मुझको धन देवें और मुझको ब्राह्मणवर्चदेवें ॥

सप्तऋषीनभ्यावर्ते ।
ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३९॥

सप्तऽऋषीन् । अभिऽआवर्ते ।

ते । मे । द्रविणम् । यच्छन्तु । ते । मे ।० ॥ ३९ ॥

मैं सप्तर्षियोंके अभिमुख होकर स्थित होता हूँ, वे मुझको धन देवें और वे मुझको ब्राह्मणवर्च देवें ॥ ३९ ॥

ब्रह्माभ्यावर्ते ।
तन्मे द्रविणं यच्छतु तन्मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥४०॥

ब्रह्म । अभिऽआवर्ते ।

तत् । मे । द्रविणम् । यच्छतु । तत् । मे ।० ॥ ४० ॥

मैं मन्त्रके अभिमुख होकर स्थित होता हूँ, वह मुझको धन देवे और मुझको ब्रह्मवर्च देवे ॥ ४० ॥

ब्राह्मणाँ अभ्यावर्ते ।

ते मे॒ द्रवि॑णं यच्छन्तु॒ ते मे॑ ब्राह्मणवर्च॒सम् ॥४१॥

ब्रा॒ह्म॒णान् । अ॒भि॒ऽआ॒व॑र्ते ।

ते । मे॒ । द्रवि॑णम् । य॒च्छ॒न्तु॒ । ते । मे॒ । ब्रा॒ह्म॒ण॒ऽव॒र्च॒सम् ॥४१॥

मैं ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा करता हूँ वे मुझको धन देवें और ब्राह्मणवर्चको देवें ॥ ४१ ॥

यं व॒यं मृ॒गया॑महे॒ तं व॒धै स्तृ॒णवा॑महे ।
व्यात्ते॑ परमे॒ष्ठिनो॒ ब्रह्म॒णापी॑पदाम॒ तम् ॥ ४२ ॥

यम् । व॒यम् । मृ॒गया॑महे । तम् । व॒धैः । स्तृ॒णवा॑म॒है॒ ।
वि॒ऽआ॑त्ते । प॒र॒मे॒ऽस्थिनः॑ । ब्रह्म॑णा । आ । अ॒पी॒प॒दा॒म॒ । तम् ४२

हम जिसके निमित्त चेष्टा कर रहे हैं उसको मारक साधनोंसे आच्छादित करते हैं हम मन्त्रशक्तिसे उसको परमेष्ठी खुले हुए (अग्निरूप मुखमें) डालते हैं ॥ ४२ ॥

वै॒श्वा॒न॒रस्य॒ दंष्ट्रा॑भ्यां हे॒तिस्तं सम॑धाद॒भि ।
इ॒यं तं प्सा॒त्वाहु॑तिः स॒मिद् दे॒वी सही॑यसी ॥ ४३ ॥

वै॒श्वा॒न॒रस्य॑ । दंष्ट्रा॑भ्याम् । हे॒तिः । तम् । सम् । अ॒धा॒त् । अ॒भि ।
इ॒यम् । तम् । प्सा॒तु॒ । आ॒ऽहु॑तिः । स॒म्ऽइत् । दे॒वी । सही॑यसी ४३

यह समिधारूप आयुध उस शत्रुको अग्निकी डाढ़ोंके अर्पण कर देय यह दमकती हुई तिरस्कार करने वाली आहुति उस शत्रुका भक्षण कर लेय ॥ ४३ ॥

रा॒ज्ञो वरु॑णस्य ब॒न्धो॒ऽसि ।

दि॒शो ज्योति॑ष्मतीर॒भ्याव॑र्ते ।
ता मे॒ द्रवि॑णं यच्छन्तु ता मे॑ ब्राह्मणव॒र्चसम् ॥३८॥

दि॑शः । ज्योति॑ष्मतीः । अ॒भि॒ऽआव॑र्ते ।
ताः । मे॒ । द्रवि॑णम् । य॒च्छ॒न्तु॒ । ताः । मे॒ ।० ॥ ३८ ॥

मैं ज्योतिष्मती दिशाओंकी ओर प्रदक्षिणा करता हूँ-उनसे प्रार्थना करता हूँ, वे मुझको धन देवें और मुझको ब्राह्मणवर्चदेवें ॥

स॒प्त॒ऋ॒षीन॒भ्याव॑र्ते ।
ते मे॒ द्रवि॑णं यच्छन्तु ते मे॑ ब्राह्मणव॒र्चसम् ॥३९॥

स॒प्त॒ऽऋ॒षीन् । अ॒भि॒ऽआव॑र्ते ।
ते । मे॒ । द्रवि॑णम् । य॒च्छ॒न्तु॒ । ते । मे॒ ।० ॥ ३९ ॥

मैं सप्तर्षियोंके अभिमुख होकर स्थित होता हूँ, वे मुझको धन देवें और वे मुझको ब्राह्मणवर्च देवें ॥ ३९ ॥

ब्रह्मा॒भ्याव॑र्ते ।
तन्मे॒ द्रवि॑णं यच्छतु तन्मे॑ ब्राह्मणव॒र्चसम् ॥४०॥

ब्रह्म॑ । अ॒भि॒ऽआव॑र्ते ।
तत् । मे॒ । द्रवि॑णम् । य॒च्छ॒तु॒ । तत् । मे॒ ।० ॥ ४० ॥

मैं मन्त्रके अभिमुख होकर स्थित होता हूँ, वह मुझको धन देवे और मुझको ब्रह्मवर्च देवे ॥ ४० ॥

ब्रा॒ह्म॒णाँ अ॒भ्याव॑र्ते ।

ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥४१॥

ब्राह्मणान् । अभिऽआवर्ते ।

ते । मे । द्रविणम् । यच्छन्तु । ते । मे । ब्राह्मणऽवर्चसम् ॥४१॥

मैं ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा करता हूँ वे मुझको धन देवें और ब्राह्मणवर्चको देवें ॥ ४१ ॥

यं वयं मृगयामहे तं वधै स्तृणवामहै ।
व्यात्ते परमेष्ठिनो ब्रह्मणापीपदाम तम् ॥ ४२ ॥

यम् । वयम् । मृगयामहे । तम् । वधैः । स्तृणवामहै ।
विऽआत्ते । परमेऽस्थिनः । ब्रह्मणा । आ । अपीपदाम । तम् ४२

हम जिसके निमित्त चेष्टा कर रहे हैं उसको मारक साधनोंसे आच्छादित करते हैं हम मन्त्रशक्तिसे उसको परमेष्ठी खुले हुए (अग्निरूप मुखमें) डालते हैं ॥ ४२ ॥

वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस्तं समधादभि ।
इयं तं प्सात्वाहुतिः समिद् देवी सहीयसी ॥ ४३ ॥

वैश्वानरस्य । दंष्ट्राभ्याम् । हेतिः । तम् । सम् । अधात् । अभि ।
इयम् । तम् । प्सातु । आऽहुतिः । सम्ऽइत् । देवी । सहीयसी ४३

यह समिधारूप आयुध उस शत्रुको अग्निकी डाढ़ोंके अर्पण कर देय यह दमकती हुई तिरस्कार करने वाली आहुति उस शत्रुका भक्षण कर लेय ॥ ४३ ॥

राज्ञो वरुणस्य बन्धोऽसि ।

२७ २·९-३०

सोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमन्ने प्राणे बधान ४४

राज्ञः । वरुणस्य । बन्धः । असि ।

सः । अमुम् । आमुष्यायणम् । अमुष्याः । पुत्रम् । अन्ने । प्राणे । बधान ॥ ४४ ॥

हे मन्त्र ! तू राजा वरुणका पाश है सो इस अमुक गोत्रवाले अमुकी देवीके पुत्रको अन्न और प्राण विषयमें बाँध ले ॥४४॥

यत् ते अन्नं भुवस्पत आक्षियति पृथिवीमनु ।
तस्य नस्त्वं भुवस्पते संप्रयच्छ प्रजापते ॥ ४५ ॥

यत् । ते । अन्नम् । भुवः । पते । आऽक्षियति । पृथिवीम् । अनु ।
तस्य । नः । त्वम् । भुवः । पते । सम्ऽप्रयच्छ । प्रजाऽपते ।४५।

हे पृथिवीके अधिष्ठात्री देव ! आपका जो अन्न पृथिवीमें निवास करता है, हे पृथिवीके अधिपति प्रजापते ! उसके (सार भागको) आप हमको दीजिये ॥ ४५ ॥

अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि ।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥ ४६ ॥

अपः । दिव्याः । अचायिषम् । रसेन । सम् । अपृक्ष्महि ।
पयस्वान् । अग्ने । आ । अगमम् । तम् । मा । सम् । सृज । वर्चसा ॥ ४६ ॥

मैंने दिव्य जलको एकत्रित कर लिया है और उससे हम अपने

को संयुक्त कर रहे हैं, हे अग्ने ! मैं जल लेकर आपके पास आगया हूँ, इस लिये ऐसे मुझको आप वर्चसे सम्पन्न करिये ४६

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ४७

सम् । मा । अग्ने । वर्चसा । सृज । सम् । प्रऽजया । सम् । आयुषा ।
विद्युः । मे । अस्य । देवाः । इन्द्रः । विद्यात् । सह । ऋषिऽभिः ४७

हे अग्निदेव ! आप मुझको तेज प्रजा और आयुसे भली प्रकार संयुक्त करिये, ऋषियों सहित इन्द्र यह जानें, कि–यह अग्निका भक्त है ॥ ४७ ॥

यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः
मन्योर्मनसः शरव्या३ जायते या तया विध्य हृदये
यातुधानान् ॥ ४८ ॥

यत् । अग्ने । अद्य । मिथुना । शपातः । यत् । वाचः । तृष्टम् ।
जनयन्त । रेभाः ।
मन्योः । मनसः । शरव्या । जायते । या । तया । विध्य । हृदये ।
यातुऽधानान् ॥ ४८ ॥

हे अग्ने ! आज जिसके कारणसे स्त्री और पुरुष परस्पर आक्रोश मचा रहे हैं और जिसके निमित स्तोता कटु वाणीका उच्चारण कर रहे हैं उस पीड़ा देने वाले शत्रुको आप अपने क्रोधयुक्त मनसे जिससे ज्वालारूप बाणावलि निकल रही है उस मनसे हृदयमें ताड़ित करिये ॥ ४८ ॥

परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवां छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि

परा । शृणीहि । तपसा । यातुऽधानान् । परा । अग्ने । रक्षः । हरसा । शृणीहि ।
परा । अर्चिषा । मूरऽदेवान् । शृणीहि । परा । असुऽतृपः । शोशुचतः । शृणीहि ॥ ४९ ॥

हे अग्ने ! आप पीड़ादायक शत्रुओंको अपने तापक तेजसे पराङ्मुख करके नष्ट कर डालिये, और राक्षसस्वरूप शत्रुओंको प्राणापहारक तेजसे पराङ्मुख करके नष्ट कर डालिये, और मारणकर्मसे क्रीड़ा करने वाले—मूरदेव—शत्रुओंको अपनी दमकती हुई ज्वालासे नष्ट कर डालिये, दूसरेके प्राणोंसे अपनी तृप्ति करने वाले परम प्रदीप्त शत्रुओंको आप नष्ट कर डालिये ।४९।

अपामस्मै वज्रं प्र हरामि चतुर्भृष्टिं शीर्षभिद्याय विद्वान् ।
सो अस्याङ्गानि प्र शृणातु सर्वा तन्मे देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥ ५० ॥

अपाम् । अस्मै । वज्रम् । प्र । हरामि । चतुःऽभृष्टिम् । शीर्षऽभिद्याय । विद्वान् ।
सः । अस्य । अङ्गानि । प्र । शृणातु । सर्वा । तत् । मे । देवाः । अनु । जानन्तु । विश्वे ॥५० ॥

॥ इति तृतीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

मन्त्रशक्तिको जानने वाला मैं इस शत्रुका शिर फोड़नेके लिये चतुर्भृष्टि जलवज्रका प्रहार करता हूँ, यह वज्र इसके सब अंगोंको विशीर्ण कर डाले, सकल देवता भी इस विषयमें मेरे अनुकूल सम्मति देवें ॥ ५० ॥ (१७)

तृतीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (४७३) ॥

खदिरकाष्ठफालविकारं मणिं शत्रुनाशाय तथा सर्वकामाप्तये बध्नाति सूक्तेनानेन ॥ सांप्रदायिका हि वक्ष्यमाणप्रकारेण विनुयुञ्जन्ति ॥

सर्वकामसिद्ध्यर्थं खदिरफालमणिं त्रिवासितं कृत्वा हिरण्यवेष्टितं कृत्वा “एतमिध्मम्” [३५] इत्यृचा इध्मम् उपसमाधाय “तमिमं देवता” [२९] इति वासितम् उल्लुप्य आसाद्य “अरातीयोः” इत्यर्थसूक्तेन संपात्याभिमन्त्र्य “ब्रह्मणा तेजसा” [३०] इति ऋचा बध्नाति । यस्मात् सर्वे कामाः संपद्यन्तेनेन मणिना तस्माद् अयं मणिः सर्वकामः । तथा च सूत्रम् । “आयमगन् [३. ५] अय प्रतिसरः [८.५] अयं मे वरणः [१०.३] अरातीयोः [१०.६] इति मन्त्रोक्तान् वासितान् बध्नाति । उत्तमस्य चतुरो जातरूपशकलेनानुसूत्रं गमयित्वावभुज्य त्रैधं पर्यस्यति । एतमिध्मम् इत्युपसमाधाय तमिमं देवता इति वासितम् उल्लुप्य ब्रह्मणा तेजसेति बध्नाति” इति [कौ० ३. २] ॥ मन्त्रोक्तान् मन्त्रोक्तद्रव्यविकारान् । वासितान् त्रयोदश्यादयस्तिस्रो यास्तिथयस्तासु विधिवद्द दधिमधुनि वासितान् । बन्धनस्थानं च मन्त्रस्थम् । उत्तमस्य अरातीयोरिति सूक्तस्य । अवभुज्य कुटिलां कृत्वा । त्रैधं पर्यस्यति त्रिरावेष्टयति । पार्श्वे सर्वतो वेष्टनम् आयसेन । शिरसि बन्धनकरणम् अधिरोहत्विति लिङ्गात् । इत्यादि दारिलः ॥

तथा पशौ वृश्च्यमानयूपानुमन्त्रणे इदं सूक्तं विनियुक्तम् । तद् उक्तं वैताने । “अरातीयोरिति यूपं वृश्च्यमानम् अनुमन्त्रयते” इति [वै० २.६] ॥

तथा "पार्थिवीं भूमिकामस्य" इति [न० क० १७] विहितायां पार्थिव्यां महाशान्तौ खदिरफालमणिबन्धनेपि एतत् सूक्तं विनियुज्यते । तदुक्तं नक्षत्रकल्पे । "अरातीयोरिति फालं पार्थिव्याम्" इति [न० क० १९] ॥

खदिरकाष्ठके फालके विकारकी मणिको शत्रुका नाश करनेके लिये तथा सब कामोंकी प्राप्तिके लिये इस सूक्तसे बाँधे । साम्प्रदायिक पुरुष इसका निम्नलिखितरीतिसे विनियोग कहते हैं कि—

सब कार्योंकी सिद्धिके लिये खादिरफालमणिको त्रिवासित और सुवर्णवेष्टित करके "एतमिध्मम्" इस पैंतीसवीं ऋचासे ईंधनको पासमें रख कर "तमिमं देवता" इस २९ वीं ऋचासे उल्लुप्त करके और पाकर "अरातीयोः" इस अर्थसूक्तसे सम्पातित और अभिमंत्रित करके "ब्रह्मणा तेजसा" इस तीसवीं ऋचासे बाँधे । इस मणिसे सब काम सम्पन्न होजाते हैं, अत एव इस मणिका नाम सर्वकाम है । इसी बातको सूत्रमें कहा है, कि—"आयमगन् (३ । ५) अयं प्रतिसरः (८ । ५) अयं मे वरणः (१० । ३) अरातीयोः (१० । ६) इति मन्त्रोक्तान् वासितान् बध्नाति । उत्तमस्य चतुरो जातरूपशकलेनानुसूत्रं गमयित्वावभुज्य त्रैधं पर्यस्यति । एतमिध्मं इत्युपसमाधाय तमिमं देवता इति वासितं उल्लुप्य ब्रह्मणा तेजसेति बध्नाति" (कौशिकसूत्र ३ । २) ॥ सूत्रके मंत्रोक्त शब्दका अर्थ मंत्रोक्तद्रव्यविकार है । उत्तमशब्दसे अरातीयोः सूक्त लिया गया है । वासित शब्दका अर्थ त्रयोदशीसे आरंभ करके तीन तिथियोंमें विधिके अनुसार दही और मधुमें वासित हैं । बन्धनका स्थान मन्त्रमें लिखा हुआ है । अवभुज्यका अर्थ कुटिल करके है । त्रैधं पर्यस्यतिका अर्थ है–तीन वार लपेटे । पार्श्वमें चारों ओरसे लोहेसे लपेटे । क्योंकि–दारिलने कहा है, कि–"शिरसि बंधनकरणम् अधिरोहतु इति लिंगात्" ॥

तथा पशुके लिये वृश्च्यमान यूपके अनुमन्त्रणके समय इस सूक्तका विनियोग किया जाता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"अरातीयोरिति यूपं वृश्च्यमानं अनुमन्त्रयते" (वैतानसूत्र २। ६) ॥

तथा "पार्थिवीं भूमिकामस्य।—भूमि चाहने वालेके लिये पार्थिवी शान्तिको करे" इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित पार्थिवी महाशान्तिके खदिरफालमणिबंधनमें भी इस सूक्तका विनियोग किया जाता है। इसी बातको नक्षत्रकल्प १९ में कहा है, कि—"अरातीयोरिति फालं पार्थिव्याम्" ॥

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः।
अपि वृश्चाम्योजसा ॥ १ ॥

अरातिऽयोः। भ्रातृव्यस्य। दुःऽहार्दः। द्विषतः। शिरः।
अपि। वृश्चामि। ओजसा ॥ १ ॥

द्वेष और दुर्भाव रखने वाले शत्रुके शिरको मैं मन्त्रबलसे काटता हूँ ॥ १ ॥

वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति।
पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा ॥ २ ॥

वर्म। मह्यम्। अयम्। मणिः। फालात्। जातः। करिष्यति।
पूर्णः। मन्थेन। मा। आ। अगमत्। रसेन। सह। वर्चसा २

रस और मंथसे पूर्ण हुआ यह मणि तेजके साथ मेरे पास आरहा है यह फालसे उत्पन्न हुआ मणि मेरी कवचकी समान रक्षा करेगा ॥ २ ॥

यत् त्वा शिक्वः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या ।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम् ३

यत् । त्वा । शिक्वः । पराऽअवधीत् । तक्षा । हस्तेन । वास्या ।
आपः । त्वा । तस्मात् । जीवलाः । पुनन्तु । शुचयः । शुचिम् ३

तुझको जो शिक्वने काटा है और बढ़ईने हाथसे बसूलेके द्वारा काटा है, इस कारण जीवदान करने वाले पवित्र जल तुझपवित्र को पवित्र करें ॥ ३ ॥

हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत् ।
गृहे वसतु नोतिथिः ॥ ४ ॥

हिरण्यऽस्रक् । अयम् । मणिः । श्रद्धाम् । यज्ञम् । महः । दधत् ।
गृहे । वसतु । नः । अतिथिः ॥ ४ ॥

यह हिरण्यस्रक् मणि श्रद्धा यज्ञ उत्सवको धारण करता हुआ अतिथिकी समान हमारे घरमें वसे ॥ ४ ॥

तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे ।
स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयःश्रेयश्चिकित्सतु भूयोभूयः
श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ॥ ५ ॥

तस्मै । घृतम् । सुराम् । मधु । अन्नम्ऽअन्नम् । क्षदामहे ।
सः । नः । पिताऽइव । पुत्रेभ्यः । श्रेयःऽश्रेयः । चिकित्सतु ।
भूयःऽभूयः । श्वःऽश्वः । देवेभ्यः । मणिः । आऽइत्य ॥ ५ ॥

हम इस मणिके लिये घृत सुरा मधु और अन्न अर्पण करते हैं, जैसे पिता पुत्रोंके लिये कल्याणका विधान करता रहता है, इसी प्रकार यह मणि हमारे लिये प्रत्येक कल्याणकी बातोंकी योजना करे, यह मणि देवताओंके पाससे वारम्वार आकर हमारे कल्याणके उपायोंको करे ॥ ५ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ ६ ॥

यम् । अबध्नात् । बृहस्पतिः । मणिम् । फालम् । घृतऽश्चुतम् । उग्रम् । खदिरम् । ओजसे ।
तम् । अग्निः । प्रति । अमुञ्चत । सः । अस्मै । दुहे । आज्यम् । भूयःऽभूयः । श्वःऽश्वः । तेन । त्वम् । त्वम् । द्विषतः । जहि ४

घृतकी समान सार पदार्थोंकी वर्षा करने वाली और शत्रुके लिये उग्र जिस खदिरफालमणिको बृहस्पतिने बल पानेके लिये बाँधा था उसका अग्निने प्रतिमुञ्चन किया था, अर्थात् अपने शरीर पर उसको बँधवाया था उसके लिये उसने प्रतिदिन वारम्वार घृतकी समान सार पदार्थोंको दुहा था, उस मणिसे तू शत्रुओंको मार

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं० ।
तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतौजसे वीर्याय कम् ।

२-६-३०

सो अस्मै बलमिद् दुहे भूयोभूयः० ॥ ७ ॥

० तम् । इन्द्रः । प्रति । अमुञ्चत । ओजसे । वीर्याय । कम् ।
सः । अस्मै । बलम् । इत् । दुहे । भूयःऽभूयः ।० ॥ ७ ॥

घृतकी समान सार पदार्थोंकी वर्षा करने वाली और शत्रुके लिये उग्र जिस खदिरफालमणिको बृहस्पतिने बल पानेके लिये बाँधा था, इन्द्रने उसको ओज और वीर्य पानेके लिये बँधवाया था, तब वह मणि इन इन्द्रदेवके लिये प्रतिदिन वारम्वार बलको देती रहती है, उस मणिसे तू शत्रुओंको मार ॥ ७ ॥

यमब० । तं सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे ।
सो अस्मै वर्च इद् दुहे भूयोभूयः० ॥ ८ ॥

० तम् । सोमः । प्रति । अमुञ्चत । महे । श्रोत्राय । चक्षसे ।
० अस्मै । वर्चः । इत् ।० ॥ ८ ॥

घृतकी समान सार पदार्थोंकी वर्षा करने वाली और शत्रुके लिये जिस खदिरफालमणिको बृहस्पतिने बल पानेके लिये बाँधा था, सोमने उसको महत्त्वमय श्रोत्र और दृष्टिशक्ति पानेके बँधवाया था, तब वह मणि इन सोमदेवके लिये प्रतिदिन वारम्वार वर्चको देती रहती है, उस मणिसे तू शत्रुओंको मार ॥ ८ ॥

यमब० । तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशः ।
सो अस्मै भूतिमिद् दुहे भूयोभूयः० ॥ ९ ॥

० तम् । सूर्यः । प्रति । अमुञ्चत । तेन । इमाः । अजयत् । दिशः ।
० अस्मै । भूतिम् । इत् ।० ॥ ९ ॥

घृतकी समान सार पदार्थोंकी वर्षा करने वाली और शत्रुके लिये उग्र जिस खदिरफालमणिको बृहस्पतिदेवने बल पानेके लिये बाँधा था, उसको सूर्यदेवने बँधवाया था और उसके द्वारा दिशाओंको जीत लिया था, वह प्रति दूसरे दिन अधिकाधिकभावसे सूर्यदेवको भूति ही देती रहती है, ऐसी मणिसे तू शत्रुओंको मार ॥ ९ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं बिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोजयद् दानवानां हिरण्ययीः ।
सो अस्मै श्रियमिद् दुहे भूयोभूयः० ॥ १० ॥

० बृहस्पतिः । मणिम् । फालम् । घृतऽश्चुतम् । उग्रम् । खदिरम् । ओजसे ।
तम् । बिभ्रत् । चन्द्रमाः । मणिम् । असुराणाम् । पुरः । अजयत् । दानवानाम् । हिरण्ययीः ।
० अस्मै । श्रियम् । इत् । दुहे ।०॥ १० ॥

बृहस्पति देवने जिस घृतकी समान सार पदार्थोंको देने वाली शत्रुके लिये उग्र खदिरफालमणिको ओजके लिये बाँधा, उस मणिको धारण करके चन्द्रदेवने असुरोंके सुवर्णमय नगरोंको जीत लिया था, इस प्रकार वह मणि इसके लिये प्रतिदिन वारम्वार लक्ष्मी प्रदान करती रहती है, उस मणिसे तू शत्रुओंका संहार कर ॥ १० ॥ (१८)

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
सो अस्मै वाजिनं दुहे भूयोभूयः० ॥ ११ ॥

०बृहस्पतिः । वाताय । मणिम् । आशवे ।
सः । अस्मै । वाजिनम् । दुहे ।० ॥ ११ ॥

बृहस्पतिदेवने वायुदेवके जिस मणिको शीघ्रताके लिये बाँधा था, वह मणि वायुदेवको प्रतिदिन वारम्वार वेग प्रदान करती रहती है, उस मणिसे तू शत्रुओंका संहार कर ॥ ११ ॥

यमब० । तेनेमां मणिना कृषिमश्विनावभि रक्षतः ।
स भिषग्भ्यां महो दुहे भूयोभूयः० ॥ १२ ॥

०तेन । इमाम् । मणिना । कृषिम् । अश्विनौ । अभि । रक्षतः ।
सः । भिषक्ऽभ्याम् । महः । दुहे ।० ॥१२॥

बृहस्पतिदेवने अश्विनीकुमारोंके लिये जिस मणिको बाँधा था, उस मणिसे अश्विनीकुमार कृषिकी रक्षा करते हैं वह अश्विनीकुमारोंको प्रतिदिन वारम्वार जल देती रहती है, उस मणिसे तू शत्रुओंका संहार कर ॥ १२ ॥

यमब० । तं बिभ्रत् सविता मणिं तेनेदमजयत् स्वः ।
सो अस्मै सूनृतां दुहे भूयोभूयः० ॥ १३ ॥

०तम् । बिभ्रत् । सविता । मणिम् । तेन । इदम् । अजयत् । स्वः ।
सः । अस्मै । सूनृताम् । दुहे ॥ १३ ॥

बृहस्पतिदेवने जिस मणिको बाँधा था सविता देवने उस मणिको धारण करके स्वर्गको जीत लिया है, वह इन सवितादेवके लिये प्रतिदिन वारम्वार सूनृता वाणीको प्रदान करती है, ऐसी मणिसे तू शत्रुओंका संहार कर ॥ १३ ॥

यमब० । तमापो बिभ्रतीर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः ।
स आभ्योमृतमिद् दुहे भूयोभूयः० ॥ १४ ॥

०तम् । आपः । बिभ्रतीः । मणिम् । सदा । धावन्ति । अक्षिताः ।
सः । आभ्यः । अमृतम् । इत् । दुहे ।० ॥ १४ ॥

जिस मणिको बृहस्पतिदेवने जलोंके बाँधा था, उस मणिको धारण करके जल सदा अक्षीणरूपसे दौड़ते रहते हैं, वह मणि इन जलोंके लिये प्रतिदिन अधिकाधिक अमृत ही प्रदान करती रहती है, उस मणिसे तू शत्रुओंका संहार कर ॥ १४ ॥

यमब० । तं राजा वरुणो मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम् ।
सो अस्मै सत्यमिद् दुहे भूयोभूयः० ॥ १५ ॥

०तम् । राजा । वरुणः । मणिम् । प्रति । अमुञ्चत । शम्ऽभुवम् ।
सः । अस्मै । सत्यम् । इत् ।० ॥ १५ ॥

जिस मणिको बृहस्पतिदेवने बाँधा और जिस कल्याणको देने वाली मणिको राजा वरुणने बँधवाया था, वह मणि इन वरुणदेवको प्रति दूसरे दिन अधिकाधिक सत्य ही प्रदान करती रहती है उस मणिके प्रभावसे तू शत्रुओंका संहार कर ॥ १५ ॥

यमब० । तं देवा बिभ्रतो मणिं सर्वांल्लोकान् युधाजयन्
स एभ्यो जितिमिद् दुहे भूयोभूयः० ॥ १६ ॥

०तम् । देवाः । बिभ्रतः । मणिम् । सर्वान् । लोकान् । युधा । अजयन् ।
सः । एभ्यः । जितिम् । इत् ।० ॥ १६ ॥

जिस मणिको बृहस्पतिदेवने बाँधा था और उस मणिको धारण करके देवताओंने युद्धके द्वारा सब लोकोंको जीन लिया था उस मणिने इनके लिये विजयको ही दुहा था उस मणिसे तू शत्रुओंका संहार कर ॥ १६ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
तमिमं देवता मणिं प्रत्यमुञ्चन्त शंभुवम् ।
स आभ्यो विश्वमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं
द्विषतो जहि ॥ १७ ॥

यम् । अबध्नात् । बृहस्पतिः । वाताय । मणिम् । आशवे ।
तम् । इमम् । देवताः । मणिम् । प्रति । अमुञ्चन्त । शम्ऽभुवम् ।
सः । आभ्यः । विश्वम् । इत् । दुहे । भूयःऽभूयः । श्वःऽश्वः ।
तेन । त्वम् । द्विषतः । जहि ॥ १७ ॥

बृहस्पतिदेवने जिस मणिको वायुदेवके शीघ्रताके लिये बाँधा था, उस कल्याणप्रदमणिको देवताओंने भी बाँधा था, वह मणि उन देवताओंके लिये प्रति दूसरे दिन अधिकाधिकरूपमें विश्व को ही प्रदान करती रहती है, ऐसी मणिसे तू शत्रुओंका संहार कर

ऋतवस्तमबध्नतार्तवास्तमबध्नत ।
संवत्सरस्तं बद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति ॥ १८ ॥

ऋतवः । तम् । अबध्नत । आर्तवाः । तम् । अबध्नत ।
सम्ऽवत्सरः । तम् । बद्ध्वा । सर्वम् । भूतम् । वि । रक्षति १८

ऋतुओंने इस मणिको बाँधा था और ऋतुके अवयव महीनोंने भी इसको बाँधा है और सम्वत्सर इस मणिको धारण करके सब प्राणियोंकी रक्षा करता है ॥ १८ ॥

अन्तर्देशा अबध्नत प्रदिशस्तमबध्नत ।
प्रजापतिसृष्टो मणिर्द्विषतो मेधराँ अकः ॥ १९ ॥

अन्तःऽदेशाः । अबध्नत । प्रऽदिशः । तम् । अबध्नत ।
प्रजापतिऽसृष्टः । मणिः । द्विषतः । मे । अधरान् । अकः ॥१९॥

अन्तर्देशोंने भी इसको बाँधा है और प्रदिशाओंने भी इसको बाँधा है, प्रजापतिद्वारा आविष्कृत यह मणि मेरे शत्रुओंको बुरी दशामें डाल देय ॥ १९ ॥

अथर्वाणो अबध्नताथर्वणा अबध्नत ।
तैर्मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां बिभिदुः पुरस्तेन त्वं
द्विषतो जहि ॥ २० ॥

अथर्वाणः । अबध्नत । आथर्वणाः । अबध्नत ।
तैः । मेदिनः । अङ्गिरसः । दस्यूनाम् । बिभिदुः । पुरः । तेन ।
त्वम् । द्विषतः । जहि ॥ २० ॥

अथर्ववेदियोंने इस मणिको बाँधा है अथर्ववेदके मन्त्रसमूहके

द्वारा बाँधा है, इन मन्त्रोंकी सहायता प्राप्त कर उन्होंने शत्रुओंके पुरोंको भेद डाला है, ऐसी मणिसे तू शत्रुओंको मार ॥ २० ॥

तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्यकल्पयत् ।
तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ २१ ॥

तम् । धाता । प्रति । अमुञ्चत । सः । भूतम् । वि । अकल्पयत् ।
तेन । त्वम् । द्विषतः । जहि ॥ २१ ॥

इस मणिको धाताने धारण किया था और उससे प्राणिसमूह की रचना की थी, ऐसी मणिसे तू शत्रुओंका संहार कर ॥२१॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमद् रसेन सह वर्चसा ॥ २२ ॥

यम् । अबध्नात् । बृहस्पतिः । देवेभ्यः । असुरऽक्षितिम् ।
सः । मा । अयम् । मणिः । आ अगमत् । रसेन । सह । वर्चसा

बृहस्पतिदेवने असुरोंका क्षय करने वाली जिस मणिको देवताओंके बाँधा था, वह मणि रस और वर्चके साथ मेरे पास आ गई है ॥ २२ ॥

यमब० । स मायं मणिरागमत् सह गोभिरजाविभि-
रन्नेन प्रजया सह ॥ २३ ॥

०अगमत् । सह । गोभिः । अजाविऽभिः । अन्नेन । प्रजया । सह २३

बृहस्पतिदेवने असुरोंका क्षय करने वाली जिस मणिको देवताओंके बाँधा था, वह मणि गौ भेड़ बकरी अन्न और प्रजाके साथ (अर्थात् इन वस्तुओंको देनेके लिये) मेरे पास आगई है ॥२३॥

यमब० । स मायं मणिरागमत् सह व्रीहियवाभ्यां
महसा भूत्या सह ॥ २४ ॥

०अगमत् । सह । व्रीहिऽयवाभ्याम् । महसा । भूत्या । सह २४

बृहस्पतिदेवने असुरोंका क्षय करने वाली जिस मणिको देवताओंके बाँधा था वह मणि जौं धान, उत्सव और भूतिके साथ मेरे पास आरही है ॥ २४ ॥

यमब० । स मायं मणिरागमन्मधोर्घृतस्य धारया
कीलालेन मणिः सह ॥ २५ ॥

०अगमत् । मधोः । घृतस्य । धारया । कीलालेन । मणिः । सह॥

असुरोंका क्षय करने वाली जिस मणिको बृहस्पतिने देवताओंके बाँधा था वह यह मणि मेरे पास मधु घृतधारा और अन्न के साथ आरही है ॥ २५ ॥

यमब०।स मायं मणिरागमदूर्जया पयसा सह द्रविणेन
श्रिया सह ॥ २६ ॥

० अगमत् । ऊर्जया । पयसा । सह । द्रविणेन । श्रिया । सह ॥

असुरोंका क्षय करने वाली जिस मणिको बृहस्पतिदेवने देवताओंके बाँधा था, वह यह मणि अन्न बल धन और श्रीके साथ मेरे पास आगई है ॥ २६॥

यमब० । स मायं मणिरागमत् तेजसा त्विष्या सह
यशसा कीर्त्या सह ॥ २७ ॥

२६ ३-९-३०

द्वारा बाँधा है, इन मन्त्रोंकी सहायता प्राप्त कर उन्होंने शत्रुओंके पुरोंको भेद डाला है, ऐसी मणिसे तू शत्रुओंको मार ॥ २० ॥

तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्यकल्पयत् ।
तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ २१ ॥

तम् । धाता । प्रति । अमुञ्चत । सः । भूतम् । वि । अकल्पयत् ।
तेन । त्वम् । द्विषतः । जहि ॥ २१ ॥

इस मणिको धाताने धारण किया था और उससे प्राणिसमूह की रचना की थी, ऐसी मणिसे तू शत्रुओंका संहार कर ॥२१॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमद् रसेन सह वर्चसा ॥ २२ ॥

यम् । अबध्नात् । बृहस्पतिः । देवेभ्यः । असुरऽक्षितिम् ।
सः । मा । अयम् । मणिः । आ अगमत् । रसेन । सह । वर्चसा

बृहस्पतिदेवने असुरोंका क्षम करने वाली जिस मणिको देवताओंके बाँधा था, वह मणि रस और वर्चके साथ मेरे पास आ गई है ॥ २२ ॥

यमब० । स मायं मणिरागमत् सह गोभिरजाविभि-
रन्नेन प्रजया सह ॥ २३ ॥

०अगमत् । सह । गोभिः । अजाविऽभिः । अन्नेन । प्रजया । सह २३

बृहस्पतिदेवने असुरोंका क्षय करने वाली जिस मणिको देवताओंके बाँधा था, वह मणि गौ भेड़ बकरी अन्न और प्रजाके साथ (अर्थात् इन वस्तुओंको देनेके लिये) मेरे पास आगई है ॥२३॥

यमब० । स मायं मणिरागमत् सह व्रीहियवाभ्यां
महसा भूत्या सह ॥ २४ ॥

०अगमत् । सह । व्रीहिऽयवाभ्याम् । महसा । भूत्या । सह २४

बृहस्पतिदेवने असुरोंका क्षय करने वाली जिस मणिको देवताओंके बाँधा था वह मणि जौं धान, उत्सव और भूतिके साथ मेरे पास आरही है ॥ २४ ॥

यमब० । स मायं मणिरागमन्मधोर्घृतस्य धारया
कीलालेन मणिः सह ॥ २५ ॥

०अगमत् । मधोः । घृतस्य । धारया । कीलालेन । मणिः । सह॥

असुरोंका क्षय करने वाली जिस मणिको बृहस्पतिने देवताओंके बाँधा था वह यह मणि मेरे पास मधु घृतधारा और अन्न के साथ आरही है ॥ २५ ॥

यमब०।स मायं मणिरागमदूर्जया पयसा सह द्रविणेन
श्रिया सह ॥ २६ ॥

० अगमत् । ऊर्जया । पयसा । सह । द्रविणेन । श्रिया । सह ॥

असुरोंका क्षय करने वाली जिस मणिको बृहस्पतिदेवने देवताओंके बाँधा था, वह यह मणि अन्न बल धन और श्रीके साथ मेरे पास आगई है ॥ २६ ॥

यमब० । स मायं मणिरागमत् तेजसा त्विष्या सह
यशसा कीर्त्या सह ॥ २७ ॥

२६ ३-६-३०

०अगमत् । तेजसा । त्विष्या । सह । यशसा । कीर्त्या । सह २७

असुरोंका क्षय करने वाली जिस मणिको बृहस्पतिदेवने देवताओंके बाँधा था वह यह मणि तेज, दीप्ति यश और कीर्तिके साथ मेरे पास आगई है ॥ २७ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सर्वाभिर्भूतिभिः सह ॥२८॥

यम् । अबध्नात् । बृहस्पतिः । देवेभ्यः । असुरऽक्षितिम् ।
सः । मा । अयम् । मणिः । आ । अगमत् । सर्वाभिः । भूतिऽभिः । सह ॥ २८ ॥

असुरोंका क्षय करने वाली जिस मणिको बृहस्पतिदेवने देवताओंके बाँधा था वह यह मणि सब विभूतियोंके साथ मेरे पास आगई है ॥ २८ ॥

तमिमं देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टये ।
अभिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम् ॥ २९ ॥

तम् । इमम् । देवताः । मणिम् । मह्यम् । ददतु । पुष्टये ॥२९॥
अभिऽभुम् । क्षत्रऽवर्धनम् । सपत्नऽदम्भनम् । मणिम् ॥ २९ ॥

शत्रुओंको दबाने वाली, क्षात्रशक्तिको बढ़ाने वाली, शत्रुओंकी हिंसा करने वाली इस मणिको देवता पुष्टिके लिये मुझे दें २९

ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि मे शिवम् ।
असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेधराँ अकः ॥ ३० ॥

ब्रह्मणा । तेजसा । सह । प्रति । मुञ्चामि । मे । शिवम् ।
असपत्नः । सपत्नऽहा । सऽपत्नान् । मे । अधरान् । अकः ३०

हे मणे ! मैं कल्याणकारिणी तुझको मन्त्रशक्तिके साथ ग्रहण करता हूँ, तू स्वयं शत्रुरहित है और अपने धारण करने वालेके शत्रुओंका संहार करने वाली है, अतः तू मेरे शत्रुओंको हीन-दशामें डाल दे ॥ ३० ॥

उत्तरं द्विषतो मामयं मणिः कृणोतु देवजाः ।
यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥ ३१ ॥

उत्ऽतरम् । द्विषतः । माम् । अयम् । मणिः । कृणोतु । देवऽजाः ।
यस्य । लोकाः । इमे । त्रयः । पयः । दुग्धम् । उपऽआसते ।
सः । मा । अयम् । अधि । रोहतु । मणिः । श्रैष्ठ्याय । मूर्धतः ३१

देवताओंसे आविष्कृत यह मणि मुझको शत्रुओंसे उत्कृष्ट करे, जिस मणिके दुग्ध और जलकी सम्पूर्ण देवता उपासना करते हैं, ऐसी यह मणि श्रेष्ठता देनेके लिये मूर्धतः (श्रेष्ठतासे) मुझ पर अधिरोहण करे ॥ ३१ ॥

यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥ ३२ ॥

यम् । देवाः । पितरः । मनुष्याः । उपऽजीवन्ति । सर्वदा ।
सः । मा । अयम् । अधि । रोहतु । मणिः । श्रैष्ठ्याय । मूर्धतः ३२

०अगमत् । तेजसा । त्विष्या । सह । यशसा । कीर्त्या । सह २७

असुरोंका क्षय करने वाली जिस मणिको बृहस्पतिदेवने देवताओंके बाँधा था वह यह मणि तेज, दीप्ति यश और कीर्तिके साथ मेरे पास आगई है ॥ २७ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सर्वाभिर्भूतिभिः सह ॥२८॥

यम् । अबध्नात् । बृहस्पतिः । देवेभ्यः । असुरऽक्षितिम् ।

सः । मा । अयम् । मणिः । आ । अगमत् । सर्वाभिः । भूतिऽभिः । सह ॥ २८ ॥

असुरोंका क्षय करने वाली जिस मणिको बृहस्पतिदेवने देवताओंके बाँधा था वह यह मणि सब विभूतियोंके साथ मेरे पास आगई है ॥ २८ ॥

तमिमं देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टये ।
अभिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम् ॥ २९ ॥

तम् । इमम् । देवताः । मणिम् । मह्यम् । ददतु । पुष्टये ॥२९॥

अभिऽभुम् । क्षत्रऽवर्धनम् । सपत्नऽदम्भनम् । मणिम् ॥ २९ ॥

शत्रुओंको दबाने वाली, क्षात्रशक्तिको बढ़ाने वाली, शत्रुओंकी हिंसा करने वाली इस मणिको देवता पुष्टिके लिये मुझे दें २९

ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि मे शिवम् ।
असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेधराँ अकः ॥ ३० ॥

ब्रह्मणा । तेजसा । सह । प्रति । मुञ्चामि । मे । शिवम् ।
असपत्नः । सपत्नऽहा । सऽपत्नान् । मे । अधरान् । अकः ३०

हे मणे ! मैं कल्याणकारिणी तुझको मन्त्रशक्तिके साथ ग्रहण करता हूँ, तू स्वयं शत्रुरहित है और अपने धारण करने वालेके शत्रुओंका संहार करने वाली है, अतः तू मेरे शत्रुओंको हीन-दशामें डाल दे ॥ ३० ॥

उत्तरं द्विषतो मामयं मणिः कृणोतु देवजाः ।
यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥ ३१ ॥

उत्ऽतरम् । द्विषतः । माम् । अयम् । मणिः । कृणोतु । देवऽजाः ।
यस्य । लोकाः । इमे । त्रयः । पयः । दुग्धम् । उपऽआसते ।
सः । मा । अयम् । अधि । रोहतु । मणिः । श्रैष्ठ्याय । मूर्धतः ३१

देवताओंसे आविष्कृत यह मणि मुझको शत्रुओंसे उत्कृष्ट करे, जिस मणिके दुग्ध और जलकी सम्पूर्ण देवता उपासना करते हैं, ऐसी यह मणि श्रेष्ठता देनेके लिये मूर्धतः (श्रेष्ठतासे) मुझ पर अधिरोहण करे ॥ ३१ ॥

यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥ ३२ ॥

यम् । देवाः । पितरः । मनुष्याः । उपऽजीवन्ति । सर्वदा ।
सः । मा । अयम् । अधि । रोहतु । मणिः । श्रैष्ठ्याय । मूर्धतः ३२

जिस मणिसे देवता मनुष्य और पितर सदा उपजीवित रहते हैं, ऐसी यह मणि उत्तमतासे मुझ पर आरोहण करे ॥ ३२ ॥

यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति ।
एवा मयि प्रजा पशवोन्नमन्नं वि रोहतु ॥ ३३ ॥

यथा । बीजम् । उर्वरायाम् । कृष्टे । फालेन । रोहति ।
एव । मयि । प्रऽजा । पशवः । अन्नम्ऽअन्नम् । वि । रोहतु ३३

जैसे फालसे कुरद जाने पर पृथ्वीमें बोया हुआ बीज उगता है, इसी प्रकार यह मणि मुझमें प्रजा पशु और खाने योग्य अन्न को उगावे ॥ ३३ ॥

यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुचं शिवम् ।
तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ॥३४॥

यस्मै । त्वा । यज्ञऽवर्धन । मणे । प्रतिऽअमुचम् । शिवम् ।
तम् । त्वम् । शतऽदक्षिण । मणे । श्रैष्ठ्याय । जिन्वतात् ॥ ३४ ॥

हे यज्ञवर्धन मणे ! मैं जिसके लिये तुझ कल्याणकारिणीको बाँध रहा हूँ, हे शतदक्षिण मणे ! तू उसको श्रेष्ठता प्रदान करके तृप्त कर ॥ ३४ ॥

एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः ।
तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे
जातवेदसि ब्रह्मणा ॥ ३५ ॥

एतम् । इध्मम् । सम्ऽआहितम् । जुषाणः । अग्ने । प्रति । हर्य । होमैः

तस्मिन् । विदेम । सुऽमतिम् । स्वस्ति । प्रऽजाम् । चक्षुः । पशून् ।
समऽइद्धे । जातऽवेदसि । ब्रह्मणा ॥ ३५ ॥

तृतीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥ इति तृतीयोनुवाकः ॥

हे अग्ने ! आप इस भली प्रकार रक्खे हुए ईंधनका सेवन करते हुए होमोंसे दीप्त हूजिये मन्त्रशक्तिके द्वारा प्रदीप्त हुए इस जातवेदा अग्निसे हम सुमति, कल्याण, प्रजा नेत्र और पशुओं को प्राप्त करें ॥ ३५ ॥ (२१)

तृतीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (४७४)
तृतीय अनुवाक समाप्त ॥

"कस्मिन्नङ्गे" इति स्कम्भसूक्तम् । स्कम्भ इति सनातनतमो देवो ब्रह्मणोप्याद्यभूतः । अतो ज्येष्ठं ब्रह्मेति तस्य संज्ञा । तस्मिन् सर्वमेतत् तिष्ठति तत्सर्वम् एतेनाविष्टम् । विराडपि तस्मिन्नेव समाहितः । तस्मिन्नेव देवादयः सर्वे समाहिता इत्यादि वर्णनम् ॥

"कस्मिन्नङ्गे" यह स्कंभसूक्त है । यह सनातनसे भी सनातन देवका नाम है, यह ब्रह्मासे भी आदिके हैं । अत एव इनकी "ज्येष्ठ ब्रह्म" संज्ञा है । उनमें ही यह सब स्थित होरहा है और उनमें ही यह सब जगत् आविष्ट है । विराट् भी उनमें ही समाहित है । और उनमें ही देवता आदि सब ही समाहित हैं, यही सूक्तमें वर्णित है ॥

कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन्नङ्ग ऋतमस्याध्याहितम् ।
क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन्नङ्गे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥

जिस मणिसे देवता मनुष्य और पितर सदा उपजीवित रहते हैं, ऐसी यह मणि उत्तमतासे मुझ पर आरोहण करे ॥ ३२ ॥

यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति ।
एवा मयि प्रजा पशवोन्नमन्नं वि रोहतु ॥ ३३ ॥

यथा । बीजम् । उर्वरायाम् । कृष्टे । फालेन । रोहति ।
एव । मयि । प्रऽजा । पशवः । अन्नम्ऽअन्नम् । वि । रोहतु ३३

जैसे फालसे कुरद जाने पर पृथ्वीमें बोया हुआ बीज उगता है, इसी प्रकार यह मणि मुझमें प्रजा पशु और खाने योग्य अन्न को उगावे ॥ ३३ ॥

यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुचं शिवम् ।
तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ॥ ३४ ॥

यस्मै । त्वा । यज्ञऽवर्धन । मणे । प्रतिऽअमुचम् । शिवम् ।
तम् । त्वम् । शतऽदक्षिण । मणे । श्रैष्ठ्याय । जिन्वतात् ॥ ३४ ॥

हे यज्ञवर्धन मणे ! मैं जिसके लिये तुझ कल्याणकारिणीको बाँध रहा हूँ, हे शतदक्षिण मणे ! तू उसको श्रेष्ठता प्रदान करके तृप्त कर ॥ ३४ ॥

एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः ।
तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे
जातवेदसि ब्रह्मणा ॥ ३५ ॥

एतम् । इध्मम् । सम्ऽआहितम् । जुषाणः । अग्ने । प्रति । हर्य । होमैः

तस्मिन् । विदेम । सुऽमतिम् । स्वस्ति । प्रऽजाम् । चक्षुः । पशून् ।
सम्ऽइद्धे । जातऽवेदसि । ब्रह्मणा ॥ ३५ ॥

तृतीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥ इति तृतीयोनुवाकः ॥

हे अग्ने ! आप इस भली प्रकार रक्खे हुए ईंधनका सेवन करते हुए होमोंसे दीप्त हूजिये मन्त्रशक्तिके द्वारा प्रदीप्त हुए इस जातवेदा अग्निसे हम सुमति, कल्याण, प्रजा नेत्र और पशुओं को प्राप्त करें ॥ ३५ ॥ (२१)

तृतीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (४७४)

तृतीय अनुवाक समाप्त ॥

“कस्मिन्नङ्गे” इति स्कम्भसूक्तम् । स्कम्भ इति सनातनतमो देवो ब्रह्मणोऽप्याद्यभूतः । अतो ज्येष्ठं ब्रह्मेति तस्य संज्ञा । तस्मिन् सर्वमेतत् तिष्ठति तत्सर्वम् एतेनाविष्टम् । विराडपि तस्मिन्नेव समाहितः । तस्मिन्नेव देवादयः सर्वे समाहिता इत्यादि वर्णनम् ॥

“कस्मिन्नङ्गे” यह स्कंभसूक्त है । यह सनातनसे भी सनातन देवका नाम है, यह ब्रह्मासे भी आदिके हैं । अत एव इनकी “ज्येष्ठ ब्रह्म” संज्ञा है । उनमें ही यह सब स्थित होरहा है और उनमें ही यह सब जगत् आविष्ट है । विराट् भी उनमें ही समाहित है । और उनमें ही देवता आदि सब ही समाहित हैं, यही सूक्तमें वर्णित है ॥

कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन्नङ्ग ऋतमस्याध्याहितम् ।
क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन्नङ्गे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥

कस्मिन् । अङ्गे । तपः । अस्य । अधि । तिष्ठति । कस्मिन् । अङ्गे ।
ऋतम् । अस्य । अधि । आऽहितम् ।

क्व । व्रतम् । क्व । श्रद्धा । अस्य । तिष्ठति । कस्मिन् । अङ्गे ।
सत्यम् । अस्य । प्रतिऽस्थितम् ॥ १ ॥

इस स्कंभ देवताके किस अंगमें तप अधिष्ठित है और इसके किस अंगमें ऋत अधिष्ठित है । इसके किस अंगमें श्रद्धा रहती है और व्रत कहाँ रहता है और इसके किस अंगमें सत्य प्रतिष्ठित है १

कस्मादङ्गाद् दीप्यते अग्निरस्य कस्मादङ्गात् पवते मातरिश्वा ।
कस्मादङ्गाद् वि मिमीतेधि चन्द्रमा मह स्कम्भस्य मिमानो अङ्गम् ॥ २ ॥

कस्मात् । अङ्गात् । दीप्यते । अग्निः । अस्य । कस्मात् । अङ्गात् ।
पवते । मातरिश्वा ।

कस्मात् । अङ्गात् । वि । मिमीते । अधि । चन्द्रमाः । महः । स्कम्भस्य ।
मिमानः । अङ्गम् ॥ २ ॥

इसके किस अङ्गसे अग्नि प्रदीप्त होती है और इसके किस अंगसे पवन चलता है, उत्सवरूप चन्द्रमा इस स्कंभके किस अंग को मानित करता हुआ इसके किस अंगसे मान करता है ॥२॥

कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम् ।

कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्युत्तरं
दिवः ॥ ३ ॥

कस्मिन् । अङ्गे । तिष्ठति । भूमिः । अस्य । कस्मिन् । अङ्गे ।
तिष्ठति । अन्तरिक्षम् ।

कस्मिन् । अङ्गे । तिष्ठति । आऽहिता । द्यौः । कस्मिन् । अङ्गे ।
तिष्ठति । उत्ऽतरम् । दिवः ॥ ३ ॥

इस स्कम्भके किस अंगमें भूमि रहती है और किस अंगमें अन्तरिक्ष रहता है, किस अंगमें आहित हुई द्यौ रहती है और द्यौसे श्रेष्ठ स्थान इसके किस अंगमें रहता है ॥ ३ ॥

क्व१ प्रेप्सन् दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्व१ प्रेप्सन् पवते
मातरिश्वा ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृतः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः
स्विदेव सः ॥ ४ ॥

क्व । प्रऽईप्सन् । दीप्यते । ऊर्ध्वः । अग्निः । क्व । प्रऽईप्सन् ।
पवते । मातरिश्वा ।

यत्र । प्रऽईप्सन्ती । अभिऽयन्ति । आऽवृतः । स्कम्भम् । तम् । ब्रूहि ।
कतमः । स्वित् । एव । सः ॥ ४ ॥

कहाँ जानेकी लिप्सा रखता हुआ अग्नि ऊपरको दमकता है और कहाँ जानेकी लिप्सा रखता हुआ मातरिश्वा–वायु–चलता

है, जहाँ जानेकी इच्छा रखते हुए आवर्तनके चकरमें पड़े हुए प्राणी उसके अभिमुख होकर चलते हैं, उस स्कंभको बताइये, कि-वह कौनसा है ॥ ४ ॥

क्वार्धमासाः क्व यन्ति मासाः संवत्सरेण सह संविदानाः ।
यत्र यन्त्यृतवो यत्रार्तवाः स्कम्भं तं० ॥ ५ ॥

क्व । अर्धऽमासाः । क्व । यन्ति । मासाः । सम्ऽवत्सरेण । सह । सम्ऽविदानाः ।
यत्र । यन्ति । ऋतवः । यत्र । आर्तवाः । स्कम्भम् । ० ॥ ५ ॥

सम्वत्सरके साथ एकमति रखने वाले पक्ष कहाँ जाते हैं, मास कहाँ जाते हैं । जहाँ ऋतुएँ जाती हैं और जहाँ मास जाते हैं उस स्कंभको बताइये, कि-वह कौनसा है ॥ ५ ॥

क्व१ प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहोरात्रे द्रवतः संविदाने ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः स्कम्भं तं० ॥ ६ ॥

क्व । प्रेप्सन्ती इति प्रऽईप्सन्ती । युवती इति । विरूपे इति विऽरूपे । अहोरात्रे इति । द्रवतः । संविदाने इति सम्ऽविदाने ।
यत्र । प्रऽईप्सन्तीः । अभिऽयन्ति । आपः । स्कम्भम् । ० ॥ ६ ॥

मिश्रित और अमिश्रित होने वालीं अनेक प्रकारके रूपोंको धारण करने वालीं सम्मति करके कहाँ जानेकी इच्छा रखता

हुई रात दिन दौड़ती रहती हैं और जहाँ प्राप्त होनेकी इच्छा रखते हुए जल जा रहे हैं उस स्कंभको हमसे कहिये ६ ॥

यस्मिन्त्स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान्त्सर्वाँ अधारयत् ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ७ ॥

यस्मिन् । स्तब्ध्वा । प्रजाऽपतिः । लोकान् । सर्वान् । अधारयत् ।
स्कम्भम् । तम् । ब्रूहि । कतमः । स्वित् । एव । सः ॥ ७ ॥

जिसमें स्तब्धित होकर प्रजापति सब लोकोंको धारण कर रहे हैं, उस स्कंभको बताइये वह कौनसा है ॥ ७ ॥

यत् परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम्
कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र यन्न प्राविशत् कियत्
तद् बभूव ॥ ८ ॥

यत् । परमम् । अवमम् । यत् । च । मध्यमम् । प्रजाऽपतिः ।
ससृजे । विश्वऽरूपम् ।
कियता । स्कम्भः । प्र । विवेश । तत्र । यत् । न । प्रऽअविशत् ।
कियत् । तत् । बभूव ॥ ८ ॥

जो परम है, जो अवम है और जो मध्यम है, तथा प्रजापति ने जिन सकल रूपोंको रचा है, उनमें स्कंभने कितने अंशसे प्रवेश किया है और जिससे प्रवेश नहीं किया है वह कितना अंश है ८

कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद् भविष्यदन्वा-
शयेस्य ।

३० ४-६-३०

है, जहाँ जानेकी इच्छा रखते हुए आवर्तनके चक्रमें पड़े हुए प्राणी उसके अभिमुख होकर चलते हैं, उस स्कंभको बताइये, कि-वह कौनसा है ॥ ४ ॥

क्वार्धमासाः क्व यन्ति मासाः संवत्सरेण सह संविदानाः ।
यत्र यन्त्यृतवो यत्रार्तवाः स्कम्भं तं० ॥ ५ ॥

क्व । अर्धऽमासाः । क्व । यन्ति । मासाः । सम्ऽवत्सरेण । सह । सम्ऽविदानाः ।
यत्र । यन्ति । ऋतवः । यत्र । आर्तवाः । स्कम्भम् ।० ॥ ५ ॥

सम्वत्सरके साथ एकमति रखने वाले पक्ष कहाँ जाते हैं, मास कहाँ जाते हैं । जहाँ ऋतुएँ जाती हैं और जहाँ मास जाते हैं उस स्कंभको बताइये, कि-वह कौनसा है ॥ ५ ॥

क्व१ प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहोरात्रे द्रवतः संविदाने ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः स्कम्भं तं० ॥ ६ ॥

क्व । प्रेप्सन्ती इति प्रऽईप्सन्ती । युवती इति । विरूपे इति विऽरूपे । अहोरात्रे इति । द्रवतः । संविदाने इति सम्ऽविदाने ।
यत्र । प्रऽईप्सन्तीः । अभिऽयन्ति । आपः । स्कम्भम् ।० ॥६॥

मिश्रित और अमिश्रित होने वालीं अनेक प्रकारके रूपोंको धारण करने वालीं सम्मति करके कहाँ जानेकी इच्छा रखता

हुई रात दिन दौड़ती रहती हैं और जहाँ प्राप्त होनेकी इच्छा रखते हुए जल जा रहे हैं उस स्कंभको हमसे कहिये ६ ॥

यस्मिन्त्स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान्त्सर्वाँ अधारयत् ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ७ ॥

यस्मिन् । स्तब्ध्वा । प्रजाऽपतिः । लोकान् । सर्वान् । अधारयत् ।
स्कम्भम् । तम् । ब्रूहि । कतमः । स्वित् । एव । सः ॥ ७ ॥

जिसमें स्तम्भित होकर प्रजापति सब लोकोंको धारण कर रहे हैं, उस स्कंभको बताइये वह कौनसा है ॥ ७ ॥

यत् परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम्
कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र यन्न प्राविशत् कियत्
तद् बभूव ॥ ८ ॥

यत् । परमम् । अवमम् । यत् । च । मध्यमम् । प्रजाऽपतिः ।
ससृजे । विश्वऽरूपम् ।
कियता । स्कम्भः । प्र । विवेश । तत्र । यत् । न । प्रऽअविशत् ।
कियत् । तत् । बभूव ॥ ८ ॥

जो परम है, जो अवम है और जो मध्यम है, तथा प्रजापतिने जिन सकल रूपोंको रचा है, उनमें स्कंभने कितने अंशसे प्रवेश किया है और जिससे प्रवेश नहीं किया है वह कितना अंश है ८

कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद् भविष्यदन्वाशयेस्य ।

४-६-३०

एकं यदङ्गमकृणोत् सहस्रधा कियता स्कम्भः प्र विवेश
तत्र ॥ ९ ॥

कियता । स्कम्भः । प्र । विवेश । भूतम् । कियत् । भविष्यत् ।
अनुऽआशये । अस्य ।

एकम् । यत् । अङ्गम् । अकृणोत् । सहस्रऽधा । कियता । स्कम्भः ।
प्र । विवेश । तत्र ॥ ९ ॥

स्कंभ कितने अंशसे भूतकालमें प्रविष्ट है और इसके कितने अंशमें भविष्यत् शयन कर रहा है, जो स्कंभ अपने एक अंगको सहस्र प्रकारका कर लेता है, वह कितने अंशसे उसमें प्रवेश करता है ॥ ९ ॥

यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः ।
असच्च यत्र सच्चान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः

यत्र । लोकान् । च । कोशान् । च । आपः । ब्रह्म । जनाः । विदुः ।
असत् । च । यत्र । सत् । च । अन्तः । स्कम्भम् । तम् । ब्रूहि ।
कतमः । स्वित् । एव । सः ॥ १० ॥

मनुष्य जिसमें लोक, कोश और जलको जानते हैं और जिसके भीतर सत् और असत् है उस स्कंभको बताइये, कि–वह कौनसा है ? ॥ १० ॥ (२२)

यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम् ।
ऋतं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिताः स्कम्भं तं०

यत्र । तपः । पराऽक्रम्य । व्रतम् । धारयति । उत्ऽतरम् ।

ऋतम् । च । यत्र । श्रद्धा । च । आपः । ब्रह्म । सम्ऽआहिताः ।

स्कम्भम् ।० ॥ ११ ॥

तप करके और व्रत करके जिस स्थानमें श्रेष्ठतासे पुरुष प्रतिष्ठित होता है और जहाँ पर ऋत श्रद्धा जल और ब्रह्म समाहित हैं उस स्कंभका आप हमसे वर्णन करिये ॥ ११ ॥

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता ।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं०

यस्मिन् । भूमिः । अन्तरिक्षम् । द्यौः । यस्मिन् । अधि । आऽहिता ।

यत्र । अग्निः । चन्द्रमाः । सूर्यः । वातः । तिष्ठन्ति । आर्पिताः ।

स्कम्भम् ।० ॥ १२ ॥

जिसमें भूमि अन्तरिक्ष और द्यौ समाहित है और जहाँ अग्नि चन्द्रमा सूर्य और वात अर्पित हैं उस स्कंभका हमसे वर्णन करिये १२

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः ।
स्कम्भं तं० ॥ १३ ॥

यस्य । त्रयःऽत्रिंशत् । देवाः । अङ्गे । सर्वे । सम्ऽआहिताः ।

स्कम्भम् । तम् ।० ॥ १३ ॥

जिसके अंगमें तैंतीस देवता प्रतिष्ठित हैं उस स्कंभको बताइये वह कौनसा है ॥ १३ ॥

यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही ।

एकं यदङ्गमकृणोत् सहस्रधा कियता स्कम्भः प्र विवेश
तत्र ॥ ९ ॥

कियता । स्कम्भः । प्र । विवेश । भूतम् । कियत् । भविष्यत् ।
अनुऽआशये । अस्य ।
एकम् । यत् । अङ्गम् । अकृणोत् । सहस्रऽधा । कियता । स्कम्भः ।
प्र । विवेश । तत्र ॥ ९ ॥

स्कंभ कितने अंशसे भूतकालमें प्रविष्ट है और इसके कितने अंशमें भविष्यत् शयन कर रहा है, जो स्कंभ अपने एक अंगको सहस्र प्रकारका कर लेता है, वह कितने अंशसे उसमें प्रवेश करता है ॥ ९ ॥

यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः ।
असच्च यत्र सच्चान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः

यत्र । लोकान् । च । कोशान् । च । आपः । ब्रह्म । जनाः । विदुः ।
असत् । च । यत्र । सत् । च । अन्तः । स्कम्भम् । तम् । ब्रूहि ।
कतमः । स्वित् । एव । सः ॥ १० ॥

मनुष्य जिसमें लोक, कोश और जलको जानते हैं और जिसके भीतर सत् और असत् है उस स्कंभको बताइये, कि-वह कौनसा है ? ॥ १० ॥ (२२)

यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम् ।
ऋतं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिताः स्कम्भं तं०

यत्र । तपः । पराऽक्रम्य । व्रतम् । धारयति । उत्ऽतरम् ।
ऋतम् । च । यत्र । श्रद्धा । च । आपः । ब्रह्म । सम्ऽआहिताः ।
स्कम्भम् ।० ॥ ११ ॥

तप करके और व्रत करके जिस स्थानमें श्रेष्ठतासे पुरुष प्रतिष्ठित होता है और जहाँ पर ऋत श्रद्धा जल और ब्रह्म समाहित हैं उस स्कंभका आप हमसे वर्णन करिये ॥ ११ ॥

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता ।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं०

यस्मिन् । भूमिः । अन्तरिक्षम् । द्यौः । यस्मिन् । अधि । आऽहिता ।
यत्र । अग्निः । चन्द्रमाः । सूर्यः । वातः । तिष्ठन्ति । आर्पिताः ।
स्कम्भम् ।० ॥ १२ ॥

जिसमें भूमि अन्तरिक्ष और द्यौ समाहित है और जहाँ अग्नि चन्द्रमा सूर्य और वात अर्पित हैं उस स्कंभका हमसे वर्णन करिये १२

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः ।
स्कम्भं तं० ॥ १३ ॥

यस्य । त्रयःऽत्रिंशत् । देवाः । अङ्गे । सर्वे । सम्ऽआहिताः ।
स्कम्भम् । तम् ।० ॥ १३ ॥

जिसके अंगमें तैंतीस देवता प्रतिष्ठित हैं उस स्कंभको बताइये वह कौनसा है ॥ १३ ॥

यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही ।

एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं० ॥ १४ ॥

यत्र । ऋषयः । प्रथमऽजाः । ऋचः । साम । यजुः । मही ।
एकऽऋषिः । यस्मिन् । आर्पितः । स्कम्भम् ।० ॥ १४ ॥

जिसमें प्रथम उत्पन्न हुए ऋषि ऋग्वेद सामवेद यजुर्वेद पृथ्वी और एकर्षि अर्पित हैं, उस स्कंभका हमसे वर्णन करिये, वह कौन सा है ॥ १४ ॥

यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेधि समाहिते ।
समुद्रो यस्य नाड्य१ः पुरुषेधि समाहिताः स्कम्भं तं०

यत्र । अमृतम् । च । मृत्युः । च । पुरुषे । अधि । समाहिते इति सम्ऽआहिते ।
समुद्रः । यस्य । नाड्यः । पुरुषे । अधि । सम्ऽआहिताः । स्कम्भम् ।० ॥ १५ ॥

जिस पुरुषमें अमृत और मृत्यु भली प्रकार आहित हैं और समुद्र जिसकी नाड़ियें हैं और जिस पुरुषमें स्थित हैं उस स्कंभको बताइये, कि—वह कौनसा है ?॥ १५ ॥

यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्य१स्तिष्ठन्ति प्रथमाः ।
यज्ञो यत्र पराक्रान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः

यस्य । चतस्रः । प्रऽदिशः । नाड्यः । तिष्ठन्ति । प्रथमाः ।

यज्ञः । यत्र । पराऽक्रान्तः । स्कम्भम् । तम् । ब्रूहि । कतमः ।
स्वित् । एव । सः ॥ १६ ॥

जिसकी मुख्य नाड़ियें चारों दिशारूपमें स्थित हैं, जिसमें यज्ञ पहुँचता है, उस स्कंभको बताइये वह कौनसा है ॥ १६ ॥

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम् ।
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ॥ १७ ॥

ये । पुरुषे । ब्रह्म । विदुः । ते । विदुः । परमेऽस्थिनम् ।
यः । वेद । परमेऽस्थिनम् । यः । च । वेद । प्रजाऽपतिम् ।
ज्येष्ठम् । ये । ब्राह्मणम् । विदुः । ते । स्कम्भम् । अनुऽसंविदुः ॥

जो पुरुषमें ब्रह्मको जानते हैं वे परमेष्ठीको जानते हैं, जो परमेष्ठीको जानते हैं, जो प्रजापतिको जानते हैं और जो ज्येष्ठ ब्राह्मण को जानते हैं वे स्कंभको जानते हैं ॥ १७ ॥

यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुरङ्गिरसोभवन् ।
अङ्गानि यस्य यातवः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः

यस्य । शिरः । वैश्वानरः । चक्षुः । आङ्गिरसः । अभवन् ।
अङ्गानि । यस्य । यातवः । स्कम्भम् । तम् । ब्रूहि । कतमः ।
स्वित् । एव । सः ॥ १८ ॥

वैश्वानर जिसका शिर है और अंगिरावंशी जिसके नेत्र हुए

थे, यातु जिसके अंग हैं, उस स्कंभका उपदेश दीजिये, कि—वह कौनसा है ॥ १८ ॥

यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत ।
विराजमूधो यस्याहुः स्कम्भं तं० ॥ १९ ॥

यस्य । ब्रह्म । मुखम् । आहुः । जिह्वाम् । मधुऽकशाम् । उत ।
विऽराजम् । ऊधः । यस्य । आहुः । स्कम्भम् ।० ॥ १९ ॥

जिसके मुखको ब्रह्म कहते हैं और जिसकी जिह्वाको मधुकशा कहते हैं और जिसके ऐनको विराट् कहते हैं, उस स्कंभका उपदेश दीजिये, कि—वह कौनसा है॥ १९ ॥

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं
ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ २० ॥

यस्मात् । ऋचः । अपऽअतक्षन् । यजुः । यस्मात् । अपऽअकषन् ।
सामानि । यस्य । लोमानि । अथर्वऽअङ्गिरसः । मुखम् । स्कम्भम् ।
तम् । ब्रूहि । कतमः । स्वित् । एव । सः ॥ २० ॥

जिससे ऋचाएँ अपतक्षित हुई हैं, यजुर्वेदके मंत्र जिससे प्रकट हुए हैं, साम जिसके लोम हैं अथर्ववेद जिसका मुख है उस स्कंभ को बताइये वह कौनसा है ॥ २० ॥

असच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परममिव जना विदुः ।
उतो सन्मन्यन्तेवरे ये ते शाखामुपासते ॥ २१ ॥

असत्ऽशाखाम् । प्रऽतिष्ठन्तीम् । परमम्ऽइव । जनाः । विदुः ।
उतो इति । सत् । मन्यन्ते । अवरे । ये । ते । शाखाम् । उपऽआसते २१

अपकृष्ट शाखा यदि प्रतिष्ठित होती है तो मनुष्य उसको परम मानते हैं और जो दूसरे उसकी उपासना करते हैं वे उसको सत् (श्रेष्ठ) मानते हैं ॥ २१ ॥

यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः ।
भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः स्कम्भं
तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ २२ ॥

यत्र । आदित्याः । च । रुद्राः । च । वसवः । च । सम्ऽआहिताः ।
भूतम् । च । यत्र । भव्यम् । च । सर्वे । लोकाः । प्रतिऽस्थिताः ।
स्कम्भम् । तम् । ब्रूहि । कतमः । स्वित् । एव । सः ॥ २२ ॥

जिसमें आदित्य रुद्र और वसु समाहित हैं, भूत भव्य और सब लोक जिसमें प्रतिष्ठित हैं उस स्कंभका उपदेश दीजिये वह कौनसा है ॥ २२ ॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा ।
निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ ॥ २३ ॥

यस्य । त्रयःऽत्रिंशत् । देवाः । निऽधिम् । रक्षन्ति । सर्वदा ।
निऽधिम् । तम् । अद्य । कः । वेद । यम् । देवाः । अभिऽरक्षथ २३

जिसकी निधिकी तैंतीस देवता सदा रक्षा करते हैं, जिसकी देवता रक्षा करते हैं उसनिधिको आजकल कौन जानता है २३

यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात् २४

यत्र । देवाः । ब्रह्मऽविदः । ब्रह्म । ज्येष्ठम् । उपऽआसते ।
यः । वै । तान् । विद्यात् । प्रतिऽअक्षम् । सः । ब्रह्मा । वेदिता । स्यात् ॥ २४ ॥

जहाँ ब्रह्मवेत्ता देवता ब्रह्मज्येष्ठकी उपासना करते हैं, जो उनको प्रत्यक्ष जानता है वह ब्रह्मा जानने वाला होसकता है ॥ २४ ॥

बृहन्तो नाम ते देवा येसत परि जज्ञिरे ।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासदाहुः परो जनाः ॥ २५ ॥

बृहन्तः । नाम । ते । देवाः । ये । असतः । परि । जज्ञिरे ।
एकम् । तत् । अङ्गम् । स्कम्भस्य । असत् । आहुः । परः । जनाः २५

जो बृहत् नामक देवता हैं वे असत्से उत्पन्न हुए हैं, वे स्कंभ का एक अंग हैं दूसरे पुरुष उसको असत् कहते हैं ॥ २५ ॥

यत्र स्कम्भः प्रजनयन् पुराणं व्यवर्तयत् ।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्य पुराणमनुसंविदुः ॥ २६ ॥

यत्र । स्कम्भः । प्रऽजनयन् । पुराणम् । विऽअवर्तयत् ।
एकम् । तत् । अङ्गम् । स्कम्भस्य । पुराणम् । अनुऽसंविदुः २६

स्कंभने जहाँ उत्पन्न किया पुराणको ही व्यवर्तित किया, स्कंभ के उस एक अंगको पुराण जानते हैं ॥ २६ ॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे ।
तान् वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥ २७ ॥

यस्य । त्रयःऽत्रिंशत् । देवाः । अङ्गे । गात्रा । विऽभेजिरे ।
तान् । वै । त्रयःऽत्रिंशत् । देवान् । एके । ब्रह्मऽविदः । विदुः ॥

जिसके अंगमें तैंतीस देवता अंगरूपमें शोभा पाते हैं, उन तैंतीस देवताओंको एक कोटिके पुरुष जानते हैं ॥ २७ ॥

हिरण्यगर्भं परममनत्युद्यं जना विदुः ।
स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्यं लोके अन्तरा ॥२८॥

हिरण्यऽगर्भम् । परमम् । अनतिऽउद्यम् । जनाः । विदुः ।
स्कम्भः । तत् । अग्रे । प्र । असिञ्चत् । हिरण्यम् । लोके । अन्तरा ॥

परम हिरण्यगर्भको पुरुष अवर्णनीय जानते हैं, उस हिरण्यगर्भको स्कंभने ही लोकमें पहिले प्रासिञ्चन किया था ॥ २८ ॥

स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽध्यृतमाहितम् ।
स्कम्भ त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् ॥ २९ ॥

स्कम्भे । लोकाः । स्कम्भे । तपः । स्कम्भे । अधि । ऋतम् । आऽहितम् ॥ २९ ॥
स्कम्भ । त्वा । वेद । प्रतिऽअक्षम् । इन्द्रे । सर्वम् । सम्ऽआहितम् २९

लोक तप और ऋत स्कंभमें ही समाहित हैं हे स्कंभ ! (इन्द्रने) तुझको प्रत्यक्ष देखा है इन्द्र (आत्मा) में ही समाहित है २९

३१ ५-६ ३०

इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्यृतमाहितम् ।
इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ३० ॥

इन्द्रे । लोकाः । इन्द्रे । तप । इन्द्रे । अधि । ऋतम् । आऽहितम् ।
इन्द्रम् । त्वा । वेद । प्रतिऽअक्षम् । स्कम्भे । सर्वम् । प्रतिऽस्थितम् ३०

लोक तप और ऋत इन्द्रमें ही समाहित हैं, हे इन्द्र ! मैं तुझ को प्रत्यक्ष जानता हूँ । स्कम्भमें ही सब समाहित है ३० (२४)

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः ।
यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ॥ ३१ ॥

नाम । नाम्ना । जोहवीति । पुरा । सूर्यात् । पुरा । उषसः ।
यत् । अजः । प्रथमम् । सम्ऽबभूव । सः । ह । तत् । स्वऽराज्यम् ।
इयाय । यस्मात् । न । अन्यत् । परम् । अस्ति । भूतम् ३१

(ब्रह्मज्ञानरूप) सूर्य और उषःकालसे पहिले ही नामरूपात्मक जगत्को नामसे पुकारता है जो पहिले अज था और जिस से पर कोई भूत नहीं है उस स्वराज्यको वह आत्मा प्राप्त हो जाता है ॥ ३१ ॥

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ३२

यस्य । भूमिः । प्रऽमा । अन्तरिक्षम् । उत । उदरम् ।

दिवम् । यः । चक्रे । मूर्धानम् । तस्मै । ज्येष्ठाय । ब्रह्मणे । नमः ३२

भूमि जिसकी प्रमा है, अन्तरिक्ष उदर है, और जिसने द्युलोक को मूर्धा बनाया है, उस ज्येष्ठ ब्रह्मके लिये नमस्कार है ।।३२।।

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं१ तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ३३

यस्य । सूर्यः । चक्षुः । चन्द्रमाः । च । पुनःऽनवः ।
अग्निम् । यः । चक्रे । आस्यम् । तस्मै । ज्येष्ठाय । ब्रह्मणे । नमः

वारंवार नवीन होने वाले चन्द्रमा, और सूर्य जिसके नेत्र हैं और जिन्होंने अग्निको अपना मुख बनाया है उन ज्येष्ठ ब्रह्मके लिये नमस्कार है ।। ३३ ।।

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः३४

यस्य । वातः । प्राणापानौ । चक्षुः । अङ्गिरसः । अभवन् ।
दिशः । यः । चक्रे । प्रऽज्ञानीः । तस्मै । ज्येष्ठाय । ब्रह्मणे । नमः

प्राण और अपान जिसके वायु हैं, और अङ्गिरागोत्री जिसके नेत्र हुए थे, दिशाओंको जिसने प्रज्ञानी बनाया था उस ज्येष्ठ ब्रह्मके लिये नमस्कार है ।। ३४ ।।

स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ।

स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वीः स्कम्भ इदं विश्वं
भुवनमा विवेश ॥ ३५ ॥

स्कम्भः । दाधार । द्यावापृथिवी इति । उभे इति । इमे इति ।
स्कम्भः । दाधार । उरु । अन्तरिक्षम् ।
स्कम्भः । दाधार । प्रऽदिशः । षट् । उर्वीः । स्कम्भे । इदम् ।
विश्वम् । भुवनम् । आ । विवेश ॥ ३५ ॥

स्कंभने द्यावापृथिवीको धारण कर रक्खा है, स्कंभने इस विशाल अन्तरिक्षको धारण किया है, स्कंभ ही प्रदिशा और छः उर्वियोंको धारण करता है और स्कंभ ही इस भुवनमें प्रविष्ट है ३५

यः श्रमात् तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे ।
सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ३६

यः । श्रमात् । तपसः । जातः । लोकान् । सर्वान् । सम्ऽआनशे ।
सोमम् । यः । चक्रे । केवलम् । तस्मै । ज्येष्ठाय । ब्रह्मणे । नमः

जो श्रमपूर्वक तप करने पर प्रकट होता है और सब लोकोंको भोगता है और जिसने केवल सोमको किया है उस ज्येष्ठ ब्रह्मके लिये नमस्कार है ॥ ३६ ॥

कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः ।
किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदा चन ॥३७॥

कथम् । वातः । न । इलयति । कथम् । न । रमते । मनः ।

किम् । आपः । सत्यम् । प्रऽईप्सन्तीः । न । इलयन्ति । कदा । चन

वायु किस प्रकार प्रेरणा नहीं करता है, मन किस प्रकार रमण नहीं करता है, किस सत्यको चाहते हुए जल कभी चेष्टा नहीं करते हैं ॥ ३७ ॥

महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे।
तस्मिन् छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः
परित इव शाखाः ॥ ३८ ॥

महत् । यक्षम् । भुवनस्य । मध्ये । तपसि । क्रान्तम् । सलिलस्य । पृष्ठे । तस्मिन् । श्रयन्ते । ये । ऊं इति । के । च । देवाः । वृक्षस्य । स्कन्धः । परितःऽइव । शाखाः ॥ ३८ ॥

भुवनमें एक बड़ी पूजनीय वस्तु है, वह तपसे प्राप्त होसकती है और सलिलपृष्ठ पर विराजती है, जैसे वृक्षके गुद्दे में टहनियें होती हैं इस प्रकार सब देवता उन (नारायण) का आश्रय लेते हैं ॥ ३८ ॥

यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा ।
यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेमितं स्कम्भं
तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ३९ ॥

यस्मै । हस्ताभ्याम् । पादाभ्याम् । वाचा । श्रोत्रेण । चक्षुषा । यस्मै । देवाः । सदा । बलिम् । प्रऽयच्छन्ति । विऽमिते । अमितम् । स्कम्भम् । तम् । ब्रूहि । कतमः । स्वित् । एव । सः ॥ ३९

देवता जिनके लिये हाथ पैर वाणी नेत्र और चक्षुसे सदा बलि देते रहते हैं जो विमित शरीरमें अर्पित है उस स्कंभका हम को उपदेश दीजिये, कि- वह कौनसा है ॥ ३९ ॥

अप तस्य हतं तमो व्यावृत्तः स पाप्मना ।
सर्वाणि तस्मिन् ज्योतींषि यानि त्रीणि प्रजापतौ ४०

अप । तस्य । हतम् । तमः । विऽआवृत्तः । सः । पाप्मना ।
सर्वाणि । तस्मिन् । ज्योतींषि । यानि । त्रीणि । प्रजाऽपतौ ४०

(जो स्कंभको जान लेता है) उसका सब अंधकार नष्ट हो जाता है, वह पापसे निवृत्त होजाता है, जो तीन ज्योतियें प्रजापतिमें हैं वे सब ज्योतियें उसमें हो जाती हैं ॥ ४० ॥

यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेद ।
स वै गुह्यः प्रजापतिः ॥ ४१ ॥

यः । वेतसम् । हिरण्ययम् । तिष्ठन्तम् । सलिले । वेद ।
सः । वै । गुह्यः । प्रजाऽपतिः ॥ ४१ ॥

जो हितरमणीय जलमें स्थित वेंतको जानता है वही गुह्य प्रजापति है ॥ ४१ ॥

तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम् ।
प्रान्या तन्तूंस्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न गमातो
अन्तम् ॥ ४२ ॥

तन्त्रम् । एके इति । युवती इति । विरूपे इति विऽरूपे । अभिऽआक्रामम् । वयतः । षट्मयूखम् ।

प्र । अन्या । तन्तून् । तिरते । धत्ते । अन्या । न । अप । वृञ्जाते

इति । न । गमातः । अन्तम् ॥ ४२ ॥

मिश्रण और अमिश्रण करने वाले अनेक प्रकारके ये दिन रात मुझ छः मयूख (ऋतु) वाले गमनशील वर्षके अधीन हैं मैं इन पर आक्रमण करता हूँ, इनमेंसे एक तन्तुओंका विस्तार करता है और उनको धारण करता है और दूसरा भी उनको नहीं छोड़ता है और ये दिन रात अन्तको प्राप्त नहीं होते हैं ४२

तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न जानामि यतरा वि
परस्तात् ।
पुमानेनद् वयत्युद्गृणत्ति पुमानेनद् वि जभाराधि
नाके ॥ ४३ ॥

तयोः । अहम् । परिनृत्यन्त्योःऽइव । न । वि । जानामि । यतरा ।

परस्तात् ।

पुमान् । एनत् । वयति । उत् । गृणत्ति । पुमान् । एनत् । वि ।

जभार । अधि । नाके ॥ ४३ ॥

इन नाचते हुए दिन और रातमें जो पर है उसको मैं नहीं जानता दिन-पुमान् इनको तन्तुसन्तानित करता है उद्गृणन करता है और स्वर्गमें भरण करता है ॥ ४३ ॥

इमे मयूखा उप तस्तभुर्दिवं सामानि चक्रुस्तसराणि
वातवे ॥ ४४ ॥

इमे । मयूखाः । उप । तस्तभुः । दिवम् । सामानि । चक्रुः । तसराणि । वातवे ॥ ४४ ॥

इति चतुर्थेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

ये मयूख द्यौको स्तंभित करते हैं और साम बहनेके लिये तसर करते हैं ॥ ४४ ॥

चतुर्थ अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (४७५) ॥

"यो भूतम्" इति सूक्तमपि स्कम्भदेवताकम् ॥ अत्रापि स्कम्भस्य ज्येष्ठत्वं श्रेष्ठत्वं सर्वेषामाश्रयभूतत्वं च दृश्यते ॥

"यो भूतम्" यह सूक्त भी स्कम्भ देवताका है। इसमें भी स्कंभ का ज्येष्ठत्व श्रेष्ठत्व और सबका आश्रयभूतत्व ही दीखता है।

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्व१र्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥१॥

यः । भूतम् । च । भव्यम् । च । सर्वम् । यः । च । अधिऽतिष्ठति । स्वः । यस्य । च । केवलम् । तस्मै । ज्येष्ठाय । ब्रह्मणे । नमः १

जो भूत भविष्यत् और सबमें अधिष्ठित है और स्वर्ग जिसका केवल है उस ज्येष्ठ ब्रह्मके लिये नमस्कार है ॥ १ ॥

स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः ।
स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणन्निमिषच्च यत् २

स्कम्भेन । इमे इति । विस्तभिते इति विऽस्तभिते । द्यौः । च । भूमिः । च । तिष्ठतः ।

स्कम्भे । इदम् । सर्वम् । आत्मन्ऽवत् । यत् । प्राणत् । निऽमिषत् । च । यत् ॥ २ ॥

स्कंभके द्वारा रोके हुए ये द्यौ और भूमि ठहरे हुए हैं जो श्वास लेता हुआ और पलक मारता हुआ है यह सब आत्ममय स्कम्भ ही है ॥ २ ॥

तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन् न्य१न्या अर्कमभितोविशन्त ।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेश ॥ ३ ॥

तिस्रः । ह । प्रऽजाः । अतिऽआयम् । आयन् । नि । अन्याः । अर्कम् । अभितः । अविशन्त ।
बृहन् । ह । तस्थौ । रजसः । विऽमानः । हरितः । हरिणीः । आ । विवेश ॥ ३ ॥

तीन प्रजाएँ प्रकृष्टरूपसे प्राप्त करने योग्य इसको पाती हैं और दूसरी चारों ओरसे सूर्यमें प्रवेश करती है भूलोकका निर्माता ब्रह्म स्थित रहता है, हरित हरिणीमें प्रवेश करता है ॥ ३ ॥

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये ॥ ४ ॥

द्वादश । प्रऽधयः । चक्रम् । एकम् । त्रीणि । नभ्यानि । कः । ऊं इति । तत् । चिकेत ।

तत्र । आऽहताः । त्रीणि । शतानि । शङ्कवः । षष्टिः । च ।
खीलाः । अविऽचाचलाः । ये ॥ ४ ॥

(मासरूप) बारह प्रधि हैं, (गरमी जाड़ा और वर्षारूप) तीन नभ्य हैं, इनको कौन (प्रजापति) जानता है, उसमें तीन सौ साठ खूँटे ठुके हुए हैं, ये कीले अविचल हैं ॥ ४ ॥

इदं सवितर्वि जानीहि षड् यमा एक एकजः ।
तस्मिन् हापित्वमिच्छन्ते य एषामेक एकजः ॥५॥

इदम् । सवितः । वि । जानीहि । षट् । यमाः । एकः । एकऽजः ।
तस्मिन् । ह । अपिऽत्वम् । इच्छन्ते । यः । एषाम् । एकः ।
एकऽजः ॥ ५ ॥

हे सवितः ! आप इस बातको समझिये, कि—छः (ऋतुएँ) यम (दो दो मासकी) हैं और एक (वर्ष) एकज है, इन प्राणियों में जो एक (ब्रह्म) से उत्पन्न हुए (जीव) हैं (उनमेंसे) एक श्रेणीके जीव उसीमें लीन होना चाहते हैं ॥ ५ ॥

आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत् पदम् ।
तत्रेदं सर्वमार्पितमेजत् प्राणत् प्रतिष्ठितम् ॥ ६ ॥

आविः । सत् । निऽहितम् । गुहा । जरत् । नाम । महत् । पदम् ।
तत्र । इदम् । सर्वम् । आर्पितम् । एजत् । प्राणत् । प्रतिऽस्थितम् ६

प्रकाशमय आत्मा गुहारूप शरीरके भीतर स्थित है, जरत् नामक महत् पद है, उसीमें यह चेष्टा करने वाला और श्वास लेने वाला सब जगत् प्रतिष्ठित है ॥ ६ ॥

एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्व१ तद्
बभूव ॥ ७ ॥

एकऽचक्रम् । वर्तते । एकऽनेमि । सहस्रऽअक्षरम् । प्र । पुरः ।
नि । पश्चा ।

अर्धेन । विश्वम् । भुवनम् । जजान । यत् । अस्य । अर्धम् । क्व ।
तत् । बभूव ॥ ७ ॥

एकचक्र एकनेमि सहस्राक्षर आगे और पीछे घूमता है, उसने अपने आधे भागसे भुवनको प्रकट किया है और जो इसका आधा भाग है वह कहाँ है ॥ ७ ॥

पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति ।
अयातमस्य ददृशे न यातं पर नेदीयोवरं दवीयः ८

पञ्चऽवाही । वहति । अग्रम् । एषाम् । प्रष्टयः । युक्ताः । अनुऽसंव-
हन्ति ।

अयातम् । अस्य । ददृशे । न । यातम् । परम् । नेदीयः । अव-
रम् । दवीयः ॥ ८ ॥

इनके अग्रको पञ्चवाही प्राप्त कराती है, प्रष्टियें भी युक्त होकर अनुवहन करती हैं, इसका अयात ही दीखता है और इसका यात नहीं दीखता, यह अत्यन्तसमीपसे भी अत्यन्त समीप है और दूरसे भी दूर है ॥ ८ ॥

ति॒र्यग्बि॑लश्चम॒स ऊ॒र्ध्वबु॑ध्न॒स्तस्मि॒न् यशो॒ निहि॑तं
वि॒श्वरू॑पम् ।
तदा॑सत॒ ऋष॑यः स॒प्त सा॒कं ये अ॒स्य गो॒पा म॑ह॒तो
ब॑भू॒वुः ॥ ९ ॥

ति॒र्यक्ऽबि॑लः । च॒म॒सः । ऊ॒र्ध्वऽबु॑ध्नः । तस्मि॑न् । यश॑ः । निऽहि॑तम् । वि॒श्वऽरू॑पम् ।

तत् । आ॒स॒ते॒ । ऋष॑यः । स॒प्त । सा॒कम् । ये । अ॒स्य । गो॒पाः । म॒ह॒तः । ब॒भू॒वुः ॥ ९ ॥

ऊपरकी ओर (शिखारूप) जड़ वाला तिर्यग्बिल चमस है उसमें विश्वरूप यश (आत्मा) निहित है उसमें (इन्द्रिय आदि) सात ऋषि साथ २ रहते हैं, जो इस महान् शरीरके रक्षक हैं ९

या पु॒रस्ता॑द् यु॒ज्यते॒ या च॑ प॒श्चाद् या वि॒श्वतो॑
यु॒ज्यते॒ या च॑ स॒र्वतः॑ ।
यया॑ य॒ज्ञः प्राङ् ता॒यते॒ तां त्वा॑ पृच्छामि कत॒मा
सर्चाम् ॥ १० ॥

या । पु॒रस्ता॑त् । यु॒ज्यते॑ । या । च॒ । प॒श्चात् । या । वि॒श्वतः॑ । यु॒ज्यते॑ । या । च॒ । स॒र्वतः॑ ।

यया॑ । य॒ज्ञः । प्राङ् । ता॒यते॑ । ताम् । त्वा॒ । पृ॒च्छा॒मि॒ । क॒त॒मा । सा । ऋ॒चाम् ॥ १० ॥

जो पहिले विनियुक्त होती है और जो अन्तमें विनियुक्त होती है और जो सब समय विनियुक्त होती है और जिससे यज्ञका विस्तार किया जाता है वह ऋचाओंमेंसे कौनसी ऋचा है १०

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद् भुवत् ।
तद् दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत् संभूय भवत्येकमेव ॥

यत् । एजति । पतति । यत् । च । तिष्ठति । प्राणत् । अप्राणत् । निऽमिषत् । च । यत् । भुवत् ।
तत् । दाधार । पृथिवीम् । विश्वऽरूपम् । तत् । सम्ऽभूय । भवति । एकम् । एव ॥ ११ ॥

जो चेष्टा करता है, जो गिरता है, जो स्थित रहता है, जो प्राणक्रिया करता है और प्राणक्रिया नहीं करता है, जो निमिषत् है जो होनारूप है उसीने इस पृथ्वीको धारण कर रक्खा है वह सकल रूपोंमें होकर फिर एकरूप ही होजाता है ॥ ११ ॥

अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते ।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वन् विद्वान् भूतमुत भव्यमस्य ॥ १२ ॥

अनन्तम् । विऽततम् । पुरुऽत्रा । अनन्तम् । अन्तऽवत् । च । समन्ते इति सम्ऽअन्ते ।

ते इति । नाकऽपालः । चरति । विऽचिन्वन् । विद्वान् । भूतम् ।
उत । भव्यम् । अस्य ॥ १२ ॥

वह अनन्त अनेक स्थलोंमें फैला हुआ है, वह अनन्त पासमें अन्त वाला भी प्रतीत होता है तेरे स्वर्ग सुखका पालक जीव उसको ढूँढता हुआ फिरता है, वह सबको जानने वाला है भूत और भव्य भी इसीका है ॥ १२ ॥

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः १३

प्रजाऽपतिः । चरति । गर्भे । अन्तः । अदृश्यमानः । बहुऽधा ।
वि । जायते ।

अर्धेन । विश्वम् । भुवनम् । जजान । यत् । अस्य । अर्धम् ।
कतमः । सः । केतुः ॥ १३ ॥

वह प्रजापति गर्भके भीतर अदृश्य रहता हुआ विचरण करता है और अनेक प्रकारमें प्रकट होता है, उसने अपने आधे भागसे विश्वको प्रकट किया है, जो इसका आधा भाग है वह कौनसा ज्ञान है ॥ १३ ॥

ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं कुम्भेनेवोदहार्यम् ।
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः ॥१४॥

ऊर्ध्वम् । भरन्तम् । उदकम् । कुम्भेनऽइव । उदऽहार्यम् ।

पश्यन्ति । सर्वे । चक्षुषा । न । सर्वे । मनसा । विदुः ॥ १४ ॥

कुंभके द्वारा ऊपरको खेंचने योग्य जलकी समान ऊपरको भरते हुएको सब नेत्रसे देखते हैं , परन्तु मनसे नहीं जानते१४

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते ।
महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति१५

दूरे । पूर्णेन । वसति । दूरे । ऊनेन । हीयते ।
महत् । यक्षम् । भुवनस्य । मध्ये । तस्मै । बलिम् । राष्ट्रऽभृतः । भरन्ति ॥ १४ ॥

वह अपनेको पूर्ण समझने वालेसे दूर वसता है और जो न्यून होता है उससे दूर पर ही छिप जाता है, भुवनके मध्यमें एक महापूज्य वस्तु है, राष्ट्रभृत् उसके लिये ही बलिको भरा करते हैं॥

यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति ।
तदेव मन्येहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन ॥ १६ ॥

यतः । सूर्यः । उत्ऽएति । अस्तम् । यत्र । च । गच्छति ।
तत् । एव । मन्ये । अहम् । ज्येष्ठम् । तत् । ऊं इति । न । अति । एति । किम् । चन ॥ १६ ॥

जिससे सूर्य उदय होता है और जिसमें अस्तको प्राप्त होजाता है उसीको मैं ज्येष्ठ मानता हूँ, कोई भी उसका अतिक्रमण नहीं कर सकता ॥ १६ ॥

ये अर्वाङ् मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति ।

आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं
च हंसम् ॥ १७ ॥

ये । अर्वाङ् । मध्ये । उत । वा । पुराणम् । वेदम् । विद्वांसम् ।
अभितः । वदन्ति ।

आदित्यम् । एव । ते । परि । वदन्ति । सर्वे । अग्निम् । द्वितीयम् ।
त्रिऽवृतम् । च । हंसम् ॥ १७ ॥

जो इस पुराण विद्वान् और चारों ओरसे जानने वालेको मध्यमें और पीछे कहते हैं, वे आदित्यको ही कहते हैं, वे दूसरे अग्निका भी इसी रूपमें वर्णन करते हैं और त्रिवृत् हंस (आत्मा) का भी इसी रूपमें वर्णन करते हैं ॥ १७ ॥

सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि
विश्वा ॥ १८ ॥

सहस्रऽअह्न्यम् । विऽयतौ । अस्य । पक्षौ । हरे । हंसस्य । पततः ।
स्वःऽगम् ।

सः । देवान् । सर्वान् । उरसि । उपऽदद्य । सम्ऽपश्यन् । याति ।
भुवनानि । विश्वा ॥ १८ ॥

स्वर्गके लिये जाने वाले इस पापहारक हंसके पक्ष सहस्र दिनों तक फैले रहते हैं वह सब देवताओंको हृदयमें संहृत करके सकल भुवनोंको देखता हुआ चला जाता है ॥ १८ ॥

सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणार्वाङ् वि पश्यति ।
प्राणेन तिर्यङ् प्राणति यस्मिन् ज्येष्ठमधि श्रितम् १९

सत्येन । ऊर्ध्वः । तपति । ब्रह्मणा । अर्वाङ् । वि । पश्यति ।
प्राणेन । तिर्यङ् । प्र । अनति । यस्मिन् । ज्येष्ठम् । अधि । श्रितम् १९

जिसमें ज्येष्ठ अधिश्रित होता है वह सत्यके द्वारा ऊपर तप रहा है, मन्त्रबलसे नीचेको देख रहा है (और वह सूर्य) प्राणबलसे (वर्षा करनेके लिये) तिरछा प्राणन करता है ॥ १९ ॥

यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु ।
स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत स विद्याद् ब्राह्मणं महत् २०

यः । वै । ते इति । विद्यात् । अरणी इति । याभ्याम् । निःऽमथ्यते । वसु ।
सः । विद्वान् । ज्येष्ठम् । मन्येत । सः । विद्यात् । ब्राह्मणम् । महत् ॥ २० ॥

जिनसे (आत्मज्ञानरूप) धन मथा जाता है उन (विद्या और अविद्यारूप) अरणियोंको जो जानता है, वह विद्वान् ज्येष्ठको जान सकता है वह महद्ब्राह्मणको जान जाता है ॥ २० ॥

अपादग्रे समभवत् सो अग्रे स्वः१राभरत् ।
चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम् ॥२१॥

अपात् । अग्रे । सम् । अभवत् । सः । अग्रे । स्वः । आ । अभरत् ।

३३ ६-६-३०

आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं
च हंसम् ॥ १७ ॥

ये । अर्वाङ् । मध्ये । उत । वा । पुराणम् । वेदम् । विद्वांसम् ।
अभितः । वदन्ति ।

आदित्यम् । एव । ते । परि । वदन्ति । सर्वे । अग्निम् । द्वितीयम् ।
त्रिऽवृतम् । च । हंसम् ॥ १७ ॥

जो इस पुराण विद्वान् और चारों ओरसे जानने वालेको मध्यमें और पीछे कहते हैं, वे आदित्यको ही कहते हैं, वे दूसरे अग्निका भी इसी रूपमें वर्णन करते हैं, और त्रिवृत् हंस (आत्मा) का भी इसी रूपमें वर्णन करते हैं ॥ १७ ॥

सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि
विश्वा ॥ १८ ॥

सहस्रऽअह्न्यम् । विऽयतौ । अस्य । पक्षौ । हरेः । हंसस्य । पततः ।
स्वःऽगम् ।

सः । देवान् । सर्वान् । उरसि । उपऽदद्य । सम्ऽपश्यन् । याति ।
भुवनानि । विश्वा ॥ १८ ॥

स्वर्गके लिये जाने वाले इस पापहारक हंसके पक्ष सहस्र दिनों तक फैले रहते हैं वह सब देवताओंको हृदयमें संहृत करके, सकल भुवनोंको देखता हुआ चला जाता है ॥ १८ ॥

सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणार्वाङ् वि पश्यति ।
प्राणेन तिर्यङ् प्राणति यस्मिन् ज्येष्ठमधि श्रितम् १९

सत्येन । ऊर्ध्वः । तपति । ब्रह्मणा । अर्वाङ् । वि । पश्यति ।
प्राणेन । तिर्यङ् । प्र । अनति । यस्मिन् । ज्येष्ठम् । अधि । श्रितम् १९

जिसमें ज्येष्ठ अधिश्रित होता है वह सत्यके द्वारा ऊपर तप रहा है, मन्त्रबलसे नीचेको देख रहा है (और वह सूर्य) प्राणबलसे (वर्षा करनेके लिये) तिरछा प्राणन करता है ॥ १९ ॥

यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु ।
स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत स विद्याद् ब्राह्मणं महत् २०

यः । वै । ते इति । विद्यात् । अरणी इति । याभ्याम् । निःऽमथ्यते । वसु ।
सः । विद्वान् । ज्येष्ठम् । मन्येत । सः । विद्यात् । ब्राह्मणम् । महत् ॥ २० ॥

जिनसे (आत्मज्ञानरूप) धन मथा जाता है उन (विद्या और अविद्यारूप) अरणियोंको जो जानता है, वह विद्वान् ज्येष्ठको जान सकता है वह महद्ब्राह्मणको जान जाता है ॥ २० ॥

अपादग्रे समभवत् सो अग्रे स्व१राभरत् ।
चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम् ॥२१॥

अपात् । अग्रे । सम् । अभवत् । सः । अग्रे । स्वः । आ । अभरत् ।

३३ ६-६-३०

चतुःऽपात् । भूत्वा । भोग्यः । सर्वम् । आ । अदत्त । भोजनम् २१

वह पहिले पादहीन ही होता है और स्वर्गका ही भरण करता है, फिर चतुष्पाद होकर भोगने योग्य बनता है और सब भोजन को ग्रहण कर लेता है ॥ २१ ॥

भोग्यो भवदथो अन्नमदद् बहु ।
यो देवमुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम् ॥ २२ ॥

भोग्यः । भवत् । अथो इति । अन्नम् । अदत् । बहु ।
यः । देवम् । उत्तरऽवन्तम् । उपऽआसातै । सनातनम् ॥ २२ ॥

जो श्रेष्ठता सनातन देवकी उपासना करता है, वह भोगनेके योग्य होजाता है और बहुतसे अन्नका दान करता है ॥ २२॥

सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः ॥२३॥

सनातनम् । एनम् । आहुः । उत । अद्य । स्यात् । पुनःऽनवः ।
अहोरात्रे इति । प्र । जायेते इति । अन्यः । अन्यस्य । रूपयोः २३

इन (सूर्य वा आत्मा) को सनातन कहते हैं यह (चन्द्ररूप में वा जीवरूपमें जन्म धारण करके) फिर नवीन होजाते हैं इन सूर्यसे दिन और रात्रि प्रकट होती हैं, अन्यके रूप इन दोनों दिन रातोंसे यह सूर्य अन्य हैं ॥ २३ ॥

शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वमस्मिन् निविष्टम्
तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद् देवो रोचत एष एतत् ॥ २४ ॥

शतम् । सहस्रम् । अयुतम् । निऽअर्बुदम् । असम्ऽख्येयम् । स्वम् ।
अस्मिन् । निऽविष्टम् ।

तत् । अस्य । घ्नन्ति । अभिऽपश्यतः । एव । तस्मात् । देवः ।
रोचते । एषः । एतत् ॥ २४ ॥

सैंकड़ों सहस्रों अयुत अर्बुद और असंख्येय (जन्म वा दिन) इनमें ही अपने आप निविष्ट हैं, वे दिन वा जन्म इनमें ही लीन होजाते हैं यह उनका साक्षी ही रहता है, (उनमें लिप्त नहीं होता है) इसी कारण यह देव दमकता रहता है ॥ २४ ॥

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते ।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥ २५ ॥

बालात् । एकम् । अणीयःऽकम् । उत । एकम् । नऽइव । दृश्यते ।
ततः । परिऽस्वजीयसी । देवता । सा । मम । प्रिया ॥ २५ ॥

यह आत्मा एक बालसे भी बहुत छोटा है इसी लिये यह मुख्य होने पर भी नहीं सा दीखता है, संसारमें क्रीड़ा करने वाली जो आत्मा उसका आलिंगन करती करती है वा मुझको प्रिय है २५

इयं कल्याण्य१जरा मर्त्यस्यामृता गृहे ।
यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः ॥ २६ ॥

इयम् । कल्याणी । अजरा । मर्त्यस्य । अमृता । गृहे ।
यस्मै । कृता । शये । सः । यः । चकार । जजार । सः ॥ २६ ॥

जो इन आत्मदेवके लिये उद्यत होती है वह आत्मा कल्याणी

चतुःऽपात् । भूत्वा । भोग्यः । सर्वम् । आ । अदत्त । भोजनम् २१

वह पहिले पादहीन ही होता है और स्वर्गका ही भरण करता है, फिर चतुष्पाद होकर भोगने योग्य बनता है और सब भोजन को ग्रहण कर लेता है ॥ २१ ॥

भोग्यो भवदथो अन्नमदद् बहु ।
यो देवमुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम् ॥ २२ ॥

भोग्यः । भवत् । अथो इति । अन्नम् । अदत् । बहु ।
यः । देवम् । उत्तरऽवन्तम् । उपऽआसातै । सनातनम् ॥ २२ ॥

जो श्रेष्ठता सनातन देवकी उपासना करता है, वह भोगनेके योग्य होजाता है और बहुतसे अन्नका दान करता है ॥ २२॥

सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः ॥ २३ ॥

सनातनम् । एनम् । आहुः । उत । अद्य । स्यात् । पुनःऽनवः ।
अहोरात्रे इति । प्र । जायेते इति । अन्यः । अन्यस्य । रूपयोः २३

इन (सूर्य वा आत्मा) को सनातन कहते हैं यह (चन्द्ररूप में वा जीवरूपमें जन्म धारण करके) फिर नवीन होजाते हैं इन सूर्यसे दिन और रात्रि प्रकट होती हैं, अन्यके रूप इन दोनों दिन रातोंसे यह सूर्य अन्य हैं ॥ २३ ॥

शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वमस्मिन् निविष्टम्
तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद् देवो रोचत एष
एतत् ॥ २४ ॥

शतम् । सहस्रम् । अयुतम् । निऽअर्बुदम् । असम्ऽख्येयम् । स्वम् ।
अस्मिन् । निऽविष्टम् ।

तत् । अस्य । घ्नन्ति । अभिऽपश्यतः । एव । तस्मात् । देवः ।
रोचते । एषः । एतत् ॥ २४ ॥

सैंकड़ों सहस्रों अयुत अर्बुद और असंख्येय (जन्म वा दिन) इनमें ही अपने आप निविष्ट हैं, वे दिन वा जन्म इनमें ही लीन होजाते हैं यह उनका साक्षी ही रहता है, (उनमें लिप्त नहीं होता है) इसी कारण यह देव दमकता रहता है ॥ २४ ॥

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते ।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥ २५ ॥

बालात् । एकम् । अणीयःऽकम् । उत । एकम् । नऽइव । दृश्यते ।
ततः । परिऽस्वजीयसी । देवता । सा । मम । प्रिया ॥ २५ ॥

यह आत्मा एक बालसे भी बहुत छोटा है इसी लिये यह मुख्य होने पर भी नहीं सा दीखता है, संसारमें क्रीड़ा करने वाली जो आत्मा उसका आलिंगन करती करती है वा मुझको प्रिय है २५

इयं कल्याण्य१जरा मर्त्यस्यामृता गृहे ।
यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः ॥ २६ ॥

इयम् । कल्याणी । अजरा । मर्त्यस्य । अमृता । गृहे ।
यस्मै । कृता । शये । सः । यः । चकार । जजार । सः ॥ २६ ॥

जो इन आत्मदेवके लिये उद्यत होती है वह आत्मा कल्याणी

है अजर रहती है और मर्त्यलोकमें अमृतरूप है जो पुरुष ब्रह्म (की उपासना) को करता है वह पूजा पाता है ॥ २६ ॥

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः

त्वम् । स्त्री । त्वम् । पुमान् । असि । त्वम् । कुमारः । उत । वा । कुमारी ।
त्वम् । जीर्णः । दण्डेन । वञ्चसि । त्वम् । जातः । भवसि । विश्वतःऽमुखः ॥ २७ ॥

हे आत्मन् ! तू ही स्त्री है, तू ही कुमारी है, तू ही पुरुष है, तू (शरीररूपसे) जीर्ण होकर दमसे वञ्चित करता है, तू प्रकट होकर विश्वतोमुख होजाता है ॥ २७ ॥

उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः ।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः ॥ २८

उत । एषाम् । पिता । उत । वा । पुत्रः । एषाम् । उत । एषाम् । ज्येष्ठः । उत । वा । कनिष्ठः ।
एकः । ह । देवः । मनसि । प्रऽविष्टः । प्रथमः । जातः । सः । ऊं इति । गर्भे । अन्तः ॥ २८ ॥

तू इन प्राणियोंका पिता है, पुत्र है, इनका ज्येष्ठ है और कनिष्ठ है, एक ही देवता मनमें प्रविष्ट है, वह पहले प्रकट हुआ है और वही गर्भमें भीतर है ॥ २८ ॥

पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ॥ २९ ॥

पूर्णात् । पूर्णम् । उत् । अचति । पूर्णम् । पूर्णेन । सिच्यते ।
उतो इति । तत् । अद्य । विद्याम । यतः । तत् । परिऽसिच्यते २९

पूर्णसे ही पूर्ण उदञ्चित होता है, पूर्णसे पूर्णको सींचा जाता है आजकल हम उसको जान गए हैं, कि–जहाँसे वह सींचा जाता है२९

एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव
मही देव्यु१षसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे३०

एषा । सनत्नी । सनम् । एव । जाता । एषा । पुराणी । परि ।
सर्वम् । बभूव ।
मही । देवी । उषसः । विऽभाती । सा । एकेनऽएकेन । मिषता ।
वि । चष्टे ॥ ३० ॥

यह सनत्नी तपके ही अनुकूल हुई है, यह पुराणी है और सबको व्याप्त करके स्थित है, ऐसी यह पृथ्वी देवी उषासे दमकती है, वह एक अनेक चेष्टा करने वालोंसे देखी जाती है ॥ ३० ॥ (२८)

अविर्वै नाम देवतर्तेनास्ते परीवृता ।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः ॥ ३१ ॥

अविः । वै । नाम । देवता । ऋतेन । आस्ते । परिऽवृता ।
तस्याः । रूपेण । इमे । वृक्षाः । हरिताः । हरितऽस्रजः ॥ ३१ ॥

अवि नामक देवता उस ऋतसे आच्छादित है उसके रूपसे यह हरी माला वाले वृक्ष हरे वर्ण वाले हैं ॥ ३१ ॥

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥ ३२ ॥

अन्ति । सन्तम् । न । जहाति । अन्ति । सन्तम् । न । पश्यति ।
देवस्य । पश्य । काव्यम् । न । ममार । न । जीर्यति ॥ ३२ ॥

यह पासमें आये हुएको-शरणमें आये हुएको नहीं छोड़ता है और यह (जीव) पासमें वर्तमान (आत्मा) को नहीं देखता है इस (आत्म-) देवकी चतुरताको देखो यह न मरता है और न जीर्ण होता है ॥ ३२ ॥

अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम् ।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत् ॥ ३३ ॥

अपूर्वेण । इषिताः । वाचः । ताः । वदन्ति । यथाऽयथम् ।
वदन्तीः । यत्र । गच्छन्ति । तत् । आहुः । ब्राह्मणम् । महत् ३३

अपूर्वदशाको प्राप्त हुएसे प्रेरित हुई वाणियें यथायथ वर्णन करती हैं, वह कहती हुई जहाँ लीन होजाती है उसको ही महाब्राह्मण (महद्-ब्रह्म) कहते हैं ॥ ३३ ॥

यत्र देवाश्च मनुष्याश्चारा नाभाविव श्रिताः ।
अपां त्वा पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्मायया हितम् ३४

यत्र । देवाः । च । मनुष्याः । च । अराः । नाभौऽइव । श्रिताः ।

अ॒पाम् । त्वा॒ । पुष्प॑म् । पृ॒च्छा॒मि॒ । य॑त्र । तत् । मा॒य॑या । हि॒तम्

जैसे अरे नाभिमें अर्पित होते हैं, इसी प्रकार देवता जिसमें अर्पित हैं, मैं तुझसे जलके पुष्प (नारायण) को बूझता हूँ, जहाँ वह मायासे स्थित है ॥ ३४ ॥

येभि॒र्वात॑ इषि॒तः प्र॒वाति॒ ये दद॑न्ते॒ पञ्च॒ दि॑शः स॒ध्रीची॑ः ।
य आहु॑तिम॒त्यम॑न्यन्त दे॒वा अ॒पां ने॒तार॑ः क॒तमे त
आ॑सन् ॥ ३५ ॥

येभि॑ः । वात॑ः । इ॒षि॒तः । प्र॒ऽवाति॑ । ये । दद॑न्ते । पञ्च॑ । दिश॑ः ।
स॒ध्रीचीः ।

ये । आऽहु॑तिम् । अ॒ति॒ऽअम॑न्यन्त । दे॒वाः । अ॒पाम् । ने॒तार॑ः ।
क॒त॒मे । ते । आ॒स॒न् ॥ ३५ ॥

जिनसे प्रेरित किया हुआ वायु वहता है, जो पाँच सध्रीची दिशाओंको देते हैं, और जो देवता आहुतिको बहुत कुछ मानते हैं, वे जलके नेता किसमें हैं ॥ ३५ ॥

इ॒मामे॑षां पृथि॒वीं वस्त॒ एको॒न्तरि॑क्षं॒ पर्ये॑को बभूव ।
दिव॑मेषां दद॒ते यो वि॑ध॒र्ता विश्वा॒ आशा॒ः प्रति॑ रक्ष॒-
न्त्येके॑ ॥ ३६ ॥

इ॒माम् । ए॒षा॒म् । पृ॒थि॒वीम् । वस्ते॑ । एक॑ः । अ॒न्तरि॑क्षम् । परि॑ ।
एक॑ः । ब॒भू॒व ।

दिवम् । एषाम् । ददते । यः । विऽधर्ता । विश्वाः । आशाः ।
प्रति । रक्षन्ति । एके ॥ ३६ ॥

एक इस पृथ्वीको आच्छादित करता है वह एक ही अन्तरिक्ष के चारों ओर है वही विधर्ता इन प्राणियोंको स्वर्ग देता है मुख्य २ व्यक्ति दिक्पाल सकल दिशाओंकी रक्षा करते हैं ॥ ३६ ॥

यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ३७

यः । विद्यात् । सूत्रम् । विऽततम् । यस्मिन् । आऽउताः ।
प्रऽजाः । इमाः ।
सूत्रम् । सूत्रस्य । यः । विद्यात् । सः । विद्यात् । ब्राह्मणम् ।
महत् ॥ ३७ ॥

जिसमें ये सब प्रजायें ओत हैं उस फैले हुए सूत्रको जो जानता है और जो कारणके कारणको जानता है वह महद्ब्रह्मको जान सकता है ॥ ३७ ॥

वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३८ ॥

वेद । अहम् । सूत्रम् । विऽततम् । यस्मिन् । आऽउताः । प्रऽजाः ।
इमाः ।
सूत्रम् । सूत्रस्य । अहम् । वेद । अथो इति । यत् । ब्राह्मणम् ।
महत् ॥ ३८ ॥

जिसमें ये सब प्रजाएँ ओतप्रोत हैं उस फैले हुए सूत्रको मैं जानता हूँ, मैं सूत्रके सूत्रको भी जानता हूँ, कि—जो महद् ब्रह्म है ३८

यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत् प्रदहन् विश्वदाव्यः ।
यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात् क्वेवासीन्मातरिश्वा तदानीम् ॥ ३९ ॥

यत् । अन्तरा । द्यावापृथिवी इति । अग्निः । ऐत् । प्रऽदहन् । विश्वऽदाव्यः ।
यत्र । अतिष्ठन् । एकऽपत्नीः । परस्तात् । क्वऽइव । आसीत् । मातरिश्वा । तदानीम् ॥ ३९ ॥

विश्व भरको भस्म कर सकने वाला अग्नि द्यावापृथिवी के मध्यमें भस्म करता हुआ आता है जहाँ मुख्य पालिकाएँ देवता रहती हैं, उस समय मातरिश्वा कहाँ था ॥ ३९ ॥

अप्स्वासीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन् ।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आ विवेश ॥ ४० ॥

अप्ऽसु । आसीत् । मातरिश्वा । प्रऽविष्टः । प्रऽविष्टाः । देवाः । सलिलानि । आसन् ।
बृहन् । ह । तस्थौ । रजसः । विऽमानः । पवमानः । हरितः । आ । विवेश ॥ ४० ॥

६-६-३०

मातरिश्वा जलमें प्रविष्ट था, प्रविष्ट हुए देवता भी सलिलरूप में थे, भूलोकका निर्माता ब्रह्म निश्चल था, उस पापहारीने पवित्र करने वाले वायुके रूपमें जलमें प्रवेश किया ॥ ४० ॥

उत्तरेणेव गायत्रीममृतेधि वि चक्रमे ।
साम्ना ये साम संविदुरजस्तद् ददृशे क्व ॥ ४१ ॥

उत्तरेणऽइव । गायत्रीम् । अमृते । अधि । वि । चक्रमे ।
साम्ना । ये । साम । सम्ऽविदुः । अजः । तत् । ददृशे । क्व ४१

उत्तरसे गायत्रीमें प्रवेश किया, सामसे जो सामको जानते हैं (उनको ही अजका प्रत्यक्ष होता है) वह अज कहाँ दीखता है ४१

निवेशनः संगमनो वसूनां देव इव सविता सत्यधर्मा ।
इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥ ४२ ॥

निऽवेशनः । सम्ऽगमनः । वसूनाम् । देवःऽइव । सविता । सत्यऽधर्मा ।
इन्द्रः । न । तस्थौ । सम्ऽअरे । धनानाम् ॥ ४२ ॥

सविता देवता वस्तुओंमें भी देवताकी समान हैं, सत्यधर्मा हैं, पुण्यात्मा उन्हींमें जाते हैं और वह सूर्यलोकमें उनको वसाते हैं। इन्द्र देवता धनके समरमें स्थित नहीं रहते हैं ॥ ४२ ॥

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ४३

पुण्डरीकम् । नवऽद्वारम् । त्रिऽभिः । गुणेभिः । आऽवृतम् ।
तस्मिन् । यत् । यक्षम् । आत्मन्ऽवत् । तत् । वै । ब्रह्मऽविदः । विदुः ४३

नौ द्वार वाला पुण्डरीक तीन गुणोंसे आवृत है उसमें जो पूजनीय आत्मा वाला स्थान है उसको ब्रह्मवेत्ता जानते हैं ॥४३॥

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥ ४४ ॥

अकामः । धीरः । अमृतः । स्वयम्ऽभूः । रसेन । तृप्तः । न । कुतः । चन । ऊनः ।
तम् । एव । विद्वान् । न । बिभाय । मृत्योः । आत्मानम् । धीरम् । अजरम् । युवानम् ॥ ४४ ॥

चतुर्थेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥
इति चतुर्थोनुवाकः ॥

अकाम धीर अमृत स्वयंभू ब्रह्म अपने रससे अपने आप तृप्त रहता है, वह किसी विषयमें भी न्यून नहीं है, उस धीर अजर सदा तरुण रहने वाले आत्माको जानने वाला मृत्युसे नहीं डरता ॥ ४३ ॥ (२६)

चतुर्थ अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (४७६)
चतुर्थ अनुवाक समाप्त ॥

"अघायताम्" इति सूक्तम् आहुत्यर्थगोवधे विनियुज्यते । सा च वन्ध्या गौः शतौदनेत्युच्यते । तस्या वधेन तस्या मांसाहुत्या च यद्यजनं तद् अग्निष्टोमादपि अतिरात्रादपि च श्रेष्ठम् इत्यादिरूपा प्रशंसा । यैवं हन्यते तां प्रति हन्तृभ्यो मा भैषीस्त्वं देवी

भविष्यसि त्वां स्वर्गे देवा गोप्स्यन्तीत्यादि प्रोत्साहनम्। यस्त्वां हन्ति यो वा पचति यो वा जुहोति स उत्तमं स्वर्गं गच्छतीत्यादिका गोभिवचनेन प्रशंसा च क्रियते गोमेधस्य ॥

सांप्रदायिकास्तु एवम्।

"अघायताम्" इत्यर्थसूक्तेन शतौदनसवे निरुप्तहविरभिमर्शनं संपातं दातृवाचनं दानं च कुर्यात्। तथा च सूत्रम्। "अघायताम् इत्यत्र मुखम् अपिनह्यमानम् अनुमन्त्रयते। सपत्नेषु वज्रं ग्रावा त्वैषः [२] इति निपतन्तम्। वेदिष्टे [२] इति मन्त्रोक्तम् आस्तृणाति। त्रिंशत्योदनासु श्रयणीषु शतम् अवदानानि वध्रि संनद्धानि पृथगोदनेषूपर्यादधति। मध्यमायाः प्रथमे रन्ध्रण्यामिक्षां दशमेभितः सप्तमप्तापूपान् परिश्रयति। पञ्चदशे पुरोडाशौ अग्रे हिरण्यम् अपो देवीः [२७] इत्यग्रत उदकुम्भान्। बालास्ते [३] इति सूक्तेन संपातवतीं प्रदक्षिणम् अग्निम् अनुपरिणीयोपवेशनप्रक्षालनाचमनम् उक्तम्। पाणावुदकम् आनीय अथामुष्यौदनस्यावदानानां च मध्यात् पूर्वार्धाच्च द्विरवदायोपरिष्टाद् उदकेनाभिघार्य जुहोति सोमेन पूतो जठरे सीद ब्रह्मणाम् आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वेत्यथ प्राश्नाति। अग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि बृहस्पतेर्मुखेन इन्द्रस्य त्वा जठरे सादयामि वरुणस्योदरे तद्यथाहुतम् इष्टं प्राश्नीयाद् देवा त्वा प्राश्नाम्यात्मास्यात्मन्नात्मानं मे मा हिंसीरिति प्राशितम् अनुमन्त्रयते योग्निर्नृमणा नाम ब्राह्मणेषु प्रविष्टः। तस्मिन्म एष सुहुतोस्त्वोदनः स मा मा हिंसीत् परमे व्योमन्। सो अस्मभ्यम् अस्तु परमे व्योमन्निति दातारं वाचयति। वीक्षणान्तं शतौदनायाः प्रातर्जपेन व्याख्यातम्" इति कौ० ८. ६ ॥

"अघायताम्" यह सूक्त आहुत्यर्थ गोवधमें विनियुक्त होता है। वह वंध्या गौ शतौदना कहलाती है। उसके वधसे उसके मांस की आहुतिसे जो यजन होता है वह अग्निष्टोम और अतिरात्रसे

भी श्रेष्ठ है, यह कर्ममार्गमें प्रवृत्ति कराने वाला प्रशंसापरक वचन है। जो मारी जाती है उसके प्रति 'तू हन्ताओंसे मत डर तू देवी होजावेगी, स्वर्गमें देवता तेरी रक्षा करेंगे' इत्यादि प्रोत्साहनवचन है। जो तुझे हनन करता है जो पचन करता है, जो आहुति देता है, वह उत्तम स्वर्गको जाता है। इत्यादि गोभिवचनके द्वारा गोमेध की प्रशंसा भी की है।

साम्प्रदायिक इसका इस प्रकार विनियोग करते हैं, कि–

"अघायताम्" इस अर्थसूक्तसे शतौदनमें निरुप्तहविका अभिमर्शन सम्पात दातृवाचन और दान करे। यही सूत्रमें लिखा है, कि–"अघायताम् इत्यत्र मुखम् अपिनह्यमानम् अनुमन्त्रयते। सपत्नेषु वज्रं ग्रावा त्वैषः [२] इति निपतन्तम् । वेदिष्टे [२] इति मन्त्रोक्तम् आस्तृणाति। विंशत्योदनासु श्रयणीषु शतम् अवदानानि वध्रिसंनद्धानि पृथगोदनेषूपर्यादधति। मध्यमायाः प्रथमे रन्ध्रिण्यामित्तां दशमेभितः सप्तसप्तापूपान् परिश्रयति। पञ्चदशे पुरोडाशौ अग्रे हिरण्यम् अपो देवीः [२७] इत्यग्रत उदकुम्भान्। वालास्ते [३] इति सूक्तेन संपातवतीं प्रदक्षिणम् अग्निम् अनुपरिणीयोपवेशनप्रक्षालनाचमनम् उक्तम्। पाणावुदकम् आनीय अथामुष्यौदनस्यावदानानां च मध्यात् पूर्वार्धाच्च द्विरवदायोपरिष्टाद्ध उदकेनाभिघार्य जुहोति सोमेन पूतो जठरे सीद ब्रह्मणाम् आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वेत्यथ प्राश्नाति। अग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि बृहस्पतेर्मुखेन इन्द्रस्य त्वा जठरे सादयामि वरुणस्योदरे तद्यथाहुतम् इष्टं प्राश्नीयाद् देवा त्वा प्राश्नाम्यात्मास्यात्मन्नात्मानं मे मा हिंसीरिति प्राशितम् अनुमन्त्रयते योग्निर्नृमणा नाम ब्राह्मणेषु प्रविष्टः। तस्मिन्म एव सुहुतोस्त्वोदनः स मा मा हिंसीत् परमे व्योमन्। सो अस्मभ्यम् अस्तु परमे व्योमन्निति दातारं वाचयति। वीक्षणान्तं शतौदनायाः प्रातर्जपेन व्याख्यातम्" इति (कौशिकसूत्र ८. ६)॥

अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम् ।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य
गातुः ॥ १ ॥

अघऽयताम् । अपि । नह्य । मुखानि । सऽपत्नेषु । वज्रम् । अर्पय ।
एतम् ।
इन्द्रेण । दत्ता । प्रथमा । शतऽओदना । भ्रातृव्यऽघ्नी । यजमानस्य ।
गातुः ॥ १ ॥

यजमानको स्वर्ग भेजने वाली, शत्रुसंहारिका गौको इन्द्रने पहिले दिया था, यह वधरूप पाप करना चाहने वाले शत्रुओंके मुखको बन्द करके उनमें इस वज्रको अर्पित करे ॥ १ ॥

वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते ।
एषा त्वा रशनाग्रभीद् ग्रावा त्वैषोधि नृत्यतु ॥२॥

वेदिः । ते । चर्म । भवतु । बर्हिः । लोमानि । यानि । ते ।
एषा । त्वा । रशना । अग्रभीत् । ग्रावा । त्वा । एषः । अधि ।
नृत्यतु ॥ २ ॥

तेरा चर्म वेदि होवे और तेरे जो लोम हैं वे कुशायें हैं, इस रस्सीने तुझको पकड़ लिया है और ग्रावा तेरे ऊपर नृत्य करे २

वालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं मार्ष्ट्वघ्न्ये ।
शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ३ ॥

बालाः । ते । प्रऽउक्षणीः । सन्तु । जिह्वा । सम् । मार्ष्टु । अघ्न्ये ।
शुद्धा । त्वम् । यज्ञिया । भूत्वा । दिवम् । प्र । इहि । शतऽओदने ३

तेरे बाल प्रोक्षणी बनें, हे अघ्न्ये ! तेरी जिह्वा मार्जन करे, हे शतौदने ! तू शुद्ध यज्ञिया होकर स्वर्गको जा ॥ ३ ॥

यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते ।
प्रीता ह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥ ४ ॥

यः । शतऽओदनाम् । पचति । कामऽप्रेण । सः । कल्पते ।
प्रीताः । हि । अस्य । ऋत्विजः । सर्वे । यन्ति । यथाऽयथम् ४

जो शतौदनाका पचन करता है, वह कामपूरकरूपसे समर्थ होता है, और ऋत्विज इससे प्रसन्न होकर यथायोग्य रीतिसे चले जाते हैं ॥ ४ ॥

स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः ।
अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ५ ॥

सः । स्वःऽगम् । आ । रोहति । यत्र । अदः । त्रिऽदिवम् । दिवः ।
अपूपऽनाभिम् । कृत्वा । यः । ददाति । शतऽओदनाम् ॥ ५ ॥

जो शतौदनाको अपूपनाभि करके देता है वह जहाँ अन्तरिक्ष में स्वर्ग है उस स्वर्गमें जाता है ॥ ५ ॥

स तांल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥६॥

अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम् ।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य
गातुः ॥ १ ॥

अघऽयताम् । अपि । नह्य । मुखानि । सऽपत्नेषु । वज्रम् । अर्पय ।
एतम् ।
इन्द्रेण । दत्ता । प्रथमा । शतऽओदना । भ्रातृव्यऽघ्नी । यजमानस्य ।
गातुः ॥ १ ॥

यजमानको स्वर्ग भेजने वाली, शत्रुसंहारिका गौको इन्द्रने पहिले दिया था, यह वधरूप पाप करना चाहने वाले शत्रुओंके मुखको बन्द करके उनमें इस वज्रको अर्पित करे ॥ १ ॥

वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते ।
एषा त्वा रशनाग्रभीद् ग्रावा त्वैषोधि नृत्यतु ॥२॥

वेदिः । ते । चर्म । भवतु । वर्हिः । लोमानि । यानि । ते ।
एषा । त्वा । रशना । अग्रभीत् । ग्रावा । त्वा । एषः । अधि ।
नृत्यतु ॥ २ ॥

तेरा चर्म वेदि होवे और तेरे जो लोम हैं वे कुशायें हैं, इस रस्सीने तुझको पकड़ लिया है और ग्रावा तेरे ऊपर नृत्य करे २

वालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं मार्ष्ट्वघ्न्ये ।
शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ३ ॥

बालाः । ते । प्रऽउक्षणीः । सन्तु । जिह्वा । सम् । मार्ष्टु । अघ्न्ये ।
शुद्धा । त्वम् । यज्ञिया । भूत्वा । दिवम् । प्र । इहि । शतऽओदने ३

तेरे बाल प्रोक्षणी बनें, हे अघ्न्ये ! तेरी जिह्वा मार्जन करे, हे शतौदने ! तू शुद्ध यज्ञिया होकर स्वर्गको जा ॥ ३ ॥

यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते ।
प्रीता ह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥ ४ ॥

यः । शतऽओदनाम् । पचति । कामऽप्रेण । सः । कल्पते ।
प्रीताः । हि । अस्य । ऋत्विजः । सर्वे । यन्ति । यथाऽयथम् ४

जो शतौदनाका पचन करता है, वह कामपूरकरूपसे समर्थ होता है, और ऋत्विज इससे प्रसन्न होकर यथायोग्य रीतिसे चले जाते हैं ॥ ४ ॥

स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः ।
अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ५ ॥

सः । स्वःऽगम् । आ । रोहति । यत्र । अदः । त्रिऽदिवम् । दिवः ।
अपूपऽनाभिम् । कृत्वा । यः । ददाति । शतऽओदनाम् ॥ ५ ॥

जो शतौदनाको अपूपनाभि करके देता है वह जहाँ अन्तरिक्ष में स्वर्ग है उस स्वर्गमें जाता है ॥ ५ ॥

स तांल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥६॥

अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम् ।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः ॥ १ ॥

अघऽयताम् । अपि । नह्य । मुखानि । सऽपत्नेषु । वज्रम् । अर्पय । एतम् ।
इन्द्रेण । दत्ता । प्रथमा । शतऽओदना । भ्रातृव्यऽघ्नी । यजमानस्य । गातुः ॥ १ ॥

यजमानको स्वर्ग भेजने वाली, शत्रुसंहारिका गौको इन्द्रने पहिले दिया था, यह वधरूप पाप करना चाहने वाले शत्रुओंके मुखको बन्द करके उनमें इस वज्रको अर्पित करे ॥ १ ॥

वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते ।
एषा त्वा रशनाग्रभीद् ग्रावा त्वैषोधि नृत्यतु ॥२॥

वेदिः । ते । चर्म । भवतु । बर्हिः । लोमानि । यानि । ते ।
एषा । त्वा । रशना । अग्रभीत् । ग्रावा । त्वा । एषः । अधि । नृत्यतु ॥ २ ॥

तेरा चर्म वेदि होवे और तेरे जो लोम हैं वे कुशायें हैं, इस रस्सीने तुझको पकड़ लिया है और ग्रावा तेरे ऊपर नृत्य करे २

बालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं मार्ष्ट्वघ्न्ये ।
शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ३ ॥

बालाः । ते । प्रऽउक्षणीः । सन्तु । जिह्वा । सम् । मार्ष्टु । अघ्न्ये ।
शुद्धा । त्वम् । यज्ञिया । भूत्वा । दिवम् । प्र । इहि । शतऽओदने ३

तेरे बाल प्रोक्षणी बनें, हे अघ्न्ये ! तेरी जिह्वा मार्जन करे, हे शतौदने ! तू शुद्ध यज्ञिया होकर स्वर्गको जा ॥ ३ ॥

यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते ।
प्रीता ह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥ ४ ॥

यः । शतऽओदनाम् । पचति । कामऽप्रेण । सः । कल्पते ।
प्रीताः । हि । अस्य । ऋत्विजः । सर्वे । यन्ति । यथाऽयथम् ४

जो शतौदनाका पचन करता है, वह कामपूरकरूपसे समर्थ होता है, और ऋत्विज इससे प्रसन्न होकर यथायोग्य रीतिसे चले जाते हैं ॥ ४ ॥

स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः ।
अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ५ ॥

सः । स्वःऽगम् । आ । रोहति । यत्र । अदः । त्रिऽदिवम् । दिवः ।
अपूपऽनाभिम् । कृत्वा । यः । ददाति । शतऽओदनाम् ॥ ५ ॥

जो शतौदनाको अपूपनाभि करके देता है वह जहाँ अन्तरिक्ष में स्वर्ग है उस स्वर्गमें जाता है ॥ ५ ॥

स तांल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥६॥

अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम् ।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः ॥ १ ॥

अघऽयताम् । अपि । नह्य । मुखानि । सऽपत्नेषु । वज्रम् । अर्पय । एतम् ।
इन्द्रेण । दत्ता । प्रथमा । शतऽओदना । भ्रातृव्यऽघ्नी । यजमानस्य । गातुः ॥ १ ॥

यजमानको स्वर्ग भेजने वाली, शत्रुसंहारिका गौको इन्द्रने पहिले दिया था, यह वधरूप पाप करना चाहने वाले शत्रुओंके मुखको बन्द करके उनमें इस वज्रको अर्पित करे ॥ १ ॥

वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते ।
एषा त्वा रशनाग्रभीद् ग्रावा त्वैषोधि नृत्यतु ॥२॥

वेदिः । ते । चर्म । भवतु । बर्हिः । लोमानि । यानि । ते ।
एषा । त्वा । रशना । अग्रभीत् । ग्रावा । त्वा । एषः । अधि । नृत्यतु ॥ २ ॥

तेरा चर्म वेदि होवे और तेरे जो लोम हैं वे कुशायें हैं, इस रस्सीने तुझको पकड़ लिया है और ग्रावा तेरे ऊपर नृत्य करे २

बालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं मार्ष्ट्वघ्न्ये ।
शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ३ ॥

बालाः । ते । प्रऽउक्षणीः । सन्तु । जिह्वा । सम् । मार्ष्टु । अघ्न्ये ।
शुद्धा । त्वम् । यज्ञिया । भूत्वा । दिवम् । प्र । इहि । शतऽओदने ३

तेरे बाल प्रोक्षणी बनें, हे अघ्न्ये ! तेरी जिह्वा मार्जन करे, हे शतौदने ! तू शुद्ध यज्ञिया होकर स्वर्गको जा ॥ ३ ॥

यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते ।
प्रीता ह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥ ४ ॥

यः । शतऽओदनाम् । पचति । कामऽप्रेण । सः । कल्पते ।
प्रीताः । हि । अस्य । ऋत्विजः । सर्वे । यन्ति । यथाऽयथम् ४

जो शतौदनाका पचन करता है, वह कामपूरकरूपसे समर्थ होता है, और ऋत्विज इससे प्रसन्न होकर यथायोग्य रीतिसे चले जाते हैं ॥ ४ ॥

स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः ।
अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ५ ॥

सः । स्वःऽगम् । आ । रोहति । यत्र । अदः । त्रिऽदिवम् । दिवः ।
अपूपऽनाभिम् । कृत्वा । यः । ददाति । शतऽओदनाम् ॥ ५ ॥

जो शतौदनाको अपूपनाभि करके देता है वह जहाँ अन्तरिक्ष में स्वर्ग है उस स्वर्गमें जाता है ॥ ५ ॥

स तांल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥६॥

सः । तान् । लोकान् । सम् । आप्नोति । ये । दिव्याः । ये । च ।
पार्थिवाः ।
हिरण्यऽज्योतिषम् । कृत्वा । यः । ददाति । शतऽओदनाम् ॥६॥

जो गौको सुवर्णसे दमकती हुई करके देता है, वह उन लोकों को प्राप्त होता है, कि-जो दिव्य और पार्थिव हैं ॥ ६ ॥

ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने ॥७॥

ये । ते । देवि । शमितारः । पक्तारः । ये । च । ते । जनाः ।
ते । त्वा । सर्वे । गोप्स्यन्ति । मा । एभ्यः । भैषीः । शतऽओदने ७

हे देवि ! जो तेरा पचन करने वाले हैं और जो तेरा शमन करने वाले प्राणी हैं वे सब तेरी रक्षा करेंगे, तू इनसे न डर ॥७॥

वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा ।
आदित्याः पश्चाद् गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव ८

वसवः । त्वा । दक्षिणतः । उत्तरात् । मरुतः । त्वा ।
आदित्याः । पश्चात् । गोप्स्यन्ति । सा । अग्निऽस्तोमम् । अति ।
द्रव ॥ ८ ॥

वसु दक्षिणकी ओरसे तेरी रक्षा करेंगे और मरुत् उत्तरकी ओरसे तेरी रक्षा करेंगे और आदित्य पीछेसे तेरी रक्षा करेंगे अतः तू अग्निष्टोमकी ओर दौड़ ॥ ८ ॥

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।

ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव ॥ ९ ॥

देवाः । पितरः । मनुष्याः । गन्धर्वऽअप्सरसः । च । ये ।
ते । त्वा । सर्वे । गोप्स्यन्ति । सा । अतिऽरात्रम् । अति । द्रव ९

देवता पितर मनुष्य गंधर्व और अप्सरायें ये सब तेरी रक्षा करेंगे, वह तू अतिरात्रकी ओर जा ॥ ९ ॥

अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान् मरुतो दिशः ।
लोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम् १०

अन्तरिक्षम् । दिवम् । भूमिम् । आदित्यान् । मरुतः । दिशः ।
लोकान् । सः । सर्वान् । आप्नोति । यः । ददाति । शतऽओदनाम् ॥

जो शतौदनाको देता है वह अन्तरिक्ष द्यौ भूमि आदित्य मरुत् और दिशा इन सबके लोकोंको पाता है ॥ १० ॥

घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति ।
पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ११ ॥

घृतम् । प्रऽउक्षन्ती । सुऽभगा । देवी । देवान् । गमिष्यति ।
पक्तारम् । अघ्न्ये । मा । हिंसी । दिवम् । प्र । इहि । शतऽओदने

हे शतौदने देवि ! तू सुभगा देवि ! तू घृतका प्रोक्षण करती हुई देवताओंको प्राप्त होगी, तू पक्ताका हिंसन न कर स्वर्गको जा॥

ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ये चेमे भूम्यामधि
तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १२ ॥

३५ ८९-३०

ये । देवाः । दिविऽसदः । अन्तरिक्षऽसदः । च । ये । ये । च ।
इमे । भूम्याम् । अधि ।
तेभ्यः । त्वम् । धुक्ष्व । सर्वदा । क्षीरम् । सर्पिः । अथो इति ।
मधु ॥ १२ ॥

जो देवता स्वर्गमें रहते हैं, जो अन्तरिक्षमें रहते हैं और जो भूमि पर रहते हैं, उनके लिये तू सदा क्षीर घृत और मधुको दुह १२

यत् ते शिरो यत् ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू ।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १३ ॥

यत् । ते । शिरः । यत् । ते । मुखम् । यौ । कर्णौ । ये इति ।
च । ते । हनू इति ।
आमिक्षाम् । दुहताम् । दात्रे । क्षीरम् ।० ॥ १३ ॥

जो तेरा शिर मुख कान और हनु हैं, वे दाताके लिये क्षीर घृत मधु और आमिक्षाको दुहे ॥ १३ ॥

यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेक्षिणी ।
आमिक्षां० ॥ १४ ॥

यौ । ते । ओष्ठौ । ये इति । नासिके इति । ये इति । शृङ्गे इति ।
ये इति । च । ते अक्षिणी इति ॥० ॥ १४ ॥

जो तेरे ओठ नथुने सींग और नेत्र हैं वे दाता यजमानके लिये अमिक्षा क्षीरघृत और मधुको दुहें ॥ १४ ॥

यत् ते क्लोमा यद्धृदयं पुरीतत् सहकण्ठिका ।
आमिक्षां० ॥ १५ ॥

यत् । ते । क्लोमा । यत् । हृदयम् । पुरिऽतत् । सहऽकण्ठिका ०

जो तेरा क्लोम पुरीतत् हृदय और कण्ठनाड़ी है वह दाताके लिये आमिक्षा क्षीर घृत और मधु प्रदान करे ॥ १५ ॥

यत् ते यकृद् ये मतस्ने यदान्त्रं याश्च ते गुदाः ।
आमिक्षां० ॥ १६ ॥

यत् । ते । यकृत् । ये इति । मतस्ने इति । यत् । आन्त्रम् । याः ।
च । ते । गुदाः ॥० ॥ १६ ॥

हे मतस्ने ! जो तेरा यकृत् अन्त्रसमूह और गुदाकी नसे हैं वे दाताके लिये आमिक्षा घृत क्षीर और मधु प्रदान करें ॥१६॥

यस्ते प्लाशिर्यो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते ।
आमिक्षां० ॥ १७ ॥

यः । ते । प्लाशिः । यः । वनिष्ठुः । यौ । कुक्षी इति । यत् । च ।
चर्म । ते ॥० ॥ १७ ॥

जो तेरा प्लाशि वनिष्ठु और कुक्षियें तथा चर्म है वे दाताके लिये आमिक्षा घृत क्षीर और मधु दुहें ॥ १७ ॥

यत् ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यच्च लोहितम् ।
आमिक्षां० ॥ १८ ॥

यत् । ते । मज्जा । यत् । अस्थि । यत् । मांसम् । यत् । च ।
लोहितम् ॥० ॥ १८ ॥

जो तेरी मज्जा अस्थियें मांस और लोहित हैं वे दाताके लिये आमिक्षा घृत क्षीर और मधु प्रदान करें ॥ १८ ॥

यौ ते बाहू ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत् ।
आमिक्षां० ॥ १९ ॥

यौ । ते । बाहू इति । ये इति । दोषणी इति । यौ । अंसौ ।
या । च । ते । ककुत् ॥ ० ॥ १९ ॥

जो तेरी भुजा बाहु अंस और ककुद् हैं वे दाताको आमिक्षा घृत क्षीर और मधु प्रदान करें ॥ १९ ॥

यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पर्शवः ।
आमिक्षां० ॥ २० ॥

याः । ते । ग्रीवाः । ये । स्कन्धाः । याः । पृष्टीः । याः । च ।
पर्शवः ॥० ॥ २० ॥

जो तेरी ग्रीवा स्कंध पृष्टि और पसलियें हैं वे दाताके लिये आमिक्षा घृत क्षीर और मधु प्रदान करें ॥ २० ॥

यौ त ऊरू अष्ठीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भसत् ।
आमिक्षां० ॥ २१ ॥

यौ । ते । ऊरू इति । अष्ठीवन्तौ । ये इति । श्रोणी इति । या ।
च । ते । भसत् ॥० ॥ २१ ॥

जो तेरी ऊरू अष्ठीवान् श्रोणी और कटि हैं, वे दाताके लिये आमिक्षा क्षीर घृत और मधुरता प्रदान करें ॥ २१ ॥

यत् ते पुच्छं ये ते बाला यदूधो ये च ते स्तनाः ।
आमिक्षां० ॥ २२ ॥

यत् । ते । पुच्छम् । ये । ते । बालाः । यत् । ऊधः । ये । च । ते । स्तनाः ॥० ॥ २२ ॥

जो तेरी पूँछ बाल ऐन और थन हैं वे दाताके लिये आमिक्षा दूध घृत और मधु प्रदान करें ॥ २२ ॥

यास्ते जङ्घा याः कुष्ठिका ऋच्छरा ये च ते शफाः ।
आमिक्षां० ॥ २३ ॥

याः । ते । जङ्घाः । याः । कुष्ठिकाः । ऋच्छराः । ये । च । ते । शफाः ॥० ॥ २३ ॥

जो तेरी जंघाएँ कुष्ठिका ऋच्छर और सुम हैं वे दाताके लिये आमिक्षा दूध घृत और मधु प्रदान करें ॥ २३ ॥

यत् ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यघ्न्ये ।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४ ॥

यत् । ते । चर्म । शतऽओदने । यानि । लोमानि । अघ्न्ये । आमिक्षाम् । दुहताम् । दात्रे । क्षीरम् । सर्पिः । अथो इति । मधु ।

हे शतौदने ! जो तेरा चर्म है हे अघ्न्ये ! जो तेरे लोम हैं वे दाताके लिये आमिक्षा क्षीर घृत और मधुरता प्रदान करें ॥२४॥

क्रो॒डौ ते॑ स्तां पुरो॒डाशा॒वाज्ये॑ना॒भिघा॑रितौ ।
तौ प॒क्षौ दे॑वि कृ॒त्वा सा प॒क्तारं॒ दिवं॑ वह ॥ २५ ॥

क्रो॒डौ । ते॒ । स्ता॒म् । पु॒रो॒डाशौ॑ । आज्ये॑न । अ॒भिऽघा॑रितौ ।
तौ । प॒क्षौ । दे॒वि॒ । कृ॒त्वा । सा । प॒क्तार॑म् । दिव॑म् । व॒ह॒ ॥ २५ ॥

तेरे क्रोड़ घृतसे अभिघारित पुरोडाश हो जावें हे देवि ! तू उनको पक्ष बना कर पक्ताके साथ स्वर्गको प्राप्त हो ॥ २५ ॥

उ॒लूख॑ले॒ मुस॑ले॒ यश्च॒ चर्म॑णि॒ यो वा॒ शूर्पे॑ तण्डु॒लः कणः॑ ।
यं वा॒ वातो॑ मात॒रिश्वा॒ पव॑मानो म॒माथा॒ग्निष्टद्धोता॒
सुहु॑तं कृणोतु ॥ २६ ॥

उ॒लूख॑ले । मुस॑ले । यः । च॒ । चर्म॑णि । यः । वा॒ । शूर्पे॑ । त॒ण्डु॒लः । कणः॑ ।
यम् । वा॒ । वातः॑ । मा॒त॒रिश्वा॑ । पव॑मानः । म॒माथ॑ । अ॒ग्निः । तत् ।
होता॑ । सु॒ऽहु॑तम् । कृ॒णो॒तु ॥ २६ ॥

उलूखलमें मूसलमें चर्ममें वा छाजमें जो तण्डुलका कण रह गया है वा जिसको मातरिश्वाने पवित्र करते हुए मथा है उसको होता अग्नि सुहुत करें ॥ २६ ॥

आ॒पो दे॒वीर्मधु॑मतीर्घृत॒श्चुतो॑ ब्र॒ह्मणां॒ हस्ते॑षु प्रपृ॒थक्
सा॑दयामि ।
यत्काम इ॒दम॑भिषि॒ञ्चामि॑ वो॒हं तन्मे॒ सर्वं॒ सं प॑द्यतां
व॒यं स्या॑म॒ पत॑यो र॒यीणा॑म् ॥ २७ ॥

अ॒पः । दे॒वीः । मधु॑ऽमतीः । घृ॒त॒ऽश्चुतः॑ । ब्र॒ह्मणा॑म् । हस्ते॑षु । प्र॒ऽपृ॒थ॒क् । सा॒द॒या॒मि॒ ।

यत्॑ऽकामः । इ॒दम् । अ॒भि॒ऽसि॒ञ्चामि॑ । वः॒ । अ॒हम् । तत् । मे॒ । सर्व॑म् । सम् । प॒श्य॒ता॒म् । व॒यम् । स्या॒म॒ । पत॑यः । र॒यी॒णाम् ॥

इति पञ्चमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

मैं मधुमयी घृतकी समान सार फलोंको देने वाली जलदेवियों को ब्राह्मणोंके हाथमें अलग २ देता हूँ, हे ब्राह्मणों ! मैं जिस कामनाके लिये तुम्हारा अभिषेचन करता हूँ, वह सब मुझमें सम्पन्न होवें, हम सब धनपति होवें ॥ २७ ॥ (३२) ॥

पञ्चम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (४७७) ॥

"नमस्ते जायमानायै" इति सूक्ते पूर्वसूक्तोक्तवशा न केवलं मेध्यमांसात्मिका गौर्भवति अपि तु सा विशसनादनन्तरं महती काचिद्द देवी भूत्वा देवेषु मध्ये सर्वात्मिका भवति यज्ञियेषु च यज्ञिया भवतीत्यादि तस्या माहात्म्यं प्रशंसा चोक्ता ॥

सांप्रदायिकास्तु एवम् । "नमस्ते जायमानायै" इत्यर्थसूक्तेन वशासवे निरुप्तहविरभिमर्शनसंपातदातृवाचनदानादि कुर्यात् । तद् उक्तं कौशिकेन । "नमस्ते जायमानायै [१०. १०] ददामि [१२. ४] इति वशाम् उदपात्रेण संपातवता संप्रोच्याभिमन्त्र्याभिनिगद्य दद्याद् दाता वाच्यमानो भूमिष्ट्वा [३. २९. ८] इत्येनां प्रतिगृह्णाति" इति [कौ० ८. ७] ॥

"नमस्ते जायमानायै" सूक्तमें यह कहा है, कि—पूर्वसूत्रोक्तवशा केवल मेध्यमांसात्मिका गौ ही नहीं होती है, किन्तु वह विशसनके अनन्तर एक बड़ी भारी देवी बन कर देवताओंमें सर्वात्मिका होती है, यज्ञियोंमें यज्ञिया होती है। इस प्रकार उसकी प्रशंसा और माहात्म्य इसमें कहा है।

साम्प्रदायिक कहते हैं, कि–“नमस्ते जायमानायै” इस अर्थसूक्तसे वशासवमें निरुप्त हविका अभिमर्शन सम्पात दातृवाचन और दान करे। इसी बातको कौशिकने कहा है, कि–“नमस्ते जायमानायै (१०। १०) ददामि (१२ । ४) इति वशां उदपात्रेण संपातवता सम्प्रोक्ष्याभिमन्त्र्याभिनिगद्य दद्याद् दाता वाच्यमानो भूमिष्ट्वा (३ । २९ । ८) इत्येनां प्रतिगृह्णाति” (कौशिकसूत्र ८ । ७) ॥

नम॑स्ते॒ जाय॑मानायै जा॒ताया॑ उ॒त ते॒ नमः॑ ।
बाले॑भ्यः श॒फेभ्यो॑ रू॒पाया॑घ्न्ये ते॒ नमः॑ ॥ १ ॥

नमः॑ । ते॒ । जाय॑मानायै । जा॒तायै॑ । उ॒त । ते॒ । नमः॑ ।
बाले॑भ्यः । श॒फेभ्यः॑ । रू॒पाय॑ । अ॒घ्न्ये॒ । ते॒ । नमः॑ ॥ १ ॥

हे अघ्न्ये ! तुझ जायमाना और जाताके लिये प्रणाम है तेरे बालोंके लिये खुरोंके लिये और रूपके लिये प्रणाम है ॥ १ ॥

यो वि॒द्यात् स॒प्त प्र॒वतः॑ स॒प्त वि॒द्यात् प॑रा॒वतः॑ ।
शिरो॑ य॒ज्ञस्य॒ तो वि॒द्यात् स व॒शां प्रति॑ गृह्णीयात् २

यः । वि॒द्यात् । स॒प्त । प्र॒ऽव॑तः । स॒प्त । वि॒द्यात् । प॒रा॒ऽव॑तः ।
शिरः॑ । य॒ज्ञस्य॑ । यः । वि॒द्यात् । सः । व॒शाम् । प्रति॑ । गृ॒ह्णी॒या॒त् २

जो वशाकी सात प्रकर्षता वाली वस्तुओंको जानता है जो वशासे दूर रखने योग्य सात वस्तुओंको जानता है और जो यज्ञके शिरको जानता है, वह वशाका प्रतिग्रहण कर सकता है ॥२॥

वेदा॒हं स॒प्त प्र॒वतः॑ स॒प्त वेद॒ प॑रा॒वतः॑ ।

शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥३॥

वेद । अहम् । सप्त । प्रऽवतः । सप्त । वेद । पराऽवतः ।

शिरः । यज्ञस्य । अहम् । वेद । सोमम् । च । अस्यां । विऽचक्षणम्

मैं सात प्रवतोंको और सात परावतोंको जानता हूँ और मैं यज्ञके शिरको भी जानता हूँ और इसमें जो सोम है उसको भी जानता हूँ ॥ ३ ॥

यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः ।
वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥ ४ ॥

यया । द्यौः । यया । पृथिवी । यया । आपः । गुपिताः । इमाः ।

वशाम् । सहस्रऽधाराम् । ब्रह्मणा । अच्छऽआवदामसि ॥ ४ ॥

जिस वशासे द्यौ और पृथिवी तथा ये जल रक्षित हैं, उस सहस्रधारा वशासे हम मन्त्रके द्वारा अभिमुख होकर वार्तालाप करते हैं ॥ ४ ॥

शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे
ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा॥ ५ ॥

शतम् । कंसाः । शतम् । दोग्धारः । शतम् । गोप्तारः । अधि । पृष्ठे । अस्याः ।

ये । देवाः । तस्याम् । प्राणन्ति । ते । वशाम् । विदुः । एकऽधा ५

इसकी पृष्ठमें सौ दुग्ध पीनेके पात्र हैं, सौ दोग्धा हैं, जो देवता इसमें प्राणन करते हैं वे वशाको एक प्रकारसे जानते हैं ॥ ५ ॥

यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका ।
वशा पर्जन्यपत्नी देवाँ अप्येति ब्रह्मणा ॥ ६ ॥

यज्ञऽपदी । इराऽक्षीरा । स्वधाऽप्राणा । महीलुका ।
वशा । पर्जन्यऽपत्नी । देवान् । अपि । एति । ब्रह्मणा ॥ ६ ॥

यज्ञपदी इरा क्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका, पर्जन्यका पालन करने वाली वशा मन्त्रशक्तिके द्वारा देवताओंको तृप्त करे है॥६॥

अनु त्वाग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा ।
ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥ ७ ॥

अनु । त्वा । अग्निः । प्र । अविशत् । अनु । सोमः । वशे । त्वा ।
ऊधः । ते । भद्रे । पर्जन्यः । विऽद्युतः । ते । स्तनाः । वशे ॥७॥

हे वशे ! तुझमें अग्निने प्रवेश किया है, सोमने तुझमें प्रवेश किया है, हे भद्रे ! पर्जन्य तेरा ऐन है और हे वशे ! बिजलियें तेरे स्तन हैं ॥ ७ ॥

अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे ।
तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥ ८ ॥

अपः । त्वम् । धुक्षे । प्रथमाः । उर्वराः । अपराः । वशे ।
तृतीयम् । राष्ट्रम् । धुक्षे । अन्नम् । क्षीरम् । वशे । त्वम् ॥ ८ ॥

हे वशे ! तू पहिले जल प्रदान करती है, फिर उर्वर वस्तुओं को प्रदान करती है फिर तीसरे राज्यको प्रदान करती है, हे वशे ! फिर तू अन्न और क्षीरको देती है ॥ ८ ॥

यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि ।
इन्द्रः सहस्रं पात्रान्त्सोमं त्वापाययद् वशे ॥ ९ ॥

यत् । आदित्यैः । हूयमाना । उपऽअतिष्ठः । ऋतऽवरि ।
इन्द्रः । सहस्रम् । पात्रान् । सोमम् । त्वा । अपाययत् । वशे ॥९॥

हे ऋतावरि ! तू जो आदित्योंके बुलाने पर उनके पास आई थी उस समय हे वशे ! इन्द्रने तुझे सहस्र पात्रोंसे सोम पिलाया था ९

यदनूचीन्द्रमैरात् त्वं ऋषभो ह्वयत् ।
तस्मात् ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धो हरद् वशे ॥ १० ॥

यत् । अनूची । इन्द्रम् । ऐः । आत् । त्वा । ऋषभः । अह्वयत् ।
तस्मात् । ते । वृत्रऽहा । पयः । क्षीरम् । क्रुद्धः । अहरत् । वशे १०

जब तू अनूची इन्द्रके पास थी उस समय ऋषभने तुझको आह्वान किया था, इसी कारण तेरे क्षीर पयको वृत्रहाने क्रुद्ध होकर हर लिया था ॥ १० ॥

यत् ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद् वशे ।
इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥ ११ ॥

यत् । ते । क्रुद्धः । धनऽपतिः । आ । क्षीरम् । अहरत् । वशे ।
इदम् । तत् । अद्य । नाकः । त्रिषु । पात्रेषु । रक्षति ॥ ११ ॥

धनपतिने क्रोधमें तेरे जिस क्षीरको वशमें कर लिया था उस की स्वर्ग तीन पात्रोंमें रक्षा कर रहा है ॥ ११ ॥

त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्यहरद् वशा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १२ ॥

त्रिषु । पात्रेषु । तम् । सोमम् । आ । देवी । अहरत् । वशा ।
अथर्वा । यत्र । दीक्षितः । बर्हिषि । आस्त । हिरण्यये ॥ १२ ॥

उस सोमको देवी वशाने तीन पात्रोंमें भर लिया है, तहाँ हित रमणीय कुशा पर अथर्वा दीक्षित होकर बैठे हुए हैं ॥ १२ ॥

सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता ।
वशा समुद्रमध्यष्ठाद् गन्धर्वैः कलिभिः सह ॥१३॥

सम् । हि । सोमेन । अगत । सम् । ऊँ इति । सर्वेण । पत्ऽवता ।
वशा । समुद्रम् । अधि । अस्थात् । गन्धर्वैः । कलिऽभिः । सह १३

वशा सोमके साथ और सकल पैर वालोंके साथ संगत हो जाती है और कलि तथा गन्धर्वोंके साथ वशा जल पर भी अधिष्ठित होती है ॥ १३ ॥

सं हि वातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः ।
वशा समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती ॥ १४ ॥

सम् । हि । वातेन । अगत । सम् । ऊँ इति । सर्वैः । पतत्रिऽभिः ।
वशा । समुद्रे । प्र । अनृत्यत् । ऋचः । सामानि । बिभ्रती १४

यह वशा वायु और पर वाले प्राणियोंके साथ संगत होगई थी ऋचा और सामोंको धारण करती हुई वशा समुद्रमें नाचती है १४

सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा ।
वशा समुद्रमत्यख्यद् भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती ॥ १५ ॥

सम् । हि । सूर्येण । आगत । सम् । ऊं इति । सर्वेण । चक्षुषा ।
वशा । समुद्रम् । अति । अख्यत् । भद्रा । ज्योतींषि । बिभ्रती १५

सूर्य और सबके नेत्रसमूहसे संगत हुई ज्योतियोंको धारण करती हुई भद्रा वशाने समुद्रसे भी अधिक प्रसिद्धि पाई है ॥ १५ ॥

अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि ।
अश्वः समुद्रो भूत्वाध्यस्कन्दद् वशे त्वा ॥ १६ ॥

अभिऽवृता । हिरण्येन । यत् । अतिष्ठः । ऋतऽवरि ।
अश्वः । समुद्रः । भूत्वा । अधि । अस्कन्दत् । वशे । त्वा ।१६।

हे मधुमयि ! जो तू सुवर्णसे मढ़कर खड़ी हुई थी उस समय हे वशे ! शीघ्र चलने वाले समुद्र अधिस्कन्दित हुए थे ॥ १६ ॥

तद् भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथो स्वधा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥१७॥

तत् । भद्राः । सम् । अगच्छन्त । वशा । देष्ट्री । अथो इति ।
स्वधा ।
अथर्वा । यत्र । दीक्षितः । बर्हिषि । आस्त । हिरण्यये ॥ १७ ॥

जहाँ हित रमणीय कुशाओं पर दीक्षित अथर्वा बैठते हैं तहाँ वशा देष्ट्री और स्वधा कल्याणकारिणी होजाती हैं ॥ १७ ॥

वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव ।
वशायां यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥ १८ ॥

वशा । माता । राजन्यस्य । वशा । माता । स्वधे । तव ।
वशायाः । यज्ञे । आयुधम् । ततः । चित्तम् । अजायत ॥ १८ ॥

वशा क्षत्रियकी निर्मात्री है, और हे स्वधे ! वशा तेरी भी निर्मात्री है, यज्ञ ही वशाका आयुध है, तदनन्तर चित्त हुआ है १८

ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरद् ब्रह्मणः ककुदादधि ।
ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत ॥ १९ ॥

ऊर्ध्वः । बिन्दुः । उत् । अचरत् । ब्रह्मणः । ककुदात् । अधि ।
ततः । त्वम् । जज्ञिषे । वशे । ततः । होता । अजायत ॥ १९ ॥

ब्रह्मके ककुद्से एक बिन्दु ऊपरको उछला, हे वशे ! उससे तू उत्पन्न हुई फिर होता हुआ है ॥ १९ ॥

आस्नस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं वशे ।
पाजस्याज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव ॥ २० ॥

आस्नः । ते । गाथाः । अभवन् । उष्णिहाभ्यः । बलम् । वशे ।
पाजस्यात् । जज्ञे । यज्ञः । स्तनेभ्यः । रश्मयः । तव ॥ २० ॥

हे वशे ! तेरे मुखसे गाथाएँ प्रकट हुई हैं और उष्णिहा नाड़ियोंसे बल प्रकट हुआ है, बलप्रदभागसे यज्ञ प्रकट हुआ है और तेरे स्तनोंसे रश्मियें प्रकट हुई हैं ॥ २० ॥

ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव ।
आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ॥ २१ ॥

ईर्माभ्याम् । अयनम् । जातम् । सक्थिऽभ्याम् । च । वशे । तव ।
आन्त्रेभ्यः । जज्ञिरे । अत्राः । उदरात् । अधि । वीरुधः ॥२१॥

हे वशे ! तेरे व्रणोंसे और सक्थियोंसे अयन हुआ है आंत्रों से अत्र हुए हैं और उदरसे लताएँ हुई हैं ॥ २१ ॥

यदुदरं वरुणस्यानुप्राविशथा वशे ।
ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत् स हि नेत्रमवेत् तव ॥ २२ ॥

यत् । उदरम् । वरुणस्य । अनुऽप्राविशथाः । वशे ।
ततः । त्वा । ब्रह्मा । उत् । अह्वयत् । सः । हि । नेत्रम् । अवेत् ।
तव ॥ २२ ॥

हे वशे ! जो तू वरुणके उदरमें प्रवेश कर गई थी, तहाँसे ब्रह्मा ने तेरा उदाह्वान किया था वही तेरा नेत्रको जान सका था २२

सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्वः ।
ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभिः क्लृप्तः स ह्यस्या
बन्धुः ॥ २३ ॥

सर्वे । गर्भात् । अवेपन्त । जायमानात् । असूस्वः ।
ससूव । हि । ताम् । आहुः । वशा । इति । ब्रह्मऽभिः । क्लृप्तः ।
स । हि । अस्याः । बन्धुः ॥ २३ ॥

जितने प्राणसर्वस्व प्राणी हैं वे गर्भसे उत्पन्न होनेसे डरते हैं, यह वशा ही उनको उत्पन्न करती है ऐसा कहते हैं, मन्त्रोंसे समर्थ हुआ कृत्य ही इसका बन्धु है ॥ २३ ॥

युध एकः सं सृजति यो अस्या एक इद् वशी ।
तरांसि यज्ञा अभवन् तरसां चक्षुरभवद् वशा २४

युधः । एकः । सम् । सृजति । यः । अस्याः । एकः । इत् । वशी ।
तरांसि । यज्ञाः । अभवन् । तरसाम् । चक्षुः । अभवत् । वशा ॥

एक युध ही रचता है वही इसका मुख्य वशी है, तरस् यज्ञ हुए और तरस् (बल) वालोंका नेत्र वशा ही है ॥ २४ ॥

वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद् वशा सूर्यमधारयत् ।
वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह ॥ २५ ॥

वशा । यज्ञम् । प्रति । अगृह्णात् । वशा । सूर्यम् । अधारयत् ।
वशायाम् । अन्तः । अविशत् । ओदनः । ब्रह्मणा । सह ॥२५॥

वशा ही यज्ञका प्रतिग्रहण करती है और वशा ही सूर्यको रोके हुए है और ब्रह्माके साथ ओदन भी वशामें ही प्रविष्ट है ॥ २५ ॥

वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते ।
वशेदं सर्वमभवद् देवा मनुष्या३ असुराः पितर ऋषयः

वशाम् । एव । अमृतम् । आहुः । वशाम् । मृत्युम् । उप । आसते ।
वशा । इदम् । सर्वम् । अभवत् । देवाः । मनुष्याः । असुराः ।
पितरः । ऋषयः ॥ २६ ॥

ज्ञानी पुरुष वशाको ही अमृत कहते हैं, वशारूप मृत्युकी उपासना करते हैं, देवता मनुष्य असुर पितर और ऋषि यह सब वशामय ही था ॥ २६ ॥

य एवं विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ।
तथा हि यज्ञः सर्वपाद् दुहे दात्रेनपस्फुरन् ॥ २७ ॥

यः । एवम् । विद्यात् । सः । वशाम् । प्रति । गृह्णीयात् ।
तथा । हि । यज्ञः । सर्वऽपात् । दुहे । दात्रे । अनपऽस्फुरन् २७

जो इस प्रकार जानता हो वह वशका प्रतिग्रहण करता है, तब सकल पादोंसे पूर्ण हुआ यज्ञ दाताको कर्मफल देनेमें कुछ भी पीछेको न हटता हुआ पूर्णरूपसे फल देता है ॥ २७ ॥

तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि ।
तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥ २८ ॥

तिस्रः । जिह्वाः । वरुणस्य । अन्तः । दीद्यति । आसनि ।
तासाम् । या । मध्ये । राजति । सा । वशा । दुःऽप्रतिग्रहा २८

वरुणके मुखके भीतर तीन जिह्वायें दमकती रहती हैं, उनमें जो बीचमें शोभा देती है वह वशा दुष्प्रतिग्रहा है ॥ २८ ॥

चतुर्धा रेतो अभवद् वशायाः ।
आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् २९

चतुःऽधा । रेतः । अभवत् । वशायाः ।

३७ १०-९-३०

आपः । तुरीयम् । अमृतम् । तुरीयम् । यज्ञः । तुरीयम् । पशवः ।
तुरीयम् ॥ २९ ॥

वशाका वीर्य चार भागोंमें बँटा हुआ है उसका चौथाई भाग जल है, चौथाई भाग अमृत है, चौथा भाग यज्ञ है और चौथा भाग पशु हैं ॥ २९ ॥

वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः ।
वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥ ३० ॥

वशा । द्यौः । वशा । पृथिवी । वशा । विष्णुः । प्रजाऽपतिः ।
वशायाः । दुग्धम् । अपिबन् । साध्याः । वसवः । च । ये ३०

वशा ही द्यौ है, वशा ही पृथिवी है और वशा ही विष्णु प्रजापति हैं, जो साध्य और वसु हैं वे वशाके दुग्धको ही पीते हैं ३०

वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये ।
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥ ३१ ॥

वशायाः । दुग्धम् । पीत्वा । साध्याः । वसवः । च । ये ।
ते । वै । ब्रध्नस्य । विष्टपि । पयः । अस्याः । उप । आसते ३१

साध्य और वसु वशाके दुग्धको पीकर सब जगत्को अपनी महिमासे रचने वाले सूर्यमण्डलान्तर्वर्ती ईश्वरके आकाशमें विष्टब्ध सूर्यमण्डलमें इसके दुग्धकी उपासना करते हैं ॥ ३१ ॥

सोममेनामेके दुह्रे घृतमेक उपासते ।
य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ३२

सोमम् । एनाम् । एके । दुह्रे । घृतम् । एके । उप । आसते ।
ये । एवम् । विदुषे । वशाम् । ददुः । ते । गताः । त्रिऽदिवम् ।
दिवः ॥ ३२ ॥

एक इससे सोमको दुहते हैं और एक घृतको पाते हैं, जिन्होंने ऐसा जानने वालेको वशा प्रदान की थी वे द्युलोकके स्वर्गभागमें गए थे ॥ ३२ ॥

ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वांल्लोकान्त्समश्नुते ।
ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माथो तपः ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणेभ्यः । वशाम् । दत्त्वा । सर्वान् । लोकान् । सम् । अश्नुते ।
ऋतम् । हि । अस्याम् । आर्पितम् । अपि । ब्रह्म । अथो इति । तपः ॥

पुरुष ब्राह्मणोंके लिये वशाका दान करके सकल लोकोंका उपभोग करता है, इस वशामें सत्य ब्रह्म और तप भी अर्पित है ३३

वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत ।
वशेदं सर्वमभवद् यावत् सूर्यो विपश्यति ॥ ३४ ॥

वशाम् । देवाः । उप । जीवन्ति । वशाम् । मनुष्याः । उत ।
वशा । इदम् । सर्वम् । अभवत् । यावत् । सूर्यः । विऽपश्यति ३४

पञ्चमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

पञ्चमोनुवाकः ॥

इति दशमं काण्डं समाप्तम् ॥

देवता वशाके द्वारा दूसरोंको जीविका देने वाले हैं, और मनुष्य वशाके द्वारा दूसरोंको जीविका देसकते हैं, यह सब जगत् कि-जहाँ तक सूर्यकी दृष्टि पहुँचती है वशा ही है ॥३४॥ (३५)

पञ्चम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (४७८) ॥

पञ्चम अनुवाक समाप्त

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका दशमकाण्ड ऋ० कु०
प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका
सम्पादक ऋ० कु० प० रामचन्द्र
शर्मा कृत सायणभाष्यानुकूल
भाषानुवाद सहित
समाप्त.

॥ दशम काण्ड समाप्त ॥

✿ श्रीहरिः ✿

अथर्ववेदसंहिता

एकादशं-काण्डम्

सायणभाष्य तथा अनुवादसहित

यस्य निश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योखिलं जगत्।
निर्ममे तम् अहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम्॥ १॥

श्रीः॥ वेद जिनके निःश्वासरूप हैं और जिन्होंने वेदोंके अनुसार सकल जगत्‌की रचना की है, उन विद्यातीर्थ महेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १॥

एकादशकाण्डे पञ्चानुवाकः। प्रथमेनुवाके सप्त सूक्तानि। तत्र "अग्ने जायस्व" इत्यादिसूक्तचतुष्टयम् अर्थसूक्तम्। तेन ब्रह्मौदनसवे निरुप्तहविरभिमर्शनसंपातदातृवाचनदानानि कुर्यात्। तत्र "अग्ने जायस्व" [१] इति प्रथमया ब्रह्मौदनादिसवयज्ञेषु मथ्यमानम् अग्निम् अनुमन्त्रयेत। "कृणुत धूमम्" [२] इति द्वितीयया मथनसमये उत्पद्यमानधूमानुमन्त्रणं कुर्यात्। "अग्नेजनिष्ठाः" [३] इति तृतीयस्यास्त्रिभिः पादैर्मथ्यमानं जाताग्निम् अनुमन्त्रयेत। "अस्यै रयिम्" इति चतुर्थेन पादेन पत्न्यै फलं काङ्क्षन् अग्निम् अनुमन्त्रयेत। "समिद्धः" [४] इति चतुर्थ्या काष्ठैः प्रज्वाल्यमानम् अग्निं अनुमन्त्रयेत। "उत्तमं नाकम्" इति चतुर्थं पादं दातारं वाचयेत्। यद् आह कौशिकः। "अग्नीन् आधास्यमानः सवान् वा दास्यन् संवत्सरं ब्राह्मौदनिकम् अग्निं दीपयति" इत्युपक्रम्य

"अग्ने जायस्वेति मथ्यमानम् अनुमन्त्रयते। पत्नी मन्त्रं संनमयति यजमानश्च। कृणुत धूमम् इति धूमम् अग्नेजनिष्ठा इति जातं समिद्धो अग्निरिति समिध्यमानम्" इति [कौ० ८. १]॥

ब्रह्मौदनसवयज्ञ एव देवपितृमनुष्यार्थं व्रीहिराशीन् त्रेधा विभक्तान् "त्रेधा भागः" [५] इति ऋचस्त्रिभिः पादैः कर्ता अनुमन्त्रयेत। "यो देवानाम्" इति चतुर्थपादेन पत्नीम् अनुमन्त्रयेत। "अग्ने सहस्वान्" [६] इति ऋचा दातारम् अनुमन्त्र्य देवभागं कुम्भ्यां निर्वपेत्। सूत्रितं हि। आदिष्टान् अंशान् अजानत्यै प्रयच्छति। तांस्त्रेधा भाग इति व्रीहिराशिषु निदधाति। तेषां यः पितॄणां तं श्राद्धं करोति। यो मनुष्याणां तं ब्राह्मणान् भोजयति। यो देवानां तम् अग्ने सहस्वान् इति दक्षिणं जान्वाच्यापराजिताभिमुखः प्रह्वो वा मुष्टिभिः प्रसृताञ्जलिभिः कुम्भ्यां निर्वपति" इति [कौ० ८. २]॥

तत्रैव कर्मणि "साकं सजातैः" [७] इति ऋचा निरुप्तान् व्रीहीन् उलूखले आवपेत्। सूत्रितं हि। "साकं सजातैरिति व्रीहीन् उलूखल आवपति" इति [कौ० ८. २]॥ अत्र "साकम्" इत्यर्धर्चेन उलूखले व्रीहीन् आवपेत्। "ऊर्ध्वो नाकस्य" इत्यर्धर्चेन पच्यमानस्य ओदनस्योपरि गर्तं कुर्याद् इति भाष्यकारः॥

तत्रैव कर्मणि ब्राह्मौदनिकस्याग्नेः पश्चाद्भागे औक्षं वा आनडुहं वा चर्म प्रस्तृणन्तं यजमानम् "इयं मही" [८] इति ऋचा वाचयेत्। "इयं महीति चर्मास्तृणाति प्राग्ग्रीवम् उत्तरलोम" इति [कौ० ८, १] सूत्रात्॥

"एतौ ग्रावाणौ" [९] इति ऋचः प्रथमपादेन उलूखलमुसलं चर्मणि स्थापयेत्। "निर्भिन्ध्यंशून्" इति पादत्रयेण व्रीहीन् अवहन्यात्। "गृहाण ग्रावाणौ" इत्यर्धर्चेन उलूखलमुसलम् अवहननार्थं पत्नीं ग्राहयेत्। "त्रयो वराः" इत्यर्धर्चेन निर्वापानन्तरं वरं

[वृणान्तावनुमन्त्रयते । सूत्रितं हि । "एतौ] ग्रावाणौ [९] अयं ग्रावा [१२. ३. १४] इत्युलूखलमुसलं शूर्पं प्रक्षालितं चर्मण्याधाय गृहाण ग्रावाणौ [१०] इत्युभयं गृह्णाति" इति [कौ० ८. २] "निर्भिन्ध्यंशून् ग्राहिं पाप्मानम् इत्यवहन्ति" इति [कौ० ८. २] "त्रयो वरा इति त्रीन् वरान् वृणीष्व" इति च [कौ० ८. २] ॥

ग्यारहवें काण्डमें पाँच अनुवाक हैं । प्रथम अनुवाकमें सात सूक्त हैं । इनमें 'अग्ने जायस्व 'इत्यादि चार सूक्त अर्थसूक्त नाम से कहे जाते हैं । इस अर्थसूक्तसे ब्रह्मौदनसत्रमें होमनेसे पहिले हविका अभिमर्शन सम्पात दातृवाचन और दान करे । यहाँ पर 'अग्ने जायस्व' इस पहिली ऋचासे ब्रह्मौदन आदि सत्रयज्ञोंमें मथी जाती हुई अग्निका अनुमन्त्रण करे । 'कृणुत धूमम्' इस दूसरी ऋचासे मथनके समय निकलते हुए धूमका अनुमन्त्रण करे । 'अग्ने जनिष्ठाः' इस तीसरी ऋचाके तीन पादोंसे मथन करने पर उत्पन्न हुई अग्निका अनुमन्त्रण करे । 'अस्यै रयिम्' इस चतुर्थपादसे पत्नीके लिये फलको चाहता हुआ अग्निका अनुमन्त्रण करे । 'समिद्धः' इस चौथी ऋचासे काष्ठोंसे प्रज्वलित की जाती हुई अग्निका अनुमन्त्रण करे । 'उत्तमं नाकम्' इस चौथे पादको दातासे बँचवावे । इसी बातको कौशिकमुनिने 'अग्नीन् आधास्यमानः सत्रान् वा दास्यन् सम्वत्सरं ब्राह्मौदनिकम् अग्निं दीपयति' को कह कर कहा है, कि—'अग्ने जायस्वेति मथ्यमानं अनुमन्त्रयते । पत्नी मन्त्रं संनमयति यजमानश्च । कृणुत धूमं इति धूमं अग्ने जनिष्ठा इति जातं समिद्धो अग्निरिति समिद्ध्यमानम् ।' (कौशिकसूत्र ८ । १) ॥

कर्ता ब्रह्मौदनसत्रयज्ञमें देवता मनुष्य और पितरोंके लिये तीन भागमें बाँटी हुई धानकी ढेरियोंका 'त्रेधा भागः' इस पञ्चम ऋचाके तीन पादोंसे अनुमन्त्रण करे । 'अग्ने सहस्वान्' इस

छटी ऋचासे दाताका अनुमन्त्रण करके देवभागको कुम्भीमें डाल देय। सूत्रमें भी कहा है, कि-'आदिष्टान् अंशान् अजानस्यै प्रयच्छति। तांस्त्रेधा भाग इति व्रीहिराशिषु निदधाति। तेषां यः पितॄणां तं श्राद्धं करोति। यो मनुष्याणां तं ब्राह्मणान् भोजयति। यो देवानां तां अग्ने सहस्वान् इति दक्षिणं जान्वाच्यापराजिता-मुखः प्रह्वो वा मुष्टिभिः प्रसृताञ्जलिभिः कुम्भ्यां निर्वपति ॥ ०उनको तीन भागोंमें बाँटे उनमेंसे पितरोंका भाग हो उससे श्राद्ध करे, जो मनुष्योंका भाग हो उससे ब्राह्मणोंको जिमावे, जो देवताओंका भाग हो उसको देवकुम्भीमें डाले" (कौशिकसूत्र८।२)

तहाँ ही कर्ममें "साकं सजातैः" इस सातवीं ऋचासे होमनेसे पहिले धानोंको ओखलीमें डाले। इसी बातको कौशिकसूत्र ८।२ में कहा है, कि-"साकं सजातैरिति व्रीहीन् उलूखल आवपति"॥ यहाँ पर "साकम्" इस आधी ऋचासे ओखलीमें धानोंको डाले और "ऊर्ध्वो नाकस्य" इस आधी ऋचासे पकते हुए भातके ऊपर गड्ढा करे। यह भाष्यकारका मत है।

तहाँ ही कर्ममें ब्राह्मौदनिक अग्निके पश्चाद्भागमें औक्ष वा आनडुह चर्मका प्रस्तृणन करते हुए यजमानसे "इयं मही" इस आठवीं ऋचाको बँचवावे। इसी बातको कौशिकसूत्र ८। १ में कहा है, कि-"इयं महीति चर्मास्तृणाति प्राग्ग्रीवं उत्तरलोम"॥

"एतौ ग्रावाणौ" इस नवम ऋचाके प्रथम पादसे उलूखल और मूसलको चर्म पर स्थापित करे "निर्भिंध्यंशून्" इन तीन पादोंसे धानोंको कूटे। "गृहाण ग्रावाणौ" इस आधी ऋचासे उलूखलमूसलको कूटनेके लिये पत्नीको पकड़ावे। "त्रयो वराः" इस आधी ऋचासे निर्वापनके अनन्तर वरका वरण करने वालों का अनुमन्त्रण करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"एतौ ग्रावाणौ (९) अयं ग्रावा (१२ । ३ । १४) इत्युलूखल-

मुसलं शूर्पं प्रक्षालितं चर्मण्याधाय गृहाण ग्रावाणौ (१०) इत्युभयं गृह्णाति” इति (कौशिकसूत्र ८ । २) “निर्भिन्ध्यंशून् ग्राहिं पाप्मानं इत्यवहन्ति” (कौशिकसूत्र ८ । २) “त्रयो वरा इति त्रीन् वरान् वृणीष्व” (कौशिकसूत्र ८ । २) ॥

तत्र प्रथमा ॥

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह १

अग्ने । जायस्व । अदितिः । नाथिता । इयम् । ब्रह्मऽओदनम् ।
पचति । पुत्रऽकामा ॥

सप्तऽऋषयः । भूतऽकृतः । ते । त्वा । मन्थन्तु । प्रऽजया । सह ।
इह ॥ १ ॥

हे अग्ने जायस्व मथनाद् उत्पद्यस्व । ❀ जनी प्रादुर्भावे । दिवादित्वात् श्यन् । “ज्ञाजनोर्जा” इति जादेशः ❀ । किमर्थं जननप्रार्थनम् इति आह । नाथिता नाथमाना याचमाना । ❀ नाथृ याच्ञायाम् । अस्मात् कर्तरि निष्ठा ❀ । इष्टफलम् आशंसमाना इयम् अदितिः अदीना देवमाता पुत्रकामा पुत्रान् कामयमाना । ❀ “शीलिकामिभक्ष्याचरिभ्यो णः” इति कमेर्णप्रत्ययः ❀ । ब्रह्मौदनम् । ब्रह्मणे जगत्स्रष्ट्रे स्वाहाकारेण देय ओदनो ब्रह्मौदनः । यद्वा ब्रह्मौदनसवाख्ये अस्मिन् कर्मणि ब्राह्मणानां भोजनाय भागत्वेन कल्पित ओदनो ब्रह्मौदनः । तं पचति निर्वापादिक्रमेण पक्वं करोति । तदर्थम् हे अग्ने जायस्वेत्यर्थः । ब्रह्मौदनपाकेन अदितेः पुत्रोत्पत्तिस्तैत्तिरीयके समाम्नायते । “अदितिः पुत्रकामा साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनम् अपचत् । तस्या उच्छेषणम् अददुः । तत्

प्राश्नात् । सा रेतोधत्त । तस्यै चत्वार आदित्या अजायन्त” इति [तै० सं० ६. ५. ६. १]। अदितिकर्तृकस्य ब्रह्मौदनपाकस्य पूर्वम् अतिवृत्तत्वेन इदानीम् अभावात् अदितिशब्दस्य स्थाने पत्नी-यजमानयोर्नामग्रहणं कर्तव्यम् । यद्द आह कौशिकः । “पत्नी मन्त्रं संनमयति यजमानश्च” इति [कौ० ८. २]। सप्तऋषयः सप्त-संख्याका ऋषयः अतीन्द्रियार्थस्य द्रष्टारो मरीच्यत्त्रिप्रमुखाः । ❀ “दिक्संख्ये संज्ञायाम्” इति संख्याशब्दस्य समानाधिकरणेन उत्तरपदेन समासः ❀ । भूतकृतः भूतानां पृथिव्यादीनां कर्तारः स्रष्टारस्ते प्रसिद्धाः हे अग्ने त्वा त्वाम् इह अस्मिन् देवयजने प्रजया पुत्रपौत्रादिरूपया यजमानसंबन्धिन्या सह मन्थन्तु मथनेन उत्पादयन्तु । ❀ मन्थ विलोडने इति धातुः ❀ ॥

हे अग्ने ! आप मथनसे उत्पन्न हूजिये, क्योंकि-इष्टफलको चाहती हुई यह अदीना † देवमाता अदिति पुत्रको चाहती हुई ‡

---

† अदितिने पहिले इस ब्रह्मौदनपाकको किया था, परन्तु इस समय अदिति उपस्थित नहीं होगी अत एव अदिति शब्दके स्थान में पत्नी और यजमानका नाम ग्रहण करना चाहिये । इसी बातको कौशिकसूत्र ८ । २ में कहा है, कि-‘पत्नी मन्त्रं संनमयति यजमानश्च’ ॥

‡ ब्रह्मौदनके पाकसे अदितिके पुत्रोंका उत्पन्न होना तैत्तिरीयकमें वर्णित है, कि-‘अदितिः पुत्रकामा साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनमपचत् । तस्या उच्छेषणं अददुः । तत् प्राश्नात् सा रेतोऽधत्त । तस्यै चत्वार आदित्या अजायन्त ॥-अदितिने पुत्रकी इच्छा करके साध्य देवताओंके लिये ब्रह्मौदनको तयार किया उन्होंने उसका उच्छेषण उसको दिया उसका अदितिने प्राशन किया और वीर्य धारण करने पर उसके चार आदित्य उत्पन्न हुए’ (तैत्तिरीयसंहिता ६ । ५ । ६ । १) ॥

ब्रह्मौदनको × पकाना चाहती है अतः आप मथनसे प्रकट हूजिये। अतीन्द्रिय अर्थोंके द्रष्टा मरीचि आदि सात ऋषि पृथिवी आदि भूतोंको रचने वाले हैं, वे तुझको इस देवयजनमें यजमानकी पुत्र पौत्र आदि प्रजाके साथ मथनसे उत्पन्न करें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

कृणुत धूमं वृषणः सखायोद्रोघाविता वाचमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून्

कृणुत । धूमम् । वृषणः । सखायः । अद्रोघऽअविता । वाचम् । अच्छ ।
अयम् । अग्निः । पृतनाषाट् । सुऽवीरः । येन । देवाः । असहन्त । दस्यून् ॥ २ ॥

हे वृषणः वृषाणः कामानां वर्षितारः। ❀ "वा षपूर्वस्य निगमे" इति दीर्घाभावः ❀ । सखायः समानख्यानाः सर्वजगन्मित्रभूताः सप्तऋषयः ऋत्विजो वा यूयं धूमं कृणुत मथनेन उत्पादयत । ❀ कृवि हिंसाकरणयोश्च । "धिन्विकृण्व्योर च" इति उप्रत्ययः। "सतिशिष्टस्वरबलीयस्त्वम् अन्यत्र विकरणेभ्यः" इति वचनात् तिङ एव उदात्तत्वम् । पादादित्वात् निघाताभावः ❀ ॥ अद्रोघाविता अद्रोहकारिणां सुचरित्राणां यजमानानाम् अविता रक्षिता वाचम् अच्छ मथ्यमानाग्नेः स्तुत्यर्थम् अनूच्यमानाम् ऋग्रपां

× जगत्स्रष्टा ब्रह्माके लिये स्वाहा कहकर दिया जाने वाला ओदन ब्रह्मौदन कहलाता है। वा ब्रह्मौदनसत्र नामक कर्ममें ब्राह्मणोंके भोजनके भागरूपसे कल्पित ओदन भी ब्रह्मौदन कहला सकता है ॥

वाचम् अभिलक्ष्य अयं जायमानोग्निः पृतनाषाट् पृतनाः शात्रवीः सेनाः सहते अभिभवतीति पृतनाषाट् । ❀ षह अभिभवे । "छन्दसि सहः" इति ण्विप्रत्ययः । "सहेः साडः सः" इति षत्वम् ❀ । "अग्ने हंसि न्यत्त्रिणम्" इति निगमः [ऋ० सं० १०. ११८. १]। सुवीरः वीरा विक्रान्ता देवाः शोभनैस्तैरुपेतः। यद्वा वीर्याज्जायन्त इति वीराः पुत्रा यजमानसंबन्धिनः। शोभनैस्तैर्युक्तः । जायत इत्यर्थः। ❀ "वीरवीर्यौ च" इति उत्तरपदाद्युदात्तत्वम् ❀ । शोभनवीर्योपेतत्वम् अग्नेः समर्थयते । येन अग्निना देवा इन्द्रादयो दस्यून् उपक्षपयितॄन् असुरान् असहन्त अभ्यभवन् । सोयम् अग्निरिति संबन्धः ॥

हे कामनाओंकी वर्षा करने वाले सकल जगत्के मित्ररूप सप्तर्षियों वा ऋत्विजों ! तुम मथनके द्वारा धूमको उत्पन्न करो, क्योंकि-द्रोह न करने वाले सच्चरित्र यजमानोंके रक्षक यह अग्निदेव स्तुतिमय ऋचारूप वाणीको लक्ष्यमें रख कर शत्रुओंकी सेनाको दबाते हैं, यह सुभट देवताओंसे सम्पन्न रहते हैं, इनके द्वारा देवताओंने अपना उपक्षय करने वाले असुरोंको दबाया था २

तृतीया ॥

अग्नेजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्नस्यै रयिं सर्ववीरं
नि यच्छ ॥ ३ ॥

अग्ने । अजनिष्ठा । महते । वीर्याय । ब्रह्मऽओदनाय । पक्तवे ।
जातऽवेदः ।
सप्तऽऋषयः । भूतऽकृतः । ते त्वा । अजीजनन् । अस्यै । रयिम् ।
सर्वऽवीरम् । नि । यच्छ ॥ ३ ॥

हे अग्ने अजनिष्ठाः मथनेन उत्पन्नो भवसि । ✿ जनी प्रादुर्भावे । लुङि रूपम् ✿ । महते प्रभूताय वीर्याय सामर्थ्याय । लोके दाहपाकक्षमस्याग्नेः सद्भावेपि मन्त्रसामर्थ्येन मयि तस्माद् अग्नेरेव वीर्याधिक्यं जायत इत्यर्थः । यस्माद् एवम् अग्नेर्वीर्यं महत् तस्माद् विशिनष्टि । हे जातवेदः जातानाम् उत्पन्नानां प्राणिनां वेदितरग्ने ब्रह्मौदनाय पक्तवे । ✿ पचेस्तुमर्थे तवेन् प्रत्ययः ✿ । पक्तुं भूतकृतः भूतानां पृथिव्यादीनां कर्तारः स्रष्टारस्ते प्रसिद्धाः सप्तऋषयः त्वा त्वाम् अजीजनन् मन्त्रसामर्थ्येन निरतिशयवीर्यम् उदपीपदन् । ✿ जनण्यन्तात् लुङि चङि रूपम् ✿ । अस्यै पत्न्यै सर्ववीरम् सर्वैर्वीरैः पुत्रपौत्रादिरूपैर्युक्तं रयिम् धनं नि यच्छ नियमय । यथा एनां रयिः प्राप्नोति तथा कुर्वित्यर्थः । ✿ यम उपरमे । "इषुगमियमां छः" इति छत्वम् ✿ । अथ वा नितरां प्रयच्छ । ✿ दाण् दाने । "पाघ्रा०" इत्यादिना यच्छादेशः ✿ ॥

हे अग्ने ! आप मथनसे उत्पन्न होते हैं, लोकमें दाह पाकमें समर्थ भी अग्नि मन्त्रशक्तिसे मुझको महावीर्य प्रदान करनेके लिये प्रकट होते हैं, हे उत्पन्न होने वाले प्राणियोंको जाननेवाले अग्ने ! ब्रह्मौदनको पकानेके लिये पृथिवी आदि भूतोंके कर्ता सप्तर्षियोंने आपको प्रकट कर लिया है अतः आप इस पत्नीको पुत्र पौत्र आदि सब वीरों वाला धन दीजिये ॥ ३ ॥

चतुर्थी

समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान् देवान्
यज्ञियाँ एह वक्षः ।
तेभ्यो हविः श्रपयं जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयमम् ४

सम्ऽइद्धः । अग्ने । सम्ऽइधा । सम् । इध्यस्व । विद्वान् । देवान् ।
यज्ञियान् । आ । इह । वक्षः ।
तेभ्यः । हविः । श्रपयन् । जातऽवेदः । उत्ऽतमम् । नाकम् ।
अधि । रोहय । इमम् ॥ ४ ॥

हे अग्ने समिद्धः संदीप्तस्त्वं समिधा मन्त्रेण आधीयमानया पलाशादिवृक्षसंभूतया संमिद्धः पुनरलौकिकप्रभावेन संदीपितः स तादृशस्त्वं विद्वान् जानन् यज्ञियान् यज्ञार्हान् देवान् । ❀ "यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ" इति घप्रत्ययः ❀ । इह अस्मिन् देवयजने वा आ वक्षः आवह । ❀ वहेर्लेटि अडागमः । "सिब्बहुलं लेटि" इति सिप् । ढत्वकत्वषत्वानि ❀ । हे जातवेदः जातानां वेदितरग्ने तेभ्यो देवेभ्यः हविः श्रपयन् ब्रह्मौदनलक्षणम् अन्नं पचन् । ❀ श्रा पाके इत्यस्मात् ण्यन्तात् लटः शत्रादेशः । आकारान्तलक्षणे पुकि कृते घटादिपाठात् "मितां ह्रस्वः" इति उपधाह्रस्वत्वम् ❀ । इमं यजमानम् उत्तमम् अतिशयेन उत्कृष्टं नाकम् दुःखसंस्पर्शरहितं स्वर्गं लोकम् अधि रोहय । देहावसानानन्तरं प्रापयेत्यर्थः । ❀ उत्तमम् इति । "उत्तमशश्वत्तमौ सर्वत्र" इति उञ्छादिषु पाठात् अन्तोदात्तत्वम् । नाकम् इति । नास्मिन् अकम् अस्तीति नाकः । "नभ्राण्नपात्०" इत्यादिना नञः प्रकृतिभावः ❀ ॥

हे अग्ने ! पलाश आदिकी समिधाओंसे प्रदीप्त हुए आप फिर अलौकिक प्रभावसे दीप्त होकर इस यज्ञमें यज्ञके योग्य देवताओंको लाइये और हे जातवेदः ! आप उन देवताओंके लिये हवि पकाइये और देहपातके अनन्तर भी इस यजमानको स्वर्गमें चढ़ाइये ३

पञ्चमी ॥

त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितॄणां
मर्त्यानाम् ।

अंशान् जानीध्वं वि भजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति ॥ ५ ॥

त्रेधा । भागः । निऽहितः । यः । पुरा । वः । देवानाम् । पितॄणाम् । मर्त्यानाम् ।

अंशान् । जानीध्वम् । वि । भजामि । तान् । वः । यः । देवानाम् । सः । इमाम् । पारयाति ॥ ५ ॥

वः युष्माकं देवानाम् अग्न्यादीनां पितॄणाम् पितृपितामहप्रपितामहानां मर्त्यानाम् मनुष्याणां भोजयितव्यानां ब्राह्मणानां यो भागस्त्रेधा त्रिविधः पुरा निहितः व्रीह्यवस्थायां विभज्य स्थापितः। ❀ "एधाच्च" इति त्रिशब्दाद् विधार्थे एधाच् प्रत्ययः ❀। हे देवाद्याः अंशान् भागान् जानीध्वम् अवगच्छत। ❀ ज्ञा अवबोधने। क्र्यादित्वात् श्ना प्रत्ययः। "ज्ञाजनोर्जा" इति जादेशः❀। वः युष्मभ्यं तान् भागान् अहं वि भजामि पृथक्करोमि। तत्र देवार्थेन भागेन निर्वापादिकं कर्तव्यम् पित्रर्थेन वृद्धिश्राद्धम् मनुष्यार्थेन ब्राह्मणभोजनम् इति विभागस्य उपयोगः। तत्र देवानां यो भागः सः अग्नौ हवीरूपेण हूयमानः सन् इमां पत्नीं पारयाति इष्टफलस्य पारं गमयति। ❀ पार तीर कर्मसमाप्ताविति धातुः❀॥

तुम अग्नि आदि देवताओंका, पिता पितामह और प्रपितामह—पितरोंका और जिमानेके ब्राह्मणात्मक मनुष्योंका जो भाग व्रीहि आदिकी अवस्थामें पहिले तीन भाग करके रक्खा गया था, हे हे देवता आदिको! तुम अपने २ अंशको जान लो, तुम्हारे उन्हीं भागोंको मैं पृथक् २ करता हूँ, इनमें जो देवताओंका भाग है वह अग्निमें हविरूपसे आहुत होकर इस यजमानपत्नीको इष्टफलकी प्राप्ति करावे ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

अ॒ग्ने सह॑स्वानभि॒भूर॒भीदसि॒ नीचो॒ न्यु॑ब्ज द्वि॒षतः॒
स॒पत्ना॑न् ।
इ॒यं मात्रा॑ मी॒यमा॑ना मि॒ता च॑ सजा॒तांस्ते॑ बलि॒हृतः॑
कृणोतु ॥ ६ ॥

अग्ने॑ । सह॑स्वान् । अ॒भि॒ऽभूः । अ॒भि । इति । अ॒सि॒ । नीचः॑ ।
नि । उ॒ब्ज॒ । द्वि॒ष॒तः । । स॒ऽपत्ना॑न् ।
इ॒यम् । मात्रा॑ । मी॒यमा॑ना । मि॒ता । च॒ । स॒ऽजा॒तान् । ते॒ । ब॒लि॒ऽहृतः॑ । कृ॒णो॒तु ॥ ६ ॥

हे अग्ने सहस्वान् सहः पराभिभवनक्षमं बलं तद्वान् । ❀ "तसौ मत्वर्थे" इति भत्वात् पदत्वाभावाद् रुत्वाभावः ❀ । अत एव अभिभूः अभिभविता शत्रूणाम् अभ्यसि । इत् अवधारणे । अभिभवस्येव । सर्वोत्कृष्टो वर्तस इत्यर्थः । तस्माद्धेतोः द्विषतः द्वेष्टॄन् अप्रियकारिणः सपत्नान् अस्मदीयान् शत्रून् नीचः न्यञ्चनान् नीचीनगमनान् क्षयिष्णून् न्युब्ज अधोमुखान् पातय । ❀ निपूर्वाद् अञ्चतेः "ऋत्विग्०" इत्यादिना क्विन् । "अनिदिताम्०" इति नलोपः । शसि भसंज्ञायाम् "अचः" इत्यकारलोपे "चौ" इति दीर्घत्वम् । न्युब्जेति । उब्ज आर्जवे । अत्र उपसर्गवशाद् अधोमुखीकरणम् अर्थः । यथा "दशाभिः कलशौ मृष्ट्वा न्युब्जति" इति [आप० १२. २६. ६] ❀ । मात्रा निर्मात्रा मीयमाना क्रियमाणा मिता निर्मिता च इयं शाला हे यजमान ते तुभ्यं सजातान् समानजन्मनः पुरुषान् बलिहृतः । बलिः उपायनद्रव्यम् । तस्य हर्तॄन् कृणोतु करोतु ॥

हे शत्रुओंको दवानेके बलसे सम्पन्न अग्ने ! आप शत्रुओंको दबा ही देते हैं अतः हमारे शत्रुओंको अधः पतित करिये, और हे यजमान ! यह निर्माताकी बनाई और नापी हुई शाला तेरी समान द्रव्यकी भेंट लेने वाले पुत्र आदि बलिभृतोंको करे ॥६॥

सप्तमी ॥

साकं संजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं
वदन्ति ॥ ८ ॥

साकम् । सऽजातैः । पयसा । सह । एधि । उत् । उब्ज । एनाम् ।
महते । वीर्याय ।
ऊर्ध्वः । नाकस्य । अधि । रोह । विष्टपम् । स्वःऽगः । लोकः ।
इति । यम् । वदन्ति ॥ ७ ॥

हे यजमान सजातैः समानजन्मभिः पुरुषैः साकम् सार्धं पयसा पयोवत्सारभूतेन कर्मफलेन सह एधि भव । ❀ अस्तेर्लोटि "सेर्ह्यपिच्च" इति हिरादेशः । "घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च" इति एत्वम् । तस्य "असिद्धवद् अत्रा भात्" इति असिद्धत्वात् "हुझल्भ्यो हेर्धिः । इति धित्वं भवति ❀ । एनां पत्नीं महते अधिकाय वीर्याय यथा एषा महद् वीर्यं प्राप्नोति तथा उद् उब्ज उद्गमय उन्नतशिरस्कां कुरु । हे यजमान त्वं देहावसाने ऊर्ध्वः ऊर्ध्वदिगभिमुखः सन् नाकस्य दुःखसंस्पर्शरहितस्य लोकस्य विष्टपम् उपरिप्रदेशम् अधि रोह अधिरूढो भव । यं स्थानविशेषं स्वर्गो लोकः लोकनीयः सुकृतफलोपभोगप्रदेश इति वदन्ति अभिज्ञाः कथयन्ति ॥

हे यजमान ! तू समान जन्म वाले पुरुषोंके साथ पयकी समान सार भूत कर्मफलके साथ वृद्धिको प्राप्त हो और इस पत्नीको अधिक वीर्य पानेके लिये उन्नत शिर वाली कर और देहपात होने पर दुःखके स्पर्शसे शून्य ऊपरके प्रदेशमें स्थित लोकमें चढ़, कि जिसको पुरुष स्वर्ग कहते हैं ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

इ॒यं म॒ही प्रति॑ गृह्णातु॒ चर्म॑ पृथि॒वी दे॒वी सु॑मन॒स्यमा॑ना ।
अथ॑ गच्छेम सुकृ॒तस्य॑ लो॒कम् ॥ ८ ॥

इ॒यम् । म॒ही । प्रति॑ । गृ॒ह्णा॒तु॒ । चर्म॑ । पृ॒थि॒वी । दे॒वी । सु॒ऽम॒न॒स्यमा॑ना ।
अथ॑ । ग॒च्छे॒म॒ । सु॒ऽकृ॒तस्य॑ । लो॒कम् ॥ ८ ॥

इयं पुरोवर्तिनी मही देवयजनभूमिः चर्म आनडुहं निर्वापार्थम् आस्तीर्यमाणम् अजिनं प्रति गृह्णातु स्वीकरोतु । आस्तीर्णाजिना सा पृथिवी देवी देवतारूपा सुमनस्यमाना शोभनं मनः कुर्वती अनुग्रहबुद्धियुक्ता भवतु । अवहननाधिकरणत्वेन प्राप्तखेदा न भवत्वित्यर्थः । अथ अवहननाधारभूतायाः पृथिव्या अनुग्रहानन्तरं सुकृतस्य यागादिजन्यस्य पुण्यस्य फलभूतं लोकं वयं गच्छेम प्राप्नुयाम ॥

यह सामने वर्तमान देवयजन भूमि निर्वापके लिये फैलाये हुए आनडुह चर्मको स्वीकृत करे । और अजिनके फैलने पर यह पृथिवीदेवी हमारे ऊपर अनुग्रह करनेका विचार करे अर्थात् अवहनन आदिके द्वारा खेदको प्राप्त न होवे और अवहननकी आधारभूत पृथिवीके अनुग्रहके अनन्तर हम याग आदिसे होने वाले पुण्यके फलभूत लोकको प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

नवमी ॥

ए॒तौ ग्रावा॑णौ स॒युजा॑ यु॒ङ्ग्धि॒ चर्म॑णि॒ निर्भि॑न्ध्य॒ंशून्
यज॑मानाय सा॒धु ।
अ॒व॒घ्न॒ती नि ज॑हि॒ य इ॒मां पृ॑त॒न्यव॑ ऊ॒र्ध्वं प्र॒जामु॒द्भर॑न्त्युदू॑ह ॥ ९ ॥

ए॒तौ । ग्रावा॑णौ । स॒ऽयुजा॑ । यु॒ङ्ग्धि॒ । चर्म॑णि । निः । भि॒न्धि॒ । अं॒शून् । यज॑मानाय । सा॒धु ।
अ॒व॒ऽघ्नती । नि । ज॒हि॒ । ये । इ॒माम् । पृ॒त॒न्यवः॑ । ऊ॒र्ध्वम् । प्र॒ऽजाम् । उ॒त्ऽभर॑न्ती । उत् । ऊ॒ह॒ ॥ ९ ॥

हे ऋत्विक् एतौ पुरोवर्तिनौ ग्रावाणौ अश्मवद् दृढतरौ उलूखलमुसलौ सयुजा सयुजौ एकस्मिन् अवहननकर्मणि सह युञ्जानौ व्याप्रियमाणौ मित्रभूतौ वा चर्मणि अवहननार्थम् आस्तीर्णे आनडुहेऽजिने युङ्ग्धि योजय स्थापय । ❀ युजिर् योगे । लेटि "सेर्ह्यपिच्च" इति हिरादेशः । तस्य ङित्त्वात् "श्नसोरल्लोपः" इति अकारलोपे "हुझल्भ्यो हेर्धिः" इति हेर्धिरादेशः ❀ । अंशून् । उलूखलमुसलयोर्ग्रावत्वेन रूपणाद् व्रीहयः सोमांशुत्वेन रूप्यन्ते । सोमलताखण्डवद् यागनिर्वर्तकान् व्रीहीन् यजमानाय यजमानार्थं साधु शोभनं निर्भिन्धि युक्ताभ्याम् उलूखलमुसलाभ्याम् अवजहि वितुषीकुरु । ❀ भिदिर् विदारणे । पूर्ववल्लोण्मध्यमैकवचने रूपम् ❀ । हे पत्नि अवघ्नती अवहननं कुर्वती नि जहि निबाधस्व । के पुनस्ते निहन्तव्या इत्याह य इति । इमाम् आत्मीयां प्रजां हन्तुं ये शत्रवः पृतन्यवः पृतनां सेनाम् आत्मन इच्छन्तः

वर्तन्ते तान् नि जहीत्यर्थः । ❀ पृतनाशब्दात् "सुप आत्मनः क्यच्" । "क्याच्छन्दसि" इति उप्रत्ययः । "कव्यध्वरपृतनस्यर्चिलोपः" इति आकारलोपः ❀ । अपि च अवहननानन्तरम् उद्धरन्ती मुसलम् ऊर्ध्वं हरन्ती । ❀ "हृग्रहोर्भः०" इति भत्वम् ❀ । प्रजाम् अस्मदीयाम् ऊर्ध्वम् उद् ऊह 'उन्नतं स्थानम् उद्गमय । श्रैष्ठ्यं गमयेत्यर्थः ॥

हे ऋत्विक् ! इन सामने वर्तमान पत्थरकी समान दृढ़ और अवहननरूप कर्ममें एक साथ प्रयोगमें आने वाले उलूखल मूसलको आप इस फैले हुए अजिनमें स्थापित करिये (उलूखल और मूसलमें पत्थरभावका आरोपण कर लिया है अतः यहाँ अंशुशब्दसे धानोंका ग्रहण किया जायगा अतः सोमलताखण्ड की समान यागनिष्पादक) अंशुओंको अर्थात् धानोंको यजमानके लिये शोभन करिये तात्पर्य यह है, कि–ओखली मूसलसे इनके भुसको उतारिये । हे पत्नि ! तू अवहनन करती २ हमारे उन शत्रुओंको बाधा दे जो सेनाको चाह कर हमारी प्रजाको नष्ट करना चाहते हैं उनको नष्ट कर और अवहननके अनन्तर मूसलको ऊपरको उठाती हुई तू हमारी प्रजाको श्रेष्ठ पदमें स्थापित कर ॥ ९ ॥

दशमी ॥

गृ॒हा॒ण ग्रावा॑णौ स॒कृतौ॑ वीर॒ हस्त॒ आ ते॑ दे॒वा य॒ज्ञिया॑ य॒ज्ञम॑गुः ।

त्र॒यो वरा॑ यत॒मांस्त्वं वृ॑णी॒षे तास्ते॒ समृ॑द्धीरि॒ह रा॑धयामि

गृ॒हा॒ण । ग्रावा॑णौ । स॒ऽकृतौ॑ । वी॒र॒ । हस्ते॑ । आ । ते॒ । दे॒वाः । य॒ज्ञिया॑ः । य॒ज्ञम् । अ॒गुः ।

त्रयः । वराः । यतमान् । त्वम् । वृणीषे । ताः । ते । सम्ऽऋद्धीः ।
इह । राधयामि ॥ १० ॥

हे वीर वीर्यवन् अध्वर्यो हस्ते स्वकीये पाणौ सुकृतौ शोभनकर्माणौ ग्रावाणौ उलूखलमुसलौ गृहाण स्वीकुरु । ❀ ग्रह उपादाने । “हलः श्नः शानज्झौ” इति शानजादेशः ❀ । ते प्रसिद्धा यज्ञिया यज्ञार्हा देवास्त्वदीयं यज्ञम् आ अगुः आगमन् । ❀ इण् गतौ । “इणो गा लुङि” इति गादेशः ❀ । त्रयः त्रिसंख्याका वराः यजमानेन वरयितव्याः प्रार्थनीयाः पदार्थाः । कर्मसमृद्धिः तत्फलभूता ऐहिकी समृद्धिः आमुष्मिकी समृद्धिरिति । हे यजमान त्वं यतमान् यादृग्विधान् वरान् वृणीषे प्रार्थयसे ते तव ताः प्राग् उदीरिता वरयितव्या समृद्धीः इह अस्मिन् यज्ञे राधयामि संसाधयामि । ❀ राध साध संसिद्धौ ❀ ॥

[इति] एकादशे काण्डे प्रथमं सूक्तम् ॥

हे वीर अध्वर्यो ! आप अपने शोभन कर्मवाले हाथोंमें ओखली और मूसलरूप पत्थरोंको ग्रहण करिये, यज्ञके योग्य देवता तेरे यज्ञमें आगए हैं, हे यजमान ! जिनको तू माँगना चाहता है वे तीन वर हैं, उन कर्मसमृद्धि, उसकी फलरूपा ऐहिकी समृद्धि और परलोककी समृद्धि–समृद्धियोंको मैं इस यज्ञमें सिद्ध करता हूँ ॥ १० ॥ (१)

ग्यारहवें काण्डमें प्रथम सूक्त समाप्त ॥

“इयं ते धीतिः” इति सूक्तस्य ब्रह्मौदनसवे पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः । तत्र “इयं ते धीतिः” इति प्रथमाया ऋचः पूर्वार्धर्चेन परापवनार्थं शूर्पं गृह्णीयात् । “परा पुनीहि” इति उत्तरार्धर्चेन तुषान् उदूहेत् । सूत्रितं हि । “इयं ते धीतिः [११] वर्षवृद्धम् [१२. ३. १९] इति शूर्पं गृह्णाति । ऊर्ध्वं प्रजाम् [९]

विश्वव्यचाः [१२. ३. १९] इत्युदूहति । परा पुनीहि [११] इति तुषम्" इति [कौ० ८. २] ॥

"उपश्वसे" [१२] इति ऋचा तुषेभ्यस्तण्डुलान् पृथक् कुर्यात् । "उपश्वस इत्यपविवेक्ति" इति हि [कौ० ८.२] सूत्रम् ॥

"परे हि नारि" [१३] इति ऋचा उदकम् आहरन्तीं पत्नीं संप्रेषयेत् । "एमा अगुः" [१४] इति ऋचः प्रथमपादेन आगच्छन्तीं पत्नीम् अनुमन्त्रयते । "उत्तिष्ठ नारि" इति पादद्वयेन पत्नीम् आह्वयेत् । "आ त्वागन् यज्ञः" इति पादैकदेशेन जलकुम्भदात्री पत्नी कर्तारं प्रेषयेत् । "प्रति कुम्भं गृभाय" इति अर्धपादेन पत्नी जलकुम्भं ग्राहयेत् कर्तारम् । तत्रैव कर्मणि "ऊर्जो भागः" [१५] इति ऋचः प्रथमपादेन जलकुम्भं भूमौ निदध्यात् । "ऋषिप्रशिष्टापः" इति पादत्रयेण उदपात्रम् आस्तीर्णचर्मणि निदध्यात् । सूत्रितं हि । "परेहि नारीत्युदहृतं संप्रेष्यति अप उपगताम् अलंकृताम् । एमा अगुरित्यायतीम् अनुमन्त्रयते । उत्तिष्ठ नारीति पत्नीं संप्रेष्यति । प्रति कुम्भं गृभायेति प्रतिगृह्णाति । ऊर्जो भाग इति निदधाति" इति "ऋषिप्रशिष्टा [१५] इत्युदपात्रं चर्मणि निदधाति" इति च [कौ० ८. १] ॥

पैतृमेधिके चयनाख्ये कर्मणि "ऊर्जो भागः" इति ऋचा अस्थीनि अश्मभिः इष्टकाभिर्वा आच्छादयेत् ॥

"अग्ने चरुः" [१६] इति ऋचा चरुस्थालीम् अग्नावधिश्रयेत् । अग्ने चरुरधिश्रयति" इति [कौ० ८. २] सूत्रात् ॥

तथा दर्शपूर्णमासयोश्चर्वधिश्रयणेपि एषा विनियुक्ता । सूत्रितं हि । "फलीकृतांस्त्रिः प्रक्षाल्य तण्डुलान् अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षद् इति चरुम् अधिनिदधाति" इति [कौ० १. २] ॥

ब्रह्मौदनसव एव "शुद्धाः पूताः" इति ऋचा अधिश्रिते चरुपात्रे उदकम् आसिञ्चेत् । "ब्रह्मणा शुद्धाः" इति ऋचा आसि-

क्तासु अप्सु तण्डुलान् आवपेत् । सूत्रितं हि । "शुद्धाः पूताः [१७] पूताः पवित्रैः [१२. ३. २५] इति पवित्रे अन्तर्धायोदकम् आसिञ्चति । ब्रह्मणा शुद्धाः [१८] संख्याता स्तोकाः [१२. ३. २८] इत्यासिक्तान्निरुप्तांस्तण्डुलान् आवपेत्" इति [कौ० ८. २] ॥

"तथा दर्शपूर्णमासयोश्चरुस्थाल्याम् उदकासेचने तण्डुलावापे च "शुद्धाः पूताः" "ब्रह्मणा शुद्धाः" इत्येते ऋचौ विनियुक्ते । सूत्रितं हि । "शुद्धाः पूता इत्युदकम् आसिञ्चति ब्रह्मणा शुद्धा इति तण्डुलान्" इति [कौ० १. २] ॥

"उरुः प्रथस्व" इति ऋचा चरुं श्रपयेत् । "उरुः प्रथस्व [१९] उद्योधन्ति [१२. ३. २९] इति श्रपयति" इति [कौ० ८. २] सूत्रात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि "उरुः प्रथस्व" इत्येषा दातृवाचने विनियुक्ता । "उरुः प्रथस्व महता महिम्ना [१९] इदं मे ज्योतिः [२८] सत्याय [१२. ३. ४६–४८]इति तिस्रः" [कौ० ८. ९] इति सूत्रात् ॥

'इयं ते धीतिः' सूक्तका ब्रह्मौदनसत्रमें विनियोग होता है, यह पहिले सूक्तमें कह दिया है । 'इयं ते धीतिः' इस पहिली ऋचाके आधे भागसे परावपनके छाजको लेवे । और 'परापुनीहि' इस आधी ऋचासे तुषोंको हटावे । इस विषयमें कौशिकसूत्र ८ । २ का प्रमाण भी है, कि–'इयं ते धीतिः (११) वर्षवृद्धम् (१२ । ३ । १९) इति शूर्पं गृह्णाति । ऊर्ध्वं प्रजाम् (९) विश्वव्यचाः (१२ । ३ । १९) इत्युदूहति । परापुनीहि (११) इति तुषम्' (कौशिकसूत्र ८ । २) ॥

'उपश्वसे' इस १२ वीं ऋचासे तुषोंको चावलोंसे अलग कर लेय । इस विषयमें कौशिकसूत्र ८ । २ का प्रमाण है, कि–'उपश्वस इत्यपवेवेक्ति' ॥

‘परे हि नारि’ इस तेरहवीं ऋचासे जलको लाने वाली पत्नी को प्रेषित करे। ‘एमा अगुः’ इस चौदहवीं ऋचाके प्रथमपादसे आती हुई पत्नीका अनुमन्त्रण करे। ‘उत्तिष्ठ नारि’ इन दो पादों से पत्नीका आह्वान करे। ‘आ त्वागन् यज्ञः’ इस पादके एक देशसे जलकुम्भदात्री पत्नी कर्ताको प्रेषित करे। ‘प्रति कुंभं गृभाय” इस आधे पादसे पत्नी कर्ताको जलकुम्भ पकड़ावे। तहाँ ही कर्ममें ‘ऊर्ध्वो भागः’ इस पन्द्रहवीं ऋचाके प्रथम भागसे जलकुम्भको भूमिमें स्थापित करे। ‘ऋषिप्रशिष्टापः’ इन तीन पादोंसे जलपात्रको बिछे हुए चर्म रक्खे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–‘परे हि नारीत्युदहृतं सम्प्रेष्यति अप उपगतां अलंकृताम्। एमा अगुरित्यायतीम् अनुमन्त्रयते। उत्तिष्ठ नारीति पत्नीं सम्प्रेष्यति। प्रति कुम्भं गृभायेति प्रतिगृह्णाति। ऊर्जो भाग इति निदधाति’ इति ‘ऋषिप्रशिष्टा (१५) इत्युदपात्रं चर्मणि निदधाति’ (कौशिकसूत्र ८। १)।

पैतृमेधिक चयन नामक कर्ममें “ऊर्जो भागः” ऋचासे हड्डियों को पत्थरोंसे वा ईंटोंसे आच्छादित कर देय।

“अग्ने चरुः” इस सोलहवीं ऋचासे चरुस्थालीको अग्निमें चढ़ावे। इस विषयमें कौशिकसूत्र ८। २ का प्रमाण भी है, कि–“अग्ने चरुरित्यधिश्रयति” ॥

तथा दर्शपूर्णमासके चर्वाधिश्रयणमें भी इस ऋचाका विनियोग होता है। इस विषयमें कौशिकसूत्र १। २ का प्रमाण है, कि–‘फलीकृतान् त्रिः प्रक्षाल्य तण्डुलान् अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षत् इति चरुं अधि निदधाति।’

ब्रह्मौदनसत्रमें ही ‘शुद्धाः पूताः’ ऋचासे अधिश्रित चरुपात्रमें जलको डाले। ‘ब्रह्मणा शुद्धाः’ ऋचासे जल छिड़कने पर डाले हुए जलमें चावलोंको डाले। इस विषयमें कौशिकसूत्र ८। २ का

प्रमाण भी है, कि–'शुद्धाः पूता (१७) पूताः पवित्रैः (१२। ३ २५) इति पवित्रे अन्तर्धायोदकं आसिञ्चति। ब्रह्मणा शुद्धाः (१८ संख्याताः स्तोकाः (१२ । ३ । २८) इत्यासिक्तान् निरुप्तांस्तण्डुलान् आवपेत्' ॥

तथा दर्शपूर्णमासकी चरुस्थालीमें जल डालने पर और तण्डुल छोड़ने पर शुद्धाः पूताः' और 'ब्रह्मणा शुद्धाः' इन दोनों ऋचाओं का विनियोग करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"शुद्धाः पूता इत्युदकम् आसिञ्चति ब्रह्मणा शुद्धा इति तण्डुलान्" (कौशिक सूत्र १ । २) ॥

"उरुः प्रथस्व" इस ऋचासे चरुको पकावे। इस विषयमें कौशिकसूत्र ८ । २ का प्रमाण है, कि–"उरुः प्रथस्व (१९) उद्योधन्ति (१२ । ३ । २९) इति श्रपयति" ॥

तथा तहाँ ही कर्ममें "उरुः प्रथस्व" इस ऋचाका दातृवाचनमें विनियोग होता है। इस विषयमें कौशिकसूत्र ८ । ९ का प्रमाण है, कि–"उरुः प्रथस्व महता महिम्ना (१९) इदं मे ज्योतिः (२८) सत्याय (१२ । ३ । ४६–४८) इति तिस्रः" ॥

तत्र प्रथमा ॥

इ॒यं ते॑ धी॒ति॒रि॒दमु॑ ते ज॒नित्रं॑ गृ॒ह्णातु॒ त्वामदि॑ति॒ः शूर॑-
पुत्रा ।
परा॑ पुनी॒हि य इ॒मां पृत॒न्यवो॒स्यै र॒यिं सर्व॑वी॒रं नि य॑च्छ

इ॒यम् । ते॒ । धी॒ति । इ॒दम् । ऊँ॒ इति॑ । ते॒ । ज॒नित्र॑म् । गृ॒ह्णातु॑ ।
त्वाम् । अदि॑तिः । शूर॑ऽपुत्रा ।

परा । पुनीहि । ये । इमाम् । पृतन्यवः । अस्यै । रयिम् । सर्वऽवीरम् । नि । यच्छ ॥ ११ ॥

हे शूर्प ते तव यत् परापवनं तण्डुलेभ्यस्तुषनिवेचनम् इयमेव धीतिः पानम् । ❀ धेट् पाने । अस्माद् भावे क्तिन् । "घुमास्था०" इति ईत्वम् ❀ । इदमु इदमेव परापवनकर्म ते तव जनित्रम् जनननिमित्तं कारणम् । एवंविधं त्वा त्वां शूरपुत्रा शूराः शौर्योपेता मित्रवरुणधातृप्रभृतयः पुत्रा यस्याः सा अदितिः अदीना देवमाता गृह्णातु परापवनार्थं हस्ते धारयतु । ये शत्रवः इमां पत्नीं हिंसितुं पृतन्यवः पृतनां सेनाम् आत्मन इच्छन्तो भवन्ति तान् निरसितुं परा पुनीहि अवहतेभ्यो व्रीहिभ्यस्तुषान् पृथक् कुरु । ❀ पूञ् पवने । "प्वादीनां ह्रस्वः" इति ह्रस्वत्वम् ❀ । अस्यै पत्न्यै [सर्ववीरम्] सर्वैर्वीरैः पुत्रपौत्रादिभिरुपेतं [रयिम्] धनं नि यच्छ नितरां प्रयच्छ ॥

हे छाज ! चावलोंसे तुषोंका विवेचन करना ही तेरा जो परापवन है वह पान है । और यह परापवनकर्म ही तेरा जनित्र (कारण) है ऐसे तुझको मित्र वरुण धाता आदि वीर पुत्रों वाली अदिति देवी परापवनके हाथमें ग्रहण करे । जो इस पत्नी को मारनेके लिये सेना एकत्रित करना चाहते हैं उनको तिरस्कृत करनेके लिये कूटे हुए धानोंको भूसीसे पृथक् कर और इस पत्नीके लिये पुत्र पौत्र आदि वीरोंसे सम्पन्न धन दे ॥ ११ ॥

द्वितीयां ॥

उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं वि विच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥ १२ ॥

उपऽश्वसे । ध्रुवये । सीदत । यूयम् । वि । विच्यध्वम् । यज्ञियासः । तुषैः ।

श्रिया । समानान् । अति । सर्वान् । स्याम । अधःऽपदम् । द्विषतः । पादयामि ॥ १२ ॥

ध्रुवये ध्रुवाय स्थिराय सत्यफलाय कर्मणे हे तण्डुलाः युष्मान् उपश्वसे उपसमीपे आश्वासयामि प्रभूतान् करोमि । यागे विनियोजय इत्यर्थः । ❀ श्वस प्राणने इति धातुः । ध्रु गतिस्थैर्ययोः इत्यस्माद् औणादिकः क्विप्रत्ययः ❀ । अतो यूयं सीदत शूर्पे उपविशत । यज्ञियासः यज्ञिया यज्ञार्हा यूयं तुषैर्वि विच्यध्वम् विविक्ताः पृथक्कृता भवत । ❀ विचिर् पृथग्भावे इति धातुः ❀ । वयमपि युष्मज्जनितया श्रिया संपदा सर्वान् समानान् समानजन्मनः पुरुषान् अति स्याम अतिक्रान्ता भवेम । द्विषतः द्वेष्टॄन् शत्रून् अधस्पदम् पादयोरधस्तात् पादयामि क्षिपामि । ❀ "अधःशिरसी पदे" इति विसर्जनीयस्य सत्वम् ❀ ॥

स्थिर सत्य फल वाले कर्मके लिये हे तण्डुलों ! तुम्हें समीपमें आश्वासित करता हूँ–प्रभूत करता हूँ अर्थात् यागमें विनियुक्त करता हूँ, अतः तुम छाजमें बैठो और यज्ञके योग्य तुम तुषोंसे अलग होजाओ और हम भी तुमसे प्राप्त हुई श्रीसे सब समानजन्म वालोंको लाँघ जावें और मैं द्वेष करने वाले शत्रुओंको पैरोंके नीचे गिराता हूँ ॥ १२ ॥

तृतीया ॥

परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोध्यरुक्षद् भराय ।

तासां॑ गृह्णीताद् यत॒मा य॒ज्ञिया॒ अस॑न् वि॒भाज्य॑ धीरी॒·

त॑रा जहीतात् ॥ १३ ॥

प॑रा । इ॒हि॒ । ना॒रि॒ । पु॑नः । आ । इ॒हि॒ । क्षि॒प्रम् । अ॒पाम् । त्वा॒ ।

गो॒ऽस्थः । अ॑धि । अ॒रु॒क्ष॒त् । भ॑राय ।

ता॑साम् । गृ॒ह्णी॒ता॒त् । य॒त॒माः । य॒ज्ञि॑याः । अस॑न् । वि॒ऽभाज्य॑ ।

धी॒री । इ॑तराः । ज॒ही॒ता॒त् ॥ १३ ॥

उदकाहर्त्री प्रेष्यते । हे नारि परा इहि परागच्छ उदकाहरणार्थं पराङ्मुखी जलाशयं गच्छ । तत्र जलं गृहीत्वा क्षिप्रम् शीघ्रं पुनरेहि पुनरागच्छ । तस्मिन् समये त्वा त्वाम् अपाम् उदकानां गोष्ठः । गावस्तिष्ठन्ति पानार्थम् अस्मिन्निति गोष्ठो जलराशिः । ❀ "घञर्थे कविधानम्" इति अधिकरणे कप्रत्ययः । "अम्बाम्बगोभूमि०" इति षत्वम् ❀ । भराय भरणार्थम् अध्यरुक्षत् अधिरोहतु । शिरसि आरोहतु । ❀ रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे । "शल इगुपधाद् अनिटः क्सः" इति क्सप्रत्ययः ❀ । तासां प्राप्तानाम् अपां मध्ये यतमाः यादृश्य आपो यज्ञियाः यज्ञार्हा आसन् अभवन् ता गृह्णीतात् घटादिना गृहाण । ❀ ग्रह उपादाने । "तुह्योस्तातङ् आशिष्यन्यतरस्याम्" इति हेस्तातङ् आदेशः ❀ । यद्वा । इदानीं बहुवद् उच्यते । हे उदकाहर्त्र्यो नार्यः गृह्णीतात् गृह्णीत घटादिपात्रेषु उदकं पूरयत । ❀ "तस्य तात्" इति तशब्दस्य तात् आदेशः । यतमा इति । "वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्" इति यच्छब्दात् डतमच् प्रत्ययः ❀ । इतरा अयज्ञिया अपः धीरी धीमती त्वं विभाज्य यज्ञियाभ्यो विविच्य जहीतात् जहीहि परित्यज । ❀ ओहाक् त्यागे । तातङि "घुमास्था०" इति ईत्वम् ❀ ॥

हे नारि ! तू जल लानेके लिये पराङ्मुखी होकर जलाशय पर जा और तहाँ से जल लेकर शीघ्र ही लौट आ। उस समय तुझ पर जिसमें गौएँ जल पीती हैं वह जलोंका गोष्ठ भरण करनेके लिये आरोहण करे–तेरे शिर पर चढ़े। उन जलोंमें जो जल यज्ञके योग्य होवें उन ही को तू घट आदिसे ग्रहण करना और यज्ञके अयोग्य जलोंको तू बुद्धिमती है इस कारण यज्ञिय जलोंसे अलग करके त्याग देना ॥ १३ ॥

चतुर्थी ॥

एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति
कुम्भं गृभाय ॥ १४ ॥

आ । इमाः । अगुः । योषितः । शुम्भमानाः । उत् । तिष्ठ । नारि । तवसम् । रभस्व ।

सुऽपत्नी । पत्या । प्रऽजया । प्रजाऽवती । आ । त्वा । अगन् । यज्ञः । प्रति । कुम्भम् । गृभाय ॥ १४ ॥

शुम्भमानाः शोभनालंकारयुक्ता इमा योषितः उदकाहर्त्र्यः स्त्रियः आ अगुः आगमन्। हे नारि पत्नि उत्तिष्ठ आसनाद् उत्थिता भव। ❀ "०अनूर्ध्वकर्मणि" इति पर्युदासाद् आत्मनेपदाभावः ❀। तव त्वाम् उपगतास्ताः सं रभस्व संग्रहीतुम् उद्युक्ता भव। ❀ रभ राभस्ये। राभस्यं कार्योपक्रम इति तद्व्याख्या ❀। पत्या शोभनपतिना सुपत्नी पत्नीनां श्रेष्ठतमा। यद्वा पत्या गुणाधिकेन पुरुषेण शोभनपतिका। ❀ "विभाषा सपूर्वस्य" इति

ङीन्नकारौ ❀ । प्रजया पुत्रादिरूपया प्रजावती शोभनपुत्रयुक्ता । भवेत्यर्थः । ईदृशीं त्वा त्वां यज्ञः आ अगन् उदकरूपेण प्रापत् । ❀ गमेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् । "हल्ङ्या०" इत्यादिलोपे "मो नो धातोः" इति नत्वम् ❀ । कुम्भम् उदकपूर्णघटं प्रति गृभाय प्रतिगृहाण आदत्स्व । ❀ ग्रहेर्लोण्मध्यमैकवचने "छन्दसि शायजपि" इति श्नाप्रत्ययस्य शायजादेशः । "हृग्रहोर्भः०" इति भत्वम् ❀ ॥

हे शोभाप्रद अलंकारोंको धारण करने वाली ! ये जल लाने वाली स्त्रियें आगईं हैं, अत एव हे पत्नि ! तू आसनसे उठ, और अपने पास आई हुई स्त्रियोंको ग्रहण कर और अधिक गुण वाले पतिसे शोभन पति वाली हो और पुत्रपौत्र आदिरूप प्रजासे शोभन प्रजा वाली हो, ऐसी तुझको यह यज्ञ जलरूपसे प्राप्त होवे तू जलपूर्ण कलशको ग्रहण कर ॥ १४ ॥

पञ्चमी ॥

ऊ॒र्जो॑ भा॒गो निहि॑तो॒ यः पु॒रा व॒ ऋषि॑प्रशिष्टा॒प आ
भ॒रै॑ताः ।
अ॒यं य॒ज्ञो गा॑तु॒विन्ना॑थ॒वित् प्र॑जा॒विदु॒ग्रः प॑शु॒विद् वी॑र॒-
विद् वो॑ अस्तु ॥ १५ ॥

ऊ॒र्जः । भा॒गः । निऽहि॑तः । यः । पु॒रा । वः॒ । ऋषि॑ऽप्रशिष्टा ।
अ॒पः । आ । भ॒र॒ । ए॒ताः ।
अ॒यम् । य॒ज्ञः । गा॒तु॒ऽवित् । ना॒थ॒ऽवित् । प्र॒जा॒ऽवित् । उ॒ग्रः ।
प॒शु॒ऽवित् । वी॒र॒ऽवित् । वः॒ । अ॒स्तु॒ ॥ १५ ॥

हे आपः वः युष्माकम् ऊर्जः बलकरस्य सारभूतस्य जलरा-

शेर्यो भागः अंशः पुरा पूर्वं निहितः ब्रह्मणा परिकल्पितः। स एव अत्राहृत्य निधीयत इति शेषः। हे पत्नि एताः आहृताः सारभूता अपः ऋषिप्रशिष्टा ऋषिणा मन्त्रेण अतीन्द्रियार्थदर्शिना ब्रह्मणा वा प्रशिष्टा अनुशिष्टा अनुज्ञाता त्वम् आ भर आस्तीर्णे चर्मणि आहर। स्थापयेत्यर्थः। ❀ ऋषिप्रशिष्टेति। शासु अनुशिष्टौ। अस्मात् कर्मणि निष्ठा। "शास इदङ्हलोः" इति इत्वम् ❀ ॥ अयं क्रियमाणः ब्रह्मौदनसत्राख्यो यज्ञः गातुवित् गातोः स्वर्गमार्गस्य लम्भकः। नाथवित् नाथ्यमानस्य आशंसनीयस्य स्वर्गादिफलस्य लम्भयिता। यद्वा नाथः स्वामी तस्य लम्भकः। प्रजावित् प्रजायन्त इति प्रजाः पुत्रपौत्रादिरूपाः तासां लम्भकः। उग्रः उद्गूर्णबलः। परैरनभिभवनीय इत्यर्थः। पशुवित् पशूनां गवाश्वादीनां लम्भयिता। वीरवित् विविधम् ईर्यन्ते तत्तत्कर्मणि प्रेष्यन्त इति वीराः कर्मकरास्तेषां लम्भयिता हे यजमानपत्न्यादयः वः युष्मभ्यम् एवंविधफलप्रदः अस्तु भवतु ॥

हे जलों! तुममें जो बलप्रद सारभूत जलराशिका भाग पहिले ब्रह्माजीने परिकल्पित किया है, वही यहाँ लाकर रक्खा जावेगा, हे पत्नि! इन लाये हुए सारभूत जलोंको तू मन्त्र (वा अतीन्द्रियार्थदर्शी ब्रह्मा) के द्वारा अनुज्ञा पाने पर चर्म पर स्थापित कर यह चलता हुआ ब्रह्मौदनसत्र यज्ञमार्गको प्राप्त कराने वाला है, पुत्र पौत्र आदि रूप प्रजाको देने वाला है, प्रचण्ड बलको देने वाला है, गौ घोड़े आदि पशुओंको प्राप्त कराने वाला है, विविध प्रकारसे नाना कर्मोंमें जिनको प्रेरित किया जाता है उन कर्मकर–वीरोंको देने वाला है हे यजमान पत्नी आदिकों! तुमको यह इन ही फलोंको देने वाला होवे ॥ १५ ॥

षष्ठी ॥

अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम्

आर्षेया दैवा अभिसंगत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभि
स्तपन्तु ॥ १६ ॥

अग्ने । चरुः । यज्ञियः । त्वा । अधि । अरुक्षत् । शुचिः । तपिष्ठः ।
तपसा । तप । एनम् ।

आर्षेयाः । दैवाः । अभिऽसंगत्य । भागम् । इमम् । तपिष्ठाः । ऋतुऽभिः । तपन्तु ॥ १६ ॥

हे अग्ने त्वा त्वां यज्ञियः यज्ञार्हः चरुः हविःश्रपणार्था स्थाली अध्यरुक्षत् अधिरोहतु उपरि तिष्ठतु । शुचिः शुद्धो निर्मलः तपिष्ठः तप्तृतमः। ❀ तप्‌शब्दात् "तुश्छन्दसि" इति इष्ठनि "तुरिष्ठेमेयस्सु" इति तृलोपः ❀ । तपसा संतापकेन आत्मीयेन तेजसा एनं चरुं तप तप्तं कुरु। आर्षेयाः। गोत्रप्रवर्तकान् ऋषीन् ये विदुस्ते आर्षेया ब्राह्मणाः । दैवाः । देवाः । होतव्या इन्द्रादयः तत्संबन्धिजना दैवाः । ते उभये स्वस्वं भागम् अंशम् अभिसंगत्य अभिप्राप्य इमं चरुं तपिष्ठाः तप्ततमाः सन्तः ऋतुभिः वसन्तादिभिः कालविशेषैः तपन्तु तप्तं कुर्वन्तु ॥

हे अग्ने ! आप पर हवि राँधनेके लिये यज्ञिया चरुस्थाली अधिरोहण करे, और निर्मल तथा तपाते हुए आप अपने सन्तापक तेजसे इस चरुको तप्त करें, गोत्र प्रवर्तक ऋषियोंको जानने वाले आर्षेय ब्राह्मण और जिनके निमित्त हवि होमी जाती है उन इन्द्र आदिसे सम्बन्ध रखने वाले दैव, ये दोनों अपने २ भागको पाकर इस चरुको तपाते हुए वसन आदि कालोंसे इस को तप्त करें ॥ १६ ॥

सप्तमी ॥

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु
शुभ्राः ।
अदुः प्रजां बहुलान् पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृता-
मेतु लोकम् ॥ १७ ॥

शुद्धाः । पूताः । योषितः । यज्ञियाः । इमाः । आपः । चरुम् ।
अव । सर्पन्तु । शुभ्राः ।
अदुः । प्रऽजाम् । बहुलान् । पशून् । नः । पक्ता । ओदनस्य ।
सुऽकृताम् । एतु । लोकम् ॥ १७ ॥

शुद्धाः निर्मलाः पूताः पवित्राभ्याम् उत्पूता उत्पवनाख्यसंस्कारेण पवित्रीकृताः योषितः योषिद्रूपा मिश्रयित्र्यो वा यज्ञियाः यज्ञार्हाः शुभ्राः शुक्लवर्णा इमाः आहृता आपश्चरुम् अव सर्पन्तु स्थालीं प्रविशन्तु । ता आपो नः अस्मभ्यं प्रजाम् पुत्रादिरूपां बहुलान् अनेकविधान् गोमहिषाद्यांश्च पशून् अदुः ददतु प्रयच्छन्तु ॥ ओदनस्य ब्रह्मौदनाख्यस्य पक्वा पाचको यजमानः । ❀ पचेः "अन्येभ्योपि दृश्यन्ते" इति क्वनिप् ❀ । सुकृताम् पुण्यकृतां लोकम् सुखोपभोगस्थानं स्वर्गादिकम् एतु गच्छतु ॥

उत्पवन नामक संस्कारसे पवित्र किये हुए निर्मल और मिश्रण करने वाले यज्ञके उपयुक्त ये लाये हुए शुभ्र वर्णसम्पन्न जल चरुस्थालीमें प्रवेश करें और ये जल हमको पुत्र आदि रूप प्रजा और गौ भैंस आदि बहुतसे पशुओंको देवें और यह ब्रह्मौ-

दनका पक्का यजमान पुण्यात्माओंके सुख भोगनेके स्थान स्वर्ग आदिको प्राप्त होवे ॥ १७ ॥

अष्टमी ॥

ब्रह्म॑णा शु॒द्धा उ॒त पू॒ता घृ॒तेन॒ सोम॑स्यां॒शव॑स्तण्डु॒ला॑
य॒ज्ञिया॑ इ॒मे ।
अ॒पः प्र वि॑शत॒ प्रति॑ गृह्णातु वश्च॒रुरि॒मं प॒क्त्वा सु॒कृता॑मेत लो॒कम् ॥ १८ ॥

ब्रह्म॑णाः । शु॒द्धाः । उ॒त । पू॒ताः । घृ॒तेन॑ । सोम॑स्य । अं॒शवः॑ ।
त॒ण्डु॒लाः । य॒ज्ञियाः॑ । इमे ।
अ॒पः । प्र । वि॒श॒त॒ । प्रति॑ । गृ॒ह्णा॒तु । वः॒ । च॒रुः । इ॒मम् । प॒क्त्वा
सु॒ऽकृता॑म् । ए॒त॒ । लो॒कम् ॥ १८ ॥

ब्रह्मणा मन्त्रेण शुद्धाः निर्दोषाः उत अपि च घृतेन क्षरणशीलेन उदकेन पूताः प्रक्षालिताः । यद्वा श्रपणानन्तरभाविना अभिघारणेनाज्येन पूताः पवित्रीकृताः सोमस्य अमृतमयस्य अंशवः लताखण्डाः । तदात्मका इत्यर्थः । "निर्भिन्ध्यंशून्" इति हि प्राग् [६] उक्तम् । अत एव यज्ञियाः यज्ञार्हा इमे तण्डुलाः यूयम् अपः स्थालीगतानि उदकानि प्र विशत । चरुः स्थाली च वः युष्मान् प्रति गृह्णातु स्वीकरोतु । इमम् ओदनं पक्त्वा । ओदनपाकेन ब्रह्मौदनसवाख्यं कर्म लक्ष्यते । एतत् कर्म कृत्वेत्यर्थः । व्याख्यातम् अन्यत् ॥

मन्त्रसे शुद्ध हुए अत एव निर्दोष और श्रपण (पकने) के अनन्तर घृतसे पवित्र होने वाले, सोमके अंशरूप ये तण्डुल हैं,

हे यज्ञके उपयुक्त ऐसे तण्डुलों ! तुम चरुस्थालीमें स्थित जलोंमें प्रवेश करो और यह चरुस्थाली तुमको स्वीकार करे, इस ब्रह्मौदनका पक्ता यजमान पुण्य करने वालोंके लोक स्वर्गको प्राप्त होवे १८

नवमी ॥

उरुः प्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।
पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि

उरुः । प्रथस्व । महता । महिम्ना । सहस्रऽपृष्ठः । सुऽकृतस्य । लोके ।

पितामहाः । पितरः । प्रऽजा । उपऽजा । अहम् । पक्ता । पञ्चऽदशः । ते । अस्मि ॥ १९ ॥

हे ओदन सुकृतस्य पुण्यस्य फलभूते लोके स्वर्गादौ महता अधिकेन महिम्ना माहात्म्येन उरुः विस्तीर्णः सहस्रपृष्ठः सहस्रावयवः सन् प्रथस्व विस्तीर्णो भव । अस्मदीयाः पितरः पितामहाः । ❀ उपलक्षणम् एतत् ❀ । पितृपितामहाद्याः सप्तपुरुषा हे ओदन त्वया तृप्यन्ते । तथा प्रजा पुत्रदुहितृरूपा तत्पुत्रादिरूपा । ❀ एतदपि उपलक्षणम् ❀ । अनन्तराः पुत्राद्याः सप्तपुरुषास्त्वया प्रीयन्ते । एतदुभयापेक्षया पक्त्वा ब्रह्मौदनस्य पक्ता अहं ते तव पञ्चदशः पञ्चदशसंख्यापूरकः अस्मि भवामि । मदनुष्ठितेन अनेन यज्ञेन एते सर्वे प्रीयन्त इत्यर्थः ॥

हे ओदन ! पुण्यके फलरूप स्वर्गादिमें तू अपनी विस्तृत महिमासे सहस्रों अवयवों वाला होता हुआ विस्तृत हो, हे ओदन ! तुझसे पिता पितामह आदि सात पुरुष तृप्त होते हैं, पुत्र पुत्रीरूप प्रजा और उनकी सन्तानरूप उपजा ये सात पाढ़ीतकके पुरुष

भी तुझसे तृप्त होते हैं इन दोनोंकी अपेक्षा पन्द्रहवाँ पक्षा मैं भी तृप्त होऊँ अर्थात् मेरे अनुष्ठित इस यज्ञसे सब तृप्त होवें ॥१९॥

दशमी ॥

सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः
अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय
मृडतान्मह्यमेव ॥ २० ॥

सहस्रऽपृष्ठः । शतऽधारः । अक्षितः । ब्रह्मऽओदनः । देवऽयानः ।
स्वऽगः ।

अमून् । ते । आ । दधामि । प्रऽजया । रेषय । एनान् ।
बलिऽहाराय । मृडतात् । मह्यम् । एव ॥ २० ॥

सहस्रपृष्ठः सहस्रशरीरः शतधारः शतसंख्याकाभिर्धाराभिरमृतमयीभिर्युक्तः अक्षितः अक्षीयमाणः । भुज्यमानोपि क्षयम् अप्राप्नुवन्नित्यर्थः । देवयानः देवान् इन्द्रादीन् यान्ति गच्छन्ति पुण्यकृतः अनेनेति देवयानः । देवत्वप्राप्तिसाधनभूत इत्यर्थः । तथा स्वर्गः फलभूतं स्वर्गं प्रति अन्तरङ्गसाधनत्वात् तदात्मकोयम् इत्यर्थः । हे यजमान त्वया क्रियमाणोयं ब्रह्मौदनः एतत्संज्ञकः सवयज्ञः । उक्तगुणविशिष्टो भवतीत्यर्थः । अपि च ते तव बलिहाराय बलिः उपायनद्रव्यं तद्धरणार्थम् अमून् प्रसिद्धान् सजातान् आ दधामि अभिमुखं स्थापयामि । एनान् प्रजया पुत्रभृत्यादिरूपया रेशय लेशय अल्पीकुरु । उपक्षीणान् कुर्वित्यर्थः । ❀ लिश अल्पीभावे । रलयोः एकत्वस्मरणाद्द रेफः ❀ । मह्यमेव मामेव प्राग् उदीरितः सवयज्ञः मृलतात् मृडयतु सुखयतु सर्वोत्कृष्टं करोतु ।

❀ मृड सुखने । "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वाद् अस्मदश्चतुर्थी ❀ ॥

[इति एकादशकाण्डे] द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे यजमान ! तेरा किया हुआ यह यज्ञ सहस्रों शरीर वाला है अमृतमयी सैंकड़ों धारोंसे अक्षय रहता है अर्थात् भोगने पर भी क्षयको प्राप्त नहीं होता है और जिसके द्वारा पुण्यकर्ता इन्द्र आदि देवताओंको प्राप्त होते हैं अर्थात् देवत्वकी प्राप्तिका साधन-भूत, फलभूत स्वर्गका साधन होनेसे स्वर्गरूप ही है हे यज्ञ ! तेरे निमित्त मैं इन सजातियोंको भेंटके रूपमें स्थापित करता हूँ, तू इनको पुत्र पौत्र आदिरूप प्रजासे अल्प कर, यह सवयज्ञ मुझको ही सुख देवे–मुझको ही सर्वोत्कृष्ट करे ॥ २० ॥ (२)

एकादशकाण्डमें द्वितीय सूक्त समाप्त

"उदेहि वेदिम्" इति सूक्तस्य ब्रह्मौदनसवे "अग्ने जायस्व" [११. १] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥

तत्र "उदेहि वेदिम्" इति प्रथमया चरोरुद्वासनं कुर्यात् । "अभ्यावर्तस्व" इत्यनया चरुस्थालीं प्रदक्षिणम् आवर्तयेत् । सूत्रितं हि । "उदेहि वेदिम् [२१] धर्ता ध्रियस्व [१२. ३. ३५] इत्युद्वासयति । अभ्यावर्तस्व [२२] इति कुम्भीं प्रदक्षिणम् आवर्तयेत्" इति [कौ० ८. २] ॥

"अदितेर्हस्तम्" इति ऋचा स्रुचं वेद्यां सादयेत् । "अदितेर्हस्तं [२४] सर्वान्त्समागाः [१२. ३. ३६] इति मन्त्रोक्तम्" इति [कौ० ८. ३] सूत्रात् ॥

"शृतं त्वा हव्यम्" [२५] इति ऋचा चतुर आर्षेयान् आसने उपवेशयेत् । सूत्रितं हि । "शृतं त्वा हव्यम् इति चतुर आर्षेयान् भृग्वङ्गिरोविद उपसादयति" इति [कौ० ८. ४] ॥

"सोम राजन्" [२६] इति ऋचा चतुर आर्षेयान् ऋत्विजो

यजमान आह्वयेत् । "शुद्धाः पूताः" [२७] इति ऋचा तेषाम् ऋत्विजां हस्तप्रक्षालनार्थम् उदकं दद्यात् । "शुद्धाः पूता इति मन्त्रोक्तम्" इति [कौ० ८. ४] सूत्रात् ॥

"इदं मे ज्योतिः इति ऋचा ओदने हिरण्यं निदध्यात् । सूत्रितं हि । "इदं मे ज्योतिः [२८] समग्नयः [१२. ३. ५०] इति हिरण्यमधिनिदधाति" इति [कौ० ८. ३] ॥

अत्र "इदं मे ज्योतिः" इति प्रथमपादं दातारं वाचयन् हिरण्यम् अधिनिदध्यात् । "कृण्वे पन्थाम्" इति "चरमपादं च दातारं वाचयेत्" इति हि भाष्यकारः ॥

"पक्वं क्षेत्रात्" इति मध्यमेन पादद्वयेन बर्हिष्यासादितम् ओदनम् ईषत् कर्षयेत् । "पक्वं क्षेत्रात् [२८] वर्षं वनुष्व [१२. ३. ५३] इत्युपकर्षयति" इति हि [कौ० ८. ४] सूत्रम् ॥

"इदं मे ज्योतिः" इति समस्ता ऋक् दातृवाचने विनियुक्ता । "इदं मे ज्योतिः [२८], सत्याय [१२. ३, ४६–४८] इति तिस्रः" इति हि सूत्रम् [कौ० ८. ६] ॥

"अग्नौ तुषान्" [२६] इति ऋचः प्रथमपादेन अग्नौ तुषान् जुहुयात् । "अग्नौ तुषान् इति तुषान् आवपति" इति [कौ०८.४] सूत्रात् ॥

"परः कम्बूकान्" इति शेषेण पादत्रयेण फलीकरणान् उदूहयेत् । "परः कम्बूकान् इति सव्येन पादेन फलीकरणान् अपोहयति" इति [कौ० ८. ४] सूत्रम् ॥

"श्राम्यतः" [३०] इत्यादिका ऋचः ओदनसंपाते विकल्पेन विनियुक्ताः । सूत्रितं हि । "सूक्तेन पूर्वं संपातवन्तं करोति श्राम्यत इति प्रभृतिभिर्वा" इति [कौ० ८. ४] ॥

'उदेहि वेदिम्' सूक्तका 'अग्ने जायस्व' (११ । १) सूक्तके साथ ब्रह्मौदनसवमें विनियोग कह दिया है ।

और 'उदेहि वेदिम्' इस पहिली ऋचासे चरुका उद्वासन करे। 'अभ्यावर्तस्व' इस ऋचासे चरुस्थालीको प्रदक्षिणा करता हुआ घुमावे। इस विषयमें कौशिकसूत्र ८। २ का प्रमाण भी है कि– 'उदेहि वेदिम् (२१) धर्ता ध्रियस्व (१२ । ३ । ३५) इत्युद्वासयति। अभ्यावर्तस्व (२२) इति कुंभीं प्रदक्षिणां आवर्तयेत्' ॥

'अदितेर्हस्तम्' ऋचासे स्रुवेको वेदी पर रक्खे। इस विषयमें कौशिकसूत्र ८। २ का प्रमाण भी है, कि–'अदितेर्हस्तम् (२४) सर्वान्त्समागाः (१२ । ३ । ३६) इति मंत्रोक्तम्'। 'शृतम् त्वा हव्यम्' इस पच्चीसवीं ऋचासे चार आर्षेय ब्राह्मणोंको आसन पर बैठावे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–'शृतं त्वा हव्यं इति चतुर आर्षेयान् भृग्वङ्गिरोविद उपसादयति' (कौशिकसूत्र ८। ४) ॥

यजमान 'सोमो राजन्' इस छब्बीसवीं ऋचासे चार आर्षेय ऋत्विजोंको बुलावे। और 'शुद्धाः पूताः' इस सत्ताइसवीं ऋचासे उन ऋत्विजोंको हाथ धोनेके लिये जल देवे। इस विषयमें कौशिकसूत्र ८। ४ का प्रमाण भी है, कि–'शुद्धाः पूता इति मन्त्रोक्तम्' ॥

"इदं मे ज्योतिः" इस ऋचासे ओदनमें सुवर्णको रक्खे। इस विषयमें कौशिकसूत्र ८। ३ का प्रमाण है, कि–"इदं मे ज्योतिः (२८) समग्नयः (२२।३।५०) इति हिरण्यमभिनिदधाति ॥"

यहाँ "इदं मे ज्योतिः" इस प्रथमपादको दातासे पढ़वाता हुआ सुवर्णको रक्खे। और भाष्यकार कहते हैं, कि–"कृण्वे पन्थानम्" इस अन्तिमपादको भी दातासे वचवावे ॥

"पक्वं क्षेत्रात्" इन मध्यके दो पादोंसे कुशाओं पर रक्खे हुए ओदनको कुछ खींचे। इस विषयमें कौशिकसूत्र ८। ४ का प्रमाण

भी है, कि–"पक्वं क्षेत्रात् (२८) वर्षं वनुष्व १२ । ३ । ५३) इत्युपकर्षयति" ॥

"इदं मे ज्योतिः" यह समस्त ऋक् दातृवाचनमें विनियुक्त होती है । इस विषयमें कौशिकसूत्र ८ । ६ का प्रमाण है, कि–"इदं मे ज्योतिः (२८) सत्याय (१२।३।४६-४८) इति तिस्रः" ॥

'अग्नौ तुषान्' इस उन्तीसवीं ऋचाके प्रथम पादसे अग्निमें तुषोंको होमे । इस विषयमें कौशिकसूत्र ८ । ४ का प्रमाण है, कि–'अग्नौ तुषान् इति तुषान् आवपति ॥'

'परः कम्बूकान्' इन अन्तिम तीन पादोंसे फलीकरणोंका उदूहन करे । इस विषयमें कौशिकसूत्र ८ । ४ का प्रमाण भी है, कि-'परः कम्बूकान् इति सव्येन पादेन फलीकरणान् अपोहयति' ॥

'श्राम्यतः' यह तीसवीं आदि ऋचाएँ ओदनसम्पातमें विकल्प से विनियुक्त होती हैं । इस विषयमें कौशिकसूत्र ८ । ४ का प्रमाण भी है, कि–'सूक्तेन पूर्वं सम्पातवन्तं करोति श्राम्यत इति प्रभृतिभिर्वा' ॥

तत्र प्रथमा ॥

उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥ २१ ॥

उत्ऽएहि । वेदिम् । प्रऽजया । वर्धय । एनाम् । नुदस्व । रक्षः । प्रऽतरम् । धेहि । एनाम् ।
श्रिया । समानान् । अति । सर्वान् । स्याम । अधःऽपदम् । द्विषतः । पादयामि ॥ २१ ॥

हे पक्वौदन वेदिम् हविरासादनाय प्रोक्षणादिबर्हिस्तरणादिसंस्कारसंस्कृतां भूमिं प्रति उदेहि उदागच्छ । अग्नेः सकाशाद् उत्थाय वेद्याम् आसीदेत्यर्थः । एनां पत्नीं प्रजया पुत्रादिरूपया वर्धय समृद्धां कुरु । रक्षः यज्ञविघातकं राक्षसं नुदस्व अस्मात् स्थानात् प्रेरय प्रच्यावय । ❀ नुद प्रेरणे ❀ । तथा एनां पत्नीं प्रतरम् प्रकृष्टतरं यथा भवति तथा धेहि धारय पोषय वा । ❀ डुधाञ् धारणपोषणयोः । "ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च" इति एत्वाभ्यासलोपौ ❀ । श्रिया समानान् इति उत्तरोर्धर्चो व्याख्यातः [१२] ॥

हे पक्वौदन ! तू प्रोक्षणादिबर्हिस्तरणादिसंस्कारसे संस्कृत भूमिरूप वेदीमें हविरूपसे स्थित होनेके लिये आ, अर्थात् अग्निके समीपसे उठ कर वेदीमें बैठ, इस पत्नीको पुत्र आदिरूप प्रजासे समृद्ध कर, यज्ञविघातक राक्षसको इस स्थानसे खदेड़ तथा इस पत्नीको अधिकतासे पुष्ट कर । हम सब समान पुरुषोंसे सम्पत्ति में अधिक होजावें, मैं द्वेष करने वाले शत्रुओंको औंधे गिराता हूँ १

द्वितीया ॥

अ॒भ्याव॑र्तस्व प॒शुभि॑ः स॒हैनां॑ प्र॒त्यङे॑नां दे॒वता॑भिः
स॒हैधि॑ ।
मा त्वा॒ प्राप॑च्छ॒पथो॒ माभि॑चा॒रः स्वे क्षेत्रे॑ अनमी॒वा
वि रा॑ज ॥ २२ ॥

अ॒भि॒ऽआव॑र्तस्व । प॒शुऽभि॑ः । स॒ह । ए॒ना॒म् । प्र॒त्यङ् । ए॒ना॒म् ।
दे॒वता॑भिः । स॒ह । ए॒धि॒ ।

भी है, कि–“पक्वं क्षेत्रात् (२८) वर्षं वनुष्व १२ । ३ । ५३) इत्युपकर्षयति” ॥

“इदं मे ज्योतिः” यह समस्त ऋक् दातृवाचनमें विनियुक्त होती है । इस विषयमें कौशिकसूत्र ८ । ६ का प्रमाण है, कि–“इदं मे ज्योतिः (२८) सत्याय (१२।३।४६-४८) इति तिस्रः” ॥

‘अग्नौ तुषान्’ इस उन्तीसवीं ऋचाके प्रथम पादसे अग्निमें तुषोंको होमे । इस विषयमें कौशिकसूत्र ८ । ४ का प्रमाण है, कि–‘अग्नौ तुषान् इति तुषान् आवपति ॥’

‘परः कम्बूकान्’ इन अन्तिम तीन पादोंसे फलीकरणोंका उदूहन करे । इस विषयमें कौशिकसूत्र ८ । ४ का प्रमाण भी है, कि-‘परः कम्बूकान् इति सव्येन पादेन फलीकरणान् अपोहयति’ ॥

‘श्राम्यतः’ यह तीसवीं आदि ऋचाएँ ओदनसम्पातमें विकल्प से विनियुक्त होती हैं । इस विषयमें कौशिकसूत्र ८ । ४ का प्रमाण भी है, कि–‘सूक्तेन पूर्वं सम्पातवन्तं करोति श्राम्यत इति प्रभृतिभिर्वा’ ॥

तत्र प्रथमा ॥

उ॒दे॒हि॒ वेदिं॑ प्र॒जया॑ वर्धयैनां नु॒दस्व॒ रक्षः॑ प्र॒तरं॑ धे॑ह्येनाम् ।
श्रि॒या स॑मा॒नानति॒ सर्वा॑न्त्स्यामाधस्प॒दं द्वि॑ष॒तस्पा॑-
दयामि ॥ २१ ॥

उ॒त्ऽए॑हि । वेदि॑म् । प्र॒ऽजया॑ । व॒र्ध॒य॒ । ए॒ना॒म् । नु॒दस्व॑ । रक्षः॑ ।
प्र॒ऽत॒रम् । धे॒हि॒ । ए॒ना॒म् ।

श्रि॒या । स॒मा॒नान् । अति॑ । सर्वा॑न् । स्या॒म॒ । अ॒धः॒ऽप॒दम् ।
द्वि॒ष॒तः । पा॒द॒या॒मि॒ ॥ २१ ॥

हे पक्वौदन वेदिम् हविरासादनाय प्रोक्षणादिबर्हिस्तरणादिसंस्कारसंस्कृतां भूमिं प्रति उदेहि उदागच्छ । अग्नेः सकाशाद् उत्थाय वेद्याम् आसीदेत्यर्थः । एनां पत्नीं प्रजया पुत्रादिरूपया वर्धय समृद्धां कुरु । रक्षः यज्ञविघातकं राक्षसं नुदस्व अस्मात् स्थानात् प्रेरय प्रच्यावय । ❀ नुद प्रेरणे ❀ । तथा एनां पत्नीं प्रतरम् प्रकृष्टतरं यथा भवति तथा धेहि धारय पोषय वा । ❀ डुधाञ् धारणपोषणयोः । "घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च" इति एत्वाभ्यासलोपौ ❀ । श्रिया समानान् इति उत्तरोर्धर्चो व्याख्यातः [१२] ॥

हे पक्वौदन ! तू प्रोक्षणादिबर्हिस्तरणादिसंस्कारसे संस्कृत भूमिरूप वेदीमें हविरूपसे स्थित होनेके लिये आ, अर्थात् अग्निके समीपसे उठ कर वेदीमें बैठ, इस पत्नीको पुत्र आदिरूप प्रजासे समृद्ध कर, यज्ञविघातक राक्षसको इस स्थानसे खदेड़ तथा इस पत्नीको अधिकतासे पुष्ट कर । हम सब समान पुरुषोंसे सम्पत्ति में अधिक होजावें, मैं द्वेष करने वाले शत्रुओंको औंधे गिराता हूँ १

द्वितीया ॥

अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङेनां देवताभिः
सहैधि ।
मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा
वि राज ॥ २२ ॥

अभिऽआवर्तस्व । पशुऽभिः । सह । एनाम् । प्रत्यङ् । एनाम् ।
देवताभिः । सह । एधि ।

मा । त्वा । प्र । आपत् । शपथः । मा । अभिऽचारः । स्वे । क्षेत्रे । अनमीवा । वि । राज ॥ २२ ॥

हे ब्रह्मौदन एनान् पत्नीयजमानादीन् पशुभिः लब्धव्यैर्गोमहिषाद्यैः सह अभ्यावर्तस्व अभिलक्ष्य आवृत्तो भव । तथा एनान् यष्टव्याभिर्देवताभिः सह प्रत्यङ् प्रत्यञ्चन् आभिमुख्येन गच्छन् एधि भव ॥ हे यजमान यद्वा हे पत्नि शपथः परकृत आक्रोशस्त्वा त्वां मा प्रापत् मा प्राप्नोतु । ❀ आप्लृ व्याप्तौ । माङि लुङि लृदित्वात् च्लेः अङ् आदेशः ❀ । तथा परकृतः अभिचारः मारणकर्म मा प्राप्नोतु । तथा स्वे स्वकीये क्षेत्रे स्थाने अनमीवा अमीवा रोगस्तद्रहिता सती वि राज विशेषेण राजमाना भव । ❀ राजतिः ऐश्वर्यकर्मा ❀ ॥

हे ब्रह्मौदन ! इन पत्नी यजमान आदिके अभिमुख होकर गौ महिष आदि पशुओंके साथ आ । और पूजनीय देवताओंके सहित आ । हे यजमान और हे यजमानपत्नि ! दूसरेका किया हुआ आक्रोश तुझको प्राप्त न होवे । तथा दूसरेका किया हुआ मारणकर्म भी तेरे पास न फटके तथा तू अपने स्थान पर नीरोग रहती हुई ऐश्वर्य भोग ॥ २२ ॥

तृतीया ॥

ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।
अंसद्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम् ॥ २३ ॥

ऋतेन । तष्टा । मनसा । हिता । एषा । ब्रह्मऽओदनस्य । विऽहिता । वेदिः । अग्रे ।

अंसध्रीम् । शुद्धाम् । उप । धेहि । नारि । तत्र । ओदनम् ।
सादय । दैवानाम् ॥ २३ ॥

ऋतेन सत्येन ब्रह्मणा तष्टा तनूकृता सम्यङ्निर्मिता । ❀ तक्षू त्वक्षू तनूकरणे । कर्मणि निष्ठा । "यस्य विभाषा" इति इट्प्रतिषेधः । "स्कोः संयोगाद्योः०" इति कलोपः ❀ । मनसा प्रथमसृष्टेन हैरण्यगर्भेण हिता धारिता । ❀ "दधातेर्हिः" इति निष्ठायां हिरादेशः ❀ । एषा एवंगुणविशिष्टा वेदिः ब्रह्मौदनस्य सादनाय अग्रे पुरा विहिता महर्षिभिः कल्पिता । हे नारि पत्नि अंशध्रीम् अंशान् भागान् देवमनुष्यपितृसंबन्धिनो धारयतीति अंशध्री तां शुद्धाम् अनुपहतां वेदिम् उप धेहि उप समीपे धारय । तत्र वेद्यां पक्वम् इमं देवानां स्वभूतम् ओदनं सादय प्रापय । आसादयेत्यर्थः ॥

इस वेदीको ब्रह्माजीने बनाया था और प्रथमसृष्ट हिरण्यगर्भने इसको स्थापित किया था ऐसी वेदीको ब्रह्मौदन स्थापित करने के लिये ऋषियोंने भी पहिले कल्पित किया था, सो हे नारि ! देवता मनुष्य और पितरोंके अंशोंको धारण करने वाली शुद्ध वेदीके समीपमें तू आ और उस पर इस बने हुए देवांश ओदन को रख ॥ २३ ॥

चतुर्थी ॥

अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो यमकृण्वन् ।
सा गात्राणि विदुष्योदनस्य दर्विर्वेद्यामध्येनं चिनोतु

अदितेः । हस्ताम् । स्रुचम् । एताम् । द्वितीयाम् । सप्तऽऋषयः । भूतऽकृतः । याम् । अकृण्वन् ।

सा । गात्रा॑णि । वि॒दुषी॑ । ओ॒द॒नस्य॑ । दर्वि॑ । वेद्या॑म् । अधि॑ । ए॒न॒म् ।
चि॒नो॒तु ॥ २४ ॥

अदितेः देवमातुः द्वितीयम् द्वित्वसंख्यापूरकं हस्तम् एतां होमसाधनभूतां यां स्रुचं भूतकृतः भूतानां प्राणिनां स्रष्टारः [सप्तऋषयः] अकृण्वन् अकुर्वन् सैषा दर्वि होमसाधनभूता स्रुक् ओदनस्य पक्वस्य गात्राणि शरीराणि तत्परूंषि च विदुषी जानती वेद्याम् अधि उपरि एनं ब्रह्मौदनं चिनोतु स्थापयतु ॥

सप्तर्षियोंने देवमाता अदितिके दूसरे हाथके रूपमें इस होमसाधन स्रुवेको किया था, वह यह स्रुवारूपा दर्वी ओदनके पक्व शरीरोंको जानती हुई वेदीके ऊपर ब्रह्मौदनको स्थापित करे २४

पञ्चमी ॥

शृ॒तं त्वा॑ ह॒व्यमुप॑ सीदन्तु दै॒वा निः॒सृप्या॒ग्नेः पुन॑रेना॒न्
प्र सी॑द ।
सोमे॑न पू॒तो ज॒ठरे॑ सीद ब्र॒ह्मणा॑मार्षे॒यास्ते॒ मा रि॑षन्
प्राशि॒तारः॑ ॥ २५ ॥

शृ॒तम् । त्वा॒ । ह॒व्यम् । उप॑ । सी॒द॒न्तु॒ । दै॒वाः । निः॒ऽसृप्य॑ । अ॒ग्नेः ।
पु॑नः । ए॒ना॒न् । प्र । सी॒द॒ ।
सोमे॑न । पू॒तः । ज॒ठरे॑ । सी॒द॒ । ब्र॒ह्मणा॑म् । आ॒र्षे॒याः । ते॒ । मा ।
रि॒ष॒न् । प्र॒ऽअ॒शि॒तारः॑ ॥ २५ ॥

हे ओदन शृतम् पक्वम् अत एव हव्यम् हवनयोग्यं त्वा त्वां देवा उप सीदन्तु यष्टव्या देवा उपसन्ना भवन्तु । ❀ 'शृतं पाके'

इति निपात्यते ❀ । शृतस्यैव हविषो देवार्हता तैत्तिरीये स्पष्टम् आम्नायते । “यो विदग्धः स नैर्ऋतो योशृतः स रौद्रो यः शृतः स सदेवः” इति [तै० सं० २. ६. ३. ४] । हे तादृशौदन त्वम् अग्नेः सकाशात् निःसृप्य निर्गत्य पुनरेनान् प्र सीद प्राप्नुहि । सोमेन अमृतमयेन सोमरसेन क्षीरदध्यादिरूपेण । श्रूयते हि सोमात्मकत्वं दधिपयसोः । “सोमः खलु वै सांनाय्यम्” इति [तै० ब्रा० ३. २. ३. ११] । तेन पूतः शुद्धः सन् ब्रह्मणाम् ब्राह्मणानां जठरे उदरे सीद उपविश । आर्षेयाः स्वस्वगोत्रप्रवराभिज्ञा भृग्वङ्गिरोविदस्ते ब्राह्मणा ओदनस्य प्राशितारः भोक्तारः मा रिषन् मा विनश्यन्तु । तेषाम् उदरे प्रविष्टस्त्वं हिंसां मा कृथा इत्यर्थः ॥

हे ओदन ! पके हुए अत एव हवनके योग्य तेरे पास पूजनीय देवता † आवें । हे ओदन ! तू अग्निसे निकल कर फिर इनको प्राप्त हो क्षीर दधि आदिरूप ‡ सोमरससे शुद्ध होकर इन ब्राह्मणोंके उदरमें बैठ, ये अपने २ गोत्र प्रवरको जानने वाले आर्षेय अथर्ववेदी ब्राह्मण भोजन करके हिंसित न हों ॥ २५ ॥

षष्ठी ॥

सोमं॑ राजन्त्सं॒ज्ञान॒मा व॑पैभ्य॒ः सुब्रा॑ह्मणा यत॒मे त्वो॑प॒-
सीदा॑न् ।

---

† पकी हुई हविकी ही देवार्हता तैत्तिरीयकमें स्पष्ट लिखी हुई है, कि–“यो विदग्धः स नैर्ऋतो योऽशृतः स रौद्रो यः शृतः स सदेवः ॥–अर्थात् हविका जला हुआ भाग राक्षसोंका होता है, कच्चा रुद्रदेवका होता है और पका हुआ देवताओंका अंश होता है” (तैत्तिरीयसंहिता २ । ६ । ३ । ४) ॥

‡ दधि और पयका सोमात्मकत्व श्रुतिमें कहा है, कि–“सोमः खलु वै सांन्नाय्यम्” (तैत्तिरीयसंहिता ३ । २ । ३ । ११) ॥

ऋषीनार्षेयांस्तपसोधि जातान् ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि ॥ २६ ॥

सोम । राजन् । सम्ऽज्ञानम् । आ । वप । एभ्यः । सुऽब्राह्मणाः ।
यतमे । त्वा । उपऽसीदान् ।

ऋषीन् । आर्षेयान् । तपसः । अधि । जातान् । ब्रह्मऽओदने ।
सुऽहवा । जोहवीमि ॥ २६ ॥

हे राजन् राजमान सोम तदात्मक ब्रह्मौदन एभ्यः भोक्तृभ्यो ब्राह्मणेभ्यः । ❀ तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । संज्ञानम् सम्यग् ज्ञानम् आ वप निधेहि । मोहं मा कृथा इत्यर्थः । यतमे यज्जातीयाः सुब्राह्मणाः शोभना ब्राह्मणा भृग्वङ्गिरोविदः त्वा त्वाम् उपसीदान् उपसन्ना भवन्ति । ❀ सीदतेर्लेटि आडागमः । यतमे इति । “वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्” इति डतमच् प्रत्ययः । तस्य सर्वनामगणे पाठात् तदन्तस्य सर्वनामसंज्ञायां जसः शीभावः ❀ । एभ्य इति पूर्वत्र संबन्धः । अपि च तपसोधि जाता दीक्षारूपात् तपस उत्पन्ना । “ब्रह्मणो वा एष जायते यो दीक्षते” इति हि ब्राह्मणम् [आप० १०. ११. ६] । एवंभूता सुहवा शोभनाह्वाना पत्नी आर्षेयान् प्रागुक्तलक्षणान् ऋषीन् ब्रह्मौदने विषये जोहवीमि पुनःपुनराह्वयामि । ❀ ह्वयतेर्यङ्लुगन्तात् लटि उत्तमैकवचने “ह्वः संप्रसारणम्” “अभ्यस्तस्य च” इति संप्रसारणम् । “गुणो यङ्लुकोः” इति अभ्यासस्य गुणः ❀ ॥

हे राजमान सोमात्मक ब्रह्मौदन ! इन भोक्ता ब्राह्मणोंको श्रेष्ठ ज्ञान दीजिये इनको मोहमें न डालिये, जो भृग्वंगिरोवेत्ता सुब्राह्मण तेरे पास बैठे हैं उन आर्षेय ऋषियोंको मैं दीक्षारूप

तप + से उत्पन्न हुई शोभन आह्वान वाली पत्नी ब्रह्मौदनके लिये वारम्वार बुलाती हूँ ॥ २६ ॥

सप्तमी ॥

शु॒द्धाः पू॒ता यो॒षितो॑ य॒ज्ञिया॑ इ॒मा ब्र॒ह्मणां॒ हस्ते॑षु
प्रपृ॒थक् सा॑दयामि ।
यत्का॑म इ॒दम॑भिषि॒ञ्चामि॑ वो॒हमिन्द्रो॑ म॒रुत्वा॒न्त्स द॑दादि॒दं मे॑ ॥ २७ ॥

शु॒द्धाः । पू॒ताः । यो॒षितः॑ । य॒ज्ञियाः॑ । इ॒माः । ब्र॒ह्मणा॑म् । हस्ते॑षु । प्र॒ऽपृ॒थक् । सा॒द॒या॒मि॒ ।

यत्ऽका॑मः । इ॒दम् । अ॒भि॒ऽसि॒ञ्चामि॑ । व॒ः । अ॒हम् । इन्द्रः॑ । म॒रु॒त्वा॑न् । सः । द॒दा॒त् । इ॒दम् । मे॒ ॥ २७ ॥

शुद्धाः निर्मलाः पापरहिताः पूताः स्वसंसर्गेण अन्यस्यापि पावयित्र्यः योषितः स्त्रीरूपा मिश्रणशीला वा यज्ञियाः यज्ञार्हा इमाः एवंगुणविशिष्टा अपः ब्रह्मणाम् प्रागुदीरितलक्षणानां ब्राह्मणानां हस्तेषु पाणिषु । अत्र प्र इत्युपसर्गः उपसृष्टां क्रियाम् आह । प्रक्षालनक्रियाव्याजेनेत्यर्थः । प्रकर्षेण वा पृथक् सादयामि । सांकर्यं यथा न भवति तथा विक्षिपामीत्यर्थः । हे उदीरितलक्षणा आपः वः युष्मान् अहं यत्कामः यत् फलं कामयमानः इदम्

+ आपस्तम्बश्रौतसूत्र १० । ११ । ६ में कहा है, कि-"ब्रह्मणो वा एष जायते यो दीक्षते ॥-जो दीक्षा लेता है वह तपसे ही उत्पन्न होता है" ॥

इदानीम् अभिषिञ्चामि अभितः क्षारयामि इदं काम्यमानं फलं सः प्रसिद्धो मरुत्वान् मरुद्गणैर्युक्त इन्द्रो मे मह्यं ददात् ददातु ॥

निर्मल पापरहित अपने संसर्गसे दूसरेको भी पवित्र करने वाले मिश्रणशील यज्ञके उपयुक्त जलोंको मैं ब्राह्मणोंके हाथमें अलग २ डालता हूँ, हे पूर्वोक्त लक्षणों वाले जलो ! मैं जिस कामना से तुम्हें अभिषिञ्चित करता हूँ उस फलको मरुद्गणोंके साथ इन्द्र मुझको देवें ॥ २७ ॥

अष्टमी ॥

इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा म एषा ।
इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः २८

इदम् । मे । ज्योतिः । अमृतम् । हिरण्यम् । पक्वम् । क्षेत्रात् । कामऽदुघा । मे । एषा ।

इदम् । धनम् । नि । दधे । ब्राह्मणेषु । कृण्वे । पन्थाम् । पितृषु । यः । स्वः ऽगः ॥ २८ ॥

इदं निधीयमानं हिरण्यम् अमृतम् अविनश्वरं मे मम ज्योतिः प्रकाशः । स्वर्गमार्गस्य प्रकाशको दीप इत्यर्थः ॥ पक्वम् पाकेन संस्कृतम् एतद् अन्नम् क्षेत्रात् व्रीहियवादिसस्याढ्याद् भूप्रदेशाद् उत्पन्ना एषा [मे] कामदुघा कामानां दोग्ध्री धेनुः । ❀ "दुहः कब्घश्च" इति कब्घत्वे ❀ ॥ इदं धनं दक्षिणात्वेन दीयमानं ब्राह्मणेषु नि दधे निक्षिपामि यथा मम तत् स्वर्गे लोके कोटिगुणितं स्यात् । तथा पितृषु अस्मदीयेषु पितृपितामहादिषु विषये या प्रसिद्धस्तैरभिलषितः स्वर्गः पुण्यलोकः तस्य पन्थाम् पन्थानं कृण्वे करोमि ॥

ये दिया हुआ सुवर्ण मेरे स्वर्गमार्गका अविनश्वर दीपक है, और यह संस्कृत ओदन, धान जौं आदिसे भरे हुए क्षेत्रसे आई हुई कामधेनु है, और इस धनको मैं दक्षिणारूपसे ब्राह्मणोंमें स्थापित कर रहा हूँ, यह स्वर्गमें कोटिगुणा होजावे। और मैं इससे पितरोंका अभिलषित जो स्वर्ग है उसके मार्गको बना रहा हूँ २८

नवमी ॥

अ॒ग्नौ तु॒षाना व॑प जा॒तवे॑दसि प॒रः क॒म्बूकाँ॒ अप॑ मृड्ढि दू॒रम् ।
ए॒तं शु॑श्रुम गृ॒ह॒राज॑स्य भा॒गमथो॑ वि॒द्म निर्ऋ॑तेर्भाग॒धेय॑म् ॥ २९ ॥

अ॒ग्नौ । तु॑षान् । आ । व॒प । जा॒तऽवे॑दसि । प॒रः । क॒म्बूका॑न् । अप॑ । मृ॒ड्ढि॒ । दू॒रम् ।
ए॒तम् । शु॒श्रु॒म॒ । गृ॒ह॒ऽराज॑स्य । भा॒गम् । अथो॒ इति॑ । वि॒द्म॒ । निः॑ऽऋ॑तेः । भा॒ग॒ऽधेय॑म् ॥ २९ ॥

हे ऋत्विक् जातवेदसि जातानां वेदितरि अग्नौ तुषान् ब्रह्मौदनार्थतण्डुलेभ्यः पृथक्कृतान् आ वप प्रक्षिप। तेषाम् अग्नौ प्रक्षेपः प्रतिपत्तिरित्यर्थः ॥ तथा कम्बूकान् फलीकरणान् परः परस्ताद् दूरम् अप मृड्ढि पादेन अपमार्जनं कुरु। गृहराजस्य गृहाणाम् अधिपतेर्वास्तुनाथस्य। ❀ "राजाहःसखिभ्यः०" इति टच् ❀। एतं कम्बूकाख्यं भागं शुश्रुम अभिज्ञेभ्यो वयं श्रुतवन्तः। अथो अपि च निर्ऋतेः पापदेवताया भागधेयम् हविर्भागम् एतं विद्म जानीमः। ❀ "विदो लटो वा" इति मसो मादेशः। भागशब्दात् स्वार्थे धेयप्रत्ययः ❀ ॥

हे ऋत्विक् ! जातवेदा अग्निमें ब्रह्मौदनके तण्डुलोंसे पृथक् किये हुए तुषोंको डालिये और फलीकरणोंको पैरसे अलग करिये, हमने सुना है, कि–यह फलीकरण वास्तुनाथका भाग होता है और हम यह जानते हैं, कि–यह पापदेवता निर्ऋतिका भी भाग होता है

दशमी ॥

श्राम्य॑त॒ः पच॑तो विद्धि सुन्व॒तः पन्थां॑ स्व॒र्गमधि॑
रोहयैनम् ।
येन॒ रोहा॒त् प॑र॒मापद्य॒ यद् वयं॑ उत्त॒मं नाकं॑ पर॒मं व्यो॑म

श्राम्य॑तः । पच॑तः । वि॒द्धि॒ । सु॒न्व॒तः । पन्था॑म् । स्व॒ःऽगम् । अधि ।
रो॒ह॒य॒ । ए॒न॒म् ।

ये॑न । रो॑हात् । प॑रम् । आ॒ऽपद्य॑ । य॑त् । वयः । उ॒त्ऽत॒मम् ।
नाक॑म् । प॒र॒मम् । वि॒ऽओ॑म ॥ ३० ॥

श्राम्यतः दीक्षारूपं तपस्तप्यमानान् । ❀ श्रमु तपसि खेदे च । अस्मात् लटः शत्रादेशः । "शमाम् अष्टानां दीर्घः श्यनि" इति दीर्घः ❀ । दीक्षाजनितश्रमानन्तरं पचतः उक्तरीत्या ब्रह्मौदनपाकं कुर्वतः सुन्वतः सोमाभिषवं कुर्वतः । सत्रयज्ञ एव सोमयागत्वेन रूप्यते । सत्रयज्ञानुष्ठातॄन् यजमानान् हे ब्रह्मौदन त्वं विद्धि जानीहि । एनान् यजमानान् स्वर्गम् स्वर्गप्रापकं पन्थाम् पन्थानं मार्गम् अधि रोहय उपरि आरोहय । उत्तमम् उत्कृष्टतमं नाकम् दुःखसंस्पर्शरहितं परमम् सर्वस्य परस्ताद् उपरि देशे वर्तमानं स्वर्गाख्यं यद् व्योमास्ति तद् येन पथा अयं यजमानो रोहात् रोहेत् आरूढो भवेत् । कथं भूत्वेत्याह । परम् उत्कृष्टं वयः पक्षिरूपं श्येनात्मकं यद् अस्ति तद् आपद्य आस्थाय । श्रूयते हि तैत्ति-

रीयके। "श्येनो वै वयसां पतिष्ठः। श्येन एव भूत्वा सुवर्गं लोकं पतति" इति [तै० सं० ५. ४. ११. १]। तं पन्थानम् आरोहयेति पूर्वत्रान्वयः ॥

[इति] तृतीयं सूक्तम् ॥

दीक्षारूप तपको तपते हुए, ब्रह्मौदनपाकको करते हुए और सवयज्ञरूपी सोमाभिषव करते हुए सवयज्ञके अनुष्ठाता यजमानों को हे ब्रह्मौदन ! आप जानिये और इन यजमानोंको स्वर्ग प्राप्त कराने वाले मार्ग पर चढ़ाइये, दुःखके लेशसे शून्य ऊपर जो परमोत्कृष्ट स्वर्ग नामक व्योम है उसमें यह यजमान श्रेष्ठ श्येन पक्षी का रूप धारण करके जिस प्रकार आरोहण कर सके तैसा करिये + ॥ ३० ॥ (३)

तृतीय सूक्त समाप्त

"बभ्रेरध्वर्यो" इति सूक्तस्य ब्रह्मौदनसवे "अग्ने जायस्व" [११. १] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः। तत्र "बभ्रेरध्वर्यो" इति ऋचा ओदनस्योपरि गर्तं कुर्यात्। सूत्रितं हि। "बभ्रेरध्वर्यो [३१] इदं प्रापम् [१२. ३. ४५] इत्युपर्यापानं करोति" इति [कौ० ८. ३.] ॥

"घृतेन गात्रा" इति पादेन घृतेन ओदनं विष्यन्दयेत्। "घृतेन गात्रा [३१] आ सिञ्च सर्पिः [१२. ३. ४५] इति सर्पिषा विष्यन्दयति" इति [कौ० ८. ३] सूत्रात् ॥

"कृण्वे पन्थाम्" इति चरमपादं दातारं वाचयेत्। "बभ्रे

+ तैत्तिरीयसंहिता ५। ४। ११। १ में कहा है, कि–'श्येनो वै वयसां पतिष्ठः। श्येन एव भूत्वा सुवर्गं लोकं पतति ॥–श्येन ही पक्षियोंमें अधिक उड़ने वाला है, श्येन बन कर ही प्राणी स्वर्ग पर आरोहण करता है' ॥

रक्षः" इत्यादिभिर्ऋग्भिः ओदनम् अनुमन्त्रयेत । "समाचिनुष्व" इत्यनया आज्यं जुहुयात् । "अग्ने प्रेहि [४. १४. ५] समाचिनुष्व [३६] इत्याज्यं जुहुयात्" इति हि [कौ० ८. ४] सूत्रम् ॥

'बभ्रोरध्वर्यो' सूक्तका ब्रह्मौदनसवमें 'अग्ने जायस्व' (११।१) के साथ विनियोग कह दिया है । इसकी 'बभ्रेरध्वर्यो' ऋचासे ओदनके ऊपर गर्त करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–'बभ्रेरध्वर्यो (३१) इदं प्रापम् (१२ । ३ । ४५) इत्युपगर्तापानं करोति' (कौशिकसूत्र ८ । ३)॥

'घृतेन गात्रा' पादसे घृतसे ओदनको विष्यन्दित करे । इस विषयमें कौशिकसूत्र ८ । ३ का प्रमाण है, कि–'घृतेन गात्रा (३१) आ सिञ्च सर्पिः (१२ । ३ । ४५) इति सर्पिषा विष्यन्दयति'॥

'कृण्वे पन्थाम्' इस अन्तिम पदको दातासे पढ़वावे । 'बभ्रे रक्षः' इत्यादि ऋचाओंसे ओदनका अनुमन्त्रण करे । 'समाचिनुष्व' ऋचासे घृतकी आहुति देय इसमें कौशिकसूत्र ८ । ४ का प्रमाण है, कि–'अग्नेप्रेहि (४ । १४ । ५) समाचिनुष्व (३६) इत्याज्यं जुहुयात्' ॥

तत्र प्रथमा ॥

बभ्रेरध्वर्यो मुखमेतद् वि मृड्ढ्याज्याय लोकं कृणुहि
प्रविद्वान् ।
घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु यः
स्वर्गः ॥ ३१ ॥

बभ्रेः । अध्वर्यो इति । मुखम् । एतत् । वि । मृड्ढि । आज्याय । लोकम् । कृणुहि । प्रऽविद्वान् ।

घृतेन । गात्रा । अनु । सर्वा । वि । मृड्ढि । कृण्वे । पन्थाम् ।
पितृषु । यः । स्वः॒ऽगः ॥ ३१ ॥

हे अध्वर्यो अध्वरस्य नेतर्ऋत्विक् बभ्रेः भरणशीलस्य पोषकस्य पक्वस्य ओदनस्य । ❀ डुभृञ् धारणपोषणयोः । "आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च" इति किप्रत्ययः ❀ । तथाविधस्य ओदनस्य एतन्मुखम् उपरिप्रदेशं वि मृड्ढि विशेषेण मार्जय शोधय । ❀ मृजूष् शुद्धौ । अस्मात् लोटि सेर्हिरादेशः । "हुझल्भ्यः०" इति हेर्धित्वम् । अदादित्वात् शपो लुक् । "व्रश्च०" इत्यादिषत्वे जश्त्वम् ❀ । मुखविमार्जनानन्तरम् हे अध्वर्यो विद्वान् जानन् आज्याय । ❀ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ❀ । आज्यस्य धारणार्थं लोकम् स्थानं गर्तरूपं कृणुहि कुरु ओदनमध्ये कल्पय । ❀ कृवि हिंसाकरणयोश्च । "धिन्विकृण्व्योर च" इति उप्रत्ययः। "उतश्च प्रत्ययाच्छन्दसि वा वचनम्" इति हेर्लुगभावः ❀ । तथा सर्वाणि गात्रा गात्राणि स्थालीगतस्य ओदनस्य अङ्गानि घृतेन क्षरणशीलेन आज्येन अनु वि मृड्ढि आनुपूर्व्येण विमार्जय । स्वभ्यक्तानि कुर्वित्यर्थः । अनेन ओदनेन पन्थाम् पन्थानं मार्गं कृण्वे कुर्वे । कीदृशः स पन्था इत्याह पितृष्विति । पितृषु पितृपितामहादिषु पूर्वपुरुषेषु विषयभूतेषु यः पन्थाः स्वर्गः स्वर्लोकं प्रति ऋजुत्वेन गच्छति तथाविधः ।❀ स्वर्शब्दोपपदाद् 'गमेर्डोन्यत्रापि दृश्यते" इति डप्रत्ययः ❀ । स्वर्गप्राप्तिसाधनभूतो मार्ग इत्यर्थः ॥

हे अध्वरके नेता अध्वर्यु ऋत्विक् ! इस पोषक ओदनके मुखको (उपरिप्रदेशको) भली प्रकार शुद्ध करिये, हे विद्वान् अध्वर्यो ! मुखका विमार्जन करनेके अनन्तर ओदनके मध्यमें घृतके धारण करनेके लिये गर्तरूप स्थानको करिये, तथा स्थाली के ओदनके सब अवयवोंको घृतसे अभ्यक्त करिये, पितरोंके

पास जो मार्ग स्वर्गमें जाता है उसी मार्गको मैं ओदनके द्वारा करता हूँ ॥ ३१ ॥

द्वितीया ॥

ब॒भ्रे रक्षः॑ स॒मद॒मा व॑पै॒भ्योब्रा॑ह्मणा यत॒मे त्वो॑प॒सीदा॑न् ।
पु॒री॒षिणः॒ प्रथ॑मानाः पु॒रस्ता॑दार्षे॒यास्ते॒ मा रि॑षन् प्राशि॒-
तारः॑ ॥ ३२ ॥

ब॒भ्रे । रक्षः॑ । स॒म्ऽमद॑म् । आ । व॒प॒ । ए॒भ्यः॒ । अब्रा॑ह्मणाः ।
य॒त॒मे । त्वा॒ । उ॒प॒ऽसीदा॑न् ।
पु॒री॒षिणः॑ । प्रथ॑मानाः । पु॒रस्ता॑त् । आ॒र्षे॒याः । ते॒ । मा । रि॒ष॒न् ।
प्र॒ऽअ॒शि॒ता॑रः ॥ ३२ ॥

हे बभ्रे भरणशील ब्रह्मौदन अब्राह्मणाः ब्राह्मणव्यतिरिक्ताः क्षत्रियाद्या यतमे ये त्वा त्वाम् उपसीदान् उपसीदेयुः प्राशनार्थम् उपसन्ना भवेयुः । ❀ “वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने०” इति यच्छब्दात् डतमच् । तदन्तस्य सर्वनामसंज्ञायां जसः शीभावः ❀ । एभ्यः ब्राह्मणव्यतिरिक्तेभ्यः रक्षःसमदम् रक्षोजात्या सह मदनम् । यद्वा समानं माद्यन्ति अस्मिन्निति समत् संग्रामः राक्षसैः कलहम् आ वप प्रक्षिप । राक्षसकृतां पीडां प्रापयेत्यर्थः । ये तु पुरस्ताद् उक्ता आर्षेयाः ऋषिगोत्रप्रवराभिज्ञाः पुरीषिणः पृणाति पूरयतीति वा पुरीषं प्रजापश्वादिकम् । श्रूयते हि । “प्रजा वै पशवः पुरीषम् । प्रजयैवैनं पशुभिः पुरीषवन्तं करोति” इति [तै० सं० २. ६. ४. ३]। यास्कस्तु पुरीषशब्दं निरवोचत् । पुरीषं पृणातेः पूरयतेर्वेति [नि० २. २२]। तद्व एषाम् अस्तीति पुरीषिणः । अत एव

प्रथमानाः लोके पुत्रपौत्रादिसमृद्ध्या विस्तीर्यमाणास्ते भृग्वङ्गिरोविदो ब्राह्मणाः हे ओदन तव प्राशितारः भोक्तारः मा रिषन् हिंसां मा प्राप्नुवन्तु । ❀ रिष हिंसायाम् ❀ । समृद्धा भवन्तु इत्यर्थः ॥

हे भरणशील ब्रह्मौदन ! ब्राह्मणके अतिरिक्त जो क्षत्रिय आदि प्राशनके लिये तेरे पास बैठें, इनके लिये संग्राममें राक्षसों से प्रयुक्त कलहको दीजिये और जो ऋषि गोत्र और प्रवरको जानने वाले ब्राह्मण तेरे पास बैठे हैं वे प्रथम प्रसिद्ध ब्राह्मण पुत्र पशु आदिसे समृद्ध होवें और तेरा प्राशन करने वाले वे ब्राह्मण नष्ट न होवें ॥ ३२ ॥

तृतीया ॥

आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र ।
अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे विश्वे देवा अभि रक्षन्तु
पक्वम् ॥ ३३ ॥

आर्षेयेषु । नि । दधे । ओदन । त्वा । न । अनार्षेयाणाम् ।
अपि । अस्ति । अत्र ।
अग्निः । मे । गोप्ता । मरुतः । च । सर्वे । विश्वे । देवाः । अभि ।
रक्षन्तु । पक्वम् ॥ ३२ ॥

हे ओदन त्वा त्वाम् आर्षेयेषु प्रागुक्तलक्षणेषु ब्राह्मणेषु नि दधे नितरां स्थापयामि । अत्र अस्मिन् ब्रह्मौदने अनार्षेयाणाम् ऋषिगोत्रप्रवरानभिज्ञानां पुरुषाणाम् । ❀अपिः संभावनार्थः❀ । संभावनापि नैवास्ति विद्यते । मे मम अग्निः अग्रणीर्देवो गोप्ता गोपायिता रक्षिता । ❀ गुपू रक्षणे । तृचि "आयादय आर्ध-

धातुके वा" इति आयप्रत्ययाभावः ❀ । तथा सर्वे सप्तगणात्मका मरुतः मरुत्संज्ञा देवाश्च । मम गोप्तार इति विपरिणामेन संबन्धः । अपि च विश्वे सर्वे देवाः मित्रवरुणार्यमादयः पक्वम् पाकेन संस्कृतम् इमं ब्रह्मौदनम् अभि रक्षन्तु अभितः पालयन्तु । ❀ पक्वम् इति । पचेः कर्मणि निष्ठा । "पचो वः" इति निष्ठातकारस्य वकारः ❀ ॥

हे ओदन ! मैं तुझको पूर्वोक्त लक्षणों वाले आर्षेय ब्राह्मणों में स्थापित करता हूँ इस ब्रह्मौदनमें अनार्षेयोंकी अर्थात् ऋषि गोत्र प्रवरसे अनभिज्ञ पुरुषोंकी संभावना भी नहीं है, अग्निदेव मेरे रक्षक हैं और सकल मरुद्गण भी मेरे रक्षक हैं और मित्र वरुण अर्यमा आदि सकल देवता भी इस संस्कृत ब्रह्मौदनकी चारों ओरसे रक्षा करें ॥ ३३ ॥

चतुर्थी ॥

यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम् ।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥

यज्ञम् । दुहानम् । सदम् । इत् । प्रऽपीनम् । पुमांसम् । धेनुम् । सदनम् । रयीणाम् ।

प्रजाऽअमृतत्वम् । उत । दीर्घम् । आयुः । रायः । च । पोषैः । उप । त्वा । सदेम ॥ ३४ ॥

यज्ञम् अग्निहोत्रदर्शपूर्णमासाद्यात्मकं दुहानम् उत्पादयन्तम् । ब्रह्मौदनपाकानन्तरमेव हि आधानादिवैतानक्रियास्वधिकार इति ब्रह्मौदनस्य कारणत्वोपन्यासः । सदम् इत् सदैव प्रपीनम् प्रवृद्धो-

धस्कम् । ❀ प्यायी वृद्धौ । अस्मात् प्रपूर्वात् निष्ठायां "प्यायः पी" इति पी आदेशः ❀ । पुमांसं धेनुम् । उक्तलक्षणो ब्रह्मौदनः पुंरूपा धेनुरित्यर्थः । तथा रयीणाम् धनानां सदनम् उपवेशनस्थानम् । "अन्नाद्ध भूतानि जायन्ते" [तै० आ० ८. २] इत्यादिश्रुतेः । हे ओदन एवंभूतं त्वा त्वां भुञ्जाना वयं प्रजाऽमृतत्वम् प्रकर्षेण जायत इति प्रजा पुत्रपौत्रादिरूपा तया यत् अमृतत्वम् अमरणधर्मता । सांतत्येन वृत्तिरित्यर्थः । श्रूयते हि । "प्रजाम् अनु प्रजायसे । तदु ते मर्त्यामृतम्" इनि [तै० ब्रा० १. ५. ५. ६] "प्रजाभिरग्ने अमृतत्वम् अश्याम्" इति [ऋ० सं० ५. ४. १०] च । [ताम्] उत अपि च दीर्घम् शतसंवत्सरपरिमितम् आयुः जीवनम् । तथा रायः धनस्य पोषैः समृद्धिभिश्च सह प्रजाऽमृतत्वादिकं सर्वं फलम् उप सदेम उपगम्यास्म । यद्वा प्रजाऽमृतत्वादिरूपं त्वाम् इति सामानाधिकरण्येन संबन्धः । ❀ सदेः आशीर्लिङि लिङ्याशिष्यङ्" इति अङ् प्रत्ययः ❀ ॥

(ब्रह्मौदन पाकके अनन्तर ही आधान आदि वैतान क्रियाओं का अधिकार प्राप्त होता है अत एव) यह ब्रह्मौदन अग्निहोत्र दर्शपूर्णमास आदि यज्ञोंको उत्पन्न करने वाला है, सदा प्रवृद्धोधस्क है, पुंगवरूप है, धनोंका सदन है, हे ऐसे ब्रह्मौदन ! हम तुझसे पुत्र पौत्र आदि प्रजारूप अमृतत्वको दीर्घायुको और धनपुष्टिको प्राप्त करें ॥ ३४ ॥

पञ्चमी ॥

वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान् गच्छ ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम् ॥ ३५ ॥

वृषभः । असि । स्वःऽगः । ऋषीन् । आर्षेयान् । गच्छ ।

सुऽकृताम् लोके । सीद । तत्र । नौ । संस्कृतम् ॥ ३५ ॥

हे ब्रह्मौदन त्वं वृषभः कामानां वर्षिता असि भवसि । तथा स्वर्गः स्वर्लोकस्य गन्ता गमयिता वा भवसि । अतः ऋषीन् मन्त्रद्रष्टॄन् आर्षेयान् उदीरितलक्षणान् ब्राह्मणान् गच्छ अस्माभिर्दीयमानः प्राप्नुहि । तैरुपभुक्तः सन् पश्चाद् अदृष्टरूपेण सुकृताम् पुण्यकृतां फलभूते लोके नाकपृष्ठाख्ये सीद उपविश । ततः परं नौ आवयोस्तत्र खलु सुकृतफलभूते लोके संस्कृतम् संस्कारो भोक्तृभोक्तव्यात्मकः । संपत्स्यत इत्यर्थः ॥

हे ब्रह्मौदन ! तू कामनाओंकी वर्षा करने वाला है तू स्वर्गलोकको प्राप्त कराने वाला है अतः ऋषि गोत्र और प्रवरको जानने वाला मन्त्रद्रष्टा ब्राह्मणोंके पास मेरे देने पर प्राप्त हो और उनसे उपभुक्त होकर पीछेसे अदृष्टरूपसे पुण्यात्माओंके फलभूत स्वर्गलोकमें स्थित हो तहाँ हमारा और तेरा भोक्तृभोक्तव्यात्मक संस्कार सम्पन्न होगा ॥ ३५ ॥

षष्ठी ॥

समाचिनुष्वानुसंप्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान् ।
एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ ॥

सम्ऽआऽचिनुष्व । अनुऽसंप्रयाहि । अग्ने । पथः । कल्पय । देवऽयानान् ।
एतैः । सुऽकृतैः । अनु । गच्छेम । यज्ञम् । नाके । तिष्ठन्तम् । अधि । सप्तऽरश्मौ ॥ ३६ ॥

हे ओदन त्वं समाचिनुष्व समाचयनम् सर्वेषाम् अङ्गानां समूहीभवनं कुरु । अनु पश्चात् संप्रयाहि गन्तव्यान् प्रति गच्छ । हे

अग्ने त्वमपि अस्य ओदनस्य गमनाय देवयानान् पथः देवा एव यैर्यान्ति गच्छन्ति तादृशान् मार्गान् कल्पय विरचय । वयमपि एतैरेव देवयानैः पथिभिः सुकृतैः पुण्यफलभूतैः नाके दुःखासंस्पृष्टे स्वर्गे लोके अधि सप्तरश्मौ आदित्यमण्डलस्योपरि तिष्ठन्तं यज्ञम् अनु गच्छेम अनुप्रा'नुयाम । स्मर्यते हि । "अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यग् आदित्यम् उपतिष्ठते" इति [म० स्मृ० ३. ७६] ॥

हे ओदन ! तू सकल अङ्गोंका एकत्रित होनारूप समाचयन कर, फिर गन्तव्योंके पास जा । और हे अग्निदेव ! आप भी इस ओदनके गमनके लिये जिन मार्गोंसे देवता जाते हैं उन देवयानोंकी रचना करिये और हम भी इन ही देवयानमार्गोंसे पुण्यों के फलोंके द्वारा दुःखके संस्पर्शसे शून्य स्वर्गलोकमें आदित्यमण्डलके ऊपर स्थित यज्ञके पीछे २ प्राप्त हों ‡ ॥ ३६ ॥

सप्तमी ॥

येन॑ दे॒वा ज्योति॑षा॒ द्यामु॒दाय॑न् ब्रह्मौद॒नं प॒क्त्वा सु॑कृ॒तस्य॑ लो॒कम् ।
तेन॑ गेष्म सुकृ॒तस्य॑ लो॒कं स्व॒रा॒रोह॑न्तो अ॒भि नाक॑मुत्त॒मम् ॥ ३७ ॥

येन॑ । दे॒वाः । ज्योति॑षा । द्याम् । उ॒त्ऽआय॑न् । ब्र॒ह्म॒ऽओ॒द॒नम् । प॒क्त्वा । सु॒ऽकृ॒तस्य॑ । लो॒कम् ।

---

‡ मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक ७६ में कहा है, कि—"अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ॥—अग्निमें विधिपूर्वक होमी हुई आहुति आदित्यके पास पहुँचती है" ॥

तेन॑ । गे॒ष्म॒ । सु॒ऽकृ॒तस्य॑ । लो॒कम् । स्वः॑ । आ॒ऽरोह॑न्तः । अ॒भि ।
नाक॑म् । उ॒त्ऽत॒मम् ॥ ३७ ॥

देवा इन्द्रादयो येन ज्योतिषा सूर्यरश्मिलक्षणेन तेजसा । "अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः" [भ० गी० ८. २४] इत्युदीरितलक्षणस्य देवयानमार्गस्य उपलक्षणम् एतत् । येन पथा द्याम् द्युलोकं स्वर्गम् उदायन् उदगच्छन् । किं कृत्वेत्याह । ब्रह्मौदनं पक्त्वा । एतद् ब्रह्मौदनसवाख्यं कर्म अनुष्ठायेत्यर्थः । द्यां विशिनष्टि । सुकृतस्य पुण्यकर्मणः फलभूतं लोकम् यतो देवा अनेन पथा उदायन् ततो हेतोः अस्य मार्गस्य देवयानसंज्ञा निष्पन्नेति भावः । तेन देवयानेन पथा वयमपि सुकृतस्य सुकर्मणः सवयज्ञात्मकस्य फलभूतं लोकं जेष्म जयेम प्राप्नुयाम । उक्त एवार्थो विव्रियते । उत्तमम् उत्कृष्टतमं नाकम् नाकपृष्ठाख्यं स्थानविशेषम् अभिलक्ष्य स्वः आरोहन्तः । तदुपायत्वेन स्वर्गाख्यं स्थानं प्रथमम् अधिरोहन्त इत्यर्थः । यद्वा । ❀ "लक्षणहेत्वोः क्रियायाः" इति हेतौ शतृप्रत्ययः ❀ । स्वर्गारोहणाद्धेतोः सुकृतफलं प्रथमं जयेमेति पूर्वत्र संबन्धः ॥

एवम् "अग्ने जायस्व" इत्यादिसूक्तचतुष्टयं ब्रह्मौदनाख्यस्य साङ्गस्य कर्मणः प्रतिपादकत्वेन अर्थत एकत्वाद् अर्थसूक्तम् इति मन्त्रद्रष्टृभिः परिभाष्यते । एवं सर्वेष्वर्थसूक्तेषु द्रष्टव्यम् ॥

[इति] एकादशकाण्डे प्रथमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

इन्द्र आदि देवता ब्रह्मौदन कर "अग्निर्ज्योतिरहःशुक्लः" आदि भगवद्गीतामें वर्णित जिस सूर्यज्योतिरूप ज्योतिसे अर्थात् देवयानमार्गसे द्युलोकमें गए हैं अत एव देवताओंके जानेके कारण जिसका नाम देवयान मार्ग है, हम भी पुण्यकर्मके फलभूत–सवयज्ञके फलभूत लोकको उसी देवयान मार्गसे प्राप्त होवें, हम उत्कृष्ट

नाकपृष्ठको लक्ष्यमें रख कर पहिले स्वर्गनामक स्थानमें चढें और फिर नाकपृष्ठ नामक स्थानमें जावें ॥ ३७ ॥

इस प्रकार "अग्ने जायस्व" आदि चारों सूक्त ब्रह्मौदन नामक कर्मके ही सकल अंगोंके प्रतिपादक हैं और इनका प्रयोजन एक है अत एव मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने इन चारोंके समूहको अर्थसूक्त नामसे परिभाषित किया है। इसी प्रकार सकल अर्थसूक्तोंमें समझना चाहिये।

ग्यारहवें काण्डके प्रथम अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (४७९)॥

"भवाशर्वौ मृडतम्" इत्यादिसूक्तत्रयम् अर्थसूक्तम्। तेन अर्थसूक्तेन स्वस्त्ययनकामः आज्यसमित्पुरोडाशादिशष्कुल्यन्तानां त्रयोदशद्रव्याणाम् अन्यतमं जुहुयात्। सर्वाणि वा त्रयोदश द्रव्याणि जुहुयात्। सूत्रितं हि। "विश्वजित् [६. १०७] शकधूमम् [६. १२८] भवाशर्वौ [११. २] इत्युपदधीत" इति [कौ० ७. १]॥

तथा रुद्रभूतप्रेतराक्षसलोकपालादिनिमित्ताभिघाते स्वस्त्ययनार्थं सरूपवत्साया गोर्दुग्धे पक्वं चरुं त्रिधा विभज्य समस्तेन अर्थसूक्तेन रुद्रदेवतायै तिस्र आहुतीर्जुहुयात्। सूत्रितं हि। "विश्वजित् [६. १०७] शकधूमम् [६. १२८] भवाशर्वौ [११. २] इत्युपदधीत। उत्तमेन सारूपवत्सस्य रुद्राय त्रिर्जुहोति' इति [कौ० ७. १]॥

तथा मांसमुखाग्रपतनलक्षणाद्भुतशान्त्यर्थम् अनेन अर्थसूक्तेन रुद्राय आज्यं जुहुयात्। "अथ यत्रैतन्मांसमुखो निपतति तत्र जुहुयात्" इति प्रक्रम्य कौशिकेन सूत्रितम्। "रुद्राय स्वाहेति हुत्वा भवाशर्वौ मृडतं माभि यातम् इत्येतेन सूक्तेन जुहुयात्। सा तत्र प्रायश्चित्तिः" इति [कौ० १३. ३७]॥

तथा अग्निचयने रौद्रीरिष्टका अनेनार्थसूक्तेन अनुमन्त्रयेत।

तद्ध उक्तं वैताने । "भवाशर्वौ मृडतम् [११. २] यस्ते सर्पः [१२. १. ४६] इति रौद्रीः" इति [वै० ५. २] ॥

तथा सर्वकामप्राप्त्यर्थं शान्त्यर्थं वा क्रियमाणे लक्षहोमे एतद्ध अर्थसूक्तम् । तथा च आथर्वणपरिशिष्टेभिहितम् ।" 'ब्रजश्च मे क्षत्रं च मे' ये अग्नयः [३. २१] नमो देववधेभ्यः [६. १३] भवाशर्वौ [११. २] प्राणाय नमः [११. ६] इति हुत्वा" इति ॥

"भवाशर्वौ" आदि तीन सूक्तोंका समूह एक ही अर्थ–प्रयोजन–को कहने वाला होनेसे अर्थसूक्त कहलाता है । स्वस्त्ययन चाहने वाला इस अर्थसूक्तसे घृत समिधा पुरोडाश पूरी आदि तेरह द्रव्योंमेंसे एककी आहुति देय । वा सब तेरह द्रव्योंकी आहुति देय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"विश्वजित् (६ । १०७ शकधूमम् (६ । १२८ भवाशर्वौ (११ । २) इत्युपदधीत" (कौशिकसूत्र ७ । १) ॥

तथा रुद्र भूत प्रेत राक्षस लोकपाल आदिसे अभिघातमें स्वस्त्ययनके लिये अपने और बछड़ेके एकसे रूप वाली गौके दुग्धमें बने हुए चरुको तीन भागोंमें बाँट कर समस्त अर्थसूक्तसे रुद्रदेवताके लिये तीन आहुति होमे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"विश्वजित् (६ । १०७) शकधूमम् (६ । १२८) भवाशर्वौ (११ । २) इत्युपदधीत । उत्तमेन सारूपवत्सस्य रुद्राय त्रिर्जुहोति" (कौशिकसूत्र ७ । १) ॥

तथा मांसमुखाग्रपतनलक्षण अद्भुतकी शान्तिके लिये इस अर्थसूक्तसे रुद्रदेवके लिये घृतकी आहुति देय । कौशिकने "अथ यत्रैतन्मांसमुखो निपतति तत्र जुहुयात्" का आरम्भ करके कहा है, कि–"रुद्राय स्वाहेति हुत्वा भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं इत्येतेन सूक्तेन जुहुयात् । सा तत्र प्रायश्चित्तिः । रुद्राय स्वाहासे आहुति देकर भवाशर्वौ सूक्तसे आहुति देय, यही इसका प्रायश्चित्त है ।" (कौशिकसूत्र १३ । ३७) ॥

तथा अग्निचयनमें रौद्री (रुद्रनिमित्तक) ईंटोंका इस अर्थसूक्तसे अनुमन्त्रण करे। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-“भवाशर्वौ मृडतम् (११ । २) यस्ते सर्पः (१२ । १ । ४६) इति रौद्रीः” (वैतानसूत्र ५ । २) ॥

तथा सर्वकामप्राप्तिके लिये वा शान्तिके लिये किये जाने वाले लक्षहोममें यह अर्थ सूक्त उपयुक्त होता है। इसी बातको आथर्वणपरिशिष्टमें कहा है, कि–‘व्रजश्च मे क्षत्रं च मे’ “ये अग्नयः (३ । २१) नमो देववधेभ्यः (६ । १३) भवाशर्वौ (११ । २) प्राणाय नमः (११ । ६) इति हुत्वा” ॥

तत्र प्रथमा ॥

**भवा॑शर्वौ मृ॒डतं॒ माभि या॑तं॒ भूत॑पती॒ पशु॑पती॒ नमो॑ वाम्
प्रति॑हिता॒माय॑तां॒ मा वि स्रा॑ष्टं॒ मा नो॑ हिं॑सिष्टं द्वि॒पदो॒
मा चतु॑ष्पदः ॥ १ ॥**

भवा॑शर्वौ । मृ॒डत॑म् । मा । अ॒भि । या॒त॒म् । भूत॑पती॒ इति॒ भूत॑ऽपती । पशु॑पती॒ इति॒ पशु॑ऽपती । नम॑ः । वा॒म् । प्रति॑ऽहिताम् । आऽय॑ताम् । मा । वि । स्रा॒ष्ट॒म् । मा । नः॒ । हिं॒सि॒ष्ट॒म् । द्वि॒ऽप॑दः । मा । चतु॑ःऽपदः ॥ १ ॥

एतदादिसूक्तत्रयेण भौमान्तरिक्षाद्युत्पातदोषनिवृत्तये अष्टमूर्तिर्महादेवः प्रार्थ्यते । ताश्च पारमेश्वर्यो मूर्तयः आगमिकैरेवम् अनुक्रान्ताः ।

शर्वं पशुपतिं चोग्रं रुद्रं भवम् अथेश्वरम् ।
महादेवं च भीमं च ।

इति । तासाम् उत्पत्तिः शतपथब्राह्मणे षष्ठकाण्डे “असद् वा

इदम् अग्र आसीत्" [श० ब्रा० ६. १. १. १] इत्यादिना प्रपञ्चिता। तत्र सृष्ट्यादौ भवति यस्मात् सर्वं जगद् इति भवः। शृणाति सर्वं जगद्धिनस्ति संहृतिसमये इति शर्वः। स्थितिकालवर्तिनीनाम् अन्यासा मूर्तीनाम् उपसंग्रहाय सृष्टिसंहृतिकारिण्यौ आद्यन्तवर्तिन्यौ परमेश्वरस्य मूर्ती निर्दिश्येते। भवश्च शर्वश्च भवाशर्वौ। ❀"देवताद्वन्द्वे च"इति पूर्वपदस्य आनङ् आदेशः❀। हे भवाशर्वौ एतत्संज्ञौ देवौ मृळतम् अस्मान् सुखयतम्। ❀ मृड सुखने ❀। तथा मा माम् अभि यातम् रक्षणार्थम् आभिमुख्येन गच्छतम्। यद्वा हिंसार्थम् अभिगमनं मा कार्ष्टम्। हे भूतपती भूतानां प्राणिनां स्वामिनौ हे पशुपती पशूनां गोमहिषादीनां पालयितारौ वाम् युवाभ्यां नमः। करोमीति शेषः। अस्मदीयेन नमस्कारेण संतुष्टौ युवां प्रतिहिताम् आत्मीये धनुषि प्रतिसंहिताम् आयताम् ज्यया सह आकृष्टाम् आत्मीयाम् इषुं मा वि स्राष्टम् अस्मदाभिमुख्येन मा विसृजतम्। "याम् इषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे" इति हि निगमः [तै० सं० ४. ५. १. २]। ❀ सृज विसर्गे इत्यस्माद्धातोर्माङि लुङि मध्यमद्विवचने "सृजिदृशोर्झल्यम् अकिति" इति अम् आगमः। "सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु" इति वृद्धिः। "झलो झलि" इति सलोपः। "व्रश्च०" इत्यादिषत्वे ष्टुत्वम् ❀। तथा नः अस्माकं द्विपदः पादद्वयोपेतान् पुत्रभृत्यादिरूपान् मनुष्यान् मा हिंसिष्टम्। ज्वरादिरोगेण पीडितान् मा कार्ष्टम् इत्यर्थः। तथा चतुष्पदः पादचतुष्टयोपेतान् गोमहिषाश्वादीन् अस्मदीयान् मा हिंसिष्टम्। ❀ द्वौ पादावस्य चत्वारः पादा अस्येति विगृह्य समासे "संख्यासुपूर्वस्य" इति पादशब्दस्य अन्त्यलोपः। शसि भसंज्ञायां "पादः पत्" इति पद्भावः। द्विपद इत्यत्र "द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु बहुव्रीहौ" इति उत्तरपदान्तोदात्तत्वम्। चतुष्पद इत्यत्र तु "बहुव्रीहौ प्रकृत्या०" इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥

(इन तीन सूक्तोंमें भूमिके और अन्तरिक्ष आदिके उत्पातोंकी दोषकी निवृत्तिके लिये अष्टमूर्ति महादेवजीकी प्रार्थना की गई है। परमेश्वरकी इन मूर्तियोंका शास्त्रकारोंने इस प्रकार वर्णन किया है, कि–"शर्वं पशुपतिं चोग्रं रुद्रं भवं अथेश्वरम् महादेवं च भीमं च" इनकी उत्पत्ति शतपथब्राह्मण ६। १। १। १ में "असद्व वा इदमग्र आसीत्" इत्यादिमें वर्णित है। इनमेंसे सृष्टिकी आदिमें जिनसे जगत् (भवति) होता है वह भवमूर्ति कहलाते हैं और प्रलयके समय जो सब जगत्का शृणन करते हैं–हिंसन करते हैं–वह शर्व कहलाते हैं। स्थितकालके भीतर वर्तमान रहने वालीं अन्य मूर्तियोंका उपसंग्रह करनेके लिये यहाँ सृष्टि और संहार करने वाली आदि और अन्तकी दो मूर्तियोंका ही निर्देश किया है कि) हे भव और शर्व देवताओं! आप हमको सुख दीजिये और रक्षा करनेके लिये मेरे अभिमुख चलिये अथवा हिंसा करनेके लिये मेरे सन्मुख न पधारिये। हे भूतों (प्राणियों) के स्वामियों! हे गौ भैंस आदि पशुओंका पालन करने वाले! मैं आपके लिये प्रणाम करता हूँ, मेरे प्रणामसे प्रसन्न हुए आप अपने धनुष पर चढ़ाये हुए और प्रत्यञ्चाके साथ खैंचे हुए अपने बाणको मेरी ओर न छोड़िये +। तथा हमारे दो पैर वाले पुत्र भृत्य आदिका संहार न करिये अर्थात् ज्वर आदि रोगोंसे उनकी हिंसा न करिये तथा हमारे चार पैर वाले गौ भैंस घोड़े आदिका संहार न करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

शुने॑ क्रो॒ष्ट्रे मा शरी॑राणि॒ कर्त॑म॒लिक्ल॑वेभ्यो॒ गृध्रे॑भ्यो॒ ये
च॑ कृ॒ष्णा आ॑वि॒ष्यवः॑ ।

+ तैत्तिरीयसंहिता ४। ५। १। २ में कहा है, कि–'यामिषुं गिरिशं त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे' ॥

मक्षि॑कास्ते पशुपते॒ वयाँ॑सि ते विघ॒से मा वि॑दन्त २

शु॑ने । क्रो॒ष्ट्रे॑ । मा । शरी॑राणि । कर्त॑म् । अ॒लिक्ल॑वेभ्यः । गृ॑ध्रेभ्यः ।

ये । च॒ । कृ॒ष्णाः । अ॒वि॒ष्य॑वः ।

मक्षि॑का । ते॒ । प॒शु॒ऽप॒ते॒ । वयां॑सि । ते॒ । वि॒ऽघ॒से । मा । वि॒द॒न्त॒ २

हे भवाशर्वौ शरीराणि अस्मत्संबन्धीनि शुने सारमेयाय । ❀ "श्वयुवमघोनाम् अतद्धिते" इति संप्रसारणम् ❀ । क्रोष्ट्रे सृगालाय । ❀ "विभाषा तृतीयादिष्वचि" इति क्रोष्टृशब्दस्य तृज्वद्भावः। उभयत्र तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । श्वसृगालभक्षणार्थं कर्तुं मा । प्रभवतम् इत्यर्थः। तथा अविक्लवेभ्यः विक्लवा अधृष्टाः कातरास्तद्विपरीतेभ्यः । ❀ वर्णविकारश्छान्दसः ❀। गृध्रेभ्यः मांसमुखेभ्यः पक्षिभ्यः । ये च कृष्णाः कृष्णवर्णा वायसाः अविष्यवः आमिषम् इच्छन्तः अन्तरिक्षे संचरन्ति तेभ्यश्च । गृध्रकाकादिपक्षिणां भक्षणार्थमपि अस्मच्छरीराणि मा कुरुतम् इत्यर्थः। हे पशुपते पशूनाम् अधिपते रुद्र ते त्वदीया मक्षिकाः तथा ते त्वदीयानि वयांसि पक्षिणश्च विघसे विशेषेण अद्यत इति विघसः अन्नम् । ❀ "उपसर्गेऽदः" इति अप् । "घञपोश्च" इति घस्लृ आदेशः ❀। तस्मिन् विघसे अन्ने निमित्तभूते सति मा विदन्त अच्छरीराणि न लभन्ताम् । मा भक्षयन्तु इत्यर्थः । ❀ विद्लृ लाभे । माङि लुङि लृदित्त्वात् च्लेः अङ् आदेशः ❀ ॥

हे भव और शर्व देवताओं! हमारे शरीरोंको कुत्ते और गीदड़ के भक्षणके लिये मत करिये और धृष्ट मांसमुख गीधोंके लिये भी मत करिये और जो कृष्णवर्णके वायस मांसको चाहते हैं हमारे शरीरोंको उनके अर्पण भी न करिये। हे पशुपते! आपकी

जो मक्खियें और पक्षी हैं वे विशेषरूपसे खाया जाने वाले अन्न के रूपमें मुझको प्राप्त न कर सकें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

क्रन्दा॑य ते प्रा॒णाय॒ याश्च॑ ते भव॒ रोप॑यः ।
नम॑स्ते रुद्र कृण्मः सहस्रा॒क्षाया॑मर्त्यः ॥ ३ ॥

क्रन्दा॑य । ते॒ । प्रा॒णाय॑ । याः । च॒ । ते॒ । भ॒व॒ । रोप॑यः ।
नम॑ः । ते॒ । रु॒द्र॒ । कृ॒ण्मः॒ । स॒ह॒स्र॒ऽअ॒क्षाय । अ॒म॒र्त्य॒ ॥ ३ ॥

हे भव । ते तव क्रन्दाय क्रन्दनाय शब्दाय प्राणाय प्राणवायवे नमस्कुर्मः । यद्वा क्रन्दयति रोदयति सर्वम् अन्तकाले इति क्रन्दः । ❀ कदि क्रदि क्लदि आह्वाने रोदने च ❀ । तथा प्राणाय प्राणयित्रे प्राणनव्यापारेण चेष्टयित्रे जगत्प्राणभूताय वा ते तुभ्यं नमस्कुर्मः । तथा हे भव ते तव याश्च रोपयः रोपयित्र्यो मोहयित्र्यस्तन्वः सन्ति ताभ्यश्च नमस्कुर्म इत्यर्थः । ❀ युप रुप लुप विमोहने । अस्माद् औणादिक इकारप्रत्ययः ❀ ॥ हे रुद्र । रोदयति सर्वम् अन्तकाल इति रुद्रः । ❀ रोदेर्णिलुक् च इति [उ०२.२२] रक् प्रत्ययः । णिचो लुका लुप्तत्वात् प्रत्ययलक्षणाभावात् लघूपधगुणाभावः ❀ । यद्वा रुद् दुःखं दुःखहेतुर्वा तस्य द्रावको देवो रुद्रः परमेश्वरः । हे देव सहस्राक्षाय सहस्रम् अक्षीणि दर्शनशक्तयो यस्य स तथोक्तः । सर्वजगत्साक्षिणे । निरावरणज्ञानरूपायेत्यर्थः । ❀ "बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः०" इति षच् समासान्तः ❀ । अमर्त्यः । ❀ "सुपां सुलुक्०" इति चतुर्थ्येकवचनस्य सु आदेशः ❀ । अमर्त्याय अमरणधर्मणे । सांसारिकदुःखासंस्पृष्टायेत्यर्थः । एवंभूताय ते तुभ्यं नमः नमस्कारं कृण्मः कुर्मः ॥

हे भव ! आपके क्रन्दन शब्दके लिये और प्राणवायुके लिये

हम नमस्कार करते हैं और आपके मोहमें डालने वाले शरीरोंके लिये नमस्कार करते हैं, हे दुःखके हेतु रुद्को भगाने वाले रुद्रदेव ! सर्वजगत्के साक्षी निरावरणज्ञानरूप अमरणधर्मी आपके लिये हम नमस्कार करते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

पु॒रस्ता॑त् ते॒ नमः॑ कृण्म उत्त॒राद॑ध॒रादुत ।
अ॒भी॒व॒र्गाद् दि॒वस्प॒र्यन्तरि॑क्षाय ते॒ नमः॑ ॥ ४ ॥

पु॒रस्ता॑त् । ते॒ । नमः॑ । कृ॒ण्मः॒ । उ॒त्त॒रात् । अ॒ध॒रात् । उ॒त ।
अ॒भि॒ऽव॒र्गात् । दि॒वः । परि॑ । अ॒न्तरि॑क्षाय । ते॒ । नमः॑ ॥ ४ ॥

हे रुद्र ते तुभ्यं पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि नमः कृण्मः नमस्कारं कुर्मः । तथा उत्तरात् उत्तरस्यां दिशि । अधरात् । अधरशब्दो दक्षिणदिग्वचनः । "पश्चात् पुरस्ताद् अधराद् उदक्तात्" [ऋ० १०. ८७. २१] इत्यादिनिगमेषु तथा दर्शनात् । अधरस्यां दक्षिणस्यां दिशि । ❀ " उत्तराधरदक्षिणाद् आतिः" इति सप्तम्यर्थे आतिप्रत्ययः ❀ । उतशब्दः अप्यर्थे । दक्षिणोत्तरदिशोरवस्थिताय ते तुभ्यं नमः । कृण्म इत्यनुषङ्गः । अभीवर्गात् अभितो वृज्यते गृहादिरूपेण परिच्छिद्यते इति अभीवर्गः अवकाशात्मक आकाशः । ❀ वृजी वर्जने । कर्मणि घञ् । "उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्" इति दीर्घः ❀ । तादृशाद् दिवः द्योतमानाद् आकाशात् परि उपरिभागे । ❀ "पञ्चम्यपाङ्परिभिः" इति पञ्चमी । "पञ्चम्याः परावध्यर्थे" इति विसर्जनीयस्य सत्वम् ❀ । आकाशमण्डलस्य मध्ये अन्तरिक्षाय अन्तरा क्षान्ताय नियन्तृत्वेन अवस्थिताय ते तुभ्यं नमस्कुर्मः । "अस्मिन् महत्यर्णवेन्तरिक्षे भवा अधि" इति हि निगमान्तरम् [तै० सं०. ४. ५. ११. १] ॥

हे रुद्र ! हम आपको पूर्वदिशामें नमस्कार करते हैं, उत्तर दिशामें आपको नमस्कार करते हैं दक्षिणदिशामें आपको नमस्कार करते हैं, और आकाशमण्डलके मध्यमें नियन्तारूपसे स्थित आप के लिये हम नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

मुखा॑य ते पशुपते॒ यानि॒ चक्षूं॑षि ते भव ।
त्व॒चे रू॒पाय॑ सं॒दृशे॑ प्रती॒चीना॑य ते॒ नमः॑ ॥ ५ ॥

मुखा॑य । ते॒ । प॒शुऽप॒ते॒ । यानि॑ । चक्षूं॑षि । ते॒ । भ॒व॒ ।
त्व॒चे । रू॒पाय॑ । स॒म्ऽदृशे॑ । प्र॒ती॒चीना॑य । ते॒ । नमः॑ ॥ ५ ॥

हे पशुपते पशूनां पालयितर्देव ते त्वदीयाय मुखाय आस्याय नमोस्तु । हे भव एतत्संज्ञक देव ते तव यानि चक्षूंषि दर्शनसाधनानि इन्द्रियाणि सन्ति तेभ्यो नमोस्तु । तथा त्वचे त्वच्छरीरसंबन्धिने चर्मणे रूपाय नीलपीतादिवर्णाय संदृशे सम्यग्दर्शनाय । यद्वा सम्यग् अर्थान् पश्यतीति संदृक् संद्रष्टा तद्रूपाय । प्रतीचीनाय प्रत्यगात्मरूपिणे ते तुभ्यं नमोस्तु । ❀ प्रतिपूर्वाद् अञ्चतेः 'ऋत्विग्०' इत्यादिना क्विन् । "अनिदिताम्०" इति नलोपः ॥ "विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रियाम्" इति स्वार्थिकः खप्रत्ययः ❀ ॥

हे पशुओंके पालक देव ! आपके मुखके लिये नमस्कार हो, हे भवनामक देव ! आपकी जो दर्शनसाधन इन्द्रियें हैं उनके लिये नमस्कार हो, आपकी त्वचाके लिये, आपके नील पीत वर्णके लिये, आपकी सम्यग्दृष्टिके लिये और प्रत्यगात्मरूपी आपको प्रणाम पहुँचे ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

अङ्गे॑भ्यस्त उ॒दरा॑य जि॒ह्वायां॑ आ॒स्या॑य ते ।
द॒द्भ्यो ग॒न्धाय॑ ते॒ नमः॑ ॥ ६ ॥

अङ्गे॑भ्यः । ते॒ । उ॒दरा॑य । जि॒ह्वायै॑ । आ॒स्या॑य । ते॒ ।
द॒त्ऽभ्यः । ग॒न्धाय॑ । ते॒ । नमः॑ ॥ ६ ॥

हे पशुपते ते तव संबन्धिभ्यः अङ्गेभ्यः हस्तपादादिभ्यो नमोस्तु । सामान्योक्तमेव प्राधान्यख्यापनाय विशेषतो निर्दिशति । ते तव लीलाविग्रहधारिणः संबन्धिने उदराय जिह्वायै रसनायै आस्याय आस्याख्यकुहराय दद्भ्यः दन्तेभ्यः गन्धाय गन्धग्राहकेन्द्रियाय घ्राणाय ते त्वत्संबन्धिने नमः । ❀ दद्भ्य इति । "पद्दन्०" इत्यादिना दन्तशब्दस्य दद्भावः ❀ ॥

हे पशुपते ! आपके हाथ पैर आदि अंगोंके लिये नमस्कार है, लीलाविग्रहधारी आपके उदर जिह्वा मुख दाँत और गंधग्राहक घ्राणेन्द्रियके लिये प्रणाम है ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

अ॒स्त्रा नील॑शिखण्डेन सहस्रा॒क्षेण॑ वा॒जिना॑ ।
रु॒द्रेणा॑र्धकघा॒तिना॒ तेन॒ मा सम॑रामहि ॥ ७ ॥

अ॒स्त्रा॑ । नील॑ऽशिखण्डेन । स॒ह॒स्र॒ऽअ॒क्षेण॑ । वा॒जिना॑ ।
रु॒द्रेण॑ । अ॒र्ध॒क॒ऽघा॒तिना॑ । तेन॑ । मा । सम् । अ॒रा॒म॒हि॒ ॥ ७ ॥

अस्त्रा क्षेप्त्रा नीलशिखण्डेन नीलवर्णकेशसंनिवेशविशेषयुक्तेन सहस्राक्षेण सहस्रसंख्याकचक्षुरिन्द्रिययुक्तेन वाजिना वेगवता अर्धकघातिना सेनाया अर्धं हन्तुं शीलम् अस्य । ❀ "सुप्यजातौ

णिनिस्ताच्छील्ये" इति हन्तेर्णिनिप्रत्ययः । "हनस्तोचिण्णलोः" इति तत्वम् । "हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु" इति घत्वम् ❀ । एवंगुणविशिष्टेन तेन प्रसिद्धेन रुद्रेण मा सम् अरामहि मा संगच्छामहै । आर्ता मा भूमेत्यर्थः । ❀ ऋ गतौ । अस्मात् माङि लुङि "समो गम्यृच्छि" इति आत्मनेपदम् । "सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च" इति च्लेः अङ् आदेशः ❀ ॥

हम फेंकने वाले, नीले केशों वाले, सहस्रों नेत्रों वाले, वेगवान् आधी सेनाका नाश कर डालने वाले प्रसिद्ध रुद्रदेवसे संगत न हों—आर्त न हों ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

स नो॑ भ॒वः परि॑ वृणक्तु वि॒श्वत॒ आप॑ इ॒वाग्निः परि॑
वृणक्तु नो भ॒वः ।
मा नो॒भि मां॑स्त॒ नमो॑ अस्त्वस्मै ॥ ८ ॥

स । न॒ः । भ॒वः । परि॑ । वृ॒ण॒क्तु॒ । वि॒श्वतः॑ । आपः॑ऽइव । अ॒ग्नि॒ः ।
परि॑ । वृ॒ण॒क्तु॒ । न॒ । भ॒वः ।
मा । न॒ः । अ॒भि । मां॒स्त॒ । नमः॑ । अ॒स्तु॒ । अ॒स्मै॒ ॥ ८ ॥

सः उदीरितप्रभावो भवः नः अस्मान् विश्वतः विश्वस्मात् सर्वस्माद् उपद्रवजातात् परि वृणक्तु परितो वर्जयतु । अयमेवार्थो दृष्टान्तेन दृढीक्रियते आप इवाग्निरिति । यथा दहन्नग्निः आपः । ❀ शसि छान्दसी वृद्धिः ❀ । अपः उदकानि परिवर्जयति परित्यजति एवं न अस्मान् भवः परि वृणक्तु परित्यजतु । नः अस्मान् माभि मस्त मा अभिमन्यताम् । मा बाधताम् इत्यर्थः ❀ । अभिपूर्वो मन्यतिर्हिंसने वर्तते । अस्मान्माङि लुङि "एकाच उपदेशे-

नुदात्तात्” इति सिच इट्प्रतिषेधः । “न माङ्योगे” इति अडभावः ❀ । अस्मै भवाय नमोस्तु नमस्कारो भवतु ॥

प्रकट महिमा वाले वह भव हमको सब उपद्रवोंसे मुक्त रक्खें, जैसे अग्नि जलको छोड़ देता है, तैसे ही रुद्रदेव हमको छोड़ देवें, वह हमको पीड़ा न देवें, उन भवके लिये प्रणाम हो ॥ ८ ॥

नवमी ॥

च॒तुर्नमो॑ अष्ट॒कृत्वो॑ भ॒वाय॒ दश॒ कृत्व॑ः पशुपते॒ नम॑स्ते ।
त॒वे॒मे पञ्च॑ प॒शवो॒ विभ॑क्ता॒ गावो॒ अश्वा॒ः पुरु॑षा अजा॒वय॑ः ॥ ९ ॥

च॒तु । नम॑ः । अ॒ष्ट॒ऽकृत्व॑ः । भ॒वाय॑ । दश॑ । कृत्व॑ः । प॒शु॒ऽप॒ते॒ । नम॑ः । ते॒ ।
त॑व । इ॒मे॑ । पञ्च॑ । प॒श॑वः । वि॒ऽभ॑क्ताः । गाव॑ः । अश्वा॑ः । पुरु॑षाः । अ॒ज॒ऽअ॒व॑यः ॥ ९ ॥

अष्टकृत्वो भवायेति विशेषणात् चतुर्नम इत्यत्र शर्वायेति अर्थात् संबध्यते । चतुः चतुर्वारं शर्वाय नमोस्तु । ❀ “द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्” इति क्रियाभ्यावृत्तिगणने सुच् प्रत्ययः❀।तथा भवाय देवाय अष्टकृत्वः अष्टवारं नमोस्तु । ❀ “संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्” इति कृत्वसुच् प्रत्ययः ❀ । हे पशुपते ते तुभ्यं दशकृत्वः दशवारं नमोस्तु । कस्माद् एवं प्रार्थ्यस इत्युच्यते। इमे वक्ष्यमाणा विभक्ताः जातितो भिन्नाः हे पशुपते तव स्वभूताः गावः गोत्वजातीयाः सास्नादिमद्व्यक्तयः अश्वाः अश्वजात्याक्रान्ता एकखुराः पशवः पुरुषाः मनुष्याजातीयाः अजाश्च अवयश्च अजावयः । अजत्वा-

वित्वे द्वे जाती विभिन्नव्यक्तिके प्रसिद्धे । यस्माद् इमे पञ्चधा भिन्ना पशवस्तव स्वभूतास्तस्मात् तान् रक्षेति प्रार्थ्यस इत्यर्थः ॥

शर्वदेवके लिये वारवार नमस्कार है, भवदेवके लिये नमस्कार है, हे पशुपते ! आपके लिये दशवार नमस्कार है, (इस प्रार्थना का कारण यह है, कि—) आपके जो जातिसे भिन्न २ गौ घोड़े पुरुष बकरी और भेड़ रूप पाँच (पशु) अज्ञानी प्राणी हैं उनकी रक्षा करिये ॥ ६ ॥

दशमी॥।

तव॒ चत॑स्र प्र॒दि॒शस्तव॒ द्यौस्तव॑ पृथि॒वी तवे॒दमु॑ग्रो॒र्व॑-
॒ऽन्तरि॑क्षम् ।
त॒वेदं सर्व॑मा॒त्मन्वद् यत् प्रा॒णत् पृ॑थि॒वीमनु॑ ॥ १० ॥

तव॑ । चत॑स्रः । प्र॒ऽदिशः॑ । तव॑ । द्यौः॑ । तव॑ । पृ॒थि॒वी । तव॑ । इ॒दम् । उ॒ग्र॒ । उ॒रु । अ॒न्तरि॑क्षम् ।

तव॑ । इ॒दम् । सर्व॑म् । आ॒त्म॒न्ऽवत् । यत् । प्रा॒णत् । पृ॒थि॒वीम् । अनु॑ ।

हे उग्र उद्गूर्णबल रुद्र चतस्रः चतुःसंख्याकाः प्रदिशः प्रधानभूताः प्राच्याद्या महादिशस्तव स्वभूताः । तथा द्यौः स्वर्गलोकोपि तव वशे वर्तते । पृथिवी भूलोकश्च तव स्वभूता । इदं परिदृश्यमानम् उरु विस्तीर्णम् अन्तरिक्षं च तवाधीनम् । इत्थं दिग्वलयं लोकत्रयं च व्याप्य अवस्थितस्य तव इदं परिदृश्यमानं सर्वम् आत्मन्वत् आत्मना भोक्तृरूपेण अधिष्ठितं शरीरजातं स्वभूतम् । ❀ आत्मा अस्यास्तीति आत्मन्वत् । मतुपि पदसंज्ञायां नलोपे “मादुपधायाः०” इति वत्वम् । “अनो नुट्” इति नुडागमः ❀ । तथा पृथिवीम् अनु । ❀ लक्षणे अनोः कर्मप्रवचनीयत्वम् ❀ । पृथिवीं

लक्षीकृत्य । पृथिव्याम् इत्यर्थः । यत् प्राणत् प्राणनव्यापारं कुर्वद् वर्तते तत् सर्वं तव । प्रशासने इत्यर्थः । तस्मात् सर्वेषाम् अनुग्रहाय त्वमेव नमस्कार्यो भवसीति भावः ॥

[इति] पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे प्रचण्डबली रुद्र ! पूर्व आदि चारों महादिशाएँ आपकी ही हैं, और स्वर्गलोक भी आपके वशमें हैं और यह विस्तीर्ण अन्तरिक्ष भी आपका ही है, यह भूलोक भी आपका ही है, इस प्रकार दिग्वलय और लोकत्रयको व्याप्त करके स्थित सब आपका भोक्तृरूपसे अधिष्ठित है–शरीर ही है, पृथ्वीमें जो कुछ प्राणनव्यापार करता है वह सब आपकी आज्ञामें ही रहता है, अतः सब पर अनुग्रह करनेके लिये आप ही नमस्कार्य हैं ॥१०॥(५)

पञ्चम सूक्त समाप्त ॥

"उरुः कोशः" इत्यस्य सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः॥

"उरुः कोशः" सूक्तका पूर्वसूक्तके साथ विनियोग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः ।
स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥ ११ ॥

उरुः । कोशः । वसुऽधानः । तव । अयम् । यस्मिन् । इमा । विश्वा । भुवनानि । अन्तः ।
सः । नः । मृड । पशुऽपते । नमः । ते । परः । क्रोष्टारः । अभिऽभाः । श्वानः । परः । यन्तु । अघऽरुदः । विऽकेश्यः ॥ ११ ॥

हे पशुपते पशूनां पालयितर्महादेव उरुः विस्तीर्णो वसुधानः वसूनि वासहेतुभूतानि पुण्यपापरूपाणि कर्माणि धीयन्ते अस्मिन्निति वसुधानः । ❀ दधातेः अधिकरणे ल्युट् ❀ । एवंभूतः कोशः अण्डकटाहात्मकः तवायम् । तव स्वभूतोयम् इत्यर्थः । कोशं विशिनष्टि । यस्मिन् अण्डकटाहात्मके महति कोशे अन्तः मध्ये इमा इमानि परिदृश्यमानानि विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि वर्तन्ते । स कोशस्तव स्वभूत इति संबन्धः । स तथाविधस्त्वं नः अस्मान् मृड सुखय । ते तुभ्यं नमोस्तु । त्वत्प्रसादात् अभिभाः अभिभवितारः क्रोष्टारः क्रोशनशीलाः सृगाला मांसभक्षकाः श्वानश्च परः परस्तात् अस्मत्तो दूरदेशे यन्तु गच्छन्तु । तथा अघरुदः अघम् अमङ्गलं यथा भवति तथा रुदत्यः रोदनं कुर्वत्यः विकेश्यः विकीर्णकेशाः पिशाच्यश्च परो यन्तु परस्ताद् दूरं गच्छन्तु ॥

हे पशुओंके पालक रुद्रदेव ! निवासके हेतुभूत पुण्यपापरूप कर्म जिसमें किये जाते हैं वह अण्डकटाहात्मक कोश आपका ही है, इस अण्डकटाहात्मक महाकोशमें ये सकल भूत रहते हैं । ऐसे आप हमको सुख दीजिये आपके लिये प्रणाम है । आपके प्रसाद से अभिभव करने वाले क्रोशनशील शृगाल, मांसभक्षक कुत्ते हमसे दूरके स्थान पर चले जावें और बालोंको बखेरे हुए अमङ्गल करनेके लिये रोने वाली पिशाचियें भी दूर चली जावें ॥ ११ ॥

द्वितीया ॥

ध॒नु॑र्बि॒भ॑र्षि॒ हरि॑तं हि॒रण्य॑यं॑ सह॒स्रघ्नि॑ श॒तव॑धं शिखण्डिन्
रु॒द्रस्येषु॑श्चरति देव॒हे॒तिस्तस्यै॒ नमो॑ यत॒मस्यां॑ दि॒शी॒३॒॑तः

धनु॑ः । बि॒भ॒र्षि॒ । हरि॑तम् । हि॒र॒ण्यय॑म् । स॒ह॒स्र॒ऽघ्नि । श॒त॑ऽवधम् । शि॒ख॒ण्डि॒न् ।

रु॒द्रस्य॑ । इषु॑ः । च॒र॒ति॒ । दे॒व॒ऽहे॒तिः । तस्यै॑ । नम॑ः । य॒त॒मस्या॑म् ।
दि॒शि । इ॒तः ॥ ॥ १२ ॥

हे रुद्र त्वं संहृतिसमये विश्वसंहरणार्थं धनुर्बिभर्षि धारयसि । ❀ डुभृञ् धारणपोषणयोः । जुहोत्यादित्वात् शपः श्लुः । "भृञाम् इत्" इति अभ्यासस्य इत्त्वम् ❀ । कीदृशं तद्धनुरिति विशिनष्टि । हरितम् हरिद्वर्णं हिरण्ययम् हिरण्यविकारम् । स्वर्णमयम् इत्यर्थः । ❀ "ऋत्व्य-[वास्त्व्य] वास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि च्छन्दसि" इति हिरण्यशब्दात् मतुपि वर्णलोपो निपात्यते ❀ । सहस्रघ्न्यम् सहस्रसंख्याकान् एकयत्नेन हन्ति हिनस्तीति सहस्रघ्न्यम् । ❀ वर्णोपजनश्छान्दसः । ' स्तम्बे क च" इति विहितः कप्रत्ययो वहुलवचनाद् अत्रापि द्रष्टव्यः ❀ । यद्वा सहस्रं हन्यन्ते आताड्यन्ते अनेनेति सहस्रघ्न्यम् । ❀ "घञर्थे कविधानम्" इति करणे कप्रत्ययः ❀ । शतवधम् शतसंख्याकस्य प्राणिजातस्य मारकम् । यद्वा शतं सहस्रम् इति अपरिमितनाम । अपरिमितस्य विश्वस्य संहारकम् इत्यर्थः । शिखण्डिमयूरपिच्छादिनिर्मिताः शिखण्डास्तद्युक्तम् । तस्मै त्वदीयाय धनुषे नमोस्तु ॥ इदानीम् इषुं नमस्करोति । रुद्रस्य रोदयितुर्देवस्य इषुर्बाणः चरति सर्वत्र अप्रतिहतगतिर्वर्तते । देवहेतिः देवस्य संवन्धिनी हननसाधनभूता शक्तिरेव सेत्यर्थः । तस्यै इष्वै नमोस्तु नमस्कारो भवतु । इतः अस्मात् अस्मदीयात् स्थानाद् यतमस्याम् यस्यां दिशि वर्तते तस्यां दिशि अवस्थितायै तस्यै नमोस्त्विति संवन्धः ॥

हे रुद्र ! आप संहारके समय विश्वका संहार करनेके लिये धनुषको धारण करते हैं, वह धनुष हरे वर्णका सुवर्णका बना हुआ होता है और एक वारके प्रयत्नसे ही सहस्रोंको समाप्त कर देता है अपरिमित जीवोंको मार डालता है, शिखण्डोंसे युक्त होता है आपके ऐसे धनुषके लिये प्रणाम है । रुलाने वाले देवता

रुद्रका बाण सर्वत्र अप्रतिहतरूपसे चलता है, वह देवताओंका आयुध है वह बाण जिस दिशामें स्थित हो उस दिशामें ही स्थित उस बाणके लिये नमस्कार है ॥ १२ ॥

तृतीया ॥

योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।
पश्चादनुप्रयुङ्क्ते तं विद्धस्य पदनीरिव ॥ १३ ॥

यः । अभिऽयातः । निऽलयते । त्वाम् । रुद्र । निऽचिकीर्षति ।
पश्चात् । अनुऽप्रयुङ्क्षे । तम् । विद्धस्य । पदनीःऽइव ॥ १३ ॥

हे रुद्र यः पुरुषस्त्वया अभियातः अभिगतो निलयते पुरतः स्थातुम् अशक्तः पलायते । यद्वा तत्रैव निलीनो भवति [न च केवलं निलीनो भवति] प्रत्युत त्वां निचिकीर्षति निकर्तुं हिंसितुम् इच्छति । ❀ निपूर्वः करोतिर्हिंसने वर्तते । कृञ् हिंसायाम् इति प्रकृत्यन्तरं वा ❀ । हे देव तम् अपकृतवन्तं जनं पश्चात् अनन्तरमेव त्वम् अनुप्रयुङ्क्षे तत्कृतस्य अपकारस्य अनुप्रयोगं करोषि । यथापराधं दण्डयसीत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः । विद्धस्य शस्त्रहतस्य पुरुषस्य पदनीरिव तदीयानि पदानि भूमौ निक्षिप्तानि नयन् । यत्र शत्रुर्निवसति तावत्पर्यन्तं गमयन् पुरुषः निलीनं शत्रुम् उपलभ्य प्रतिविध्यति तद्वद् इत्यर्थः ॥

हे रुद्र ! जो पुरुष आपसे अभिगत होकर सामने खड़े रहने को समर्थ न होता हुआ भाग जाता है अथवा तहाँ छिप कर आपको मारना चाहता है हे देव ! उस अपराधी पुरुषको आप उसके अनुरूप ही दण्ड देते हैं (उसका उदाहरण यह है, कि -) जैसे घायल होने पर दुबके हुए पुरुषके पदचिन्होंको ढूँढता हुआ पुरुष उसको पाकर प्रहार करता है ॥ १३ ॥

चतुर्थी ॥

भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशी३तः ॥ १४ ॥

भवारुद्रौ । सऽयुजा । सम्ऽविदानौ । उभौ । उग्रौ । चरतः । वीर्याय ।
ताभ्याम् । नमः । यतमस्याम् । दिशि । इतः ॥ १४ ॥

भवश्च रुद्रश्च भवारुद्रौ । ❀ "देवताद्वन्द्वे च" इति पूर्वपदस्य आनङ् आदेशः ❀ । सयुजा सयुजौ समानं युञ्जानौ मित्रभूतौ संविदानौ समानं जानानौ । ऐकमत्यं गतावित्यर्थः । ❀ विद ज्ञाने । अस्मात् संपूर्वात् "समो गम्यृच्छि०" इति आत्मनेपदम् ❀। तौ उभौ उग्रौ उद्गूर्णबलौ परैरप्रधृष्यौ सन्तौ वीर्याय । ❀ "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी ❀ । वीर्यम् वीरकर्म चरतः अनुतिष्ठतः । यद्वा उग्रौ दुष्प्रधर्षौ चरतः सर्वत्र वर्तेते । किमर्थम् । वीर्याय । ❀ तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । स्ववीर्यप्रकटनार्थम् ताभ्यां भवारुद्राभ्यां नमोस्तु । दूरस्थयोरेव तयोर्नमस्कारः कर्तव्यः न संनिधानम् अपेक्षणीयम् तस्यार्तिकरत्वात् इत्यभिप्रेत्याह यतमस्याम् इति। इतः।अस्मात् अस्मदावासस्थानाद् यतमस्यां दिशि यस्यां कस्यांचिद् दिशि तौ वर्तेते तत्रस्थयोरेव तयोर्नमस्कारः । नमस्कारार्थमपि संनिहितौ मा भूताम् इत्यर्थः ॥

भव और रुद्र देवता मित्ररूप हैं, उनकी सम्मति एक रहती है ऐसे वे दोनों दूसरोंसे न दबते हुए प्रचण्डबली होकर अपना वीर्य प्रकट करनेके लिये सर्वत्र विचरण करते रहते हैं, उन भव और रुद्रदेवताओंके लिये नमस्कार है (वे दूर हों तभी उनको नमस्कार कर देना चाहिये उनके पास आनेकी बाट नहीं देखनी चाहिये, क्योंकि—उनका पास होना पीड़ा देगा, इसी आशयसे

कहते हैं, कि–) वे यहाँसे जिस दिशामें हों तहाँ ही पर विराजमान उनके लिये प्रणाम पहुँच जावे, तात्पर्य यह है, कि–नमस्कार के लिये भी वे हमारे समीप न आवें ॥ १४ ॥

पञ्चमी॥

नम॑स्तेस्त्वाय॒ते नमो॑ अस्तु पराय॒ते ।
नम॑स्ते रुद्र॒ तिष्ठ॑त॒ आसी॑नायो॒त ते॒ नम॑ः ॥ १५ ॥

नम॑ः । ते॒ । अ॒स्तु॒ । आ॒ऽय॒ते । नम॑ः । अ॒स्तु॒ । प॒रा॒ऽय॒ते ।
नम॑ः । ते॒ । रु॒द्र॒ । तिष्ठ॑ते । आसी॑नाय । उ॒त । ते॒ । नम॑ः ॥१५॥

हे रुद्र! आयते अस्मदाभिमुख्येन गच्छते ते तुभ्यं नमोस्तु । तथा परायते पराङ्मुखं गच्छते तुभ्यं नमोस्तु । ❀ आङ्पूर्वात्परापूर्वाच्च इण् गतौ इत्यस्मात् लटः शत्रादेशः । "इणो यण्" इति यण् आदेशः । "शतुरनुमः०" इति विभक्तेरुदात्तत्वम् ❀ । आगमनं परागमनं च विहाय यत्रक्वापि तिष्ठते ते तुभ्यं नमोस्तु । उत अपि च आसीनाय स्वस्थाने उपविष्टाय ते तुभ्यं नमः ॥

हे रुद्र ! हमारे अभिमुख आते हुए आपके लिये नमस्कार हो, हमसे पराङ्मुख होकर जाते हुए आपके लिये नमस्कार है, हे रुद्र ! बैठे हुए आपके लिये प्रणाम है और खड़े हुए आपके लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥

षष्ठी ॥

नम॑ः सा॒यं नम॑ः प्रा॒तर्नमो॒ रात्र्या॒ नमो॒ दिवा॑ ।
भ॒वाय॑ च श॒र्वाय॑ चो॒भाभ्या॑मक॒रं नम॑ः ॥ १६ ॥

नम॑ः । सा॒यम् । नम॑ः । प्रा॒तः । नम॑ः । रात्र्या॑ । नम॑ः । दिवा॑ ।

भवाय । च । शर्वाय । च । उभाभ्याम् । अकरम् । नमः ॥१६॥

हे रुद्र सायम् सायंकाले तुभ्यं नमोस्तु । [प्रातः] प्रातःकाले प्रभातसमये च तुभ्यं नमोस्तु । तथा रात्र्या रात्रिसमये तुभ्यं नमोस्तु । दिवा दिवससमयेपि तुभ्यं नमोस्तु । एतेन नमस्कारस्य सार्वकालिकत्वम् उक्तम् । "भवाशर्वौ मृडतम्" इति यौ देवौ प्राक् सह निर्दिष्टौ तत्र भवाय च नमः शर्वाय च नमः । उभाभ्यां परस्परानुरागेण संयुक्ताभ्यां च नमः अकरम् अहं नमस्करोमि । ❀ करोतेश्छान्दसो लुङ् । "कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि" इति च्लेः अङ् आदेशः । "ऋदृशोऽङि गुणः" इति गुणः ❀ ॥

हे रुद्र ! सायंकालमें आपको प्रणाम प्राप्त हो, प्रातःकालके समय हम आपको प्रणाम करते हैं, रात्रिके समय आपके लिये प्रणाम हो और दिनके समय भी आपको प्रणाम है (इस प्रकार सब समय आपको प्रणाम है) मैं भव और शर्व दोनोंके लिये प्रणाम करता हूँ ॥ १६ ॥

सप्तमी ॥

सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम् ।
मोपाराम जिह्वयेयमानम् ॥ १७ ॥

सहस्रऽअक्षम् । अतिऽपश्यम् । पुरस्तात् । रुद्रम् । अस्यन्तम् । बहुऽधा । विपःऽचितम् ।
मा । उप । अराम । जिह्वया । ईयमानम् ॥ १७ ॥

सहस्राक्षम् सहस्रसंख्याकैः अक्षिभिर्युक्तं पुरस्तात् पुरोभागे अतिपश्यम् अतिशयेन अतिक्रम्य वा पश्यतीति अतिपश्यः ।

❀ दृशिर् प्रेक्षणे इत्यस्मात् “पाघ्राध्माधेट्दृशः शः” इति शप्रत्ययः । “पाघ्राध्मास्था०” इत्यादिना पश्यादेशः ❀ । यद्वा पुरस्तात् इति उत्तरत्र संबध्यते । पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि बहुधा बहुप्रकारम् अस्यन्तम् शरजालं क्षिपन्तं विपश्चितम् मेधाविनं सूक्ष्मदर्शिनं जिह्वया ईयमानम् जिह्वाग्रेण कृत्स्नं जगद् व्याप्नुवन्तम् । भक्षणार्थं लिहन्तम् इत्यर्थः । एवंभूतं रुद्रं मा उपाराम मा उपगच्छाम । ❀ अर्तेर्माङि लुङि “सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च” इति च्लेः अङ् आदेशः ❀ ॥

सहस्रों नेत्र वाले परमसूक्ष्मदर्शी पूर्वकी ओर बहुतसे बाणजालोंको छोड़ते हुए मेधावी और जिह्वासे सारे जगत्को भक्षण करनेके लिये व्याप्त करते हुए रुद्रके समीप, हम न पहुँचे ॥१७॥

अष्टमी ॥

श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः
पादयन्तम् ।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥ १८ ॥

श्यावऽअश्वम् । कृष्णम् । असितम् । मृणन्तम् । भीमम् । रथम् ।
केशिनः । पादयन्तम् ।
पूर्वे । प्रति । इमः । नमः । अस्तु । अस्मै ॥ १८ ॥

श्यावाश्वम् श्यावाः कपिशवर्णा अश्वा यस्य स तथोक्तः तम् कृष्णम् कृष्णवर्णम् असितम् सितेतरपरिच्छदम् मृणन्तम् हिंसन्तम् । ❀ मृ हिंसायाम् । प्वादित्वात् ह्रस्वः ❀ । भीमम् बिभेति अस्माद् इति भीमो भयंकरः । ❀ “भीमादयोपादाने” इत्यपादाने भियः पुग्वा [उ० १. १४५] इति मक् प्रत्ययः ❀ । एतत्संज्ञकं रुद्रं

केशिनः केशी नाम असुरः। तस्य रथं पादयन्तम् भङ्क्त्वा भूमौ क्षिपन्तम् एवंभूतं देवं पूर्वे अन्येभ्यः स्तोतृभ्यः प्रथमभाविनः सन्तो वयं प्रतीमः जानीमः। रक्षकत्वेन अवगच्छाम इत्यर्थः। अस्मै रुद्राय नमोस्तु ॥

कपिश वर्णके अश्व वाले, काले परिच्छदका मर्दन करने वाले, जिनसे जगत् डरता है उन भीम महादेवको, कि-जिन्होंने केशी नामक असुरके रथको भूमिमें गिरा दिया था ऐसे महादेवको हम अन्य स्तोताओंसे पहिले ही जानते हैं-रक्षक रूपसे जानते हैं, उन रुद्रदेवके लिये नमस्कार हो ॥ १८ ॥

नवमी ॥

मा नोभि स्रां मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते।
अन्यत्रास्मद् दिव्यां शाखां वि धूनु ॥ १९ ॥

मा। नः। अभि। स्राः। मत्यम्। देवऽहेतिम्। मा। नः। क्रुधः। पशुऽपते। नमः। ते।
अन्यत्र। अस्मत्। दिव्याम्। शाखाम्। वि। धूनु ॥ १९ ॥

हे रुद्र देवहेतिम् देवसंबन्धि आयुधं वज्रात्मकम् आत्मीयाम् इषुं वा नः अस्माकं मत्यम् मरणधर्माणं जनम् अभिलक्ष्य मा स्राः मा विसृज। ❀ सृजतेः “माङि लुङ्”। मध्यमैकवचने च्लेः सिच्। “सृजिदृशोर्झल्यम् अकिति” इति अम् आगमः। वृद्धौ “झलो झलि” इति सिचो लोपः। “बहुलं छन्दसि” इति इडभावः। “हल्ङ्याब्भ्यः०” इति सिलोपः। छान्दसो जकारलोपः ❀। हे पशुपते नः अस्मभ्यं मा क्रुधः क्रुद्धो मा भूः। ❀ क्रुध कोपे। माङि लुङि पुषादित्वात् च्लेः अङ् आदेशः ❀। ते तुभ्यं नमो-

स्तु । देवहेतिविसर्जनस्य अवकाशम् आह अन्यत्रेति । अस्मत् अस्मत्तः अन्यत्र देशे दिव्याम् दिवि भवां शाखाम् शाखावत् प्रसृतां देवहेतिं वि धूनु विसृज । ❀ धूञ् कम्पने । स्वादित्वात् श्नुप्रत्ययः । "उतश्च प्रत्ययाद्०" इति हेर्लुक् ❀ ॥

हे रुद्र ! अपने आयुध बाणको हम मरणधर्मियोंको लक्ष्य करके न छोड़िये, हे पशुपते ! हम पर क्रुद्ध न हूजिये, आपके लिये प्रणाम है, हमसे अन्यत्र स्थानमें दिव्य शाखाकी समान अपने देवायुधको छोड़िये ॥ १९ ॥

दशमी ॥

मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः ।
मा त्वया समरामहि ॥ २० ॥

मा । नः । हिंसीः । अधि । नः । ब्रूहि । परि । नः । वृङ्ग्धि । मा । क्रुधः ।
मा । त्वया । सम् । अरामहि ॥ २० ॥

हे रुद्र नः अस्मान् मा हिंसीः अस्मद्विषये हिंसां मा कृथाः । नः अस्मान् अधि ब्रूहि आधिक्येन कथय । अनुग्राह्यत्वेन पक्षपातवचनम् अधिवचनम् । नः अस्मान् परि वृङ्ग्धि तवायुधविषयात् परिहर । अस्मान् परिहृत्य अन्यत्र त्वद्धेतिः प्रवर्तताम् इत्यर्थः । मा क्रुधः अस्मद्विषये क्रुद्धो मा भूः । एवंभूतेन त्वया वयं मा समरामहि संगच्छामहै । उक्तार्थम् एतत् [७] ॥

इति एकादशकाण्डे प्रथमेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

हे रुद्र ! हमारे विषयमें हिंसा न करिये, किंतु हमारे विषयमें पक्षपातपूर्वक कहिये, कि–यह हमारे अनुग्रह करने योग्य है अपने आयुधसे हमको अलग रखिये, तात्पर्य यह है, कि–हमसे अन्यत्र

आपका आयुध प्रवृत्त होवे, आप हमारे विषयमें क्रोध न करिये, ऐसे गुणों वाले आपसे हम संयुक्त न होवें ॥ २० ॥ (६)

एकादश काण्डके प्रथम अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त ॥

"मा नो गोषु" इति सूक्तस्य स्वस्त्ययनादिकर्मसु विनियोगः पूर्वमेव उक्तः ॥

"मा नो गोषु" सूक्तका स्वस्त्ययन आदि कर्मोंमें विनियोग पहिले ही कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु ।
अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि ॥२१॥

मा । नः । गोषु । पुरुषेषु । मा । गृधः । नः । अजऽअविषु ।
अन्यत्र । उग्र । वि । वर्तय । पियारूणाम् । प्रऽजाम् । जहि ।२१।

हे रुद्र नः अस्माकं संबन्धिषु गोषु पुरुषेषु पुत्रभृत्यादिषु च मा गृधः हिंसितुम् अभिकाङ्क्षां मा कृथाः। तथा नः अस्माकम् अजाविषु अजेषु अविषु च मा गृधः । ❀ गृधु अभिकाङ्क्षायाम् । माङि लुङि पुषादित्वात् च्लेः अङ् आदेशः ❀ । हे उग्र उद्गूर्णबल तव हेतिम् अन्यत्र अस्मत्तः अन्यस्मिन् स्थाने पियारूणां प्रजायां वि वर्तय गमय क्षिप । तथा कृत्वा च पियारूणाम् देवहिंसकानां प्रजां जहि । ❀ जहीति । "हन्तेर्जः" इति जादेशे तस्य "असिद्धवद् अत्रा भात्" इति असिद्धत्वात् "अतो हेः" इति लुगभावः ❀ ॥

हे रुद्र ! हमारे गौ और पुत्र भृत्य आदिको मारनेकी इच्छा न करिये, हमारी भेड़ बकरियोंको मारनेकी इच्छा न करिये । हे प्रचण्ड बली ! आप अपने आयुधको हमसे अन्यत्र

देवहिंसकोंकी प्रजा पर छोड़िये और ऐसा करके देवहिंसकोंकी प्रजाको नष्ट कर डालिये ॥ २१ ॥

द्वितीया ॥

यस्य तक्मा कासिका हेतिरेकमश्वस्येव वृषणः क्रन्द
एति ।
अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ॥ २२ ॥

यस्य । तक्मा । कासिका । हेतिः । एकम् । अश्वस्यऽइव ।
वृषणः । क्रन्दः । एति ।
अभिऽपूर्वम् । निःऽनयते । नमः । अस्तु । अस्मै ॥ २२ ॥

तक्मा कृच्छ्रेण जीवनप्रापिका । ❀ तकि कृच्छ्र जीवने । अस्माद् "अन्येभ्योपि दृश्यन्ते" इति मनिन् ❀ । कासिका । ❀ कासृ शब्दकुत्सायाम् ❀ । कुत्सितशब्दकारिणी आर्तस्वरकरी ज्वरादिपीडा यस्य रुद्रस्य हेतिः हननसाधनम् आयुधम् एकम् अपकारिणं पुरुषं वृषणः सेचनसमर्थस्य अश्वस्य क्रन्दः हेषाशब्द इव एति प्राप्नोति । सा हेतिस्तत्र अभिपूर्वम् पूर्वपूर्वम् अभिलक्ष्य तत्र योयः प्रथमभावी तंतं निर्णयते निःशेषेण गमयति नाशं प्रापयति । अस्मै ज्वराद्युपद्रवकारिणे रुद्राय नमोस्तु ॥

जीवनको कठिनतामें डाल देने वाली खाँसी, कुत्सित स्वर कराने वाली आर्तस्वरकरी ज्वरादिपीड़ा जिन रुद्रदेवका आयुध है वह एक अपराधी पुरुषके पास सेचनसमर्थ अश्वके हींसनेकी समान प्राप्त होजाता है, वह आयुध पूर्व पूर्वको लक्ष्य करके जो योग्य होने वाला होता है उसको नष्ट कर देता है, उन ज्वर आदिका उपद्रव करने वाले रुद्रदेवके लिये नमस्कार है ॥२२॥

तृतीया ॥

योऽ३न्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून्
तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः ॥ २३ ॥

यः । अन्तरिक्षे । तिष्ठति । विऽस्तभितः । अयज्वनः । प्रऽमृणन् । देवऽपीयून् ।
तस्मै । नमः । दशऽभिः । शक्वरीभिः ॥ २३ ॥

यो रुद्रः अन्तरिक्षे आकाशे निराधारप्रदेशे विष्टभितः विशेषेण स्तभितः निरुद्धगतिस्तिष्ठति । किं कुर्वन् । अयज्वनः दर्शपूर्णमासादियागेन इष्टवन्तो जना यज्वानः तद्विपरीता अयज्वानः तान् देवपीयून् देवानां हिंसकान् जनान् प्रमृणन् प्रकर्षेण हिंसन् । तस्मै रुद्राय दशभिः शक्वरीभिः शक्वर्य इति अङ्गुलिनाम । कर्मसु शक्ताभिः अङ्गुलिभिः नमोस्तु। अञ्जलिबन्धनेन प्रणामं कुर्म इत्यर्थः॥

जो रुद्र अन्तरिक्ष (निराधारप्रदेश) में निरुद्धगति होकर ठहरे रहते हैं तहाँ वह दर्श पूर्णमास आदि यागोंसे यजन न करने वालोंको मारते रहते हैं, हम उन रुद्रदेवके लिये कर्ममें समर्थ दश अंगुलियोंसे अर्थात् हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हैं ॥ २३ ॥

चतुर्थी ॥

तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः
शकुना वयांसि ।
तव यक्षं पशुपते अप्स्व१न्तस्तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या
आपो वृधे ॥ २४ ॥

तुभ्यम् । आरण्याः । पशवः । मृगाः । वने । हिताः । हंसाः । सुऽपर्णाः । शकुनाः । वयांसि ।
तव । यक्षम् । पशुऽपते । अप्ऽसु । अन्तः । तुभ्यम् । क्षरन्ति । दिव्याः । आपः । वृधे ॥ २४ ॥

हे पशुपते पशूनां पालयितर्महादेव तुभ्यं त्वदर्थम् आरण्याः अरण्ये भवाः पशवः । तानेव यथेच्छं स्वीकुरु । ग्राम्यान् पशून् मा बाधिष्ठा इत्यर्थः । आरण्यानेव पशून् निर्दिशति । वने अरण्ये हिताः विधात्रा स्थापिता मृगाः हरिणशार्दूलसिंहाद्याः । हंसाः एतत्संज्ञाः पक्षिणः । सुपर्णाः शोभनपतनाः श्येनाः । शकुनाः अन्ये च शकुनयो वनचराः पक्षिणः । एवमात्मकानि वयांसि पक्षिजातानि हे रुद्र त्वदर्थं भागत्वेन कल्पितानि । तव त्वदीयं यक्षम् पूज्यं स्वरूपम् अप्सु अन्तः उदकेषु मध्ये वर्तते अतः तुभ्यं त्वदर्थं मृधे उन्दनाय । ❀ मृधु मृधु उन्दे । अस्मात् संपदादिलक्षणो भावे क्विप् ❀ । अभिषेकाय दिव्याः दिवि भवा आपः क्षरन्ति प्रवहन्ति । अस्मदुपभोग्यम् उदकमपि मा स्पृक्ष इत्यर्थः ॥

हे पशुओंके पालक महादेव ! आपके लिये विधाताने वनमें हरिण शार्दूल सिंह आदि मृग, हंस, बाज, वनचर पक्षी आदिको स्थापित किया है, उनको ही आप यथेष्टरूपसे स्वीकृत करिये, ग्राम्य पशुओंको न मारिये, आपका पूज्यरूप जलमें रहता है अतः आप का अभिषेक करनेके लिये दिव्य जल वहते रहते हैं, तात्पर्य यह है, कि-आप हमारे उपभोगके जलका भी स्पर्श न करिये ॥२४॥

पञ्चमी ॥

शिंशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि ।

न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान् परि
पश्यसि भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन् समुद्रे ॥ २५ ॥

शिशुमाराः । अजगराः । पुरीकयाः । जषाः । मत्स्याः । रजसाः ।
येभ्यः । अस्यसि ।
न । ते । दूरम् । न । परिऽस्था । अस्ति । ते । भव । सद्यः ।
सर्वान् । परि । पश्यसि । भूमिम् । पूर्वस्मात् । हंसि । उत्तरस्मिन्
समुद्रे ॥ २५ ॥

आरण्यपशुवज्जलचरप्राणिनामपि रुद्रभागत्वम् उच्यते । शिशुमाराः नक्रविशेषाः । अजगराः सर्पविशेषाः । पुलीकयाद्या जलचराः प्राणिविशेषाः । हे रुद्र त्वदर्थम् एते सर्वे जलचराः प्राणिन इत्यर्थः । रजसा आत्मीयेन तेजसा येभ्यः जलचरप्राणिभ्यः अस्यसि आयुधं क्षिपसि । हे भव ते तव सर्वगतस्य दूरम् विप्रकृष्टं नैवास्ति । ते परिष्ठा परिहृत्य स्थिता प्रजापि न विद्यते । यतस्त्वं सर्वाम् कृत्स्नां भूमिं सद्यः क्षणादेव परि पश्यसि परितः अवलोकयसि । तथा पूर्वस्मात् पुरोवर्तिनः समुद्रात् उत्तरस्मिन् उत्तरदिग्वर्तिनि समुद्रे जलधौ हंसि क्षणादेव गच्छसि । ❀ हन्तिरत्र गत्यर्थः ❀ । अतः सर्वगतस्य तव विप्रकृष्टं नैवास्ति तथा च शिशुमारादयस्तव नित्यसंनिहिता इत्यर्थः ॥

(अब यह कहा जाता है, कि-जंगली पशुओंकी समान जलचर प्राणी भी रुद्रके भाग हैं) शिशुमार (गोह) अजगर पुलीकय झष और मत्स्य आदि जलचर प्राणी हे रुद्र ! आपके ही लिये हैं जिनके लिये आप अपने तेजसे आयुधको फेंकते हैं (क्यों कि-) हे भव ! आप सर्वगतसे दूर कुछ नहीं है (अतः वे नष्ट

होजाते हैं) और आपसे छीनकर जिसको रक्खा जासके ऐसी प्रजा भी नहीं है । क्योंकि–आप क्षणभरमें ही सकल भूमिको देख डालते हैं आप पूर्वके समुद्रसे क्षणभरमें उत्तरके समुद्रमें पहुँच जाते हैं अतः सर्वगत आपके लिये कुछ दूर नहीं है, गोह आदि आपके समीप ही हैं ॥ २५ ॥

षष्ठी ॥

मा नो॑ रुद्र त॒क्मना॒ मा वि॒षेण॒ मा नः॒ सं स्रा॑ दि॒व्येना॒ग्निना॑ ।
अ॒न्यत्रा॒स्मद् वि॒द्युतं॑ पात॒यैताम् ॥ २६ ॥

मा । नः॒ । रु॒द्र॒ । त॒क्मना॑ । मा । वि॒षेण॑ । मा । नः॒ । सम् । स्राः॒ । दि॒व्येन॑ । अ॒ग्निना॑ ।
अ॒न्यत्र॑ । अ॒स्मत् । वि॒ऽद्युत॑म् । पा॒त॒य॒ । ए॒ताम् ॥ २६ ॥

हे रुद्र तक्मना कृच्छ्रजीवनकारिणा ज्वरादिरोगेण त्वदीयेन आयुधेन नः अस्मान् मा सं स्राः मा संसृज । तथा विषेण स्थावरजङ्गमोद्भवेन प्राणापहारिणा मा संसृज । तथा दिव्येन दिवि भवेन अग्निना वैद्युतरूपेण तेजसा नः अस्मान् मा संसृज । अस्मत्तः अन्यत्र आरण्यपश्वादिषु एतां विद्युतम् त्वदायुधभूतां विद्योतमानाम् अशनिं पातय प्रक्षिप ॥

हे रुद्र ! जीवनको कष्टमय कर देने वाले ज्वर आदि रोगरूप आयुधसे आप हमको संयुक्त न करिये, तथा स्थावर और जंगमसे होने वाले विषसे हमको संयुक्त न करिये, तथा आकाशमें होने वाली वैद्युत तेजोरूप अग्निसे हमको संयुक्त न करिये,

हमसे अन्यत्र जंगली पशु आदि पर इस दमकती हुई बिजली-रूप अपने आयुधको गिराइये ॥ २६ ॥

सप्तमी ॥

भ॒वो दि॒वो भ॒व ई॑शे पृथि॒व्या भ॒व आ प॑प्र उ॒र्व॒१न्तरि॑क्षम् ।

तस्मै॒ न॒मो॑ यत॒म॒स्यां॑ दि॒शी३तः ॥ २७ ॥

भ॒वः । दि॒वः । भ॒वः । ई॒शे॒ । पृ॒थि॒व्याः । भ॒वः । आ । प॒प्रे॒ । उ॒रु । अ॒न्तरि॑क्षम् ।

तस्मै॑ । नमः॑ । य॒त॒मस्या॑म् । दि॒शि । इ॒तः ॥ २७ ॥

भवः एतत्संज्ञो देवो दिवः द्युलोकस्य ईशे ईष्टे । द्युलोकम् ईशितव्यत्वेन अधितिष्ठतीत्यर्थः ❀ । ईश ऐश्वर्ये । "लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तलोपः । "अधीगर्थदयेशाम्०" इति कर्मणि षष्ठी ❀ । तथा स एव भवः पृथिव्याः भूलोकस्यापि ईशे ईष्टे । तथा उरु विस्तीर्णम् अन्तरिक्षम् द्यावापृथिव्योर्मध्ये वर्तमानं लोकं स एव भवः आ पप्रे स्वतेजसा आपूरयति । ❀ प्रा पूरणे । अस्मात् छान्दसो लिट् । "आतो लोप इटि च" इति आल्लोपः ❀ । तस्मै त्रैलोक्यव्यापिने । अन्यद् उक्तार्थम् [१४] ॥

भव नामक देव द्युलोकके स्वामी हैं वही भव भूलोकके भी स्वामी हैं और वही द्यावापृथिवीके मध्यमें वर्तमान विशाल अन्तरिक्षलोकको भी अपने तेजसे पूरण कर देते हैं भवदेव यहाँसे जिस दिशामें हो तहाँ ही उनको प्रणाम है ॥ २७ ॥

अष्टमी

भवं॑ राज॒न् यज॑मानाय मृड प॒शू॒नां हि प॑शु॒पति॑र्ब॒भूथ॑

यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेस्य मृड

भव । राजन् । यजमानाय । मृड । पशूनाम् । हि । पशुऽपतिः । बभूथ ।

यः । श्रत्ऽदधाति । सन्ति । देवाः । इति । चतुःऽपदे । द्विऽपदे । अस्य । मृड ॥ २८ ॥

हे राजन् सर्वस्याधिपते हे भव यजमानाय त्वदर्थं यागं कुर्वते जनाय मृल सुखय । त्वं खलु पशूनां पशुपतिर्बभूथ "तवेमे पञ्च पशवो विभक्ताः" [९] इति प्रागुदीरितानां गवाश्वादीनां पशूनां पतिः पालयिता भवसि। पशूनां पशुपतिरिति वृत्त्यवृत्तिभ्यां बहुत्वं स्वामित्वं च प्रतिपाद्यते । ❀ "बभूथाततन्थ जगृभ्म ववर्थेति निगमे" इति भवतेस्थलि इडभावो निपात्यते ❀ । हि यस्माद् एवं तस्माद् यजमानाय मृडेति संबन्धः ॥ या आस्तिकः पुरुषो देवा इन्द्रादयो रक्षकः सन्तीति श्रदधाति आद्रियते । विश्वसितीत्यर्थः । अस्य श्रदधानस्य पुरुषस्य संबन्धिने चतुष्पदे गवाश्वादये द्विपदे पुत्रभृत्यादिरूपाय च मृल सुखय ॥

हे राजन् सर्वसस्याधिपते ! हे भव ! आपके निमित्त जो याग कर रहा है उसको आप सुख दीजिये आप पाँच प्रकारके पशुओं के स्वामी हैं अतः यजमानको सुख दीजिये। जो आस्तिक पुरुष इन्द्र आदि देवता रक्षक हैं ऐसा विश्वास रखता है उस श्रद्धालु पुरुषके गौ घोड़े आदि चार पैर वाले जीवोंको और दो पैर वाले पुत्र भृत्य आदि जीवोंको सुख दीजिये ॥ २८ ॥

नवमी ॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः ।

मा नो हिंसीः पितरं मातरं च स्वां तन्वं रुद्र मा
रीरिषो नः ॥ २९ ॥

मा । नः । महान्तम् । उत । मा । नः । अर्भकम् । मा । नः ।
वहन्तम् । उत । मा । नः । वक्ष्यतः ।

मा । नः । हिंसीः । पितरम् । मातरम् । च । स्वाम् । तन्वम् ।
रुद्र । मा । रिरिषः । नः ॥ २९ ॥

हे रुद्र नः अस्माकं संबन्धिनं महान्तम् प्रवयसं वृद्धं मा हिंसीः । उत अपि च नः अस्माकम् अर्भकम् शिशुं मा हिंसीः । नः अस्माकं संबन्धिनं वहन्तम् भारवहनक्षमं मध्यवयस्कं पुरुषं मा हिंसीः । उत अपि च वक्षतः कृतवहनव्यापारान् पुरुषान् नः अस्मदीयान् मा हिंसीः । तथा नः अस्मदीयं पितरं मातरं च मा हिंसीः । तथा नः अस्माकं स्वाम् स्वकीयां तन्वम् शरीरं मा रीरिषः मा हिंसीः । ❀ रिष रुष हिंसायाम् । ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम् । "न माङ्योगे" इति अडभावः ❀ ॥

हे रुद्र ! हममें जो बड़ा हो उसको न मारिये, और हमारे शिशुको भी न मारिये और हमारा भार वहन करनेमें समर्थ जो मध्यम पुरुष है उसका भी आप संहार न करिये, हमारा वहन करने वाले पुरुषोंका भी संहार न करिये तथा हमारे पिता माताकी भी हिंसा न करिये, तथा हमारे अपने शरीरकी भी हिंसा न करिये ॥२९॥

दशमी ॥

रुद्रस्यैलबकारेभ्योसंसूक्तगिलेभ्यः ।
इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ॥ ३० ॥

रुद्रस्य । ऐलबऽकारेभ्यः । असंसूक्तऽगिलेभ्यः ।

इदम् । महाऽआस्येभ्यः । श्वऽभ्यः । अकरम् । नमः ॥ ३० ॥

अतः परं महादेवस्य परिवारा नमस्कारेण प्रार्थ्यन्ते । रुद्रस्य महादेवस्य संबन्धिभ्यः एलवकारेभ्यः । ❀ इल प्रेरणे । अस्माद् भावे घञ् । ततो मत्वर्थीयो वकारः ❀ । एलवानि प्रेरणयुक्तानि कर्माणि कुर्वन्तीति एलवकाराः कर्मकराः प्रमथगणाः । तेभ्यः अहं नमस्करोमि । तथा असंसूक्तगिलेभ्यः । सम्यक् सूक्तं शोभनं भाषितं संसूक्तम् । तद्विपरीतम् असंसूक्तम् असमीचीनम् अशोभनवचनं गृणन्ति भाषन्त इति असंसूक्तगिलाः । ❀ गॄ शब्दे इत्यस्माद् औणादिक इलच् प्रत्ययष्टिलोपश्च ❀ । यद्वा तादृग्भाषणं यथा भवति तथा गिरन्ति भक्षयन्तीति असंसूक्तगिलाः । ❀ गॄ निगरणे इत्यस्माद् पचाद्यच् । गुणं बाधित्वा “ॠत इद्धातोः” इति व्यत्ययेन इत्वम् । “अचि विभाषा” इति लत्वम् । यद्वा गल अदने इत्यस्माद् वा अच् प्रत्ययः । छान्दसम् इत्वम् ❀ । एवंभूतेभ्यो रुद्रगणेभ्यो नमस्करोमि ॥ महास्येभ्यः महत् प्रभूतम् आस्यं मुखविवरम् एषाम् अस्तीति महास्याः । ❀ “आन्महतः०” इति आत्वम् ❀ । मृगयाविहारार्थं किरातवेषधारिणो देवस्य संबन्धिभ्यः श्वभ्यः ,सारमेयेभ्यः इदं नमः अकरम् करोमि । ❀ करोतेश्छान्दसो लुङ् । ‘कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि’ इति च्लेः अङ् आदेशः ❀ ॥

(अब महादेवजीके परिवारको नमस्कार करके प्रार्थना करते हैं, कि—) महादेवजीके प्रेरणायुक्त कर्मोंको करने वाले प्रमथगणों को मैं प्रणाम करता हूँ, और कटुभाषी रुद्रगणोंको मैं प्रणाम करता हूँ, मृगयाविहार करनेके लिये किरातका वेष धारण करने वाले भवके जिनका बड़ा मुख होता है उन कुत्तोंके लिये मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३० ॥

एकादशी ॥

नम॑स्ते घो॒षिणी॑भ्यो॒ नम॑स्ते के॒शिनी॑भ्यः ।
नमो॒ नम॑स्कृताभ्यो॒ नमः॑ संभुञ्ज॒तीभ्यः॑ ।
नम॑स्ते देव॒ सेना॑भ्यः स्व॒स्ति नो॒ अभ॑यं च नः ३१

नमः॑ । ते॒ । घो॒षिणी॑भ्यः । नमः॑ । ते॒ । के॒शिनी॑भ्यः ।

नमः॑ । नमः॑ऽकृताभ्यः । नमः॑ । सम्ऽभु॒ञ्ज॒तीभ्यः॑ ।

नमः॑ । ते॒ । दे॒व॒ । सेना॑भ्यः । स्व॒स्ति । नः॒ । अभ॑यम् । च॒ । नः॒ ३१

हे रुद्र ते त्वदीयाभ्यो घोषिणीभ्यः प्रभूतघोषयुक्ताभ्यः सेनाभ्यः नमोस्तु । तथा ते त्वदीयाभ्यः केशिनीभ्यः विपरीताकृतिकेशयुक्ताभ्यः विकीर्णकेशयुक्ताभ्यो वा सेनाभ्यो नमोस्तु । याश्च त्वदीयाः सेना नमस्कृताः चण्डेश्वरप्रभृतयः ताभ्यश्च नमोस्तु । संभुञ्जतीभ्यः सहभोजनं कुर्वतीभ्यः सेनाभ्यो नमोस्तु । हे देव रुद्र ते त्वदीयाभ्यः उक्तव्यतिरिक्ताभ्यः सेनाभ्यो नमोस्तु । हे देव त्वत्प्रसादात् नः अस्मभ्यं स्वस्ति क्षेमम् अभयं चन भयराहित्यमपि भवतु । स्वस्तिशब्दयोगात् स्वस्त्ययनकर्मणि विनियोगः । भयराहित्यप्रार्थनाच्च अद्भुतशान्तावपि । इति लिङ्गानुसारेण सर्वत्र विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

सप्तमं सूक्तम् ।

इति सायणाचार्यविरचिते अथर्वसंहिताभाष्ये
एकादशकाण्डे प्रथमोनुवाकः ॥

हे रुद्र ! आपकी प्रभूत घोष वाली सेनाओंके लिये नमस्कार हो, आपकी केशिनी सेनाओंके लिये प्रणाम है और आपकी जो चण्डेश्वर आदि नमस्कृत सेनायें हैं उनके लिये नमस्कार है और

आपकी एक साथ खाने वाली सेनाओंके लिये प्रणाम है, हे देव रुद्र! आपकी इनके अतिरिक्त जो सेनाएँ हैं उनके लिये भी प्रणाम है। हे देव! आपके प्रसादसे हमारा क्षेम और अभय हो ॥ ३१ ॥ (७)

सप्तम सूक्त समाप्त (४८०) ॥

एकादश काण्डमें प्रथम अनुवाक समाप्त

द्वितीयेऽनुवाके षट् सूक्तानि। तत्र "तस्यौदनस्य" इत्यादिसूक्तत्रयम् अर्थसूक्तम्। तेन बृहस्पतिसवाख्ये सवयज्ञे हविरभिमर्शनसंपातदातृवाचनदानादीनि कर्माणि कुर्यात् ॥

तथा अभिचारकर्मणि सवविधानेन ओदनं पक्त्वा पृषातकेन उपसिच्य अनेन अर्थसूक्तेन अभिमृश्य संपात्य अभिमन्त्र्य द्वेष्याय प्रयच्छेत्। द्वेष्यं वा अनेन अर्थसूक्तेन अभिमृशेत् हुताज्यशेषेण संपातयेद्वा ॥

विपक्षे बाधपुरःसरम् ओदनस्यैव प्राशितृत्वं प्राशितव्यत्वं च अग्रे वक्ष्यते। तत्र प्राशितुरोदनस्य शिरःप्रभृतीनि अङ्गानि कल्पयति ॥

दूसरे अनुवाकमें छः सूक्त हैं। इनमें "तस्यौदनस्य" आदि तीन सूक्तोंका समूह एक ही प्रयोजनको प्रतिपादित करने वाला होनेसे अर्थसूक्त कहलाता है। इससे बृहस्पतिसव नामक सवयज्ञमें हवि का अभिमर्शन, सम्पात दातृवाचन आदि कर्म करे ॥

तथा अभिचारकर्ममें सवविधानसे ओदनको पका कर पृषातक (दही घी) से छिड़क कर इस अर्थसूक्तसे अभिमर्शित सम्पातित और अभिमन्त्रित करके शत्रुको देदेय वा शत्रुको इस अर्थसूक्तसे अभिमर्शित करे, वा हुताज्यशेषसे सम्पातित करे।

विपक्षमें बाधाके साथ २ ओदनका प्राशितृत्व और प्राशयितव्यत्व आगे कहा जावेगा। उनमेंसे प्राशिता (भक्षक) ओदनके शिर आदि अंगोंकी कल्पना करते हैं, कि—

तस्यौ॑द॒नस्य॒ बृह॒स्पति॒ः शिरो॒ ब्रह्म॒ मुख॑म् ॥ १ ॥

तस्य॑ । ओ॒द॒नस्य॑ । बृह॒स्पति॑ः । शिर॑ः । ब्रह्म॑ । मुख॑म् ॥ १ ॥

द्यावा॑पृथि॒वी श्रोत्रे॑ सूर्याचन्द्र॒म॒सावक्षि॑णी सप्तऋ॒ष॑यः
प्राणापा॒नाः ॥ २ ॥

द्यावा॑पृथि॒वी इति॑ । श्रोत्रे॒ इति॑ । सू॒र्या॒च॒न्द्र॒मसौ॑ । अ॒क्षि॑णी॒ इति॑ ।
स॒प्त॒ऽऋ॒ष॑यः । प्रा॒णा॒पा॒नाः ॥ २ ॥

तस्य प्रसिद्धस्य विराडात्मना भावनीयस्य ओदनस्य बृहस्पतिर्देवः शिरः मूर्धा । तस्यापि कारणभूतं यद् ब्रह्म तत् ओदनस्य मुखम् आस्यम् ॥ द्यावापृथिवी द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ । ❀ "दिवो द्यावा" इति द्यावादेशः ❀ । ते उभे अस्य ओदनस्य विराडात्मनः श्रोत्रे । ❀ श्रवणेन्द्रियस्य एकत्वेपि तद्गोलकापेक्षया द्वित्वम् ❀ । सूर्याचन्द्रमसौ सूर्यः सर्वस्य प्रेरक आदित्यः । ❀ "राज सूयसूर्य०" इति निपात्यते ❀ । चन्द्रम् आह्लादकरम् अमृतं मिमीते सर्वस्य जगतो निर्मिमीत इति चन्द्रमाः । ❀ चन्द्रे माङो डित् इति [उ० ४. २२७] औणादिकः असिप्रत्ययः । सूर्यश्च चन्द्रमाश्च सूर्याचन्द्रमसौ । "देवताद्वन्द्वे च" इति पूर्वपदस्य आनङ् आदेशः ❀ । तौ अस्य विराडात्मन ओदनस्य अक्षिणी चक्षुषी । ये सप्तऋषयः मरीच्यत्रिप्रभृतयस्ते प्राणापानाः । मुखनासिकाभ्यां बहिर्निःसरन् वायुः प्राणः । अन्तः प्रविशन् वायुः अपानः । प्राणश्च अपानश्च प्राणापानौ । ये सप्तऋषयस्तेऽस्य प्राणापानात्मना भावनीया इत्यर्थः । ❀ प्राणापानयोर्द्वित्वेपि उद्देश्यसंख्यापेक्षया तयोर्वृत्त्यपेक्षया वा बहुवचननिर्देशः ❀ ॥

इस विराडात्मारूपसे भावनीय ओदनके बृहस्पतिदेव शिर हैं, उसका भी कारण भूत जो ब्रह्म है वह इस ओदनका मुख है। द्यौ और पृथिवी इस विराडात्मारूपसे भावनीय ओदनके कान हैं, सूर्य और चन्द्रमा इस विराडात्मारूपसे भावनीय ओदनके नेत्र हैं, जो मरीचि आदि सात ऋषि हैं वे इसके प्राण और अपान हैं ।१।२।

इत्थम् ओदनस्य देवतारूपाणि अङ्गानि परिकल्प्य तत्साधनेऽ्वपि देवतारूपत्वं संपादयति ॥

इस प्रकार ओदनके देवतारूप अंगोंकी कल्पना करके अब इसके साधनोंमें भी देवतारूपत्वका सम्पादन करते हैं, कि—

चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम् ॥ ३ ॥

चक्षुः । मुसलम् । कामः । उलूखलम् ॥ ३ ॥

दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोपाविनक् ॥ ४ ॥

दितिः । शूर्पम् । अदितिः । शूर्पऽग्राही । वातः । अप । अविनक् ४

अस्य उक्तमहिमोपेतस्य ओदनस्य उपादानभूतव्रीह्यवहननार्थं यन्मुसलं तच्चक्षुः चक्षुरिन्द्रियम् । यत् उलूखलं स कामः अभिलाषः । मुसलोलूखले हविरवहननार्थे चक्षुरादिरूपेण भावनीये इत्यर्थः ॥ दितिः असुरमाता सैव परापवनार्थं शूर्पम् । अदितिः देवमाता सा शूर्पग्राही तस्य शूर्पस्य ग्रहीत्री । या शूर्पेण परापुनाति सा अदित्यात्मना भावनीयेत्यर्थः । वातः वायुः अपाविनक् व्रीहिभ्यस्तण्डुलानां विवेचयिता अभवत् । विवेचयितरि वायुबुद्धिः कार्येत्यर्थः । अत एव तैत्तिरीयके “वायुर्वो विविनक्तु” इति मन्त्रवर्णः [तै० सं० १. १. ५. २] । ❀ विचिर् पृथग्भावे । अस्मात् लङि रुधादित्वात् श्नम् । “हल्ङ्याब्भ्यः०” इति तिलोपे “चोः कुः” इति कुत्वम् ❀ ॥

इस ओदनके उपादानभूत धानोंके कूटनेका जो मूसल है वही इसकी चक्षु है जो ओखली है वही अभिलाषा है अर्थात् मूसल ओखली आदिकी नेत्र आदिके रूपमें भावना करनी चाहिये, दिति ही इसके परापवनका छाज है, और जो छाजसे छड़ती है वह अदिति है और वायु धान और चावलोंका विवेचयिता है, अर्थात् विवेचयितामें वायुकी बुद्धि करनी चाहिये + ॥३॥४॥

ओदनस्य विराडात्मना उपासनम् अभिधित्सुस्तत्संबन्धिनां कणादीनां तत्तद्वस्त्वात्मकत्वेन तस्य ओदनस्य सार्वात्म्यं प्रतिपादयति ॥

ओदनकी विराडात्मभावसे उपासना करना चाहने वाला ओदनसे सम्बन्ध रखने वाले कण आदिकी तत्तद्वस्त्वात्मकरूपसे ओदनके सार्वात्म्यका प्रतिपादन करता है, कि-

अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः ॥ ५ ॥

अश्वाः । कणाः । गावः । तण्डुलाः । मशकाः । तुषाः ॥ ५ ॥

कब्रु फलीकरणाः शरोभ्रम् ॥ ६ ॥

कब्रु । फलीऽकरणाः । शरः । अभ्रम् ॥ ६ ॥

श्याममयोस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥७॥

श्यामम् । अयः । अस्य । मांसानि । लोहितम् । अस्य । लोहितम्

ये ओदनसंबन्धिनः कणास्ते अश्वाः । अश्वात्मना भावनीया इत्यर्थः । ओदनस्य उपादानभूता ये तण्डुलास्ते गावः । परापूता-

---

+ इसी लिये तैत्तिरीयकमें कहा है, कि-"वायुर्वो विविनक्तु ।-वायु तुमको अलग २ करे" ॥

स्तुषा मशकाः क्षुद्रजन्तवः ॥ ये फलीकरणास्तत् । कभ्रु । कं शिर एव भ्रुवौ यस्य प्राणिजातस्य तत् कभ्रु । शिरसो भ्रुवोश्च भेदो न दृश्यत इत्यर्थः । तथाविधप्राण्यात्मना फलीकरणा भावनीया इत्यर्थः । यद् अभ्रम् अन्तरिक्षे संचरन् मेघस्तद् अस्य शिरः । "बृहस्पतिना शीर्ष्णा" इति [११. ४. १]प्राशने वक्ष्यमाणत्वात् तदुपयोगिदेवतात्मकं शिरः प्राग् उक्तम् । चेतनाचेतनात्मकस्य सर्वस्य जगतः ओदने भावनीयत्वप्रतिपादनप्रसङ्गायातम् एतच्छिर इति न पौनरुक्त्यम् ॥ श्यामम् श्यामवर्णं यत् अयः खनित्राद्युपादानं तत् अस्य विराडात्मन ओदनस्य मांसानि । यल्लोहितम् लोहितवर्णम् अयः ताम्रात्मकं लोके दृश्यते तत् सर्वम् अस्य ओदनस्य लोहितम् असृग् धातुः ॥

जो ओदनके कण हैं वे अश्व हैं उनकी अश्वरूपसे भावना करनी चाहिये, ओदनके उपादानरूप तण्डुलोंकी गौरूपसे भावना करनी चाहिये, अलग करी हुई भूसीकी मच्छररूपसे भावना करनी चाहिये, फलीकरणोंकी शिर ही जिसकी भौं होती है ऐसे कभ्रुरूपसे भावना करनी चाहिये, और मेघकी शिरोरूपमें भावना करनी चाहिये, (यद्यपि बृहस्पतिरूपसे शिरकी भावना पहिले ही कर ली है तथापि चेतनाचेतनात्मक सकल जगत्की ओदनरूपसे भावनाके सिलसिलेमें आये हुए शिरकी पुनरुक्तता नहीं है) और जो कुदाली आदिका उपादान लोहा है वह इस विराडात्मा ओदनका मांस है और जो लाल वर्णका ताँबा दीखता है वह इस ओदनका रक्त है ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

पुनरन्यान्यपि वस्तूनि ओदने संपादयति ॥

अब अन्य वस्तुओंको भी ओदनमें सम्पादित करते हैं, कि—

त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥ ८ ॥

त्रपु । भस्म । हरितम् । वर्णः । पुष्करम् । अस्य । गन्धः ॥ ८ ॥

खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ॥ ९ ॥

खलः । पात्रम् । स्फ्यौ । अंसौ । ईषे इति । अनूक्ये३ इति ॥९॥

आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः ॥ १० ॥

आन्त्राणि । जत्रवः । गुदाः । वरत्राः ॥ १० ॥

ओदनपाकानन्तरभावि यद् भस्म तत् त्रपु सीसम् । तदात्मना भस्म भावनीयम् इत्यर्थः । यत् । हरितम् हेम तत् अस्य ओदनस्य वर्णः । यत् पुष्करम् कमलं तद् अस्य ओदनस्य गन्धः ॥ यः खलः व्रीह्यादिधान्यस्य पलालेभ्यो विवेचनस्थानं तद् अस्य पात्रम् धारणार्थम् आवपनम् । स्फौ प्रवृद्धौ धान्याधारस्य शकटस्यावयवौ । तावस्य ओदनस्य अंसौ । ✿ स्फायी वृद्धौ इत्यस्माद् औणादिको डप्रत्ययः ✿ । ये शकटसंबन्धिन्यौ ईषे ते अस्य ओदनस्य अनूक्ये अंसयोर्मध्यदेहस्य च संधी । ✿ अनु उच्यते समवेयते संधीयत इति अनूक्या । कर्मणि ण्यत् । "चजोः कु घिण्ण्यतोः" इति कुत्वम् ✿ ॥ लोके सर्वप्राणिसंबन्धीनि आन्त्राणि यानि सन्ति तानि जत्रवः अनडुद्ग्रीवाणां शकटयोजनार्था रज्जवः । अशितपीतान्नरससंचारणार्थाः सर्वप्राणिशरीरेषु या गुदास्ता अस्या वरत्राः ओदनसंबन्धिशकटलाङ्गलयोजनार्थाश्चर्मविकारा रज्जवः ॥

ओदनपाकके अनन्तर जो भस्म होती है वह सीसा है अर्थात् सीसेके रूपमें उसकी भावना करनी चाहिये । और जो सुवर्ण है वह ओदनका वर्ण है और जो कमल है वह इस ओदनकी गंध है और जो व्रीहि आदि धान्योंका भूसी आदिसे अलग करनेका स्थान है वह इसका पात्र है, शकटके अवयव स्फ इसके अंश हैं,

और जो शकटकी ईषा हैं वे अनूक्य हैं, अँतड़ियें बैलोंके गलेमें बाँधनेकी रस्सियें हैं और गुदायें चर्मरज्जुएँ हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

इत्थं सर्वात्मकस्य ओदनस्य स्थाल्यपिधानयोर्द्यावापृथिव्यात्मकताम् आह ॥

इसी प्रकार सर्वात्मक ओदनकी स्थाली और ढकनकी द्यावापृथिव्यात्मकताको कहा जाता है, कि–

इ॒यमे॒व पृ॑थि॒वी कु॒म्भी भ॑वति॒ राध्य॑मानस्यौद॒नस्य॒ द्यौर॑पि॒धान॑म् ॥ ११ ॥

इ॒यम् । ए॒व । पृ॒थि॒वी । कु॒म्भी । भ॒व॒ति॒ । राध्य॑मानस्य । ओ॒द॒नस्य॑ । द्यौः॑ । अ॒पि॒ऽधान॑म् ॥ ११ ॥

इयं परिदृश्यमाना पृथिवी प्रथिता विस्तीर्णा भूमिरेव राध्यमानस्य पच्यमानस्य ओदनस्य उदीरितरीत्या सर्ववस्त्वात्मकस्य कुम्भी पाकार्था स्थाली भवति । द्यौः द्युलोकः अपिधानम् कुम्भीमुखस्य च्छादकं पात्रम् । द्यावापृथिव्योरन्तरालं सर्वम् अयम् ओदनो व्याप्य वर्तत इत्यर्थः ॥

यह विस्तीर्णभूमि ही सर्ववस्त्वात्मक पच्यमान ओदनको पकाने की कुंभी है और द्युलोक उसका ढकन है, तात्पर्य यह है, कि–द्यावापृथिवीके मध्यमें वर्तमान यह ओदन सबको व्याप्त करके वर्तमान है ॥ ११ ॥

पुनरन्यदपि अवयवजातम् अस्मिन् संपादयति ॥

अब अन्य अवयवोंका भी इसमें सम्पादन करते हैं, कि–

सीता॒ः पर्श॑व॒ः सिक॑ता॒ ऊब॑ध्यम् ॥ १२ ॥

सीताः॑ । पर्श॑वः । सिक॑ताः । ऊब॑ध्यम् ॥ १२ ॥

सीताः कर्षणोत्पन्ना बीजावापार्था लाङ्गलपद्धतयः । ता अस्य

ओदनस्य पर्शवः पार्श्वास्थीनि । नद्यादिषु याः सिकतास्ता अस्य ऊवध्यम् अर्धजीर्णतृणात्मकम् उदरगतं शकृत् ऊवध्यम् इति उच्यते ॥

लांगलपद्धतियें इस ओदनकी पार्श्वस्थियें हैं, नदी आदिकोंमें जो रेत है वह ऊवध्य है ॥ १२ ॥

पुनरन्यां संपत्तिम् आह ॥

अब अन्य सम्पत्तिका वर्णन करते हैं, कि–

ऋतं हस्तावनेजनं कुल्योपसेचनम् ॥ १३ ॥

ऋतम् । हस्तऽअवनेजनम् । कुल्या । उपऽसेचनम् ॥ १३ ॥

ऋतम् इति उदकनाम । लोके विद्यमानं कृत्स्नम् उदकं हस्तावनेजनम् अस्य ओदनस्य हस्तप्रक्षालनार्थम् । कुल्या अल्पा सरित् । तत्रत्यं समस्तम् उदकम् अस्य ओदनस्य उपसेचनम् मिश्रणसाधनम्

संसारमें विद्यमान सम्पूर्ण जल इस ओदनमें हाथ धोनेका जल है और छोटी २ नदिये इसका उपसेचन है ॥ १३ ॥

उदीरितमहिमोपेतस्य पाकार्था कुम्भी पृथिव्येवेत्युक्तम् । तस्या अग्नौ स्थापनप्रकारम् आह ॥

पूर्वोक्त ओदनकी कुंभीके अग्निमें स्थापन करनेकी रीतिको कहते हैं, कि—

ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ॥ १४ ॥

ऋचा । कुम्भी । अधिऽहिता । आर्त्विज्येन । प्रऽइषिता ॥१४॥

ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ॥ १५ ॥

ब्रह्मणा । परिऽगृहीता । साम्ना । परिऽऊढा ॥ १५ ॥

उदीरितलक्षणा ओदनपाकार्था कुम्भी स्थाली ऋचा ऋग्वेदेन अधिहिता अग्नावुपरि आहिता स्थापिता । आर्त्विज्येन ऋत्विजः अध्वर्यवः । तत्संबन्धिकर्मप्रतिपादकेन यजुर्वेदेन प्रेषिता अग्निं

प्रगमिता। ब्रह्मणा ब्रह्मवेदेन आथर्वणेन परिगृहीता परितो धारिता। साम्ना सामवेदेन पर्यूल्हा पर्यूढा अङ्गारैः परिवेष्टिता ॥

पूर्वोक्तलक्षण वाली कुंभीको ऋग्वेदरूपी अग्नि पर स्थापित किया है और यह यजुर्वेदरूपी अग्नि पर गई है और अथर्ववेदसे धारित है और सामवेदरूपी अंगारोंसे घिरी हुई है ॥१४॥१५॥

इत्थम् अधिश्रितायां स्थाल्याम् ओदनपाकस्य अनुगुणं साधनम् आह ॥

इस प्रकार चढ़ाई हुई बटलोईके अनुकूल साधनोंको कहते है, कि-

बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः ॥ १६ ॥

बृहत् । आऽयवनम् । रथम्ऽतरम् । दर्विः ॥ १६ ॥

बृहत् साम आयवनम्। उदके प्रक्षिप्तानां तण्डुलानां मिश्रणसाधनं काष्ठम्। तथा रथन्तरं साम दर्विः ओदनोद्धारणसाधनम्।

बृहत्-साम ही जलमें डाले हुए तण्डुलोंको मिलानेका काष्ठ है और रथन्तर साम ओदन निकालनेका साधन करछुली है १६

ईदृग्विधस्य ओदनस्य पक्तॄन् दर्शयति ॥

अब ऐसे ओदनके पक्ताओंको दिखाते हैं कि-

ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते ॥ १७ ॥

ऋतवः । पक्तारः । आर्तवाः । सम् । इन्धते ॥ १७ ॥

ऋतवः वसन्ताद्याः षट् अस्य ओदनस्य पक्तारः पचिक्रियायाः कर्तारः। सर्वजगदात्मकौदनपाकस्य कालाधीनत्वात् नान्यः पक्तुं शक्नोतीत्यर्थः। आर्तवाः ऋतुसंबन्धिनः अहोरात्राः तत्तदृतौ जायमानाः प्राणिविशेषा वा समिन्धते संदीपयन्ति। यथा ओदनः पच्यते तथा अग्निं ज्वलयन्तीत्यर्थः। ❀ इन्धी दीप्तौ ❀।

वसन्त आदि छः ऋतुएँ इस ओदनकी पक्ता हैं। सर्वजगदात्मक ओदनका पाक कालाधीन है अतः उसको दूसरा कौन पक्ता

सकता है और ऋतुसंबन्धी दिन रात ही इसको प्रज्वलित करने वाले हैं ॥ १७ ॥

साक्षात्पक्तृत्वम् आदित्यस्यैवेति दर्शयति ॥

अब यह दिखाते हैं, कि-साक्षात् पक्तृत्व आदित्यका ही है

चरुं पञ्चबिलमुखं घर्मो३भीन्धे ॥ १८ ॥

चरुम् । पञ्चऽबिलम् । उखम् । घर्मः । अभि । इन्धे ॥ १८ ॥

चरुशब्दः ओदनवचनः । तस्य पाकार्था स्थाल्यपि चरुरित्युच्यते । तं चरुं पञ्चबिलम् "गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः" [११. २. ९] इति प्रागुदीरितपञ्चपशूत्पत्तिहेतुत्वेन पञ्चधा विभिन्नमुखम् । यद्वा अन्तः पञ्चधा गृहकैः प्रविभक्तावकाशश्चरुः पञ्चबिलः । यद् आह आपस्तम्बः । "पञ्चबिलस्य चरोर्विज्ञायते आज्य आग्नेयः पूर्वस्मिन् बिले । दधन्यैन्द्रो दक्षिणे । शृते प्रतिदुहि नीतमिश्रे वा वैश्वदेवः पश्चिमे । अप्सु मैत्रावरुण उत्तरे । पयसि बार्हस्पत्यो मध्यमे" इति । एवंभूतम् उखम् । चरुशब्दापेक्षया पुंलिङ्गता । उखां स्थालीं घर्मः प्रवर्ग्यात्मकस्तीक्ष्ण आदित्यः अभीन्धे अभितपति ॥

चरुशब्द ओदनका वाचक है, उसके पकानेकी स्थाली भी चरु कहलाती है उस पञ्चबिल‡ वाले चरुको प्रवर्ग्यात्मक तीक्ष्ण आदित्य तपाता है ॥ १८ ॥

अस्यौदनस्य सर्वलोकप्राप्तिसाधनताम् आह ॥

अब यह दिखाते हैं, कि-यह ओदन सब लोकोंकी प्राप्तिका साधन है ।

---

‡ गौ घोड़े पुरुष भेड़ और बकरी इन पाँचकी उत्पत्तिका हेतु होनेसे पाँच प्रकारसे विभिन्न मुख वाला यह ओदन पञ्चबिल कहलाता है ॥

ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥ १९ ॥

ओदनेन । यज्ञऽवचः । सर्वे । लोकाः । सम्ऽआप्याः ॥ १९ ॥

इत्थं महाप्रभावेण पक्वेन ओदनेन यज्ञवचः यज्ञैः अग्निष्टोमादिभिः प्राप्तव्यत्वेन उच्यमानाः । ❀ वचेः कर्मणि विच् ❀ । सर्वे लोकाः भूम्यन्तरिक्षस्वर्गाद्याः समाप्याः सम्यग् आप्तुम् अर्हाः । सर्वलोकावाप्तिः अस्यौदनस्य फलम् इत्यर्थः ॥

इस प्रकार महाप्रभाव वाले पक्व ओदनसे, अग्निष्टोम आदि यज्ञोंसे जिन लोकोंकी प्राप्ति कही जाती है, वे सब भूमि अन्तरिक्ष और स्वर्ग आदि लोक, भली प्रकार प्राप्त हो सकते हैं अर्थात् सब लोकोंकी प्राप्ति ही इस ओदनका फल है ॥ १९ ॥

पुनरपि अस्य महिमानम् आह ॥

फिर इसकी महिमाका वर्णन करते हैं, कि—

यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोवरपरं श्रिताः ॥ २० ॥

यस्मिन् । समुद्रः । द्यौः । भूमिः । त्रयः । अवरऽपरम् । श्रिताः २०

यस्मिन्नोदने समुद्रः उदधिः द्यौः आकाशः द्युलोको वा भूमिः पृथिवी एते त्रयः अवरपरं श्रिताः । एकः अवरः अधस्ताद् भवति अन्यः परस्ताद् यथा भवति तत् अवरपरम् । उत्तराधरभावेन स्थिता इत्यर्थः ॥

जिस ओदनमें समुद्र आकाश (वा द्युलोक) तथा भूमि तले ऊपर स्थित हैं (वही यह ओदन है) ॥ २० ॥

सर्वजगत्कल्पनास्पदत्वलक्षणं माहात्म्यम् अस्य दर्शयति ॥

इसके सर्वजगत्कल्पनास्पदत्व लक्षणको दिखाते हैं, कि—

यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः ॥ २१ ॥

५०   १७-६-३०

यस्य । देवाः । अकल्पन्त । उत्ऽशिष्टे । षट् । अशीतयः ॥२१॥

यस्य ओदनस्य उच्छिष्टे यागावशिष्टे अंशे षडशीतयः षड्गुणिताशीतिसंख्याका देवा अकल्पन्त समर्था वीर्यवन्तः अभवन् । अथ वा । ❀ क्लृपिरन्तर्णीतण्यर्थः ❀ । सर्वं जगद् अकल्पयन् । तथा च अग्रे समाम्नास्यते । "उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः" [११. ६. १] इत्यादिना । तेन ओदनेन सर्वे लोकाः समाप्या इति संबन्धः ॥

जिस ओदनके यागावशिष्ट अंशमें चार सौ अस्सी देवता वीर्यवान् हुए हैं वा चारसौ अस्सी देवताओंने सकल जगत्की कल्पना की है उस ओदनसे सकल लोक प्राप्त होसकते हैं ॥ २१ ॥

उक्तं माहात्म्यं गुरुमुखात् ज्ञातव्यम् इत्यभिप्रेत्य शिष्यप्रश्नम् उद्भावयति ॥

उक्त माहात्म्य गुरुमुखसे जानना चाहिये, इस बातको लक्ष्य में रख कर शिष्यप्रश्नका उद्भावन करते हैं, कि—

तं त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् २२

तम् । त्वा । ओदनस्य । पृच्छामि । यः । अस्य । महिमा । महान् ।

हे गुरो त्वा त्वाम् ओदनस्य तं महिमानं पृच्छामि । अस्यौदनस्य यो महिमा महान् अधिकतरः ॥

हे गुरो ! जो इस ओदनकी बड़ी भारी महिमा है उसको मैं आपसे बूझता हूँ ॥ २२ ॥

तत्र प्रतिवचने वर्जनीयं दर्शयति ॥

अब प्रतिवचनमें वर्जनीयको दिखाते हैं, कि—

स य ओदनस्य महिमानं विद्यात् ॥ २३ ॥

सः । यः । ओदनस्य । महिमानम् । विद्यात् ॥ २३ ॥

नाल्प इति ब्रूयान्नानुपसेचन इति नेदं च किं चेति

न । अल्पः । इति । ब्रूयात् । न । अनुपऽसेचनः । इति । न । इदम् । च । किम् । च । इति ॥ २४ ॥

स प्रसिद्धो यो गुरुः उदीरितलक्षणस्य ओदनस्य महिमानम् माहात्म्यं विद्यात् जानीयात् असौ उपदेशसमये अल्प इति न ब्रूयात् महिम्नोऽल्पत्वं नोपदिशेत् । अनुपसेचनः उपसिच्यते अनेनेति उपसेचनं क्षीराज्यदध्यादि तद्रहित इति च न ब्रूयात् । न च इदम् इति पुरोवर्तित्वेन निर्दिश्य ब्रूयात् । किम् इति अनिर्दिष्टरूपेण च न ब्रूयात् । प्रागुक्तप्रकारेणैव सार्वात्म्यं ब्रूयाद् इत्यर्थः ॥

जो गुरु इसकी महिमाको जानता होवे वह गुरु उपदेशके समय यह अल्प है ऐसा न कहे अर्थात् इसकी महिमाको थोड़ी न बतलावे और इसमें क्षीर घृत आदि उपसेचनकी आवश्यकता नहीं है-यह भी न कहे और यह होगया, वा क्या है इस प्रकार भी न कहे अर्थात् पूर्वोक्त रीतिसे इनके सार्वात्म्यका ही वर्णन करे ॥ २३ ॥ २४ ॥

आधिक्यवचनमपि अस्य विषये न युक्तम् इत्याह ॥

अब यह कहते हैं, कि-इसके विषयमें आधिक्यवचन भी युक्त नहीं है ।

यावद् दाताभिमनस्येत तन्नाति वदेत् ॥ २५ ॥

यावत् । दाता । अभिऽमनस्येत । तत् । न । अति । वदेत् २५

दाता सवयज्ञानुष्ठाता यावत् फलम् अभिमनस्येत मनसा अभिप्राप्तुम् इच्छेत् तत् नाति वदेत् । तत् फलम् अतिक्रम्य अधिकं न ब्रूयाद् इत्यर्थः ॥

सवयज्ञका अनुष्ठाता दाता जितने फलको मनसे चाहे उस फल से बढ़ कर अधिक न कहे ॥ २५ ॥

अथ वक्ष्यमाणैः पर्यायैस्तस्यौदनस्य प्राशने भावनाविशेषं वक्तुं ब्रह्मवादिनां प्रश्नद्वयम् अवतारयति ॥

अब आगेके पर्यायोंसे इस ओदनके प्राशनमें भावनाविशेषको कहनेके लिये ब्रह्मवादियोंके दो प्रश्नोंका अवतरण करते हैं, कि-

ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं प्राशी३ः प्रत्यञ्चा३मिति ॥ २६ ॥

ब्रह्मऽवादिनः । वदन्ति । पराञ्चम् । ओदनम् । प्र । आशी३ः । प्रत्यञ्चा३म् । इति ॥ २६ ॥

त्वमोदनं प्राशी३स्त्वामोदना३ इति ॥ २७ ॥

त्वम् । ओदनम् । प्र । आशी३ः । त्वाम् । ओदना३ः । इति २७

ब्रह्म वेदः तद् वदितुं शीलम् एषाम् इति ब्रह्मवादिनो ब्रह्म विचारका महर्षयः । ते संभूय वदन्ति परस्परं भाषन्ते । हे देवदत्त त्वम् इमम् ओदनं पराञ्चम् पराङ्मुखं स्थितं प्राशीः प्राशितवान् असि उत प्रत्यञ्चम् आत्माभिमुखं स्थितं प्राशितवान् असि । प्राशितुस्तव प्राशितव्यः स ओदनः किं पराङ्मुखः उत अभिमुख इति प्रश्नः ❀। "विचार्यमाणानाम्" इति प्लुतः ❀ ॥ तथा हे देवदत्त त्वम् ओदनं प्राशीः भक्षितवान् असि अथ वा स एव ओदनस्त्वां प्राशीत् इति प्रश्नान्तरम् । ❀अत्रापि पूर्ववत् प्लुतः❀॥

ब्रह्मवादी विचारक महर्षि एकत्रित होकर परस्पर भाषण करते हैं, कि-हे देवदत्त ! तू इस पराङ्मुख ओदनका प्राशन कर चुका है वा आत्माभिमुख ओदनका प्राशन कर चुका है । प्रश्न यह है,

कि–प्राशिता तेरे वह प्राशितव्य ओदन पराङ्मुख है वा अभिमुख है तथा हे देवदत्त ! तू ओदनको खा चुका है अथवा ओदन ने तेरा प्राशन कर लिया है ॥ २७ ॥

अत्र आद्ये प्रश्ने प्रथमकल्पे दोषम् आह ॥

अब प्रथम प्रश्नमें प्रथमकल्पमें दोष दिखाते हैं, कि–

पराञ्चं चैनं प्राशीः प्राणास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह २८

पराञ्चम् । च । एनम् । प्रऽआशीः । प्राणाः । त्वा । हास्यन्ति । इति । एनम् । आह ॥ २८ ॥

चशब्दश्चेदर्थे । पराञ्चम् पराङ्मुखत्वेन स्थितम् एनम् ओदनं प्राशीश्चेत् प्राणाः प्राणवायवः त्वा त्वां हास्यन्ति त्यक्ष्यन्तीत्येनं प्राशितारम् आह विद्वान् ब्रवीतु । बहिर्मुखः प्राणो बहिर्मुखौदनप्राशनाय शरीराद् विनिर्गतो भवेद् इत्यर्थः ॥

यदि तूने पराङ्मुख स्थित ओदनको खाया है तो प्राणवायु तुझको त्याग देगी–इस प्रकार विद्वान् प्राशितासे कहे अर्थात् बहिर्मुख प्राण बहिर्मुख ओदनका प्राशन करनेके लिये शरीरसे विनिर्गत होगा ॥ २८ ॥

द्वितीयकल्पम् अनूद्य दूषयति ॥

द्वितीय कल्पको दिखा कर दूषित करते हैं कि–

प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह २७

प्रत्यञ्चम् । च । एनम् । प्रऽआशीः । अपानाः । त्वा । हास्यन्ति । इति । एनम् । आह ॥ २९ ॥

अत्रापि चशब्दश्चेदर्थे । प्रतिमुखम् अवस्थितं चेद् एनम् ओदनं प्राशीस्तर्हि त्वा त्वाम् अपानाः अपानवायुवृत्तयो हास्यन्ति

त्यक्ष्यन्ति। इत्येनं प्राशितारम् आह अभिज्ञो ब्रूयात्। अपानवायोरोदनस्य च प्रत्यङ्मुखत्वेन अधोद्वारात् अपानस्य शरीराद्ध विनिर्गम एव स्याद् इत्यर्थः ॥

यदि तूने प्रतिमुख ओदनका प्राशन किया है तो अपानवायुवृत्तियें तुझको त्याग देंगी, विद्वान् इस प्रकार प्राशितासे कहे अर्थात् अपानवायुका और ओदनका प्रत्यङ्मुख होनेसे अधोद्वारसे अपानका विनिर्गम ही होगा ॥ २९ ॥

द्वितीयप्रश्नः अनङ्गीकारपरास्त इत्याह ॥

द्वितीयप्रश्न अंगीकार न करनेसे परास्त होजाता है, कि-

नैवाहमोदनं न मामोदनः ॥ ३० ॥

न। एव। अहम्। ओदनम्। न। माम्। ओदनः ॥ ३० ॥

अहम् ओदनं नैव प्राशिषम्। ओदनोपि मां न प्राशीत्। अतः पक्षद्वयस्यानङ्गीकारात् तत्प्रयुक्तदोषाभाव इत्यर्थः ॥

मैंने ओदनका प्राशन नहीं किया है और ओदनने भी मेरा प्राशन नहीं किया है, तात्पर्य यह है, कि-दोनों पक्षोंको अंगीकार न करनेसे उनका दोष नहीं लग सकता ॥ ३० ॥

कथं तर्हि तत्प्राशनम् इति तत्राह ॥

फिर उसका प्राशन कैसे हुआ है ? तो कहते हैं, कि-

ओदन एवौदनं प्राशीत् ॥ ३१ ॥

ओदनः। एव। ओदनम्। प्र। आशीत् ॥ ३१ ॥

भोक्तृभोक्तव्यप्रपञ्चात्मक ओदन इति उक्तम्। अतः ओदन एव कर्ता ओदनं स्वात्मानं प्राशीत् प्राशितवान्। ❀ अश भोजने इत्यस्मात् लुङि रूपम् ❀ ॥

[इति] प्रथमसूक्तम् ॥

यह ओदन भोक्तृभोक्तव्यप्रपञ्चात्मक है यह कह ही चुके हैं, अत एव ओदनकर्ताने ही स्वात्मरूप ओदनका प्राशन किया है ॥ ३१ ॥ (८)

प्रथम सूक्त समाप्त ॥

अथ उत्तरैः पर्यायैः ओदनस्यैव भोक्तृत्वं भोज्यत्वं च विपक्षे बाधपुरःसरं समर्थ्यते । तत्र प्रथमम् "तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरः" इति यद् उक्तं विपक्षे बाधपुरःसरं तस्य प्रयोजनं प्रथमेन पर्यायेणाह ॥

अब अगले पर्यायोंसे ओदनका भोक्तृत्व और भोज्यत्व वादविवादके साथ समर्थित होगा । तहाँ पहिले ही "तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरः" आदि जो कहा है विपक्षमें बाधा दिखाते हुए उसके प्रयोजनको प्रथम पर्यायसे कहते हैं, कि-

ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । बृहस्पतिना शीर्ष्णा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ १ ॥

ततः । च । एनम् । अन्येन । शीर्ष्णा । प्रऽआशीः । येन । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्रऽआश्नन् ॥ ज्येष्ठतः । ते । प्रऽजा । मरिष्यति । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ बृहस्पतिना । शीर्ष्णा ॥

तेन॑ । ए॒न॒म् । प्र । आ॒शि॒ष॒म् । तेन॑ । ए॒न॒म् । अ॒जी॒ग॒म॒म् ॥ ए॒षः ।
वै । ओ॒द॒नः । सर्व॑ऽअङ्गः । सर्व॑ऽपरुः । सर्व॑ऽतनूः ॥ सर्व॑ऽअङ्गः ।
ए॒व । सर्व॑ऽपरुः । सर्व॑ऽतनूः । सम् । भ॒व॒ति॒ । यः । ए॒वम् । वेद॑ १

पूर्वे प्रथमभाविनोऽनुष्ठातार ऋषयः येन च शिरसा एतम् ओदनं प्राश्नन् प्राशितवन्तः । ❀ अश भोजने । क्र्यादित्वात् श्नाप्रत्ययः ❀ । ततस्तस्माद् अन्येन शीर्ष्णा शिरसा । ❀"शीर्षश्छन्दसि" इति शिरःशब्दस्य शीर्षन् आदेशः ❀ । ततश्चेति चशब्दश्चेदर्थे । अन्येन चेत् शिरसा एनम् उक्तप्रभावम् ओदनं प्राशीः हे देवदत्त प्राशितवान् असि ते तव प्रजा पुत्रादिरूपा ज्येष्ठत आरभ्य ज्येष्ठादिक्रमेण मरिष्यति इति अनेन प्रकारेण एनं प्राशितारम् आह अभिज्ञो ब्रूयात् । इत्थम् अयथाप्राशने दोष उपन्यस्तः । एतद्दोषपरिहारेण प्राशनम् आह तं वा इति । तं तथाविधम् ओदनम् अहम् अर्वाञ्चम् अवाङ्मुखम् अञ्चन्तं न प्राशिषम् । तथा पराञ्चम् पराङ्मुखम् अञ्चन्तमपि न प्राशिषम् । तथा प्रत्यञ्चम् आत्माभिमुखम् अञ्चन्तमपि न प्राशिषम् । अतः पराञ्चं चैनं प्राशीः इत्यादिना उक्तदोषस्य अप्रसङ्गः । कथं तर्हि प्राशीरित्याह । बृहस्पतिना शीर्ष्णा बृहस्पत्यात्मना ओदनसंबन्धिशिरसा । ऋषयो हि पूर्वम् अनेनैव शिरसा ओदनं प्राश्नन् । अहमपि ओदनात्मकस्तेनैव शिरसा एनम् ओदनं प्राशिषम् प्राशितवान् अस्मि । ओदन एवौदनं प्राशीत् इति ह्युक्तम् । तेनैव शिरसा एनम् ओदनम् अजीगमम् गन्तव्यं देशं प्रापितवान् अस्मि । ❀ गमेर्ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम् ❀ । एष वै इत्थं खलु प्राशितोऽयम् ओदनः सर्वाङ्गः सर्वैरवयवैरुपेतः सर्वपरुः सर्वैः परुभिः पर्वभिः अवयवसंधिभिरुपेतः सर्वतनूः संपूर्णशरीरः । इत्थं वेदितुः फलम् आह सर्वाङ्ग एवेति । यः पुरुषः एवम् उक्तप्रकारेण ओद-

नस्य प्राशनं वेद जानाति सोपि सर्वाङ्गत्वादिफलं प्राप्तः सन् संभवति पुण्यभूते स्वर्गादिलोके उत्पद्यते । एवम् उत्तरेपि पर्याया व्याख्येयाः ॥

पहिले अनुष्ठान करने वालोंने जिस शिरसे ओदनका प्राशन किया था यदि उससे अतिरिक्त दूसरे शिरसे हे देवदत्त ! तूने प्राशन किया है तो तेरी पुत्र आदि प्रजा ज्येष्ठसे आरम्भ करके क्रमशः मरने लगेगी । इस प्रकार इस प्राशितासे अभिज्ञ पुरुष कहे (इस प्रकार अयथाप्राशनमें दोष दिखाया, इस दोषको दूर करते हुए प्राशनको कहते हैं,कि -) मैंने उस ओदनको अर्वाङ्मुख होने पर नहीं खाया है और प्रत्यङ्मुख तथा आत्माभिमुख गमन करने पर भी नहीं खाया है । (अतः पराङ्मुख और अर्वाङ्मुखका दोष मुझको नहीं लग सकता, फिर शंका होती है, कि-उसका प्राशन किया किसप्रकार है ? तो कहते, कि–) बृहस्पत्यात्मक ओदनसम्बन्धी शिरसे ऋषियोंने इसका प्राशन किया था, मुझ ओदनात्मकने भी उस ही शिरसे इसका प्राशन किया है। मुझ ओदनने ही ओदनका प्राशन किया है यह पहिले ही कह दिया है । उसी शिरसे इस ओदनको मैंने गन्तव्यस्थानको प्राप्त करा दिया है । इस प्रकार प्राशित हुआ यह ओदन सकल अंगोंसे, सकल पर्वोंसे युक्त हो पूर्ण शरीर वाला होजाता है और वेदितासे सर्वाङ्ग फलको ही कहता है । जो पुरुष इस प्रकार ओदनके प्राशनको जानता है वह भी सर्वाङ्गत्व आदि फलको प्राप्त होता हुआ पुण्यभूत स्वर्गादिलोकमें उत्पन्न होता है ॥१॥

"द्यावापृथिवी श्रोत्रे" इति द्यावापृथिव्योः ओदनसंबन्धिश्रोत्रत्वेन भावनं यद् उक्तं तत्प्रयोजनमपि विपक्षे बाधपुरःसरं द्वितीयमन्त्रेण उपन्यस्यति ॥

"द्यावापृथिवी श्रोत्रे" इत्यादिमें जो ओदनसम्बन्धिश्रोत्ररूप

१८-९-३०

द्यावापृथिवीका श्रोत्रत्व भावित किया था उसका प्रयोजन भी विपक्षमें बाधा दिखाते हुए दूसरे मंत्रमें कहते हैं, कि-

ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। बधिरो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ २ ॥

ततः। च। एनम्। अन्याभ्याम्। श्रोत्राभ्याम्। प्रऽआशीः। याभ्याम्। च। एतम्। पूर्वे। ऋषयः। प्रऽआश्नन्॥ बधिरः। भविष्यसि। इति। एनम्। आह॥ तम्। वै। अहम्। न। अर्वाञ्चम्। न। पराञ्चम्। न। प्रत्यञ्चम्॥ द्यावापृथिवीभ्याम्। श्रोत्राभ्याम्॥ ताभ्याम्। एनम्। प्र। आशिषम्। ताभ्याम्। एनम्। अजीगमम्॥ एषः। वै। ओदनः। सर्वऽअङ्गः। सर्वऽपरुः। सर्वऽतनूः॥ सर्वऽअङ्गः। एव। सर्वऽपरुः। सर्वऽतनूः। सम्। भवति। यः। एवम्। वेद॥ २॥

एवम् अनुषज्य वाक्यं पूरयित्वा व्याख्येयम्। अयम् अर्थः। याभ्यां श्रोत्राभ्यां पूर्वे प्रथमभाविन ऋषयः एतम् ओदनं प्राश्नन्

ततोऽन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां लौकिकाभ्यां यदि ओदनं प्राशितवान् असि तर्हि त्वं बधिरः नष्टश्रोत्रेन्द्रियो भविष्यसि इत्येनं प्राशितारम् आह । तं वा अहम् इत्यादि पूर्ववत् । द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम् ओदनस्य श्रोत्रत्वेन भाविताभ्यां ताभ्यामेव एनम् ओदनं प्राशिषम् ताभ्यामेव एनम् अजीगमम् गमितवान् अस्मि न तु आत्मीयाभ्यां श्रोत्राभ्यां येन उक्तदोषः प्रसज्येद् इति भावः । एष वा ओदन इत्यादिवाक्यशेषः सर्वत्र समानार्थः । एवम् उत्तरेषु पर्यायेषु अनुषङ्गेण वाक्यपरिसमाप्तिर्वाक्ययोजना च कर्तव्या ॥

जिन कर्णोंसे पहिले ऋषियोंने इस ओदनका प्राशन किया है यदि तूने उनसे अतिरिक्त लौकिक श्रोत्रोंसे प्राशन किया है तो तू बहिरा होजायगा, इस प्रकार जानने वाला व्यक्ति प्राशन करने वालेसे कहे । इस प्रकार अयथाप्राशनमें दोष दिखाया, उस दोषको दूर करते हुए प्राशनके विषयमें कहते हैं, कि-) ऐसे ओदनके पराङ्मुख प्रत्यङ्मुख वा अवाङ्मुख होने पर मैंने नहीं खाया है अत एव उक्तदोष नहीं लग सकता, अब यह कहते हैं, कि- प्राशन कैसे किया है, कि-) श्रोत्ररूपसे भावित द्यावापृथिवीरूप श्रोत्रोंसे मैंने इस ओदनका प्राशन किया है और उनहीसे उसको यथास्थान स्थापित किया है, अपने लौकिक श्रोत्रोंसे नहीं किया है, अत एव उक्त दोषका प्रसंग नहीं है, इस प्रकार प्राशित हुआ ओदन सर्वांग सर्वपरु और सम्पूर्णशरीर होजाता है और वेदिता को ऐसा ही फल देता है । जो पुरुष इस प्रकारसे ओदनके प्राशनको जानता है वह भी सर्वांगत्व आदि फलको पाता हुआ पुण्यभूत स्वर्ग आदि लोकमें उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

"सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी" इति यद् उक्तं प्राक् तस्य प्रयोजनकथनपरस्तृतीयो मन्त्रः ॥

द्यावापृथिवीका श्रोत्रत्व भावित किया था उसका प्रयोजन भी विपक्षमें बाधा दिखाते हुए दूसरे मंत्रमें कहते हैं, कि-

ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्यभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । बधिरो भविष्यसीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ २ ॥

ततः । च । एनम् । अन्याभ्याम् । श्रोत्राभ्याम् । प्रऽआशीः । याभ्याम् । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्रऽआश्नन् ॥ बधिरः । भविष्यसि । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ द्यावापृथिवीभ्याम् । श्रोत्राभ्याम् ॥ ताभ्याम् । एनम् । प्र । आशिषम् । ताभ्याम् । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्वऽअङ्गः । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः ॥ सर्वऽअङ्गः । एव । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ २ ॥

एवम् अनुषज्य वाक्यं पूरयित्वा व्याख्येयम् । अयम् अर्थः । याभ्यां श्रोत्राभ्यां पूर्वे प्रथमभाविन ऋषयः एतम् ओदनं प्राश्नन्

ततोऽन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां लौकिकाभ्यां यदि ओदनं प्राशितवान् असि तर्हि त्वं बधिरः नष्टश्रोत्रेन्द्रियो भविष्यसि इत्येनं प्राशितारम् आह । तं वा अहम् इत्यादि पूर्ववत् । द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम् ओदनस्य श्रोत्रत्वेन भाविताभ्यां ताभ्यामेव एनम् ओदनं प्राशिषम् ताभ्यामेव एनम् अजीगमम् गमितवान् अस्मि न तु आत्मीयाभ्यां श्रोत्राभ्यां येन उक्तदोषः प्रसज्येद् इति भावः । एष वा ओदन इत्यादिवाक्यशेषः सर्वत्र समानार्थः । एवम् उत्तरेषु पर्यायेषु अनुषङ्गेण वाक्यपरिसमाप्तिर्वाक्ययोजना च कर्तव्या ॥

जिन कर्णोंसे पहिले ऋषियोंने इस ओदनका प्राशन किया है यदि तूने उनसे अतिरिक्त लौकिक श्रोत्रोंसे प्राशन किया है तो तू बहिरा होजायगा, इस प्रकार जानने वाला व्यक्ति प्राशन करने वालेसे कहे। इस प्रकार अयथाप्राशनमें दोष दिखाया, उस दोषको दूर करते हुए प्राशनके विषयमें कहते हैं, कि-) ऐसे ओदनके पराङ्मुख प्रत्यङ्मुख वा अवाङ्मुख होने पर मैंने नहीं खाया है अत एव उक्तदोष नहीं लग सकता, अब यह कहते हैं, कि- प्राशन कैसे किया है, कि-) श्रोत्ररूपसे भावित द्यावापृथिवीरूप श्रोत्रोंसे मैंने इस ओदनका प्राशन किया है और उनहीसे उसको यथास्थान स्थापित किया है, अपने लौकिक श्रोत्रोंसे नहीं किया है, अत एव उक्त दोषका प्रसंग नहीं है, इस प्रकार प्राशित हुआ ओदन सर्वांग सर्वपरु और सम्पूर्णशरीर होजाता है और वेदिता को ऐसा ही फल देता है। जो पुरुष इस प्रकारसे ओदनके प्राशनको जानता है वह भी सर्वांगत्व आदि फलको पाता हुआ पुण्यभूत स्वर्ग आदि लोकमें उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

"सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी" इति यद् उक्तं प्राक् तस्य प्रयोजनकथनपरस्तृतीयो मन्त्रः ॥

पहिले कहा था, कि–सूर्य और चन्द्रमा इस ओदनके नेत्र हैं, तीसरा मन्त्र उसी प्रयोजनको स्पष्ट करता है, कि—

ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। अन्धो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ३॥

ततः। च। एनम्। अन्याभ्याम्। अक्षीभ्याम्। प्रऽआशीः। याभ्याम्। च। एतम्। पूर्वे। ऋषयः। प्रऽआश्नन्॥ अन्धः। भविष्यसि। इति। एनम्। आह॥ तम्। वै। अहम्। न। अर्वाञ्चम्। न। पराञ्चम्। न। प्रत्यञ्चम्॥ सूर्याचन्द्रमसाभ्याम्। अक्षीभ्याम्॥ ताभ्याम्। एनम्। प्र। आशिषम्। ताभ्याम्। एनम्। अजीगमम्॥ एषः। वै। ओदनः। सर्वऽअङ्गः। सर्वऽपरुः। सर्वऽतनूः॥ सर्वऽअङ्गः। एव। सर्वऽपरुः। सर्वऽतनूः। सम्। भवति। यः। एवम्। वेद॥ ३॥

याभ्यां चक्षुर्भ्यां पूर्व ऋषयः एतम् ओदनं प्राश्नन् ततश्च ताभ्यां चेद् अन्याभ्याम् अक्षीभ्यां चक्षुर्भ्याम् एनम् ओदनं प्राशित·

वान् असि तर्हि [अयथाप्राशनात् अन्धः लुप्तचक्षुष्को भविष्यसि इत्येनं प्राशितारम् आह ब्रूयात् । ❀ अक्षीभ्याम् इति । "ई च द्विवचने" इति अक्षिशब्दस्य ईकारान्तादेशः ❀ । तं वा अहम् इत्यादि पूर्ववत् । सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् सूर्यश्च चन्द्रमाश्च सूर्याचन्द्रमसौ तद्रूपाभ्याम् अक्षीभ्याम् ओदनसंबन्धिचक्षुर्भ्याम् । ताभ्याम् एनं प्राशिषम् इत्यादि पूर्ववत् । एष वा ओदनः सर्वाङ्ग इत्यादिवाक्यशेषः समानार्थः ॥

जिन नेत्रोंसे पहिले ऋषियोंने इस ओदनका प्राशन किया था यदि तूने उनके अतिरिक्त अन्य लौकिक नेत्रोंसे इसका प्राशन किया है तो उस अयथाप्राशनसे तू अंधा होजावेगा, इस प्रकार जानने वाला प्राशन करने वालेसे कहे, इस प्रकार अयथाप्राशन में दोष दिखाया इस दोषको दूर करनेके लिये प्राशनको बताते हैं, कि—मैंने इस ओदनको अवाङ्मुख प्रत्यङ्मुख वा पराङ्मुख होने पर प्राशन नहीं किया है किन्तु ओदनसम्बंधी सूर्य और चन्द्ररूपी नेत्रोंसे इसका प्राशन किया है । मैं भी ओदन हूँ और ओदनने ही ओदनका प्राशन किया है, उन ही सूर्यचन्द्र नेत्रोंसे मैंने इसको गन्तव्य स्थान पर पहुँचाया है इस प्रकार यह प्राशित ओदन सर्वांग सर्वपरु और पूर्ण शरीर वाला होता हुआ सर्वांग फलको ही वेत्तासे कहता है जो पुरुष इस प्रकारसे ओदनके प्राशनको जानता है वह सर्वांगत्व आदि फलको पाता हुआ स्वर्ग में प्रकट होता है ॥ ३ ॥

"ब्रह्म मुखम्" इति यद् ओदनस्य मुखकल्पनं कृतं तस्योपयोगम् आह ॥

"ब्रह्म मुखम्" से जो ओदनके मुखकी कल्पना की थी उसके उपयोगको कहते हैं कि—

ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। ब्रह्मणा मुखेन। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥

ततः । च । एनम् । अन्येन । मुखेन । प्रऽआशीः । येन । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्रऽआश्नन् ॥ मुखतः । ते । प्रऽजा । मरिष्यति । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ ब्रह्मणा । मुखेन ॥ तेन । एनम् । प्र । आशिषम् । तेन । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्वऽअङ्गः । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः ॥ सर्वऽअङ्गः । एव । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ ४ ॥

येन च ओदनसंबन्धिना ब्रह्मात्मकेन मुखेन पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ततोन्येन चेन्मुखेन ओदनं प्राशीस्तर्हि मुखतः मुखाद् आरभ्य अभिमुखप्रदेशे वा ते त्वदीया प्रजा मरिष्यति विनङ्क्ष्यति इति अनेन प्रकारेण एनं प्राशितारम् आह कश्चिद् ब्रूयात्। तं वा अहम् इत्यादि पूर्ववत्। ब्रह्मणा यत् जगत्कारणं ब्रह्म वेदात्मकं वा तदात्मकेन मुखेन ओदनसंबन्धिना। तेन प्रागुक्तेन एनम् ओदनं प्राशिषम् इत्यादि समानम् ॥

जिस ओदनसंबन्धी ब्रह्मात्मक मुखसे पहिले ऋषियोंने इस ओदनका प्राशन किया था यदि तूने उससे अतिरिक्त लौकिकमुखसे इसका प्राशन किया है तो उस अयथाप्राशनके फलसे तेरे मुखके सामने ही तेरी प्रजा मरने लगेगी। वेत्ता पुरुष इस प्रकार प्राशन करने वालेसे कहे इस प्रकार अयथाप्राशनमें दोष दिखाया उस दोषका परिहार करनेके लिये प्राशिता कहता है, कि—मैंने इस ओदनका अवाङ्मुख प्रत्यङ्मुख वा पराङ्मुख होने पर प्राशन नहीं किया है किंतु जगत्के कारण ब्रह्मरूपी मुखसे इसका प्राशन किया है, मैं भी ओदन हूँ और ओदनने ही ओदनका प्राशन किया है, उस ही ब्रह्ममुखसे मैंने इसको गन्तव्य स्थान पर पहुँचाया है, इस प्रकार यह प्राशित ओदन सर्वांग सर्वपरु और पूर्ण शरीर वाला होता हुआ सर्वांग फलको ही वेत्तासे कहता है। जो पुरुष इस प्रकारसे ओदनके प्राशनको जानता है वह सर्वांगत्व आदि फलको पा पुण्य फल भोगनेके स्थान स्वर्ग आदिमें प्रकट होता है ॥ ४ ॥

पूर्वं "बृहस्पतिः शिरः" इत्यादिना कानिचिदेव अङ्गानि उपलक्षणत्वेन ओदनस्य परिकल्पितानि। अस्मिन् प्रकरणे अनुक्तानामपि अवयवानां प्राशने करणत्वेन विनियोगादेव तत्तदवयवजातम् ओदनस्य अर्थात् क्लृप्तं वेदितव्यम्। तत्र अग्नेर्जिह्वैव प्राशितुर्जिह्वेति पञ्चमेन मन्त्रेण प्रतिपादयति ॥

पहिले "बृहस्पतिः शिरः" इत्यादिसे ओदनके कुछ अंगोंको उपलक्षणत्वसे परिकल्पित किया, इस प्रकरणमें अनुक्त अवयवोंके भी प्राशनमें करण होनेसे विनियोगसे ही उन २ अवयवोंका ओदनसम्बंधी क्लृप्तत्व समझना चाहिये। अब अग्निकी जिह्वा ही प्राशिताकी जिह्वा है इसको पञ्चम मंत्रसे प्रतिपादित करते हैं, कि—

तत॑श्चैनम॒न्यया॑ जि॒ह्व॒या प्राशी॒र्यया॑ चै॒तं॑ पूर्व॒ ऋष॑य॒ः

प्राश्नन्। जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। अग्नेर्जिह्वया। तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ५ ॥

ततः। च। एनम्। अन्यया। जिह्वया। प्रऽआशीः। यया। च। एतम्। पूर्वे। ऋषयः। प्रऽआश्नन्॥ जिह्वा। ते। मरिष्यति। इति। एनम्। आह॥ तम्। वै। अहम्। न। अर्वाञ्चम्। न। पराञ्चम्। न। प्रत्यञ्चम्॥ अग्नेः। जिह्वया॥ तया। एनम्। प्र। आशिषम्। तया। एनम्। अजीगमम्॥ एषः। वै। ओदनः। सर्वऽअङ्गः। सर्वऽपरुः। सर्वऽतनूः॥ सर्वऽअङ्गः। एव। सर्वऽपरुः। सर्वऽतनूः। सम्। भवति। यः। एवम्। वेद॥ ५॥

यया जिह्वया पूर्वं ऋषयः एतम् ओदनं प्राश्नन् ततोन्यया आत्मीयया जिह्वया चेत् हे देवदत्त त्वम् ओदनं प्राशीस्तर्हि ते त्वदीया जिह्वा मरिष्यति प्राणांस्त्यक्ष्यति। प्राणत्यागेन शुष्का स्वकार्यक्षमा न भविष्यतीत्यर्थः। ❀ मृङ् प्राणत्यागे। "म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च" इति आत्मनेपदस्य नियमनात् परस्मैपदम्। "ऋद्धनोः स्ये" इति इडागमः ❀। तं वा अहम् इत्यादि पूर्ववत्। अग्नेः अवयवभूतया जिह्वया। सैव प्राशितुः ओदनस्य च जिह्वेत्यर्थः।

तथा जिह्वया एनम् ओदनम् अहं प्राशिषम् इत्यादि पूर्ववत् ॥

जिस जिह्वासे पहिले ऋषियोंने प्राशन किया था, हे देवदत्त! यदि तूने उसके अतिरिक्त लौकिक जिह्वासे प्राशन किया होगा तो तेरी जीभ मर जावेगी अर्थात् प्राणत्यागसे शुष्क होजावेगी–अपना कार्य करनेमें समर्थ न रहेगी, इस प्रकार विद्वान् पुरुष प्राशन करने वालेसे कहे, इस प्रकार अयथाप्राशनमें दोष दिखाया इस दोषको दूर करनेके लिये प्राशनका वर्णन करते हैं, कि—उस ओदनका मैंने पराङ्मुख प्रत्यङ्मुख वा अर्वाङ्मुख होने पर प्राशन नहीं किया है अत एव उक्तदोषका अप्रसंग है, अब शंका होती है, कि–किस प्रकार प्राशन किया? तो इसका उत्तर यह है, कि–इस ओदनकी अवयवभूत अग्निरूपी जिह्वासे मैंने इसका प्राशन किया है, वही प्राशिता और ओदनकी जिह्वा है। ऋषियोंने पहिले इसी जिह्वासे ओदनका प्राशन किया था, मैं भी ओदनात्मक हूँ अतः ओदनने ही ओदनका प्राशन किया है और इसको गन्तव्य स्थान पर पहुँचाया है। इस प्रकार प्राशित हुआ यह ओदन सर्वांग सर्वपरु और सम्पूर्ण शरीर वाला होकर वेदितासे सर्वांगत्व आदि फलको कहता है। जो पुरुष इसप्रकारसे ओदनके प्राशनको जानता है वह सर्वांगत्व आदि फलको पाता हुआ पुण्यभूत स्वर्गादिलोकमें उत्पन्न होता है ॥ ५ ॥

दन्तानामपि विपरिवृत्तिं षष्ठेन मन्त्रेण दर्शयति ॥

दाँतोंकी विपरिवृत्तिको छठे मन्त्रसे दिखाते हैं, कि—

ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । ऋतुभिर्दन्तैः । तैरेनं प्राशिषं

५२ १८-९-३०

तैरेनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ६ ॥

ततः । च । एनम् । अन्यैः । दन्तैः । प्रऽआशीः । यैः । च । एनम् । पूर्वे । ऋषयः । प्रऽआश्नन् ॥ दन्ताः । ते । शत्स्यन्ति । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ ऋतुऽभिः । दन्तैः ॥ तैः । एनम् । प्र । आशिषम् । तैः । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्वऽअङ्गः । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः ॥ सर्वऽअङ्गः । एव । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ ६ ॥

यैर्दन्तैः एतम् ओदनं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ततोऽन्यैर्दन्तैश्चेत् एनम् ओदनं प्राशीः प्राशितुस्ते तव दन्ताः सत्स्यन्ति विशीर्णाः पतिष्यन्ति इति अनेन प्रकारेण एनं प्राशितारम् आह अभिज्ञो ब्रूयात् । तं प्रति उत्तरं तं वा अहम् इत्यादि पूर्ववत् । ऋतुभिः वसन्तग्रीष्मादिभिर्दन्तैः । ऋतवः अस्य दन्ता इति अर्थाद् उक्तं भवति । तैः ऋत्वात्मकैर्दन्तैः एनम् ओदनं प्राशिषम् अतो नोक्तदोषप्रसङ्गः । अन्यद् उक्तार्थम् ॥

जिन दाँतोंसे पहिले ऋषियोंने इस ओदनका प्राशन किया था हे देवदत्त ! यदि उन दाँतोंके अतिरिक्त अन्य लौकिक दाँतों से तूने इस ओदनका प्राशन किया है तो तेरे दाँत गिर जावेंगे, इस प्रकार अभिज्ञ पुरुष प्राशितासे कहे । इस प्रकार अयथा -

प्राशनमें दोष दिखाया उसका परिहार करनेके लिये प्राशिता कहता है, कि—ऐसे ओदनको मैंने प्रत्यङ्मुख अवाङ्मुख और पराङ्मुख होने पर नहीं खाया है अत एव उक्तदोष मुझे नहीं लग सकता, अब यह शंका होती है, कि—इसका प्राशन कैसे हुआ है ? इसके उत्तरमें प्राशिता कहता है, कि—मैंने इसको वसंत ग्रीष्म आदि ऋतुरूप दाँतोंसे प्राशित किया है, इन्हीं दाँतोंसे पहिले ऋषियोंने इसका प्राशन किया था अत एव उक्त दोष मुझको नहीं लग सकता, ओदनने ही ओदनको खाया है, उन्हीं दाँतोंसे मैंने इसको गन्तव्य स्थान पर पहुँचाया है, इस प्रकार प्राशित यह ओदन सर्वांग सर्वपरु और पूर्णशरीर होकर वेदिता से सर्वांगत्व आदि फलको कहता है। जो पुरुष इस प्रकारसे ओदनके प्राशनको जानता है, वह सर्वांगत्व आदि फलोंको पाता हुआ पुण्यभूत स्वर्गादिलोकोंमें उत्पन्न होता है॥ ६॥

"सप्तऋषयः प्राणापानाः" इति यत् प्राग् उक्तं तस्य इदानीम् उपयोगम् आह सप्तमेन मन्त्रेण॥

"सप्त ऋषयः प्राणापानाः" सात ऋषि प्राण और अपान हैं—इस पूर्वोक्त बातका प्रयोजन सप्तम मन्त्रसे कहते हैं, कि—

ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सप्तर्षिभिः प्राणापानैः। तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ७॥

ततः । च । एनम् । अन्यैः । प्राणापानैः । प्रऽआशीः । यैः । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्रऽआश्नन् ॥ प्राणापानाः । त्वा । हास्यन्ति । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ सप्तर्षिऽभिः । प्राणापानैः ॥ तैः । एनम् । प्र । आशिषम् । तैः । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्वऽअङ्गः । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः ॥ सर्वऽअङ्गः । एव । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ७

यैः प्राणापानैः ऋष्यात्मकैः एतम् ओदनं पूर्वेभिज्ञाः प्राश्नन् ततोऽन्यैश्चेत् प्राणापानैः एनम् ओदनं प्राशीस्तर्हि प्राशितारं त्वा त्वां प्राणापानाः प्राणापानात्मिका मुख्यप्राणस्य वृत्तयो हास्यन्ति त्यक्ष्यन्ति । ❀ ओहाक् त्यागे ❀ । इति अनेन प्रकारेण एनं प्राशितारम् आह विशेषज्ञो ब्रूयात् । तस्योत्तरं तं वा अहम् इत्यादि । सप्तर्षिभिः एतदात्मकैः प्राणापानैः । तैरेनं प्राशिषम् इत्यादि पूर्ववत् ॥

जिन ऋष्यात्मक प्राणापानोंसे इस ओदनको पहिले अभिज्ञ पुरुषोंने प्राशन किया था, हे देवदत्त ! यदि तूने उनसे अतिरिक्त लौकिक प्राणापानोंसे इसका प्राशन किया है तो प्राण और अपानरूप मुख्य प्राणकी वृत्तियें तुझको छोड़ देंगी । इस प्रकार विशेषज्ञ पुरुष प्राशितासे कहे । इस प्रकार अयथाप्राशन में दोष दिखाया उसका उत्तर देता हुआ प्राशिता कहता है, कि–मैंने इस ओदनको पराङ्मुख प्रत्यङ्मुख वा अर्वाङ्मुख होने पर भक्षण नहीं किया है, अतः मुझ पर यह दोष नहीं लग सकता

फिर किस प्रकार प्राशन किया है? इसके उत्तरमें प्राशिता कहता है, कि—सप्त ऋषिरूप प्राणापानोंसे मैंने इसका प्राशन किया है, पूर्व ऋषियोंने भी इसी प्रकार प्राशन किया था अतः उक्त दोषका प्रसंग नहीं है। मैं भी ओदनात्मक हूँ ओदनने ही ओदन का प्राशन किया है और उन्हीं प्राणापानोंसे मैंने इसको गन्तव्य स्थान पर पहुँचाया है। इस प्रकार प्राशित हुआ यह ओदन सर्वांग सर्वपरु पूर्णशरीर होजाता है। जो पुरुष इस प्रकारसे से ओदनके प्राशनको जानता है वह सर्वांगत्व आदि फलको पाता है अर्थात् पुण्यभूत स्वर्गादिमें सर्वांगभावसे प्रकट होता है ७

इत्थम् उत्तमाङ्गवर्तिनाम् अवयवानां प्राशने करणभूतानां देवतारूपत्वम् अभिधाय अन्येषाम् अवयवानां तथात्वम् अभिधित्सुः कृत्स्नशरीरव्यापिरूपस्य अन्तरिक्षरूपेण विपरिवृत्तिम् आह अष्टमेन पर्यायेण ॥

इस प्रकार उत्तमांगके अवयवोंके प्राशनमें करणभूत देवतारूपत्वको कह कर अन्य अवयवोंको भी वैसा ही कहनेके अभिप्रायसे सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त रूपकी अन्तरिक्षरूपसे विपरिवृत्ति को आठवें मन्त्रसे कहते हैं, कि—

ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। अन्तरिक्षेण व्यचसा। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदन सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ८ ॥

ततः । च । एनम् । अन्येन । व्यचसा । प्रऽआशीः । येन । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्रऽआश्नन् ॥ राजऽयक्ष्मः । त्वा । हनिष्यति । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ अन्तरिक्षेण । व्यचसा ॥ तेन । एनम् । प्र । आशिषम् । तेन । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्वऽअङ्गः । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः ॥ सर्वऽअङ्गः । एव । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ८

येन व्यचसा व्याप्तिमता रूपेण कृत्स्नशरीरवर्तिना एतम् ओदनं पूर्वे ऋषयः प्राश्नन् ततोऽन्येन चेद् व्यचसा एनम् ओदनं प्राशीस्तर्हि त्वा त्वां प्राशितारं राजयक्ष्मः एतत्संज्ञः क्षयरोगो हनिष्यति मारयिष्यति । ❀ “ऋद्धनोः स्ये” इति इडागमः । यक्ष पूजायाम् इत्यस्मात् अर्तिस्तुसुहुसृधृक्षिक्षुभायावापदियक्षिनीभ्यो मन् [उ० १. १३७] इति औणादिको मन् प्रत्ययः ❀ । राज्ञः सोमस्य संबन्धी यक्ष्मो राजयक्ष्मः । श्रूयते हि तैत्तिरीयके “राजानं यक्ष्म आरद्ध इति तद् राजयक्ष्मस्य जन्म” इति [तै०सं० २. ५. ६. ५] । इति अनेन प्रकारेण एनं प्राशितारम् आह ब्रूयात् । तं वा अहम् इत्यादि पूर्ववत् ॥

जिस रूपसे पहिले ऋषियोंने इस ओदनका प्राशन किया था हे देवदत्त ! यदि तूने उस अन्तरिक्षात्मक रूपके अतिरिक्त अन्यलौकिकरूपसे इसका प्राशन किया है तो राजयक्ष्मा तुझको समाप्त करदेगा, इस प्रकार अभिज्ञ पुरुष प्राशितासे कहे (उक्त दोषको दूर करता हुआ प्राशिता कहता है, कि–) मैंने इस ओदन

को अवाङ्मुख पराङ्मुख वा प्रत्यङ्मुख होने पर भक्षण नहीं किया है किंतु अन्तरिक्षात्मक रूपसे प्राशन किया है अतः उक्त दोष नहीं लग सकता, उसी रूपसे मैंने इसको यथास्थान पहुँचाया है, इस प्रकार प्राशित हुआ यह ओदन सर्वांग सर्वपरु और सर्वतनू होजाता है । जो पुरुष इस प्रकारसें ओदनके प्राशनको जानता है वह स्वर्गलोकमें सर्वांग सर्वपरु और सर्वतनू होकर प्रकट होता है ॥ ८ ॥

[पृष्ठभागस्य द्युलोकरूपेण विपरिवृत्तिम् आह नवमेन मन्त्रेण ॥]

पृष्ठभागकी द्युलोकरूपसे विपरिवृत्तिको नवम मन्त्रसे कहते हैं, कि-

ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । दिवा पृष्ठेन । तेनैनं प्राशिषं ते तेनैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥

ततः । च । एनम् । अन्येन । पृष्ठेन । प्रऽआशीः । येन । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्रऽआश्नन् ॥ विऽद्युत् । त्वा । हनिष्यति । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ दिवा । पृष्ठेन ॥ तेन । एनम् । प्र । आशिषम् । तेन । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः ।

सर्वऽअङ्गः । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः ॥ सर्वऽअङ्गः । एव । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ ९ ॥

येन दिवा द्युलोकात्मकेन पृष्ठेन मध्यशरीरापरभागेन एतम् ओदनं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ततोऽन्येन चेत् पृष्ठेन आत्मीयेन शरीरापरभागेन त्वम् एनम् ओदनं प्राशीः विद्युत् विद्योतमाना अशनिस्त्वा त्वां हनिष्यति । इत्येनम् आह इत्यादि पूर्ववत् । दिवा द्युलोकात्मकेन पृष्ठेन शरीरापरभागेन । तेन अवयवेन एनं प्राशिषम् इत्यादि पूर्ववत् ॥

जिस पृष्ठसे पूर्वके ऋषियोंने इसका प्राशन किया था हे देवदत्त ! यदि तूने उस पृष्ठके अतिरिक्त अन्य पृष्ठसे इसका प्राशन किया तो विजली तेरा वध करेगी । इस प्रकार अभिज्ञ पुरुष प्राशितासे कहे । उक्त दोषको दूर करता हुआ प्राशिता कहता है, कि–मैंने इसको प्रत्यङ् अवाङ् पराङ् होनेपर प्राशित नहीं किया है अतः उक्त दोष नहीं लग सकता, किन्तु द्यौरूपी पृष्ठसे प्राशन किया है, उसीसे इसको यथास्थान पहुँचाया है । इस प्रकार प्राशित हुआ यह ओदन सर्वांग सर्वपरु और सर्वतनू होजाता है। जो पुरुष इस प्रकारसे इस ओदनके प्राशनको जानता है वह स्वर्ग आदि लोकोंमें सर्वांग आदि पाकर प्रादुर्भूत होता है ९

अवयवान्तरस्यापि देवतात्मकत्वं ब्रूते दशमेन मन्त्रेण ॥

दशम मंत्रसे अन्य देवताओंका भी अवयवात्मकत्व कहते हैं, कि-

ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । पृथिव्योरसा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजी-

गमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद

ततः । च । एनम् । अन्येन । उरसा । प्रऽआशी । येन । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्रऽआश्नन् ॥ कृष्या । न । रात्स्यसि । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ पृथिव्या । उरसा ॥ तेन । एनम् । प्र । आशिषम् । तेन । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्वऽअङ्गः । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः ॥ सर्वऽअङ्गः । एव । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद १०

येन उरसा पूर्वे ऋषयः प्राशितवन्तस्ततोऽन्येन चेद् उरसा स्तनमण्डलस्य उपरिवर्तिना पुरोभागस्थावयवेन त्वम् ओदनं प्राशीस्तर्हि कृष्या कर्षणक्रियया न रात्स्यसि । व्रीहियवादिसस्यैः समृद्धो न भविष्यसीत्यर्थः । ❀ राध साध संसिद्धौ लटि "एकाच उपदेशेनुदात्तात्" इति इट्प्रतिषेधः ❀ । अन्यद् उक्तार्थम् । पृथिव्या उरसा पृथिवीत्वेन भाव्यमानेन उरसा तेनैनम् प्राशिषम् इत्यादि समानम् ॥

जिस उरस्से पूर्व ऋषियोंने इस ओदनका प्राशन किया था यदि तूने उस वक्षःस्थलसे प्राशन नहीं किया है तो तुझे कृषिमें सिद्धि न मिलेगी, इस प्रकार-वेत्ता प्राशन करने वालेसे कहे,इस दोषको दूर करनेके लिये प्राशिता कहता है, कि-इसके पराङ्-मुख अवाङ्मुख वा प्रत्यङ्मुख होने पर प्राशन नहीं किया है,

५२ १६-६-३०

किन्तु पृथिवीरूप वक्षःस्थलसे प्राशन किया है अतः मुझको यह दोष नहीं लग सकता और उसीसे इसको यथास्थान पहुँचाया है। इस प्रकार प्राशित हुआ ओदन सर्वांग सर्वपरु और सर्वतनू हो जाता है। जो पुरुष ओदनके इस प्रकारके प्राशनको जानता है वह पुण्यफलभूत स्वर्ग आदिमें सर्वांगत्व आदिको पाता हुआ प्रकट होता है ॥ १० ॥

उदरस्यापि देवतात्मना भावनाम् आह एकादशेन मन्त्रेण ॥

ग्यारहवें मन्त्रसे उदरकी भी देवतात्मारूप से भावनाको कहते हैं, कि–

ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सत्येनोदरेण। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः। सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥

ततः। च। एनम्। अन्येन। उदरेण। प्रऽआशीः। येन। च। एतम्। पूर्वे। ऋषयः। प्रऽआश्नन्॥ उदरऽदारः। त्वा। हनिष्यति। इति। एनम्। आह॥ तम्। वै। अहम्। न। अर्वाञ्चम्। न। पराञ्चम्। न। प्रत्यञ्चम्॥ सत्येन। उदरेण॥ तेन। एनम्। प्र। आशिषम्। तेन। एनम्। अजीगमम्॥

एषः । वै । ओदनः । सर्वऽअङ्गः । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः ॥

सर्वऽअङ्गः । एव । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः । सम् । भवति । यः ।

एवम् । वेद ॥ ११ ॥

पूर्वे ऋषयो येन उदरेण प्राश्नन् ततोऽन्येन उदरेण यदि इमम् ओदनं प्राशीस्तर्हि त्वा त्वाम् उदरदारः उदरस्य दरणात्मकः अतीसाराख्यो रोगो हनिष्यति मारयिष्यति । अन्यत् पूर्ववत् । सत्येन । यथार्थकथनात्मकं सत्यम् । तेन उदरेण तद्रूपतया भाव्यमानेन उदरेण । एनम् ओदनं प्राशिषम् इत्यादि समानम् ॥

प्राचीन ऋषियोंने जिस उदरसे ओदनका प्राशन किया था हे देवदत्त ! यदि तूने उससे विपरीत उदरसे ओदनका प्राशन किया है तो उदरका दरण करने वाला अतीसार नामक रोग तुझको मार डालेगा । इस प्रकार अभिज्ञ पुरुष प्राशितासे कहे । उक्त दोषका परिहार करता हुआ प्राशिता कहता है, कि–मैंने इसके प्रत्यङ्मुख पारङ्मुख वा अवाङ्मुख होने पर इसका प्राशन नहीं किया है, किन्तु सत्यरूपी उदरसे प्राशन किया है अतः उक्त दोष मुझको नहीं लग सकता । मैंने सत्यरूपी उदरसे प्राशन किया है और उसीसे ओदनको यथास्थान पहुँचाया है । इस प्रकार प्राशित हुआ ओदन सर्वांग सर्व परु और सर्व तनू होजाता है जो पुरुष इस प्रकारसे इसके प्राशनको जानता है वह सर्वांगत्व आदिसे संपन्न होकर स्वर्गादिमें प्रकट होता है ॥११॥

अवयवान्तरस्यापि देवतारूपेण भावनम् आह द्वादशेन मंत्रेण ॥

बारहवें मन्त्रसे दूसरे अवयवकी भी देवतारूपसे भावनाको कहते हैं, कि–

ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः

प्राश्नन् । अप्सु मरिष्यसीत्येनमाह । तं वा अहं
नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । समुद्रेण वस्तिना ।
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा ओदनः
सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः
सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥

ततः । च । एनम् । अन्येन । वस्तिना । प्रऽआशीः । येन । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्रऽआश्नन् ॥ अप्ऽसु । मरिष्यसि । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ समुद्रेण । वस्तिना ॥ तेन । एनम् । प्र । आशिषम् । तेन । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्वऽअङ्गः । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः ॥ सर्वऽअङ्गः । एव । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ १२ ॥

वसति अस्मिन् अशितपीतान्नोदकम् इति वस्तिः मूत्राशयः । ❀ इतरावयवानामिव तस्यापि प्राशने साधकतमत्वविवक्षया करणत्वम् ❀ । येन वस्तिना पूर्वे ऋषयः प्राश्नन् ततोऽन्येन चेद् वस्तिना त्वम् ओदनं प्राशीस्तर्हि त्वम् अप्सु उदकेषु मरिष्यसि इति अनेन प्रकारेण एनं प्राशितारम् आह ब्रूयात् । तं वा अहम् इत्यादि उक्तार्थम् । समुद्रेण वस्तिना समुद्रात्मना भावितेन आत्मीयेन वस्तिना । तेनैनं प्राशिषम् इत्यादि पूर्ववत् । समुद्रस्य वस्ति-

रूपता तैत्तिरीयके समाम्नायते । "तद्ध अभ्रमिव समहन्यत । तद्ध वस्तिम् अभिनत् । स समुद्रोभवत् । तस्मात् समुद्रस्य न पिबन्ति" इति [तै० ब्रा० २. २. ६. ३] ॥

जिसमें खाया पिया हुआ अन्न जल वसता है वह मूत्राशय वस्ति कहलाता है अतः जिस वस्तिसे † प्राचीन ऋषियोंने इस ओदनका प्राशन किया है उसी वस्तिसे हे देवदत्त ! तूने प्राशन नहीं किया है तो तू जलमें मरण पावेगा । इस प्रकार प्राशितासे कहे । उक्त दोषको दूर करनेके लिये प्राशिता कहता है, कि-मैंने अवाङ्मुख प्रत्यङ्मुख वा पराङ्मुख रहने पर इस ओदनका प्राशन नहीं किया है, किन्तु समुद्ररूपी वस्तिसे प्राशन किया है । मैंने समुद्ररूपी वस्तिसे प्राशन किया है और उसीसे इसको यथास्थान पहुँचाया है । इस प्रकार प्राशित हुआ यह ओदन सर्वांग सर्वपरु और सर्वतनू होजाता है । और दाता स्वर्गमें सर्वांग आदि फल पाता हुआ प्रकट होता है ॥ १२ ॥

ऊर्वोरपि देवताभावनाम् आह त्रयोदशेन मन्त्रेण ॥

तेरहवें मन्त्रसे ऊरुओंके भी देवभावको कहते हैं, कि—

तत॑श्चैन॒मन्याभ्या॑मू॒रुभ्या॒ं प्राशी॒र्याभ्यां॑ चै॒तं पू॒र्व ऋष॑यः॒
प्राश्न॑न् । उ॒रू॑ ते॑ मरिष्यत॒ इत्ये॑नमाह । तं वा अ॒हं
नार्वा॒ञ्चं न परा॑ञ्चं॒ न प्रत्य॑ञ्चम् । मि॒त्रावरु॑णयोरू॒रुभ्या॑म् ।

---

† तैत्तिरीय ब्राह्मण २ । २ । ६ । ३ में कहा है, कि—"तद्ध अभ्रमिव समहन्यत । तद्ध वस्तिं अभिनद्ध । स समुद्रोऽभवत् । तस्मात् समुद्रस्य न पिबन्ति ।-उसने अभ्रकी समान पीटा और उसने वस्तिको फाड़ डाला वह समुद्र होगया, अतः समुद्रके (जलको) नहीं पीते हैं" ॥

ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ १३ ॥

ततः । च । एनम् । अन्याभ्याम् । ऊरुऽभ्याम् । प्रऽआशीः । याभ्याम् । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्रऽआश्नन् ॥ ऊरू इति । ते । मरिष्यतः । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ मित्रावरुणयोः । ऊरुऽभ्याम् ॥ ताभ्याम् । एनम् । प्र । आशिषम् । ताभ्याम् । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वैः । ओदनः । सर्वऽअङ्गः । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः ॥ सर्वऽअङ्गः । एव । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ १३ ॥

याभ्याम् ऊरुभ्याम् पूर्वे ऋषयः प्राश्नन् । ❀साधकतमत्वविवक्षया करणत्वम् ❀ । ततोऽन्याभ्यां चेद् ऊरुभ्याम् एनम् ओदनं प्राशीः ते प्राशितुस्तव ऊरू मरिष्यतः त्यक्तप्राणौ शुष्कौ भविष्यत इत्येनम् आह । तं वा अहम् इत्यादि पूर्ववत् । मित्रावरुणयोः मित्रश्च वरुणश्च मित्रावरुणौ । ❀ "देवताद्वन्द्वे च" इति पूर्वपदस्य आनङ् । "देवताद्वन्द्वे च" इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । तयोः संबन्धिभ्याम् ऊरुभ्याम् । ताभ्याम् एनं प्राशिषम् इत्यादि पूर्ववद् योज्यम् ॥

जिन ऊरुओंसे प्राचीन ऋषियोंने प्राशन किया था, हे देव-

दत्त ! यदि तूने उनसे अतिरिक्त दूसरी ऊरुओंसे प्राशन किया है तो तेरी ऊरुएँ मर जावेंगी । इस दोषको दूर करनेके लिये प्राशिता कहता है, कि-मैंने इस ओदनके पराङ्मुख प्रत्यङ्मुख वा अवाङ्मुख होने पर प्राशन नहीं किया है किन्तु मित्रावरुण देवरूपी ऊरुओंसे भावित ऊरुओंसे प्राशन किया है, उनसे ही इसको यथास्थान पहुँचाया है अतः पूर्वोक्तदोष मुझको नहीं लग सकता । इस प्रकार प्राशित हुआ यह ओदन सर्वांग सर्वपरु और सर्वतनू होजाता है। जो पुरुष इस प्रकार इसके प्राशनको जानता है वह सर्वांग सर्वपरु और सर्वतनू होकर स्वर्गमें उत्पन्न होता है १३

जानुनोरपि देवतासंबन्धित्वेन भावनम् आह चतुर्दशेन मन्त्रेण ॥

चौदहवें मन्त्रसे जानुओंकी भी देवतारूपसे भावनाको कहते है, कि

ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । स्रामो भविष्यसीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ १४ ॥

ततः । च । एनम् । अन्याभ्याम् । अष्ठीवत्ऽभ्याम् । प्रऽआशीः । याभ्याम् । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्रऽआश्नन् ॥ स्रामः । भविष्यसि । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न ।

अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ त्वष्टुः । अष्ठीवत्ऽभ्याम् ॥ ताभ्याम् । एनम् । प्र । आशिषम् । ताभ्याम् । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्वऽअङ्गः । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः ॥ सर्वऽअङ्गः । एव । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ १४ ॥

अष्ठीवन्तौ अस्थिमन्तौ ऊर्वोरधःप्रदेशवर्तिनौ अवयवौ जानुलक्षणौ । ❀ "आसन्दीवद् अष्ठीवत्०" इति मतुपि निपात्यते ❀। ताभ्याम् अष्ठीवद्भ्याम् अन्याभ्याम् इत्यादि सर्वं पूर्ववद् योज्यम् । स्रामः शुष्कजङ्घः । शुष्कजङ्घो भविष्यसि इत्येनं प्राशितारम् आह । तं वा अहम् इत्यादि पूर्ववत् । त्वष्टुः देवस्य संबन्धिभ्याम् अष्ठीवद्भ्याम् ॥ गतार्थम् अन्यत् ॥

जिन अस्थिवाली जानुओंसे प्राचीन ऋषियोंने इस ओदनका प्राशन किया था, हे देवदत्त ! यदि तूने उनके अतिरिक्त लौकिक जानुओंसे प्राशन किया होगा तो तू स्राम होजावेगा अर्थात् तेरी जानुएँ सूख जावेंगी । इस प्रकार अभिज्ञ पुरुष प्राशन करनेवालेसे कहे इस दोषका परिहार करनेके लिये प्राशन करनेवाला कहता है, कि–मैंने इस ओदनको पराङ्मुख प्रत्यङ्मुख वा अर्वाङ्मुख होने पर नहीं प्राशन किया है, किन्तु त्वष्टाकी जानुओंसे प्राशन किया है, और उन्हींसे इसको यथास्थान पहुँचाया है । इस प्रकार प्राशित हुआ यह ओदन सर्वांग सर्वपरु और सर्वतनू होजाता है जो पुरुष इस प्रकार इसके प्राशनको जानता है वह पुण्यफलभूत स्वर्ग आदिमें सर्वांग सर्वपरु और पूर्णशरीरसम्पन्न होकर प्रकट होता है ॥ १४ ॥

पादयोरपि देवतासंबन्धित्वेन भावनम् आह पञ्चदशेन मन्त्रेण ॥

अब पन्द्रहवें मन्त्रसे पादोंकी भी देवतारूपसे भावनाको कहते हैं, कि–

ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । अश्विनोः पादाभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥१५॥

ततः । च । एनम् । अन्याभ्याम् । पादाभ्याम् । प्रऽआशीः । याभ्याम् । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्रऽआश्नन् ॥ बहुऽचारी । भविष्यसि । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ अश्विनोः । पादाभ्याम् ॥ ताभ्याम् । एनम् । प्र । आशिषम् । ताभ्याम् । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्वऽअङ्गः । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः ॥ सर्वऽअङ्गः । एव । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ १५ ॥

जङ्घयोरधोवर्तिनो पादौ । बहुचारी बहु अधिकं चरितुं शीलम्

१९-६-३०

अस्य स तथोक्तः । ❀ "सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये" इति णिनिः ❀ । सर्वदा प्रवासशील इत्यर्थः । अश्विनोः संबन्धिभ्यां तदीयत्वेन भाविताभ्यां पादाभ्याम् ॥ वाक्ययोजना पूर्ववत् ॥

पहिले ऋषियोंने जिन पादोंसे इस ओदनका प्राशन किया था, हे देवदत्त ! यदि तूने उनके अतिरिक्त लौकिक पादोंसे प्राशन किया है तो तू बहुचारी होजावेगा । इस प्रकार अभिज्ञ पुरुष प्राशन करने वालेसे कहे, इस दोषका परिहार करनेके लिये प्राशनकर्ता कहता है, कि–मैंने इसके पराङ्मुख प्रत्यङ्मुख वा अवाङ्मुख होने पर प्राशन नहीं किया है, किन्तु अश्विनीकुमारोंके पादोंसे प्राशन किया है और उन्हींसे इसको यथास्थान पहुँचाया है । इस प्रकार प्राशित हुआ यह ओदन सर्वांग सर्वपरु और सर्वतनू होता है । जो पुरुष इसके इस प्रकारके प्राशनको जानता है वह पुण्यभूत स्वर्गलोकमें सर्वाङ्गत्व आदिको पाता हुआ प्रकट होता है ॥ १५ ॥

पादाग्रयोरपि देवतासंबन्धित्वेन भावनम् आह ॥

अब सोलहवें मन्त्रसे पादाग्रोंकी भी देवतारूपसे भावनाको कहते हैं, कि–

ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । सवितुः प्रपदाभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ १६ ॥

ततः । च । एनम् । अन्याभ्याम् । प्रऽपदाभ्याम् । प्रऽआशीः । याभ्याम् । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्रऽआश्नन् । सर्पः । त्वा । हनिष्यति । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ सवितुः । प्रऽपदाभ्याम् ॥ ताभ्याम् । एनम् । प्र । आशिषम् । ताभ्याम् । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्वऽअङ्गः । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः । सर्वऽअङ्गः । एव । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ १६ ॥

प्रपदाभ्यां पादाग्राभ्याम् । सर्पः प्रसिद्धः । सवितुः सर्वस्य प्रेरकस्य देवस्य संबन्धिभ्यां प्रपदाभ्यां पादाग्राभ्याम् ॥

पहिले ऋषियोंने जिन पादाग्रोंसे इस ओदनका प्राशन किया था, हे देवदत्त ! यदि तूने उनके अतिरिक्त लौकिक पादाग्रोंसे प्राशन किया है तो सर्प तुझको मार डालेगा । इस प्रकार अभिज्ञ पुरुष प्राशन करने वालेसे कहे, इस दोषका परिहार करनेके लिये प्राशनकर्ता कहता है, कि—मैंने इसके पराङ्मुख प्रत्यङ्मुख वा अर्वाङ्मुख होने पर प्राशन नहीं किया है, किन्तु सविता-देवताके पादाग्रोंसे प्राशन किया है और उन्हींसे इसको यथास्थान पहुँचाया है । इस प्रकार प्राशित हुआ यह ओदन सर्वाङ्ग सर्वपरु और सर्वतनू होता है । जो पुरुष इसके इस प्रकारके प्राशनको जानता है वह पुण्यभूत स्वर्गलोकमें सर्वांगत्व आदिको पाता हुआ प्रकट होता है ॥ १६ ॥

हस्तयोरपि देवतासंबन्धित्वेन भावनम् आह ॥

अब सत्तरहवें मन्त्रसे हाथोंकी भी देवतारूपसे भावनाको कहते हैं, कि -

ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । ऋतस्य हस्ताभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥१७॥

ततः । च । एनम् । अन्याभ्याम् । हस्ताभ्याम् । प्रऽआशीः । याभ्याम् । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्रऽआश्नन् ॥ ब्राह्मणम् । हनिष्यसि । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ ऋतस्य । हस्ताभ्याम् ॥ ताभ्याम् । एनम् । प्र । आशिषम् । ताभ्याम् । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्वऽअङ्गः । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः ॥ सर्वऽअङ्गः । एव । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ १७ ॥

ब्राह्मणं हनिष्यसीति । ब्रह्महत्या तत्र भविष्यतीत्यर्थः ।-ऋतं सत्यं परं ब्रह्म तस्य संबन्धिभ्यां हस्ताभ्याम् । ताभ्याम् एनम् इत्यादि अन्यत् सर्वं पूर्ववत् ॥

पहिले ऋषियोंने जिन हाथोंसे इस ओदनका प्राशन किया था, हे देवदत्त ! यदि तूने उनके अतिरिक्त लौकिक हाथोंसे प्राशन किया है तो तुझे ब्रह्महत्या लगेगी । इस प्रकार अभिज्ञ पुरुष प्राशन करने वालेसे कहे, इस दोषका परिहार करनेके लिये प्राशनकर्ता कहता है, कि–मैंने इससे पराङ्मुख प्रत्यङ्मुख वा अवाङ्मुख होने पर प्राशन नहीं किया है, किन्तु परब्रह्मके सत्यसम्बंधी हाथोंसे प्राशन किया है और उन्हींसे इसको यथास्थान पहुँचाया है । इस प्रकार प्राशित हुआ । यह ओदन सर्वांग सर्वपरु और सर्वतनू होता है । जो पुरुष इसके इस प्रकारके प्राशनको जानता है वह पुण्यभूत स्वर्गलोकमें सर्वाङ्गत्व आदिको पाता हुआ प्रकट होता है ॥ १७ ॥

इत्थं प्राशितुः सर्वेष्वङ्गेषु देवताप्रतिपत्तीर्विधाय तदाधारभूतायां भूम्यामपि प्रतिपत्तिविशेषं विपक्षे बाधपुरःसरं दर्शयति ॥

इस प्रकार प्राशिताके सब अंगोंमें देवताप्रतिपत्तिको कह कर उसकी आधारभूत भूमिमें भी प्रतिपत्तिविशेषको कहनेके लिये विपक्षमें बाधा दिखाते हुए प्रतिपत्ति कहते हैं, कि–

ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । अप्रतिष्ठानो नायतनो मरिष्यसीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । सत्ये प्रतिष्ठाय । तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ १८ ॥

ततः । च । एनम् । अन्यया । प्रतिऽस्थया । प्रऽआशीः । यया ।

च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्रऽआश्नन् ॥ अप्रतिऽस्थानः । अनायतनः । मरिष्यसि । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ सत्ये । प्रतिऽस्थाय ॥ तया । एनम् । प्र । आशिषम् । तया । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्वऽअङ्गः । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः ॥ सर्वऽअङ्गः । एव । सर्वऽपरुः । सर्वऽतनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ १८ ॥

प्रतितिष्ठति अस्याम् इति प्रतिष्ठा पादयोराधारभूता भूमिः । ❀ ष्ठा गतिनिवृत्तौ । "आतश्चोपसर्गे" इति अधिकरणे अङ् प्रत्ययः ❀ । यया च प्रतिष्ठया सत्यब्रह्मात्मिकया एतम् ओदनं पूर्वे प्रथमभाविन ऋषयः प्राशन् ततोऽन्यया चेत् प्रतिष्ठया एनम् ओदनं प्राशीः प्राशितवान् असि तर्हि त्वम् अप्रतिष्ठानः प्रतिष्ठारहितः । तस्यैव अर्थकथनम् अनायतन इति । स्थानोपवेशनाय भूमिरहितो भविष्यसि इत्येनं प्राशितारम् आह कश्चिद् विद्वान् ब्रूयात् । इति विपक्षे बाधोपन्यासः । तस्यैतद् उत्तरं तं वा अहम् इत्यादि । तं खलु उक्तप्रभावम् ओदनम् अहम् अर्वाञ्चम् अभिमुखम् अवस्थितं न प्राशिषम् । न पराञ्चम् पराङ्मुखम् अवस्थितमपि न प्राशिषम् । न प्रत्यञ्चम् प्रत्यङ्मुखम् आभिमुख्येन अवस्थितमपि न प्राशिषम् । किं तु आत्मभूतम् ओदनं सत्ये सर्वदा बाधविधुरे "विज्ञानम् आनन्दं ब्रह्म" [बृ० आ० ३. ९. ३४] इत्याद्युपनिषदेकवेद्ये सर्वजगत्कल्पनास्पदे ब्रह्मणि प्रतिष्ठाय प्रतिष्ठितः समाश्रितो भूत्वा तेन सर्वजगत्प्रतिष्ठात्मकेन प्राशिषम् प्राशित-

वान् अस्मि । तेनैव सत्येन;एनम् अजीगमम् उदरमध्यं गमितवान् अस्मि । यद्वा । अस्य सवयज्ञस्य फलभूतं नाकपृष्ठाख्यं लोकं गमितवान् अस्मि । एष खलु उदीरितभावनया प्राशित ओदनः सर्वाङ्गः सर्वैरङ्गैः अवयवैरुपेतः सर्वपरुः सर्वैः पर्वभिः अवयवसंधिभिरुपेतः सर्वतनूः कृत्स्नशरीरो भवति । सर्वशरीराभिमानिविराडात्मको भवतीत्यर्थः । उक्तम् अर्थं वेदितुः फलम् आह सर्वाङ्ग एवेत्यादिना ॥

इत्थम् आद्यन्तयोः पर्याययोः संपूर्णाम्नानात् मध्यवर्तिषु पर्यायेषु अनुषङ्गेण वाक्यपरिसमाप्तिं कृत्वा व्याख्यातव्यम् ॥

इति द्वितीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

जिसमें प्रतिष्ठित होता है वह पादोंकी आधारभूता पृथिवी प्रतिष्ठा कहलाती है । जिस सत्य ब्रह्मात्मिका प्रतिष्ठासे प्राचीन ऋषियोंने इस ओदनका प्राशन किया था, हे देवदत्त ! उससे अतिरिक्त अन्य प्रतिष्ठासे यदि तूने इस ओदनका प्राशन किया है तो तू अप्रतिष्ठान अर्थात् प्रतिष्ठारहित होजावेगा (उसीको स्पष्ट करते हैं, कि–) तू अनायतन अर्थात् बैठने उठनेके लिये भूमिसे रहित होजावेगा । इस प्रकार कोई विद्वान् पुरुष प्राशितासे कहे । प्राशिता इस दोषको दूर करनेके लिये उत्तर देता है, कि–मैंने उक्तप्रभाव वाले ओदनका अभिमुख अवस्थित होने पर भी प्राशन नहीं किया है, और पराङ्मुख अवस्थित होने पर भी प्राशन नहीं किया है और प्रत्यङ्मुख अवस्थित होने पर भी प्राशन नहीं किया है, किंतु आत्मभूत ओदनको सदा बाधासे अलग "विज्ञानं आनन्दं ब्रह्म" (बृहदारण्यक ३ । ९ । २४) इत्यादि उपनिषत् से ही जाननेमें आने वाले, सब जगत्की कल्पनाके आस्पद ब्रह्म में प्रतिष्ठित होकर उस सर्व जगत्प्रतिष्ठात्मकसे प्राशन किया है । उसी सत्यसे इसको मैंने उदरमें पहुँचाया है अथवा इस यज्ञके

फलभूत नाकपृष्ठलोक पर पहुँचा दिया है। यह इस भावनासे प्राशित हुआ ओदन सब अंगोंसे पूर्ण, सब अवयवसंधियोंसे युक्त पूर्ण शरीर वाला होजाता है तात्पर्य यह है, कि–सर्व शरीराभिमानी विराडात्मक होजाता है (अब इसके जानने वालेको मिलने वाले फलका वर्णन करते हैं, कि–) जो पुरुष इसके प्राशन के इस प्रकारके फलको जानता है वह स्वर्गमें सकल अंग सकल जोड़ और पूर्णशरीर पाता हुआ प्रकट होता है ॥ १८ ॥ ( )

दूसरे अनुयाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त

"एतद्व वै ब्रध्नस्य विष्टपम्" इत्यस्य सूक्तस्य "तस्यौदनस्य" इति सूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

"एतद् वै ब्रध्नस्य" सूक्तका विनियोग "तस्यौदनम्" सूक्तके साथ कह दिया है।

तत्र प्रथमा ॥

ए॒तद्‌ वै ब्र॒ध्नस्य॑ वि॒ष्ट॒पं यदो॑द॒नः ॥ १ ॥

ए॒तत् । वै । ब्र॒ध्नस्य । वि॒ष्टपम् । यत् । ओ॒द॒नः ॥ १ ॥

यत् योऽयम् उक्तमहिमोपेत ओदनः एतत् खलु ब्रध्नस्य विष्टपम् बध्नाति तहिम्ना सर्वं जगत् सृजतीति ब्रध्नः सूर्यमण्डलमध्यवर्ती ईश्वरः। ❀ बन्धेर्ब्रधिबुधी च [उ० ३. ५] इति औणादिको नक् प्रत्ययः प्रकृतेर्ब्रधादेशश्च ❀। तस्य विष्टपम् वियति विष्टब्धं मण्डलम्। सूर्यमण्डलात्मकोयम् ओदन इत्यर्थः ॥

यह पूर्वोक्त महिमासे सम्पन्न जो ओदन है यह महिमासे सकल जगत् को रचने वाले सूर्यमण्डलान्तवर्ती ईश्वरका आकाशमें विष्टब्ध मण्डल है अर्थात् यह ओदन सूर्यमण्डलात्मक है ॥ १ ॥

एतद् वेदितुः फलम् आह द्वितीयया ॥

इसको जानने वालेको जो फल मिलता है उसका दूसरी ऋचा से वर्णन करते हैं, कि–

ब्र॒ध्नलो॑को भवति ब्र॒ध्नस्य॑ वि॒ष्टपि॑ श्रयते॒ य ए॒वं वेद॑ २

ब्र॒ध्नऽलो॑कः । भ॒व॒ति॒ । ब्र॒ध्नस्य॑ । वि॒ष्टपि॑ । श्र॒य॒ते॒ । यः । ए॒वम् । वेद॑ ॥

यः पुरुषः एवम् उक्तप्रकारेण वेद ओदनस्य सूर्यमण्डलात्मकत्वं वेद । मण्डलाभिमानिसूर्यरूपेण ओदनम् उपास्त इत्यर्थः । असौ ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य सूर्यस्य यो लोकस्तल्लोकवर्ती भवति । यद्वा सूर्य इव लोकनीयः दर्शनीयो भवति । ब्रध्नस्य सूर्यस्य विष्टपि विष्टब्धे मण्डलात्मके स्थाने श्रयते सेवते । सूर्यात्मको भवतीत्यर्थः । "असौ वादित्यो ब्रध्नस्य विष्टपम्" इति हि तैत्तिरीयकम् [तै० सं० ५. ३. ३. ५] ॥

जो पुरुष उक्तरीतिसे ओदनके सूर्यमण्डलात्मकत्वको जानता है अर्थात् मण्डलाभिमानी सूर्यरूपसे ओदनकी उपासना करता है वह ब्रध्नलोक होता है अर्थात् सूर्यलोकको प्राप्त होजाता है। अथवा सूर्यकी समान दर्शनीय होजाता है। सूर्यके विष्टब्ध मण्डलका सेवन करता है अर्थात् सूर्यात्मक होजाता है। तैत्तिरीयसंहिता ५ । ३ । ३ । ५ में भी कहा है, कि-"असौ वा आदित्यो ब्रध्नस्य विष्टपम्" ॥ २ ॥

अथ सूर्यात्मकाद् ओदनात् सर्वेषां देवानां सृष्टिम् आह तृतीयया ॥

अब तीसरी ऋचासे सूर्यात्मक ओदनसे सकल देवताओंकी सृष्टिको कहते हैं, कि-

ए॒तस्मा॒द् वा ओ॑द॒नात् त्रय॑स्त्रिंशतं लो॒कान् निर॑मिमीत प्र॒जाप॑तिः ॥ ३ ॥

ए॒तस्मा॑त् । वै । ओ॒द॒नात् । त्रय॑ःऽत्रिंशतम् । लो॒कान् । निः ।

अ॒भि॒मी॒त॒ । प्र॒जाऽपति॑ः ॥ ३ ॥

एतस्माद् सूर्यात्मकाद् ओदनात् सर्वजगदुपादानभूतात् प्रजापतिः प्रजानां स्रष्टा देवः त्रयस्त्रिंशतं लोकान् "अष्टौ वसवः एकादश रुद्राः द्वादशादित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्च" इति [ऐ० ब्रा०१.१०] ऐतरेयकादिश्रुतिप्रसिद्धा ये त्रयस्त्रिंशत्संख्याका देवास्तेषां लोकान् अधिष्ठातृसहितान् निरमिमीत निर्मितवान् ॥

प्रजाओंकी रचना करने वाले इन प्रजापति देवने सब जगत् के उपादानभूत इस सूर्यात्मक ओदनसे आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, प्रजापति और वषट्कार + इन तैंतीस देवताओंकी और उनके लोकोंकी सृष्टि की है ॥ ३ ॥

तल्लोकप्राप्तिसाधनत्वेन यज्ञोपि अस्मादेव सूर्यात्मकाद् ओदनात् सृष्ट इत्याह ॥

उन लोककी प्राप्तिका साधन होनेसे यज्ञ भी इसी सूर्यात्मक ओदनसे सृष्ट है, इस बातका चतुर्थ ऋचामें वर्णन करते हैं, कि-

तेषां॑ प्र॒ज्ञाना॑य य॒ज्ञम॑सृजत ॥ ४ ॥

तेषा॑म् । प्र॒ऽज्ञाना॑य । य॒ज्ञम् । अ॒सृ॒ज॒त॒ ॥ ४ ॥

तेषां देवलोकानां प्रज्ञानाय प्रकर्षेण ज्ञानाय तत्तल्लोकोपभोग्यसुखसाक्षात्काराय तत्साधनत्वेन इमं यज्ञम् असृजत सृष्टवान् । यज्ञसृष्ट्यभिधानादेव सर्वजगत्सृष्टिरुक्ता भवति । "अग्नि-

---

+ ऐतरेय ब्राह्मण १ । १० में तैंतीस देवताओंका वर्णन है, कि-"अष्टौ वसवः एकादशः रुद्राः द्वादशादित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्च" ॥

ष्टोमेन वै प्रजापतिः प्रजा असृजत" [तै० सं० ७. १. १. २] इत्यादिश्रुतेः । स्मर्यते च । अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यग् आदित्यम् उपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः इति [म० स्मृ० ३. ७६] ॥

उन लोकोंका पूर्णरीतिसे ज्ञान करानेके लिये अर्थात् उन लोकोंके भोगनेमें आने वाले सुखोंका साक्षात्कार करानेके लिये इस यज्ञकी रचना की गई है † ॥ ४ ॥

इत्थं सर्वजगदुपादानभूतस्य ओदनस्य सूर्यमण्डलान्तर्वर्तिहिरण्यगर्भतादात्म्यं विदुषो माहात्म्यं दर्शयति ॥

इस प्रकार सब जगत्के उपादानभूत ओदनकी सूर्यमण्डलान्तवर्ती हिरण्यगर्भसे तादात्म्यताको जानने वालेके महात्म्यको दिखाते हैं, कि—

स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ॥५॥

सः । यः । एवम् । विदुषः । उपऽद्रष्टा । भवति । प्राणम् । रुणद्धि

स यः यः कश्चन पुरुषः एवम् उक्तप्रकारेण विदुषः उपासकस्य उपद्रष्टा भवति उप समीपे तत्कृतस्य अकामोपनतस्य द्रष्टा साक्षात्कर्ता भवति । तस्य मनसि उपरोधं जनयतीत्यर्थः । स उपरोधकः स्वशरीरे वर्तमानं प्राणं रुणद्धि आवृणोति निरुद्धगतिं करोति । प्राणोपासकस्य अनिष्टाचरणाद् इत्यर्थः ॥

---

† यज्ञसृष्टिके कहनेसे ही सब जगत्की सृष्टिका वर्णन आ जाता है । क्योंकि–तैत्तिरीयसंहिता ७ । १ । १ । २ में कहा है, कि-"अग्निष्टोमेन वै प्रजापतिः प्रजा असृजत ।–प्रजापतिने अग्निष्टोमसे प्रजाओंकी रचना की" । मनुस्मृतिके तीसरे अध्यायके छिहत्तरवें श्लोकमें भी कहा है, कि–"आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः" ॥

जो कोई पुरुष इस प्रकारसे जानने वाले उपासकका उपद्रष्टा होता है अर्थात् उस निष्कामभावसे कर्म करते हुएके समीपमें बैठ कर साक्षात्कार करता है–उसके मनमें उपरोध–विघ्न–डालता है वह उपरोधक अपने शरीरमें वर्तमान प्राणका उपरोध करता है अर्थात् उसकी गतिको रोक देता है, क्योंकि–प्राणोपासकका अनिष्टाचरण करता है ॥ ५ ॥

न केवलम् एतावानेव दोषः सर्वफलहानिरपि तस्य स्यादू इत्याह ॥

केवल इतना ही दोष नहीं होता है, उसको सकल फलोंकी हानि भी भोगनी पड़ती है, कि—

न च॑ प्रा॒णं रु॒णद्धि॑ सर्व॒ज्यानिं जीय॑ते ॥ ६ ॥

न॒ । च॒ । प्रा॒णम् । रु॒णद्धि॑ । स॒र्व॒ऽज्या॒निम् । जी॒य॒ते॒ ॥ ६ ॥

प्राणं रुणद्धि इत्येतावदेव न च अपि तर्हि सर्वज्यानिम् प्रजापश्वादिरूपस्य सर्वस्य अभिमतस्य वस्तुनः ज्यानिर्हानिर्यथा भवति तथा जीयते हीयते निहीनो भवति । ❀ ज्या वयोहानौ । अस्मात् कर्मणि लट् । “ग्रहिज्या०” इत्यादिना संप्रसारणम् ❀ । जीयत इत्येतावतावयोहानिमात्रं गम्यते । हानेः सर्ववस्तुविषयताप्रतिपत्त्यर्थविशेषणसंबन्धाय ज्यानिं जीयत इति पुनरुक्तिः ॥

प्राणरोध होता है, इतना ही नहीं, किन्तु प्रजा पशु आदि सकल अभिमतकी हानि होजाती है और वह हीन होजाता है ६

न केवलम् एतावदेव इत्याह ॥

इतने पर ही शान्ति नहीं होती है, किन्तु—

न च॑ स॒र्वज्या॒निं जी॒यते॑ पु॒रैनं॑ ज॒रसः॑ प्रा॒णो जंहा॑ति ७

न॒ । च॒ । स॒र्व॒ऽज्या॒निम् । जी॒यते॑ । पु॒रा । ए॒न॒म् । ज॒रसः॑ । प्रा॒णः । ज॒हा॒ति॒ ॥ ७ ॥

सर्वज्यानिं जीयत इति एतावदेव न च एनं निन्दकं जरसः जरावस्थायाः पुरा प्राणो जहाति परित्यजति । म्रियतेसावित्यर्थः । एतद्ध उक्तं भवति । विदुषो व्यतिक्रमं दृष्ट्वा निन्दतः पुरुषस्य प्रथमं प्राणरोधो भवति ततः सर्ववस्तुहानिर्भवति ततः अकालमरणम् इति॥

इति तृतीयं सूक्तम् ॥

उसकी सर्वज्यानि ही होती हो यह बात नहीं है, किन्तु इस निन्दक पुरुषके प्राण बुढ़ापेसे पहिले ही इसको छोड़ देते हैं अर्थात् यह मर जाता है । इस विषयमें यह कहा जासकता है, कि—विद्वान् के व्यतिक्रमको देख कर निन्दा करने वाले पुरुषका प्रथम प्राणरोध होता है, फिर सब वस्तुओंकी हानि होती है फिर अकालमरण होजाता है ॥ ७ ॥ (१०)

तृतीय सूक्त समाप्त (४८३) ॥

"प्राणाय नमः" इत्यादिसूक्तत्रयम् अर्थसूक्तम् । अनेन उपनयनकर्मणि माणवकस्य नाभिं संस्पृश्य आचार्यो जपेत् । "उपनयनम्" प्रक्रम्य सूत्रितम् । "दक्षिणेन पाणिना नाभिदेशं संस्तभ्य जपति आ रभस्व [८. २] प्राणाय नमः [११. ६] विषासहिम् [१७. १] इत्यनुमन्त्रयते" इति [कौ० ७. ६] ॥

तथा आयुष्कामः अनेनार्थसूक्तेन दक्षिणं कर्णम् अनुमन्त्रयेत ॥

तथा ऋषिहस्ते आयुष्कामस्य शरीरम् अभिमन्त्रयेत । सूत्रितं हि । "आ रभस्व [८. २] प्राणाय नमः [११. ६] विषासहिम् [१७. १] इत्यनुमन्त्रयते" इति [कौ० ७. ८] ॥

तथा अस्यार्थसूक्तस्य आयुष्यगणे पाठाद् "विश्वकर्मभिरायुष्यैःस्वस्त्ययनैराज्यं जुहुयात्" इति होमेषु विनियोगोऽनुसंधेयः [कौ० १४. ३] ॥

तथा "अमृतां दिव्यान्तरिक्षभौमेषु प्रयुञ्जीत" [न० क० १७] इति विहितायाम् अमृताख्यायां महाशान्तौ अनेनार्थसूक्तेन व्रीहि-

यवमयं मणिं बध्नीयात् । तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । प्राणाय नम इति व्रीहियवम् अमृतायां बध्नीयात्” इति [न० क० १९] ॥

तथा ग्रहयज्ञे अनेनार्थसूक्तेन शनैश्चराय हविराज्यहोमं समिदाधानम् उपस्थानं वा कुर्यात् । तद् उक्तं शान्तिकल्पे । “सहस्रबाहुः पुरुषः [१९. ६] केन पार्ष्णी [१०. २] प्राणाय नमः [११. ६] इति शनैश्चराय” इति [शा० क० १५] ॥

तथा शान्त्यर्थे लक्षहोमे एतद् अर्थसूक्तं होमे विनियुक्तं परिशिष्टे । “नमो देववधेभ्यः [६. १३] भवाशर्वौ [११. २] प्राणाय नमः [११. ६] इति हुत्वा” इति ॥

“प्राणाय नमः” इत्यादि तीन सूक्तोंका समूह एक ही प्रयोजनका प्रतिपादक होनेसे अर्थसूक्त कहलाता है । इससे उपनयनकर्ममें बालककी नाभिका स्पर्श करके आचार्य जप करे । “उपनयनम्” का आरम्भ करके सूत्रमें कहा है, कि-“दक्षिणेन पाणिना नाभिदेशं संस्तभ्य जपति आ रभस्व (८ । २) प्राणाय नमः (११ । ६) विषासहिम् (१७ । १) इत्यनुमन्त्रयते” (कौशिकसूत्र ७ । ६) ॥

तथा आयुष्काम इस अर्थसूक्तसे दाहिने कानका अनुमन्त्रण करे ।

तथा ऋषिहस्तसे आयुष्कामके शरीरका अनुमन्त्रण करे । इस विषयमें कौशिकसूत्र ७ । ९ का प्रमाण भी है, कि—“आ रभस्व (८ । २) प्राणाय नमः (११ । ६) विषासहिम् (१७ । १)” ॥

और इस सूक्तका आयुष्यगणमें भी पाठ है अतः “विश्वकर्मभिरायुष्यैः स्वस्त्ययनैराज्यं जुहुयात्” इत्यादिसे विहित होमोंमें इसका विनियोग खोजना चाहिये (कौशिकसूत्र १४ । ३) ॥

तथा “अमृतां दिव्यान्तरिक्षभौमेषु प्रयुञ्जीत ।—दिव्य अन्तरिक्ष वा भूमिसम्बंधी उत्पात होने पर अमृता शान्तिको करे” इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित अमृता नाम वाली महाशांतिमें इस अर्थ-

सूक्तसे धान जौंकी मणिको बाँधे । इसी बातको नक्षत्रकल्पमें कहा है, कि–"प्राणाय नम इति व्रीहियवं अमृतायां बध्नीयात्" (नक्षत्रकल्प १९) ॥

तथा ग्रहयज्ञमें इस अर्थसूक्तसे शनैश्चरके लिये हवि घृतका होम, समिदाधान वा उपस्थान करे । इसी बातको शान्तिकल्पमें कहा है, कि–"सहस्रबाहुः पुरुषः (१९ । ६) केन पार्ष्णी (१० । २) प्राणाय नमः (११ । ६) इति शनैश्चराय" (शान्तिकल्प १५) ॥

तथा शान्तिके लिये किये जाने वाले लक्षहोममें इस अर्थसूक्त का विनियोग करना चाहिये । इस विषयमें अथर्वपरिशिष्टका प्रमाण है, कि–नमो देववधेभ्यः (६ । १३) भवाशर्वौ (११ । २) प्राणाय नमः (११ । ६) इति हुत्वा" ॥

तत्र प्रथमा ॥

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥

प्राणाय । नमः । यस्य । सर्वम् । इदम् । वशे ।
यः । भूतः । सर्वस्य । ईश्वरः । यस्मिन् । सर्वम् । प्रतिऽस्थितम् १

प्राणाय प्रकर्षेण अनिति सर्वप्राणिशरीरं व्याप्य चेष्टत इति प्राणः समष्टिशरीराभिमानी प्रथमसृष्टो हिरण्यगर्भः । "प्राणः प्रजानाम् उदयत्येष सूर्यः" इति [प्र० उ० १. ८] "स प्राणम् असृजत" इति [प्र० उ० ६. ४] "कस्मिन्न्वहम् उत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन् वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामि" [प्र० उ० ६. ३] इत्यादिश्रुतिभ्यः । तस्मै प्राणाय नमः नमस्कारोस्तु । ❀ "अनितेः" इति नकारस्य णत्वम् ❀ । तस्य सगुणब्रह्मात्मकत्वं दर्शयति । यस्य प्राणस्य वशे सर्वम् इदं चराचरात्मकं जगद्

वर्तते । एतेन तस्य सकलजगन्नियन्तृत्वम् उक्तम् । यः प्राणो भूतः भूतकालावच्छिन्नः न तु भविष्यन् । सर्वदा लब्धसत्ताक इत्यर्थः । ❀ भू सत्तायाम् इत्यस्मात् कर्तरि निष्ठा ❀ । सर्वस्य प्राणिजातस्य ईश्वरः ईशिता कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा वा कर्तुं शक्तः । ❀ ईश ऐश्वर्ये । "स्थेशभासपिसकसो वरच्" इति वरच् प्रत्ययः । "स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च" इति षष्ठी ❀ । यस्मिन् उदीरितलक्षणे प्राणे परब्रह्मात्के सर्वं समस्तं जगत् प्रतिष्ठितम् । कारणभूते तस्मिन् समवायवृत्त्या वर्तत इत्यर्थः । तस्मै प्राणाय नम इति संबन्धः ॥

सब प्राणियोंके शरीरमें व्याप्त होकर चेष्टा करनेसे प्राण अर्थात् समष्टिशरीरके अभिमानी प्रथम रचे हुए हिरण्यगर्भके लिये प्रणाम है (इस प्राणका निम्न लिखित श्रुतियोंमें वर्णन है, कि– "प्राणः प्रजानां उदयत्येष सूर्यः ।–यह प्रजाओंके प्राणरूप सूर्य उदित होते हैं" [प्रश्नोपनिषत् १ । ८] "स प्राणं असृजत । उसने प्राणकी सृष्टिकी" [प्रश्नोपनिषत् ६ । ४] "कस्मिन्न्वहम् उत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन् वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामि।– किसके उत्क्रान्त होने पर मैं उत्क्रान्त होऊँगा और किसके प्रतिष्ठित होने पर प्रतिष्ठित होऊँगा" [प्रश्नोपनिषत् ६ । ३] इत्यादि श्रुतियोंमें प्रशंसित प्राणके लिये प्रणाम है अब उस प्राणकी सगुण ब्रह्मात्मकताको दिखाते हैं, कि–) उस प्राणके वशमें यह चराचरात्मक जगत् रहता है। इससे प्राणका सकल जगत्का नियन्तृत्व कहा । वह प्राण भूतकालावच्छिन्न है भविष्यन् नहीं है अर्थात् सर्वदा लब्धसत्ताक है । सब प्राणियोंका ईश्वर है अर्थात् कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम् समर्थ है उस परब्रह्मात्मक प्राणमें सब जगत् प्रतिष्ठित है अर्थात् उस कारणभूतमें समवायवृत्तिसे रहता है ऐसे प्राणके लिये प्रणाम है ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥ २ ॥

नमः । ते । प्राण । क्रन्दाय । नमः । ते । स्तनयित्नवे ।
नमः । ते । प्राण । विऽद्युते । नमः । ते । प्राण । वर्षते ॥ २ ॥

हे प्राण क्रन्दाय क्रन्दनशीलाय ध्वनते ते तुभ्यं नमः । ❀ क्रदि आह्वाने रोदने च । इदित्त्वात् नुम् । पचाद्यच् ❀ । तथा स्तनयित्नवे मेघजालं प्रविश्य स्तनितं गर्जितं कुर्वते । ❀ स्तन शब्दे । अस्माण्ण्यन्ताद् औणादिक इत्नुच् प्रत्ययः "अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु" इति णेः अय् आदेशः ❀ । एवंभूताय ते तुभ्यं नमः । हे प्राण विद्युते विद्युदात्मना विद्योतमानाय ते तुभ्यं नमः । तदनन्तरं वर्षते वृष्टिं कुर्वते ते तुभ्यम् हे प्राण नमोस्तु॥

हे प्राण ! ध्वनि करने वाले आपके लिये प्रणाम है तथा मेघजालमें प्रवेश करके गर्जना करने वाले प्राणके लिये प्रणाम है, और हे प्राण ! विजलीके रूपमें दमकते हुए आपके लिये प्रणाम है तथा वर्षा करते हुए आपके लिये प्रणाम है ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः ।
प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेथो बह्वीर्वि जायन्ते ॥ ३ ॥

यत् । प्राणः । स्तनयित्नुना । अभिऽक्रन्दति । ओषधीः ।
प्र । वीयन्ते । गर्भान् । दधते । अथो इति । बह्वीः । वि । जायन्ते

यत् यदा प्राणः जगत्प्राणभूतः सूर्यात्मको देवः स्तनयित्नुना

२१-६-३०

मेघध्वनिना ओषधीः व्रीहियवाद्या ग्राम्या आरण्याश्च वीरुधः अभिक्रन्दति अभिलक्ष्य शब्दायते । यथा गोयूथमध्ये दृप्तो वृषभः गर्भम् आधित्सुस्ता अभिलक्ष्य शब्दं करोति तथेत्यर्थः । तदा ता ओषधयः प्रवीयन्ते प्राणाभिक्रन्दनमात्रादेव गर्भं गृह्णन्ति । ❀ वी गतिप्रजनकान्त्यशनखादनेषु ❀ । वर्षर्तुः सर्वासाम् ओषधीनां गर्भग्रहणकाल इत्यर्थः तदानीमेव गर्भान् दधते धारयन्ति । अथो अनन्तरमेव बह्वीः बह्व्यो बहुप्रकारा वि जायन्ते विविधम् उत्पद्यन्ते ॥

(जैसे गौओंके झुण्डमें गर्भाधान करनेकी इच्छा वाला साँड गरजता है इसी प्रकार) जब प्राण अर्थात् जगत्का प्राणभूत सूर्यात्मकदेव मेघध्वनिसे–व्रीहि यव आदि औषधियोंको, ग्रामीण और वन्य पशुओंको तथा लताओंको अभिलक्षित करके गर्जता है उस समय वे औषधियें प्राणके अभिक्रन्दनमात्रसे ही गर्भको धारण करती हैं। तात्पर्य यह है, कि–वर्षा ऋतु सकल औषधियों के गर्भको ग्रहण करनेका काल है । उसी समय वे गर्भको धारण करती हैं और उसके अनन्तर ही अनेक प्रकारसे उत्पन्न हो जाती हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

यत् प्रा॒ण ऋ॒तावा॒गते॑भिक्रन्द॒त्योष॑धीः ।
सर्वं॑ त॒दा प्र मो॑द॒ते यत् किं च॒ भूम्या॑म॒धि ॥ ४ ॥

यत् । प्रा॒णः । ऋ॒तौ । आ॒ऽगते॑ । अ॒भि॒ऽक्रन्द॑ति । ओष॑धीः ।

सर्व॑म् । त॒दा । प्र । मो॒द॒ते॒ । यत् । किम् । च॒ । भूम्या॑म् । अधि॑ ४

प्राणो देवः ऋतावागते ऋतुकाले समागते वर्षर्तौ आगते वा यत् यदा ओषधीः अभिक्रन्दति तदा सर्वं प्र मोदते प्रहृष्यति ।

❀ मुद हर्षे ❀ । भूम्याम् अधि उपरि यत् किं च यत् किमपि प्राणिजातं वर्तते । तत् सर्वम् इत्यन्वयः ॥

जब ऋतुकाल आने पर वा वर्षा ऋतुके आने पर प्राणदेव ओषधियोंको लक्ष्य करके अभिक्रन्दन करते हैं उस समय सब प्रसन्न होते हैं । भूमि पर जितने प्रकारके प्राणी हैं वे सब प्रसन्न होते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥ ५ ॥

यदा । प्राणः । अभिऽअवर्षीत् । वर्षेण । पृथिवीम् । महीम् ।
पशवः । तत् । प्र । मोदन्ते । महः । वै । नः । भविष्यति ॥ ५ ॥

यदा यस्मिन् काले प्राणो देवः महीम् महतीं पृथिवीम् विस्तीर्णां भूमिं वर्षेण वृष्टिकर्मणा अभ्यवर्षीत् अभितः सिक्तां करोति तत् तदानीं पशवः गवाद्याः प्र मोदन्ते प्रहृष्यन्ति । केनाभिप्रायेणेत्याह । महो वै उत्सवः खलु नः अस्माकं भविष्यति । वृष्टेरनन्तरं पृथिव्यां भूयांसि सस्यानि उत्पद्यन्ते । तद्भक्षणेन अस्माकं पुष्टिर्भविष्यतीति प्रनृत्यन्तीत्यर्थः ॥

जिस समय प्राणदेव विशाल विस्तृत भूमिको वृष्टिकर्मसे चारों ओरसे सींचते हैं, उस समय गौ आदि पशु आनन्दित होते हैं, कि–हमारे लिये बड़ा भारी उत्सव होगा । तात्पर्य यह है, कि–वृष्टिके अनन्तर पृथ्वीमें बहुतसा अन्न उत्पन्न होगा उसके भक्षण से हम पुष्ट होंगे, यह विचार कर वे पशु नाचने लगते हैं ॥५॥

षष्ठी ॥

अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् ।

आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥ ६ ॥

अभिऽवृष्टाः । ओषधयः । प्राणेन । सम् । अवादिरन् ।

आयुः । वै । नः । प्र । अतीतरः । सर्वाः । नः । सुरभीः । अकः ६

प्राणेन देवेन अभिवृष्टाः अभिषिक्ता ओषधयो ग्राम्या आरण्याश्च तेनैव प्राणेन समवादिरन् समवदन्त संभाषणं कृतवत्यः । ❀ "भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः" इति आत्मनेपदम् । लङि व्यत्ययेन झस्य रन् आदेशः । तस्य "छन्दस्युभयथा" इति आर्धधातुकत्वाद् इडागमः । उपधावृद्धिश्छान्दसी ❀ । संवदनप्रकारमेव दर्शयति आयुरिति । हे प्राण नः अस्माकम् आयुः जीवनं त्वं प्रातीतरः प्रावर्धयः । ❀ प्रपूर्वस्तरतिर्वर्धनार्थः । अस्माण्ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम् ❀ । तथा नः अस्मान् सर्वाः । ❀ "बहुवचनस्यवस्नसौ" इति द्वितीयान्तस्य अस्मदो नस् आदेशः ❀ । सुरभीः शोभनगन्धयुक्ता अकः अकार्षीः । ❀ डुकृञ् करणे । अस्माल्लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् । "हल्ङ्याब्भ्यः०" इति तिल्लोपः ❀ ॥

प्राणदेवसे अभिषिक्त हुई औषधियें उस प्राणसे परस्पर भाषण करती हैं, कि—हे प्राण ! तू हमारे जीवनको बढ़ा तथा हम सब को शोभन गन्धसे युक्त कर ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ ७ ॥

नमः । ते । अस्तु । आऽयते । नमः । अस्तु । पराऽयते ।

नमः । ते । प्राण । तिष्ठते । आसीनाय । उत । ते । नमः ॥७॥

हे प्राण आयते आगच्छते ते तुभ्यं नमोस्तु । तथा परायते पराङ्मुखं गच्छते तुभ्यं नमोस्तु । हे प्राण तिष्ठते यत्रक्वापि अवस्थिताय ते तुभ्यं नमोस्तु । आसीनाय उपविष्टाय ते तुभ्यं नमोस्तु । उतशब्दः अप्यर्थे । आगमनादिक्रियाः सर्वाः प्राणव्यापारनिर्वर्त्या इति तत्तदवस्थापन्नस्य नमस्कार्यत्वम् ॥

हे प्राण ! तुझ आते हुएके लिये प्रणाम है, तुझ पराङ्मुख जाते हुएके लिये प्रणाम है, हे प्राण ! तुझ जहाँ कहीं स्थितके लिये प्रणाम है और तुझ उपविष्टके लिये प्रणाम है ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

नम॑स्ते प्राण प्राण॒ते नमो॑ अस्त्वपान॒ते ।
प॒रा॒ची॒ना॑य ते॒ नम॑ः प्र॒ती॒ची॒ना॑य ते॒ नम॒ः सर्व॑स्मै त
इ॒दं नम॑ः ॥ ८ ॥

नम॑ः । ते॒ । प्रा॒ण॒ । प्रा॒ण॒ते । नम॑ः । अ॒स्तु॒ । अ॒पा॒न॒ते ।
प॒रा॒ची॒ना॑य । ते॒ । नम॑ः । प्र॒ती॒ची॒ना॑य । ते॒ । नमः । सर्व॑स्मै ।
ते॒ । इ॒द॑म् । नमः ॥ ८ ॥

हे प्राण देव प्राणते प्राणनव्यापारं कुर्वते ते तुभ्यं नमोस्तु । तथा अपानते अपाननव्यापारं कुर्वते अपानवृत्त्यात्मकाय तुभ्यं नमोस्तु । तथा पराचीनाय पराञ्चनाय परागमनस्वभावाय देहाद् बहिरवस्थिताय ते तुभ्यं नमोस्तु । तथा प्रतीचीनाय प्रतिमुखम् अञ्चते देहमध्ये वर्तमानाय ते तुभ्यं नमोस्तु । ❀ "विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रियाम्" इति स्वार्थिकः खः ❀ । किं बहुना सर्वस्मै सर्वव्यापारकर्त्रे सर्वप्राणिशरीरान्तर्वर्तिने ते तुभ्यम् इदं नमः अयं नमस्कारो भवतु । ❀ "सर्वस्य सुपि" इति आद्युदात्तत्वम् ❀ ॥

हे प्राण ! प्राणन व्यापार करते हुए आपके लिये प्रणाम है, तथा अपानन व्यापार करते हुए अपानवृत्त्यात्मक आपके लिये प्रणाम है । तथा परागमनस्वभाव–देहसे बाहर स्थित आपके लिये प्रणाम है । तथा देहके मध्यमें वर्तमान प्रतीचीन गमन करने वाले आपके लिये प्रणाम है, अधिक क्या ? सब व्यापारोंको करने वाले आपके लिये यह प्रणाम प्राप्त हो ॥ ८ ॥

नवमी ॥

या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी ।
अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ९ ॥

या । ते । प्राण । प्रिया । तनूः । योःइति । ते । प्राण । प्रेयसी । अथो इति । यत् । भेषजम् । तव । तस्य । नः । धेहि । जीवसे ९

हे प्राण ते तव या प्रिया प्रीतिविषया तनूः शरीरम् अस्ति तथा प्राण ते तव यौ । ❀ लिङ्गव्यत्ययः ❀ । ये प्रेयसी प्रियतमरूपे प्राणापानवृत्तिद्वयात्मके अग्नीषोमरूपे वा । अथो अपि च तव संबन्धि यद् भेषजम् अमृतत्वप्रापकम् औषधम् अस्ति तस्य सर्वस्य प्रियतनुप्रभृतिकस्य सकाशात् नः अस्माकं जीवसे जीवनाय धेहि अमृतत्वसाधनम् औषधं प्रयच्छ ॥

हे प्राण ! आपकी प्रीतिका विषय जो शरीर है और हे प्राण ! आपकी अग्नीषोमात्मक वा प्राणापानवृत्त्यात्मक जो प्रेयसी हैं और आपकी जो अमृतत्वप्रापक औषधि है, उन सबके पाससे आप हमको जीवनके लिये अमृतत्वसाधन औषधिको दीजिये ॥ ९ ॥

दशमी ॥

प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।

प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥१०॥

प्राणः । प्रऽजाः । अनु । वस्ते । पिता । पुत्रम्ऽइव । प्रियम् ।

प्राणः । ह । सर्वस्य । ईश्वरः । यत् । च । प्राणति । यत् । च । न

प्राणो देवः प्रजाः प्रजायमाना देवतिर्यङ्मनुष्याद्याः अनु वस्ते अनुक्रमेण च्छादयति । तच्छरीराणि नाडीद्वारा व्याप्य वर्तत इत्यर्थः । ❀ वस आच्छादने । अदादित्वात् शपो लुक् ❀ । तत्र दृष्टान्तः पिता पुत्रमिव । यथा पिता प्रियम् स्निग्धं पुत्रं वस्त्रेण स्वकीयेन आच्छादयति तथेत्यर्थः । यच्च जङ्गमात्मकं वस्तु प्राणति प्राणनव्यापारं करोति यच्च स्थावरात्मकं न प्राणति प्राणनव्यापारं न करोति । किं तु आत्माविनाभूतः प्राणः स्थावरेषु निरुद्धगतिरेव अन्तर्वर्तते । तस्य सर्वस्य स्थावरजङ्गमात्मनो जगतः प्राणः खलु ईश्वरः ईशिता स्वामी ॥

[इति] चतुर्थं सूक्तम् ॥

जैसे पिता अपने प्रिय पुत्रको अपने वस्त्रसे ढकता है इसी प्रकार प्राणदेव उत्पन्न होने वाले देवता तिर्यक् मनुष्य आदि सबको अनुक्रमसे आच्छादित करते हैं और उनके शरीरोंको नाड़ियोंमें व्याप्त होकर ढके रहते हैं जो जङ्गमात्मक वस्तु प्राणनव्यापार करती है और जो स्थावरात्मक वस्तु प्राणनव्यापार नहीं करती है किंतु आत्माविनाभूत प्राण जिन स्थावरोंमें निरुद्धगति ही भीतर रहता है । इन सब स्थावर जङ्गमात्मक जगत्का प्राण ही ईशिता है–स्वामी है ॥ १० ॥ (११)

चतुर्थ सूक्त समाप्त

“प्राणो मृत्युः” इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

“प्राणो मृत्युः” सूक्तका पहिले सूक्तके साथ विनियोग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

प्रा॒णो मृ॒त्युः प्रा॒णस्त॒क्मा प्रा॒णं दे॒वा उपा॑सते ।
प्रा॒णो ह॑ सत्यवा॒दिन॑मुत्त॒मे लो॒क आ द॑धत् ॥ ११ ॥

प्रा॒णः । मृ॒त्युः । प्रा॒णः । त॒क्मा । प्रा॒णम् । दे॒वाः । उप॑ । आ॒स॒ते॒ ।
प्रा॒णः । ह॒ । स॒त्य॒ऽवा॒दिन॑म् । उ॒त्ऽत॒मे । लो॒के । आ । द॒ध॒त् ॥

प्राण एव देवो मृत्युः स्वनिर्गमनेन सर्वप्राणिनां मरणस्य कर्ता । स एव प्राणस्तक्मा कृच्छ्रजीवनकरो ज्वरादिरोगः । तथा तं प्राणम् देहमध्यवर्तिनं देवाः इन्द्रियाणि उपासते । स्वस्वविषयोपभोगाय सेवन्त इत्यर्थः । यद्वा प्राणम् हिरण्यगर्भं समष्ट्यात्मकम् अग्न्यादयो देवा उपासते । स एव प्राणः सत्यवादिनम् । सत्यं यथार्थं वदितुं शीलम् अस्य स तथोक्तः । सत्यवदनशीलं महानुभावम् उत्तमे उत्कृष्टतमे लोके आदधत् आदधाति स्थापयति ॥

प्राण ही अपने निकलनेसे सब प्राणियोंका मरण कर देता है अतः प्राण ही मृत्यु है, और वही प्राण जीवनको दुःखमय बना देने वाला ज्वरादिरोग–तक्मा–है, उस देहके मध्यमें रहने वाले प्राणकी देवता (अर्थात् इन्द्रियें) उपासना करते हैं अर्थात् अपने २ विषयका उपभोग करनेके लिये उसकी सेवा करते हैं अथवा–समष्ट्यात्मक हिरण्यगर्भरूपी प्राणकी अग्निआदि देवता उपासना करते हैं । वही प्राण सत्यभाषणके स्वभाव वाले सत्यवादी पुरुषको उत्कृष्ट लोकमें स्थापित करता है ॥ ११ ॥

द्वितीया ॥

प्रा॒णो वि॒राट् प्रा॒णो देष्ट्री॑ प्रा॒णं सर्व॒ उपा॑सते ।
प्रा॒णो ह॒ सूर्य॑श्च॒न्द्रमा॑ प्रा॒णमा॑हुः प्र॒जाप॑तिम् ॥ १२ ॥

प्रा॒णः । वि॒ऽराट् । प्रा॒णः । देष्ट्री । प्रा॒णम् । सर्वे॑ । उप । आ॒स॒ते॒ ।

प्रा॒णः । ह॒ । सूर्यः॑ । चन्द्र॑माः । प्रा॒णम् । आ॒हुः॒ । प्र॒जाऽप॑तिम् ॥

प्राण एव देवो विराट् स्थूलप्रपञ्चाभिमानी ईश्वरः । तथा प्राणो देष्ट्री स्वस्वव्यापारेषु सर्वेषां प्रेरयित्री परदेवता । तथाविधं प्राणं सर्वे जना उपासते स्वाभिलषितफलसिद्ध्यर्थं सेवन्ते । प्राण एव सूर्यः सर्वस्य प्रेरक आदित्यः । तथा चन्द्रमाः अमृतमयः सोमोपि स एव प्राणस्य अग्नीषोमात्मकत्वम् उक्तम् । तथाविधमेव प्राणं प्रजापतिम् प्रजानां स्रष्टारं देवम् आहुः अभिज्ञाः कथयन्ति । ❀ "पत्यावैश्वर्ये" इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥

प्राणदेव ही विराट् है अर्थात् स्थूल प्रपञ्चाभिमानी ईश्वर है तथा प्राण ही देष्ट्री है अर्थात् सबको अपने २ व्यापारोंमें प्रेरित करने वाली परदेवता है, ऐसे प्राणकी सब उपासना करते हैं अर्थात् अपनी अभिलषित फलसिद्धिके लिये उपासना करते हैं । प्राण ही सबका प्रेरक सूर्य है, अनृतमय सोम भी वही है (इससे प्राणका अग्नीषोमात्मकत्व कहा) ऐसे प्राणको अभिज्ञ पुरुष, प्रजाओंकी रचना करने वाले प्रजापतिदेव कहते हैं ॥ १२ ॥

तृतीया ॥

प्रा॒णा॒पा॒नौ व्री॑हि॒यवाव॑न॒ड्वान् प्रा॒ण उ॑च्यते ।
यवे॑ ह प्रा॒ण आहि॑तोपा॒नो व्री॒हिरु॑च्यते ॥ १३ ॥

प्रा॒णा॒पा॒नौ । व्री॒हि॒ऽय॒वौ । अ॒न॒ड्वान् । प्रा॒णः । उ॒च्य॒ते॒ ।

यवे॑ । ह॒ । प्रा॒णः । आऽहि॑तः । अपा॒नः । व्री॒हिः । उ॒च्य॒ते॒ १३

प्राणश्च अपानश्च प्राणापानौ मुख्यस्य प्राणस्य प्रधानभूतौ वृत्तिविशेषौ । तावेव व्रीहिश्च यवश्च व्रीहियवौ । प्राणापानात्मकौ

२३-६-३०

तावित्यर्थः । यो वृत्तिमान् मुख्यः प्राणः सः अनड्वान् उच्यते । व्रीहियवयोः कर्षणेन उत्पादयिता बलीवर्दो वृत्तिमत्प्राणात्मना ज्ञातव्य इत्यर्थः । उक्तमेवार्थं विवृणोति । यवे ह यवे खलु प्राणः प्राणवृत्त्यात्मको वायुः आहितः स्रष्ट्रा स्थापितः । अपानवृत्त्यात्मकस्तु वायुः व्रीहिरुच्यते । व्रीहिषु अवस्थानेन तदात्मकः कथ्यत इत्यर्थः । अत एव तौ व्रीहियवौओषधीषु मध्ये पुष्टिकरत्वेन सर्वप्राणिभिरुपजीव्यौ अतो लोकरक्षणाय प्राण एव व्रीहियवानडुद्रूपेण कथ्यत इत्यर्थः ॥

प्राण और अपान मुख्य प्राणके ही वृत्तिविशेष हैं, वे ही व्रीहि और यव हैं अर्थात् प्राणापानात्मक हैं, जो वृत्तिमान् मुख्य प्राण है वह अनड्वान् कहलाता है । अर्थात् व्रीहि यवको जोत कर उत्पन्न करने वाले बलीवर्दको वृत्ति वाले प्राणात्मारूपमें समझना चाहिये । (इसी बातको स्पष्ट करते हैं, कि–) स्रष्टाने यवमें ही प्राणवृत्त्यात्मक वायुको स्थापित किया है और अपानवृत्ति वाला वायु व्रीहि कहलाता है अर्थात् व्रीहियोंमें अवस्थान करनेसे तदात्मक कहलाता है अत एव औषधियोंमें पुष्टिकर होनेसे इन दोनोंसे सब प्राणी अपनी आजीविका चलाते हैं । अत एव लोकरक्षणके कारण प्राण ही व्रीहि यव और अनड्वानके रूपसे कहा जाता है ॥ १३ ॥

चतुर्थी ॥

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥ १४ ॥

अप । अनति । प्र । अनति । पुरुषः । गर्भे । अन्तरा ।
यदा । त्वम् । प्राण । जिन्वसि । अथ । सः । जायते । पुनः १४

अन्नात्मकत्वं प्राणस्य उक्तम् । तद्रसपरिणामरूपशरीरधारी पुरुषो गर्भे स्त्रिया गर्भाशये अन्तरा मध्ये अपानति हे प्राण त्वत्प्रवेशेन अपाननव्यापारं करोति प्राणति प्राणनव्यापारं करोति च । हे प्राण शुक्रशोणितावस्थायामेव पुरुषशरीरं प्रविश्य तत्परिणामाय प्राणापानवृत्ती जनयसीत्यर्थः । हे प्राण त्वं यदा यस्मिन् काले जिन्वसि गर्भीभूतं पुरुषं मातृभुक्ताहारपरिणतान्नरसेन प्रीणयसि पुष्यसीत्यर्थः । ❀ जिवि प्रीणने । इदित्वात् नुम् ❀ । अथो अनन्तरमेव स पुरुषः पुनर्जायते स्वार्जितपरिपक्वपुण्यपापफलोपभोगाय पुनर्भूम्याम् उत्पद्यते । प्राण एव सर्वस्योत्पादक इत्यर्थः ॥

प्राणके अन्नात्मकत्वका पहिले मन्त्रमें वर्णन कर दिया है, उसी रसके परिणामरूप शरीरको धारण करने वाला पुरुष स्त्रीके गर्भाशयके मध्यमें हे प्राण ! तुम्हारे प्रवेशसे अपाननव्यापारको करता है और प्राणनव्यापारको करता है । अर्थात् हे प्राण ! आप शुक्रशोणित अवस्थामें ही पुरुषके शरीरमें प्रवेश करके उसके परिणामके लिये प्राण और अपान वृत्तियोंको प्रकट कर देते हो । हे प्राण ! जब आप गर्भीभूत पुरुषको माताके खाये हुए आहारके परिणत अन्नरससे पुष्ट करते हैं उसके अनन्तर ही वह पुरुष अपने अर्जित परिपक्व पुण्यपापका फल भोगनेके लिये भूमिमें फिर प्रकट होजाता है । तात्पर्य यह है, कि प्राण ही सब का उत्पादक है ॥ १४ ॥

पञ्चमी ॥

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

प्राणम् । आहुः । मातरिश्वानम् । वातः । ह । प्राणः । उच्यते ।

प्राणे । ह । भूतम् । भव्यम् । च । प्राणे । सर्वम् । प्रतिऽस्थितम्

मातरि। अन्तरिक्षे श्वसिति वर्तत इति मातरिश्वा अन्तरिक्षाधिपतिर्वायुः। तं वायं प्राणं प्राणात्मकम् आहुः। "वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्" इति श्रुतेः [ऐ० आ० २. ४. २]। उक्त एवार्थो व्यतिहारेण दृढीक्रियते वातो ह प्राण उच्यते इति। "सैषानस्तमिता देवता यद् वायुः" [बृ० आ० १. ३. ३३]इति सर्वजगदाधारभूतः सूत्रात्मा यो वातः सदा गमनशीलो वायुः स एव प्राण उच्यते। अतो नानयोर्भेद इत्यर्थः। तस्मिन् प्राणे जगदाधारभूते सूत्रात्मनि भूतम् भूतकालावच्छिन्नम् उत्पन्नं जगत् भव्यम् भविष्यत्कालावच्छिन्नम् उत्पत्स्यमानं जगत्। तद् उभयम् आश्रित्य वर्तते। किं बहुना तस्मिन् प्राणे सर्वम् इदं जगत् प्रतिष्ठितम् आश्रितम्॥

माता अर्थात् अन्तरिक्षमें श्वसन करते रहने वाले अन्तरिक्षाधिपति मातरिश्वा वायुको प्राण कहते हैं +। सब जगत्का आधारभूत सूत्रात्मा जो वायु सदा गमनशील है वही प्राण कहलाता है। अत एव इनमें भेद नहीं है इस जगत्के आधारभूत सूत्रात्मा प्राणमें भूतकालावच्छिन्न उत्पन्न हुआ जगत्, और भविष्यत्कालावच्छिन्न उत्पन्न होने वाला जगत्, आश्रय करके रहता है, अधिक क्या ? इस प्राणमें सब ही जगत् प्रतिष्ठित है-आश्रित है-॥ १५ ॥

+ ऐतरेय आरण्यक २। ४। २ में कहा है, कि-"वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्।-वायुने प्राण बनकर नासिकामें प्रवेश किया"। और बृहदारण्यक १। ३। ३३ में कहा है, कि-"सैषाऽनस्तमिता देवता यद् वायुः।-जो वायु है वही कभी अस्त न होने वाला देवता है"॥

षष्ठी ॥

आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत ।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि १६

आथर्वणीः । आङ्गिरसीः । दैवीः । मनुष्यऽजाः । उत ।
ओषधयः । प्र । जायन्ते । यदा । त्वम् । प्राण । जिन्वसि १६

आथर्वणी अथर्वणा महर्षिणा सृष्टा आङ्गिरसीः अङ्गिरोभिः सृष्टाः । ❀ उभयत्र "तस्येदम्"-अर्थे अण् ❀। दैवीः देवैः सृष्टाः । ❀ "देवाद्द यञञौ" इयि प्राग्दीव्यतीयः अञ् प्रत्ययः । सर्वत्र "टिड्ढाणञ्०" इति ङीप् । "वा छन्दसि" इति जसि पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । मनुष्यजाः मनुष्येभ्य उत्पन्नाः । उतशब्दः अप्यर्थे । एवं नानाविधा ओषधयः प्र जायन्ते प्रकर्षेण उत्पद्यन्ते हे प्राण त्वं यदा यस्मिन् काले जिन्वसि वृष्टिप्रदानेन प्रीणयसि ॥

हे प्राण ! जब आप वृष्टिकालमें वृष्टि प्रदान कर तृप्त करते हैं तब महर्षि अथर्वाकी रची हुई, अंगिरागोत्र वालोंकी रची हुई, देवताओंसे आविष्कृत और मनुष्योंसे उत्पन्न होने वालीं इस प्रकार सब औषधियें उत्पन्न होती हैं ॥ १६ ॥

सप्तमी ॥

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
ओषधयः प्र जायन्तेथो याः काश्च वीरुधः ॥१७॥

यदा । प्राणः । अभिऽअवर्षीत् । वर्षेण । पृथिवीम् । महीम् ।
ओषधयः । प्र । जायन्ते । अथो इति । याः । काः । च । वीरुधः

पूर्वार्धर्चो व्याख्यातः । ओषधयो व्रीहियवाद्याः वृष्ट्यनन्तर.

मेव प्र जायन्ते । अथो अपि च याः काश्च वीरुधः विरोहणशीला लतारूपा आरण्याः ता अपि सर्वाः प्र जायन्ते ॥

जब प्राण वर्षारूपसे विशाल पृथ्वी पर बरसता है तो वर्षाके अनन्तर ही व्रीहि यव आदि औषधियें उत्पन्न होती हैं और जो लतारूप औषधियें हैं वे भी उत्पन्न होती हैं ॥ १७ ॥

अष्टमी ॥

यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः ।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिंल्लोक उत्तमे ॥ १८ ॥

यः । ते । प्राण । इदम् । वेद । यस्मिन् । च । असि । प्रतिऽस्थितः ।
सर्वे । तस्मै । बलिम् । हरान् । अमुष्मिन् । लोके । उत्ऽतमे १८

हे प्राण ते त्वदीयम् इदम् उदितं माहात्म्यं यो वेद जानाति यस्मिंश्च विदुषि त्वं प्रतिष्ठितोसि उदीरितमहिमोपेतत्वेन भाव्यमानो भवसि तस्मै विदुषे सर्वे देवाः अमुष्मिन् स्वर्गे उत्तमे उत्कृष्टतमे लोके बलिम् अमृतमयं भागं हरान् हरन्ति । ❀ हरतेर्लेटि आडागमः । “इतश्च लोपः०” इति इकारलोपः । संयोगान्तलोपः ❀ ॥

हे प्राण ! जो तेरे इस वर्णन किये हुए माहात्म्यको जानता है और जिस विद्वान्में तू प्रतिष्ठित होता है अर्थात् पूर्वोक्त महिमासे भाव्यमान होता है उस विद्वान्के लिये सब देवता उत्कृष्टलोक स्वर्गमें अमृतमय भागको देते हैं ॥ १८ ॥

नवमी ॥

यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः ।
एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः १९

यथा । प्राण । बलिऽहृतः । तुभ्यम् । सर्वाः । प्रऽजाः । इमाः ।

एव । तस्मै । बलिम् । हरान् । यः । त्वा । शृणवत् । सुऽश्रवः १९

हे प्राण सर्वा इमाः जाः प्रदेवतिर्यङ्मनुष्याद्याः यथा येन प्रकारेण तुभ्यं त्वदर्थं बलिहृतः बलेर्भोक्तव्यस्य अन्नस्य हर्तारः उपहर्तारो भवन्ति एव एवं तस्मै विदुषे बलिं हरान् हरन्तु प्रयच्छन्तु । हे शुश्रवः शृण्वन् प्राण त्वा त्वां यः शृणवत् शृणुयात् तव माहात्म्यप्रतिपादकं मन्त्रजातं श्रवणेन्द्रिययेण जानीयात् । तस्मै इति संबन्धः । ❀ शृणवत् इति । श्रु श्रवणे । अस्मात् लेटि अडागमः । "श्रुवः शृ च" इति श्नुप्रत्ययः शृभावश्च । शुश्रुव इति । तस्मादेव धातोर्लिटः क्वसुः ❀ ॥

हे प्राण ! देवता तिर्यक् मनुष्य आदि सम्पूर्ण प्रजायें जिस प्रकार आपके लिये भोक्तव्य अन्नको लाती हैं हे सुश्रवः ! इसी प्रकार वे प्रजायें आपके माहात्म्यको जो श्रवणेन्द्रियसे जाने उस विद्वान्के लिये बलिको लावें ॥ १९ ॥

दशमी ॥

अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः ।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥

अन्तः । गर्भः । चरति । देवतासु । आऽभूतः । भूतः । सः । ऊ
इति । जायते । पुनः ।

सः । भूतः । भव्यम् । भविष्यत् । पिता । पुत्रम् । प्र । विवेश ।
शचीभिः ॥ २० ॥

देवतासु देवेषु अन्तः मध्ये गर्भः सन् प्राणश्चरति । न केवलं मनुष्यादिष्वित्यर्थः । आभूतः आसमन्ताद्व्याप्तो भूतः नित्यः सन् स उ स एव प्राणः पुनर्जायते । तत्तच्छरीरेण सह पुनरुत्पद्यत

इवेत्यर्थः । भूतः नित्यवर्तमानः स प्राणः भूतम् भूतकालावच्छिन्नं वस्तु भविष्यत् भाविकालावच्छिन्नम् उत्पत्स्यमानं च वस्तु शचीभिः आत्मीयाभिः शक्तिभिः प्र विवेश । पिता पुत्रम् । लुप्तोपमम् एतत् । यथा पिता स्वकीयं पुत्रं स्वावयवैरनुप्रविशति तथेत्यर्थः । अथ वा प्राण एव हि सर्वस्य लोकस्य पिता जनकः । सोयं पुत्रम् स्वस्माद् उत्पन्नं पुत्रभूतं सर्वं जगत् सात्मकं कर्तुं प्रविवेशेत्यर्थः ॥

[इति] पञ्चमं सूक्तम् ॥

प्राण केवल मनुष्य आदिके भीतर नहीं विचरण करता है, किंतु देवताओंमें भी गर्भ होकर विचरण करता है, चारों ओरसे व्याप्तहुआ वह नित्य प्राण ही फिर उत्पन्न होता है अर्थात् उसके शरीरके साथ फिर उत्पन्न होजाता है । इस नित्य वर्तमान प्राण ने भूतकालावच्छिन्न वस्तु, भविष्य-कालावच्छिन्न उत्पन्न होने वाली वस्तुमें भी अपनी शक्तियोंसे इस प्रकार प्रवेश कर लिया है, जिस प्रकार पिता अपने पुत्रमें अपने अवयवोंसे प्रवेश करता है । अथवा प्राण ही सब जगत्का जनक है वह अपनेसे उत्पन्न हुए पुत्रभूत सर्वजगत्को सात्मक करनेके लिये उसमें प्रवेश करता है ॥ २० ॥ (१२)

पञ्चम सूक्त समाप्त (४८३) ॥

"एकं पादम्" इति सूक्तस्यापि पूर्ववद् विनियोगः ॥

"एकं पादम्" इस सूक्तका भी पहिले सूक्तकी समान विनियोग है ।

तत्र प्रथमा ॥

ए॒कं पा॒दं नोत्खि॑दति सलि॒ला॒द्धं॑स उ॒च्चर॑न् ।
यद॒ङ्ग स तमु॑त्खि॒देन्नैवाद्य न श्वः स्या॒-
न्न रा॒त्री नाहः॑ स्या॒न्न व्युच्छेत् क॒दा च॒न २१

एकम् । पादम् । न । उत् । खिदति । सलिलात् । हंसः । उत्ऽचरन् ।
यत् । अङ्ग । सः । तम् । उत्ऽखिदेत् । न । एव । अद्य । न । श्वः । स्यात् । न । रात्री । न । अहः । स्यात् । न । वि । उच्छेत् । कदा । चन । ॥ २१ ॥

हन्ति गच्छतीति हंसः जगत्प्राणभूतः सूर्यः । स सलिलाद् उच्चरन् उद्गच्छन् । उद्यन्नित्यर्थः । एकं पादं नोत्खिदति नोद्धरति । एकं पादं निश्चलं स्थापयित्वा एकेनैव पादेन परिभ्रमतीत्यर्थः । तथा च मन्त्रवर्णः । "तं सूर्यं देवम् अजम् एकपादम्" इति [तै॰ ब्रा॰ ३. १. २. ८]। अङ्ग हे देवदत्त स उच्चरन् सूर्यः यत् यदि तं निहितं पादम् उत्खिदेत् क्षिपेत् तर्हि असौ द्वाभ्यां पादाभ्याम् अस्मदादिवद् यत्रक्वापि गच्छेत् निषीदेद् वा । तथा च कालपरिच्छेदकस्य सूर्यस्य परिस्पन्दाभावात् अद्य श्वः रात्री अहः इत्येवं विभिन्नव्यवहारो न स्यात् । ❀ "रात्रेश्चाजसौ" इति रात्रिशब्दात् ङीप् ❀ । कदा चन कदाचिदपि न व्युच्छेत् । व्युच्छनम् उषसः प्रादुर्भावः । सूर्यस्योदयेऽसंभाव्यमाने तत्पुरोभाविनी उषा अपि नोदियात् । तथा च जगदान्ध्यमेव स्याद् इत्यर्थः ॥ अथ वा हन्ति गच्छति कृत्स्नशरीरं व्याप्य वर्तत इति हंसः प्राणः । सलिलात् सलिलोपलक्षितात् पाञ्चभौतिकाद् देहाद् उच्चरन् प्राणवृत्त्यात्मना ऊर्ध्वं गच्छन् एकं पादम् अपानवृत्त्यात्मकं नोत्खिदति नोत्क्षिपति । यदि स प्राणस्तमपि अपानात्मकं पादम् उत्खिदेत् शरीराद् उत्क्षिपेत् तदा प्राणस्य कार्त्स्न्येन शरीरतो निर्गतत्वात् मृतशरीरस्य तस्य अद्य श्वः रात्रिः अहः इत्येवमात्मकः कालविभागो न स्यात् । कदाचिदपि न व्युच्छेत् तमसो

२३-६-३०

निवृत्तिर्न स्यात् । अतः जगत् सजीवं कर्तुम् एकं पादं नोत्खिदतीत्यर्थः ॥

जो गमन करता है वह सूर्यात्मक सब जगत्का प्राणभूत हंस सलिलसे ऊपरको उठता हुआ एक पैरको नहीं उठाता है अर्थात् एक पादको निश्चल रख कर एक पैरसे ही परिभ्रमण करता है (इसी बातको तैत्तिरीयब्राह्मण ३ । १ । २ । ८ में कहा है, कि–"तं सूर्यं देवं अजं एकपादम् ।–उन अज एकपाद सूर्यदेवको") हे देवदत्त ! यह उदय होता हुआ सूर्य यदि उस टिके हुए पैरसे भी उदय होवे तो यह दोनों पैरोंसे हमारी समान चाहे जहाँ चला जाय वा बैठ जाय उस समय कालपरिच्छेदक सूर्यके परिस्पन्दके अभाववश आज कल दिन रात आदि विभिन्न व्यवहार न होवे और कभी उषाका प्रादुर्भाव भी न होवे अर्थात् जब सूर्योदयकी संभावना न हो तो उषाका भी उदय नहीं होगा और जगत्में अन्धकार ही भर जावे ॥

अथवा–पूर्ण शरीरमें व्याप्त होकर रहनेवाला प्राण हंस कहलाता है वह सलिल आदि पाँच भूतोंवाले देहसे प्राणवृत्तिरूपसे ऊपरको जाता हुआ अपानवृत्त्यात्मक एक पादको नहीं उठाता है । यदि वह प्राण उस अपानवृत्त्यात्मक पादको भी उठा लेय तो प्राणके पूर्णरूपसे शरीरसे निकल जाने पर मृतशरीरका आज कल रात्रि दिन आदि कालविभाग न होवे । और अन्धकारकी निवृत्ति भी कभी न होवे अतः वह जगत्को सजीव रखनेके लिये एक पादको नहीं उठाते हैं ॥ २१ ॥

द्वितीया ॥

अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्ध कतमः स केतुः ॥

अष्टाऽचक्रम् । वर्तते । एकऽनेमि । सहस्रऽअक्षरम् । प्र । पुरः ।
नि । पश्चा ।

अर्धेन । विश्वम् । भुवनम् । जजान । यत् । अस्य । अर्धम् ।
कतमः । सः । केतुः ॥ २२ ॥

अष्टाचक्रम् त्वगसृगाद्याः सप्त धातवः ओजो नाम अष्टमो धातुः । तेत्र रथात्मना वर्णनीयस्य शरीरस्य चक्रत्वेन रूप्यन्ते । अष्टौ चक्राणि यस्य तद् अष्टाचक्रं शरीरम् । ❀ “छन्दसि च” इति अष्टनो दीर्घः ❀ । तादृक् शरीरम् एकनेमि एकेनैव प्राणेन नेमिनेव वेष्टितम् । लोके हि रथचक्रं नेमिवेष्टितमेव प्रवर्तते । अत्र तु चक्राष्टकमपि एक एव प्राणात्मको नेमिः आवेष्ट्य वर्तयतीत्यर्थः । सहस्राक्षरम् बहुभिरक्षैरुपेतम् । ❀ रो मत्वर्थीयः ❀ । यद्वा प्राणपरिस्पन्दवशेन सहस्रं बहुविधानि अक्षराणि वर्णावर्णात्मकानि शब्दरूपाणि यस्य तत् तथोक्तम् । यद्वा । ❀ अश्नोतेः औणादिकः सर प्रत्ययः ❀ । बहुविधव्याप्तिकम् इत्यर्थः । एवंरथात्मकं शरीरं पुरः पुरस्तात् पूर्वस्मिन् भागे प्र वर्तते पश्चात् अपरभागे नि वर्तते । इत्थंमहानुभावः प्राणः प्राणिशरीरं प्रविश्य तत्र प्रवृत्तिनिवृत्ती जनयतीत्यर्थः । शरीरस्य रथत्वेन रूपणम् अन्यत्रापि आम्नातम् ।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु [क० व० ३. ३]

इत्यादिना । स प्राणः सूत्रात्मभावेन स्थितः अर्धेन स्वात्मनोंशेन एकेन विश्वम् सर्वं भुवनम् भूतजातं जजान प्राणवाय्वात्मना प्रविश्य जनयामास । अस्य सूत्रात्मनः प्राणस्य यद् अन्यद् अर्धम् प्राणरूपेणावस्थिताद् अपरो भागः तस्यापरिच्छिन्नस्य केतुः कतमः कीदृशः । परब्रह्मात्मकस्य प्राणस्य एकदेश एव कृत्स्नं जगद् वर्तते । अवशिष्टं स्वरूपम् आनन्त्याद् इदम् ईदृग् इति

निर्धारयितुम् अशक्यम् इत्यर्थः । श्रूयते हि "पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपाद् अस्यामृतं दिवि" इति [ऋ० १०. ९०. ३]। स्मृतिश्च भवति।

विष्टभ्याहम् इदं कृत्स्नम् एकांशेन स्थितो जगत्। इति [भ० गी० १०. ४२]॥

त्वचा रक्त आदि सात धातुएँ और ओज नामक आठवीं धातु इस प्रकार जो आठ धातुएँ हैं वे यहाँ रथात्मारूपसे वर्णनीय शरीरके चक्ररूपमें कही जाती है, कि-जिसमें आठ चक्र हैं ऐसा शरीर प्राणरूप एकनेमि वाला है। लोकमें रथचक्र नेमिसे वेष्टित दीखता है और यहाँ पर आठ चक्र वाले भी शरीरको एक प्राणरूपी नेमि आवेष्टन कर रही है। यह अष्टाचक्र बहुतसे अक्षोंसे संपन्न है अथवा प्राणपरिस्पन्दके कारण अनेक प्रकारके वर्णात्मक शब्दरूपोंसे सम्पन्न है अथवा अनेक प्रकारकी व्याप्ति वाला है, ऐसे रथात्मा शरीरको पहिले पूर्वभागमें व्याप्त होकर वर्तता है फिर अपरभागमें वर्तता है अर्थात् इस प्रकार महानुभाव प्राण प्राणीके शरीरमें प्रवेश करके तहाँ प्रवृत्ति और निवृत्तिको प्रादुर्भूत करता है। अन्यत्र भी (शरीरका रथरूपसे वर्णन मिलता है, कि-"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।-अर्थात् आत्माको रथी जान और शरीरको रथ जान" कठवल्ली उपनिषत् ३।३॥) वह सूत्रात्मभावसे स्थित प्राण अपने एक आधे अंशसे सकल भुवनके प्राणियोंको, प्राणवायुरूपसे । प्रविष्ट होकर उत्पन्न करता है। इस प्राणरूपसे अवस्थित सूत्रात्मा प्राणका जो दूसरा भाग है उस अपरिच्छिन्नका ज्ञापक कैसा ? अर्थात् परब्रह्मात्मक प्राणका एकदेश ही सारे जगत्के रूपमें वर्तमान है तब उसके अवशिष्ट स्वरूपका अनन्तताके कारण "यह ऐसा है" इस बातका निर्धारण करना अशक्य है। श्रुतिमें भी

कहा है, कि–"पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।–इस ब्रह्मका एक पाद सकल प्राणी हैं और इसके तीन पाद स्वर्ग में हैं" ऋग्वेदसंहिता १०। ९०।३)॥ श्रीमद्भगवद्गीता १०।४२ में भी कहा है, कि–"विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नं एकांशेन स्थितो जगत्।–मैं इस सकल जगत्को अपने एक अंशसे व्याप्त करके स्थित हूँ" २२

तृतीया ॥

यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः।
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोस्तु ते ॥२३॥

यः। अस्य। विश्वऽजन्मनः। ईशे। विश्वस्य। चेष्टतः।
अन्येषु। क्षिप्रऽधन्वने। तस्मै। प्राण। नमः। अस्तु। ते॥२३॥

यः प्राणो विश्वजन्मनः विश्वानि सर्वाणि नानारूपाणि जन्मानि यस्य तत् तथोक्तम् तस्य चेष्टतः व्याप्रियमाणस्य अस्य विश्वस्य सर्वस्य जगतः ईशे ईष्टे। ❀ ईश ऐश्वर्ये। "लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तलोपः ❀। अन्येषु प्राणिशरीरेषु क्षिप्रधन्वने क्षिप्रं गच्छते व्याप्नुवते। ❀ धविर्गत्यर्थः। इदित्त्वात् नुम्। कनिन् युवृषितक्षिराजिधन्वीत्यादिना [उ० १. १४५] कनिन् प्रत्ययः ❀। हे प्राण तस्मै तथाविधाय ते तुभ्यं नमोस्तु॥

जो प्राण! अनेक प्रकारके जन्म धारण करने वाले चेष्टासम्पन्न सकल जगत्का स्वामी है और जो दूसरोंके शरीरमें शीघ्रतासे व्याप्त होजाता है, ऐसे हे प्राण! आपके लिये प्रणाम प्राप्त हो॥ २३॥

चतुर्थी॥

यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥ २४ ॥

यः । अस्य । सर्वऽजन्मनः । ईशे । सर्वस्य । चेष्टतः ।
अतन्द्रः । ब्रह्मणा । धीरः । प्राणः । मा । अनु । तिष्ठतु ॥२४॥

पूर्वोर्धर्चो व्याख्यातः । विश्वशब्दस्य स्थाने सर्वशब्द एव विशेषः । स जगदीश्वरः प्राणः अतन्द्रः आलस्यरहितः सर्वदा सर्वत्र संचरिष्णुः धीरः धिया ज्ञानशक्त्या युक्तः ब्रह्मणा सर्वगतब्रह्मात्मकेन अनवच्छिन्नेन रूपेण मा माम् अनु तिष्ठतु अनुवर्तताम् ॥

जो अनेक रूपके जन्म धारण करने वाले सकल जगत् का स्वामी है वह जगदीश्वर प्राण आलस्यरहित होकर सर्वत्र सर्वदा संचरण करता हुआ अपनी ज्ञानशक्तिसे सम्पन्न रहता हुआ, सर्वगतब्रह्मात्मक अनवच्छिन्न रूपसे मुझमें स्थित रहे–मेरा अनुवर्तन करे ॥ २४ ॥

पञ्चमी ॥

ऊर्ध्वं सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते ।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥ २५ ॥

ऊर्ध्वः । सुप्तेषु । जागार । ननु । तिर्यङ् । नि । पद्यते ।
न । सुप्तम् । अस्य । सुप्तेषु । अनु । शुश्राव । कः । चन ॥ २५ ॥

हे प्राण त्वम् ऊर्ध्वः उत्थितः सन् सुप्तेषु निद्रापरवशेषु प्राणिषु जागर जागृहि तद्रक्षणार्थं निद्रारहितो वर्तस्व । ❀ जागृ निद्राक्षये । लोटि "बहुलं छन्दसि" इति शपो लुगभावः ❀ । जागरणे कारणम् आह नन्विति । सुप्तः प्राणी तिर्यङ् तिर्यगवस्थितः नि पद्यते निद्रापरवशः शेते । ननु इति प्रश्ने । अतस्त्वं जागृहीत्यर्थः । प्राणस्यापि सुप्तिः किं न स्याद् इति तत्राह न सुप्तम् इति । प्राणिषु

सुप्तेषु निद्रापरवशेषु सत्सु तच्छरीरमध्यवर्तिनः अस्य प्राणस्य सुप्तम् स्वापं कश्चन कोपि पुरुषः न अनु शुश्राव अनु पारंपर्यक्रमेण श्रुतवान् । प्राणस्वपनस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभ इत्यर्थः ॥

हे प्राण ! आप उठ कर निद्रापरवश प्राणियोंमें जागिये—उनकी रक्षा करनेके लिये निद्रारहित रहिये (जागरणका कारण यह है, कि—सोता हुआ प्राणी तिरछा होकर निद्राके अधीन हो कर सोजाता है) अतः आप जागिये (प्राण भी क्यों न सोवे तो कहते हैं, कि—) प्राणियोंके सोने पर इस प्राणके सोनेको किसीने परम्परा क्रमसे भी नहीं सुना है अर्थात् प्राणके सोनेका वर्णन करने वाला वक्ता और श्रोता भी दुर्लभ है ॥ २५ ॥

षष्ठी ॥

प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि २६

प्राण । मा । मत् । परिऽआवृतः । न । मत् । अन्यः । भविष्यसि ।
अपाम् । गर्भम्ऽइव । जीवसे । प्राण । बध्नामि । त्वा । मयि २६

हे प्राण मत् सकाशात् मा पर्यावृतः पराङ्मुखो मा भूः । ❀ वृतु वर्तने । अस्मात् माङि लुङि "द्युद्भ्यो लुङि" इति परस्मैपदम् । पुषादिद्युताद्य्लृदितः०" इति च्लेः अङ् आदेशः ❀ । पर्यावृत्त्यसंभवम् आह । हे प्राण त्वं मत् सकाशाद् अन्यो न भविष्यसि मया सह तादात्म्यापन्न एव वर्तसे । अतः पर्यावृत्तिशङ्कापि न संभवतीत्यर्थः । अतो हे प्राण त्वा त्वां मयि मच्छरीरे जीवसे जीवनाय बध्नामि आसजामि । अपां गर्भमिव अपाम् उदकानां गर्भभूतं वैश्वानराग्निं जीवनार्थं देहमध्ये धारयन्ति तथेत्यर्थः । अग्नेः अब्गर्भत्वं मन्त्रवर्णाद् अवगम्यते । "अपां गर्भं दर्शतम् ओषधी-

नाम्" [ऋ० १. १६४. ५२] "अग्ने विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि" इति [तै० सं० ४. २. ३. ३] च ॥

षष्ठं सूक्तम् ॥

इति सायणार्यविरचिते अथर्वसंहिताभाष्ये

एकादशकाण्डे द्वितीयोनुवाकः ॥

हे प्राण ! तू मुझसे पराङ्मुख न हो । हे प्राण ! तू मुझसे अन्य न होसकेगा, क्योंकि—मेरे साथ तादात्म्यापन्न ही रहता है अतः पराङ्मुख होनेकी शङ्का भी नहीं है अत एव हे प्राण ! मैं तुझको अपने शरीरमें जीवनके लिये बाँधता हूँ, जैसे कि जलोंके गर्भरूप वैश्वानर अग्निको जीवनके लिये देहके मध्यमें धारण करते हैं, इसी प्रकार मैं तुझको अपने शरीरमें धारण करता हूँ† २६ (१३)

छठा सूक्त समाप्त (४८४) ॥

एकादश काण्डमें द्वितीय अनुवाक समाप्त ॥

तृतीयेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र "ब्रह्मचारीष्णंश्चरति" इत्यादिभिस्त्रिभिः सूक्तैर्ब्रह्मचारिणो माहात्म्यम् उच्यते । तस्य ब्रह्मयज्ञजपे विनियोगः ॥

तीसरे अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं । उनमें "ब्रह्मचारीष्णंश्चरति" इन तीन सूक्तोंसे ब्रह्मचारीका माहात्म्य कहा जाता है । इसका ब्रह्मयज्ञजपमें विनियोग होता है ।

तत्र प्रथमसूक्ते प्रथमा ॥

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ।

---

† अग्निका अपांगर्भत्व और मन्त्रोंमें भी वर्णित है । यथा—"अपां गर्भं दर्शतं ओषधीनाम्" ऋग्वेदसंहिता १ । १६४ । ५२ और तैत्तिरीयसंहिता ४ । २ । ३ । ३ में कहा है, कि—"अग्ने विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि" ॥

स दा॑धार पृथि॒वीं दिवं॑ च॒ स आ॑चा॒र्यं॑१ त॒प॑सा पिपर्ति १

ब्र॒ह्म॒ऽचा॒री । इ॒ष्णन् । च॒र॒ति॒ । रोद॑सी॒ इति॑ । उ॒भे इति॑ । तस्मि॑न् ।

दे॒वाः । सम्ऽम॑नसः । भ॒व॒न्ति॒ ।

सः । दा॒धा॒र॒ । पृ॒थि॒वीम् । दिव॑म् । च॒ । सः । आ॒ऽचा॒र्य॑म् । तप॑सा ।

पि॒प॒र्ति॒ ॥ १ ॥

ब्रह्मचारी ब्रह्मणि वेदात्मके अध्येतव्ये चरितुं शीलम् अस्य स तथोक्तः उभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ इष्णन् आत्मीयेन तपसा अभीक्ष्णं व्याप्नुवन् चरति स्वनियमे प्रवर्तते । ❀ इष अभीक्ष्ण्ये । अस्मात् लटः शत्रादेशः । क्र्यादित्वात् श्ना-प्रत्ययः ❀ । तस्मिन् ब्रह्मचारिणि सर्वे इन्द्रादयो देवाः संमनसः समानमनस्का भवन्ति । अनुग्रहबुद्धियुक्ता भवन्तीत्यर्थः । स ब्रह्मचारी आत्मीयेन तपसा पृथिवीम् भूमिं दिवम् द्युलोकं च दाधार । ❀ तुजादित्वाद् अभ्यासदीर्घत्वम् ❀ । धारयति पोषयति । तथा आचार्यम् स्वं गुरुं तेनैव तपसा पिपर्ति पालयति । सन्मार्गवृत्त्या आचार्यं परिपालयतीत्यर्थः । "शिष्यपापं गुरोरपि" इति शिष्यकृतेन पापेन गुरोरपि पातित्यस्मरणाद् एवम् उक्तम् । ❀ "चरेराङि चागुरौ" इति गुरावभिधेये आङ्पूर्वाच्चरतेः "ऋहलोर्ण्यत्" इति ण्यदेव प्रत्ययो भवति। "तित् स्वरितः" इति स्वरितत्वम् । पिपर्तीति पॄ पालनपूरणयोः । जुहोत्यादित्वात् शपः श्लुः । "अर्तिपिपर्त्योश्च" इति अभ्यासस्य इत्वम् ❀ ॥

जिसका वेदात्मक ब्रह्मको अध्ययन करनेके आचरण करनेका स्वभाव होता है वह ब्रह्मचारी कहलाता है, वह द्युलोक और पृथिवीलोक दोनों लोकोंको अपने तपसे निरन्तर व्याप्त करता हुआ अपने नियममें वर्तमान रहता है, उस ब्रह्मचारी पर सब

५६ २४६३०

देवता एकसा मन रखते हैं अर्थात् सब देवता उस पर अनुग्रह करते हैं, वह ब्रह्मचारी अपने तपसे भूमि और द्युलोकका पोषण करता है तथा अपने गुरुका भी उसी तपसे पालन करता है तात्पर्य यह है, कि–सन्मार्गमें चलकर आचार्यका भी पालन करता है। स्मृतिमें कहा है, कि–"शिष्यपापं गुरोरपि।–शिष्यका पाप गुरुको भी लगता है" अतः उसका पुण्य भी अवश्य मिलेगा यह विचार कर ऊपरकी बात कही है)॥ १ ॥

द्वितीया ॥

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥ २ ॥

ब्रह्मऽचारिणम् । पितरः । देवऽजनाः । पृथक् । देवाः । अनुऽसंयन्ति । सर्वे ।
गन्धर्वाः । एनम् । अनु । आयन् । त्रयःऽत्रिंशत् । त्रिऽशताः । षट्ऽसहस्राः । सर्वान् । सः । देवान् । तपसा । पिपर्ति ॥ २ ॥

ब्रह्मचारिणम् ब्रह्मचर्यम् आचरन्तं पुरुषं पितरः पितृगणा देवजनाः एतत्संज्ञा देवगणा अन्ये च सर्वे देवा इन्द्रादयः पृथग् अनुसंयन्ति । तस्य रक्षणार्थं पृथक् पृथक् तम् अनुगच्छन्तीत्यर्थः । तथा गन्धर्वाः अन्तरिक्षसंचारिणो विश्वावसुप्रभृतयः एनं ब्रह्मचारिणम् अन्वायन् अनुगच्छन्ति। ये च त्रयस्त्रिंशद् देवाः "अष्टौ वसवः एकादश रुद्राः द्वादशादित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्च" [ऐ० ब्रा० १. १०] इत्येवं प्राग् उदाहृताः ये च त्रिशताः त्रय इति अत्रापि

संबध्यते। त्र्युत्तरत्रिशतसंख्याकास्तद्विभूतिरूपा देवाः। तथा षट्सहस्राः ये च तद्विभूतिरूपाः षट्सहस्रसंख्याका देवाः। एवमेव वैश्वदेवनिविदि देवानां संख्या उत्तरोत्तरं भूयसी तन्माहात्म्यप्रतिपादनाय समाम्नायते। "ये स्थ त्रय एकादशास्त्रयश्च त्रिंशच्च त्रयश्च त्री च शता त्रयश्च त्री च सहस्रा" इति प्रक्रम्य "अतो वा देवा भूयांसः स्थ" इति [निवि० १. ७]। तत्र प्रकृतसंख्यातो भूयस्त्वश्रवणाद् अत्र षट्सहस्रा इति अधिकसंख्योक्तिः। तान् सर्वान् देवान् स ब्रह्मचारी तपसा आत्मीयेन ब्रह्मचर्यनियमेन पिपर्ति पालयति। देवमनुष्यादिरूपं सर्वं जगद् ब्रह्मचर्येण ध्रियत इत्यर्थः ॥

पितर और देवजन तथा इन्द्र आदि सब देवता भी ब्रह्मचर्यका पालन करने वाले ब्रह्मचारीके पीछे उसकी रक्षा करनेके लिये चला करते हैं। और अन्तरिक्षचारी विश्वावसु आदि गन्धर्व इस ब्रह्मचारीके पीछे पीछे चलते हैं और (ऐतरेयब्राह्मण १ । १० में वर्णित आठ वसु ग्यारह रुद्र बारह आदित्य प्रजापति और वषट्कार रूप) जो तैंतीस देवता हैं और इनकी विभूतिरूप तीनसौ तीन देवता हैं और इनकी विभूतिरूप जो छः हजार देवता हैं (इसी प्रकार वैश्वदेवनिवित्में देवताओंके माहात्म्यका प्रतिपादन करते हुए देवताओंकी उत्तरोत्तर अधिक संख्याका प्रतिपादन किया गया है, कि—"ये स्थ त्रय एकादशास्त्रयश्च त्रिंशच्च त्रयश्च त्री च शता त्रयश्च त्री च सहस्रा" इसका आरंभ करके आगे कहा है, कि—"अतो वा देवा भूयांसः स्थ—हे देवताओ ! तुम इससे भी अधिक हो" यहाँ प्रकृतसंख्या से भी अधिकका श्रवण होनेसे छः हजारकी बढ़ती संख्याको कहा गया है) ब्रह्मचारी इन सब देवताओंका अपने ब्रह्मचर्यनियमरूप तपसे पालन करता है। तात्पर्य यह है, कि—देव मनुष्य आदिक सब जगत् ब्रह्मचर्यसे ही धारण किया जाता है ॥ २ ॥

तृतीया ॥

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति
देवाः ॥ ३ ॥

आऽचार्यः । उपऽनयमानः । ब्रह्मऽचारिणम् । कृणुते । गर्भम् ।
अन्तः ।

तम् । रात्रीः । तिस्रः । उदरे । बिभर्ति । तम् । जातम् । द्रष्टुम् ।
अभिऽसंयन्ति । देवाः ॥ ३ ॥

ब्रह्मचारिणम् माणवकम् उपनयमानः स्वसमीपम् उपगमयन् आचार्यः अन्तः विद्याशरीरस्य मध्ये गर्भं कृणुते करोति । ❀ उपनयमान इति । "संमाननोत्संजनाचार्यकरण०" इति आत्मनेपदम् ❀ । तं गर्भीभूतं ब्रह्मचारिणं तिस्रो रात्रीः । ❀ "०अत्यन्तसंयोगे" द्वितीया ❀ । तावत्कालपर्यन्तं त्रिरात्रम् उदरे आत्मीये बिभर्ति धारयति चतुर्थे दिवसे जातम् विद्यामयशरीराद् उत्पन्नं तं ब्रह्मचारिणं द्रष्टुम् अवलोकयितुं देवा अभिसंयन्ति अभिमुखं संभूय गच्छन्ति । उपनयनसंस्कारेण माणवकस्य आचार्यसकाशाद् उत्पत्तिं भगवान् आपस्तम्बोपि आह स्म । "स हि विद्यातस्तं जनयति । तच्छ्रेष्ठं जन्म । शरीरमेव मातापितरौ जनयतः" इति आप० ध० १. १. १५–१७ ॥

ब्रह्मचारीको अपने समीपमें लाता हुआ—उपनयन करता हुआ—आचार्य उसको अपने विद्याशरीरके मध्यमें गर्भ (सा) करता है उस गर्भीभूत ब्रह्मचारीको तीन रात तक अपने उदरमें

धारण करता है, चौथे दिन उस विद्याशरीरसे उत्पन्न हुए ‡ ब्रह्मचारीको देखनेके लिये देवता अभिमुख होकर आते हैं ॥३॥

चतुर्थी ॥

इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति

इयम् । सम्ऽइत् । पृथिवी । द्यौः । द्वितीया । उत । अन्तरिक्षम् ।
समऽइधा । पृणाति ।

ब्रह्मचारी । सम्ऽइधा । मेखलया । श्रमेण । लोकान् । तपसा ।
पिपर्ति ॥ ४ ॥

पूर्वं ब्रह्मचारिणो माहात्म्यकथनपुरःसरं तदुत्पत्तिरभिहिता । अधुना स्तुतिव्याजेन तन्नियमा उपदिश्यन्ते । इयं परिदृश्यमाना पृथिवी ब्रह्मचारिणः प्रथमा समित् । द्यौः द्युलोकात्मिका द्वितीया समित् । उत अपि च अन्तरिक्षे द्यावापृथिव्योर्मध्ये समिधा अग्नावाधीयमानया पृणाति पूरयति । ❀ पॄ पालनपूरणयोः । "प्वादीनां ह्रस्वः" इति ह्रस्वत्वम् ❀ । इत्थं ब्रह्मचारी समिधा आधीयमानया मेखलया धार्यमाणया मौञ्ज्या श्रमेण इन्द्रियनिग्रहोद्भूतखेदेन तपसा अन्येनापि देहसंतापकेन नियमजातेन लोकान् प्राणु-

---

‡ भगवान् आपस्तम्बने भी उपनयनसंस्कारके द्वारा आचार्यसे माणवककी उत्पत्तिको कहा है, कि—"स हि विद्यातस्तं जनयति । तच्छ्रेष्ठं जन्म । शरीरमेव मातापितरौ जनयतः ।—अर्थात् वह आचार्य ब्रह्मचारीको विद्यासे उत्पन्न करते हैं, वही श्रेष्ठ जन्म है, मातापिता तो शरीरको ही उत्पन्न करते हैं" ॥ (आपस्तम्बधर्मसूत्र १ । १ । १५–१७) ॥

क्रान् पृथिव्यादीन् पिपर्ति पूरयति पालयति वा । अतः समिदाधानादिकम् अवश्यम् अस्य कर्तव्यम् इत्यर्थः ॥

(पहिले ब्रह्मचारीके माहात्म्यको कह कर उसकी उत्पत्ति कही, अब स्तुतिव्याजसे उसके नियमोंका उपदेश देते हैं, कि–) यह दीखती हुई पृथ्वी इस ब्रह्मचारीकी पहिली समिधा है, द्युलोक दूसरी समिधा है और ब्रह्मचारी द्यावा पृथिवीके भीतर अग्निमें स्थापित की हुई समिधासे जगत्को तृप्त करता है । इस प्रकार ब्रह्मचारी आधीयमान समिधासे, धारण की हुई मेखलासे, मौञ्जीके श्रमसे और इन्द्रियनिग्रहमें होने वाले खेदसे (तपसे) तथा देहसन्तापक अन्य नियमोंसे भी पृथिवी आदि लोकोंका पालन करता है । तात्पर्य यह है, कि–समिदाधान आदि ब्रह्मचारीका आवश्यकीय कर्तव्य है ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

पूर्वो॑ जा॒तो ब्रह्म॑णो ब्रह्मचा॒री घ॒र्मं॑ वसा॑न॒स्तप॒सोद॑तिष्ठत् ।
तस्मा॑ज्जा॒तं ब्राह्म॑णं॒ ब्रह्म॑ ज्ये॒ष्ठं दे॒वाश्च॒ सर्वे॑ अ॒मृते॑न
सा॒कम् ॥ ५ ॥

पूर्वः॑ । जा॒तः । ब्रह्म॑णः । ब्र॒ह्म॒ऽचा॒री । घ॒र्म॑म् । वसा॑नः । तप॑सा । उत् । अ॒ति॒ष्ठ॒त् ।

तस्मा॑त् । जा॒तम् । ब्राह्म॑णम् । ब्रह्म॑ । ज्ये॒ष्ठम् । दे॒वाः । च॒ । सर्वे॑ । अ॒मृते॑न । सा॒कम् ॥ ५ ॥

यत् सर्वजगत्कारणं ब्रह्म सत्यज्ञानादिलक्षणं तस्माद् ब्रह्मणः सकाशाद् ब्रह्मचारी पूर्वो जातः प्रथमम् उत्पन्नः । स च उत्पन्नो घर्मम् दीप्तं रूपं वसानः आच्छादयन् तपसा समिदाधानादिरूपेण

सह उदतिष्ठत् उत्थितवान् । तस्मात् ब्रह्मचार्यात्मना तपस्तप्यमानाद् ब्रह्मणः सकाशाद् ब्राह्मणम् ब्राह्मणानां स्वभूतं ज्येष्ठम् प्रशस्यतमं वृद्धतमं वा ब्रह्म वेदात्मकं जातम् प्रादुर्भूतम् । तत्प्रतिपाद्याः सर्वे अग्न्यादयो देवाश्च अमृतेन अमृतत्वप्रापकेन स्वोपभोग्येन साकं सह । जाता इत्यर्थः । प्रथमजननाद् ब्रह्मचारी सर्वश्रेष्ठ इत्यर्थः ॥

सब जगत्का कारण सत्यज्ञानादिलक्षण जो ब्रह्म है उस ब्रह्मसे ब्रह्मचारी पहिले प्रकट हुआ था, वह उत्पन्न हो प्रदीप्त रूपको धारण कर, समिदाधान आदिक तपसे उठा, उस ब्रह्मचारीरूपसे तपको तपते हुए ब्रह्मके सकाशसे, ब्राह्मणोंका स्वभूत परमश्रेष्ठ वेदात्मक ब्रह्म प्रकट हुआ था उससे प्रतिपाद्य अग्नि आदि देवता भी अमृतत्वप्रापक अपने उपभोगके साथ प्रकट हुए तात्पर्य यह है, कि-प्रथमजननके कारण ब्रह्मचारी सर्वश्रेष्ठ है ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

ब्र॒ह्म॒चा॒र्ये᳚ति स॒मिधा॒ समि॑द्धः॒ कार्ष्णं॒ वसा॑नो दीक्षि॒तो
दी॒र्घश्म॑श्रुः ।
स स॒द्य ए॑ति॒ पूर्व॑स्मा॒दुत्त॑रं समु॒द्रं लो॒कान्त्सं॒गृभ्य॒ मुहु॑-
रा॒चरि॑क्रत् ॥ ६ ॥

ब्र॒ह्म॒ऽचा॒री । ए॒ति॒ । स॒म्ऽइधा॑ । सम्॑ऽइद्धः । कार्ष्ण॑म् । वसा॑नः ।
दी॒क्षि॒तः । दी॒र्घ॑ऽश्मश्रुः ।
सः । स॒द्यः । ए॒ति॒ । पूर्व॑स्मात् । उत्त॑रम् । स॒मु॒द्रम् । लो॒कान् ।
सम्ऽगृभ्य॑ । मुहु॑ः । आ॒ऽचरि॑क्रत् ॥ ६ ॥

समिधा सायंप्रातरग्नावधीयमानया तज्जनितेन तेजसा समिद्धः संदीपितः कार्ष्णम् कृष्णमृगसंबन्धि अजिनं वसानः धारयन् दीक्षितः भिक्षाचरणादिभिर्नियमविशेषैर्नियन्त्रितः दीर्घश्मश्रुः दीर्घैरायतैः श्मश्रुभिर्युक्तः सन् ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यधर्मेण युक्तः एति वर्तते। स उदीरितलक्षणो ब्रह्मचारी सद्यः शीघ्रं पूर्वस्मात् समुद्रात् उत्तरम् उत्तरदिगवस्थितं समुद्रम् एति गच्छति। तपसो महिम्ना व्याप्नोतीत्यर्थः। तथा लोकान् सर्वान् पृथिव्यन्तरिक्षादीत् संगृह्य हस्ते धृत्वा मुहुः अत्यर्थम् आचरिक्रत् आभिमुख्येन करोति। सर्वे लोका अस्य वशे भवन्तीत्यर्थः। ❀ आचरिक्रत् इति। करोतेर्यङ्लुगन्तात् लङि रूपम् ❀ ॥

सायंकाल और प्रातःकाल अग्निमें रखी जाने वाली समिधासे और उससे उत्पन्न हुए तेजसे भली प्रकार दीप्त हुआ, कृष्णमृगके चर्मको पहिनने वाला, भिक्षाचरण आदि नियमोंसे नियन्त्रित ही ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यधर्मका पालन करता है। ऐसे लक्षणों वाला ब्रह्मचारी शीघ्र ही पूर्वसमुद्रसे उत्तरसमुद्र पर चला जाता है अर्थात् इनमें अपने तपसे व्याप्त होजाता है। तथा पृथिवी अन्तरिक्ष आदि लोकोंको हाथमें करके उनको अभिमुख करता है, तात्पर्य यह है, कि—सब लोक इसके वशमें होजाते हैं ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं
विराजम् ।
गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस्ततर्ह७

ब्रह्मऽचारी । जनयन् । ब्रह्म । अपः । लोकम् । प्रजाऽपतिम् । परमेऽस्थिनम् । विऽराजम् ।

गर्भः । भूत्वा । अमृतस्य । योनौ । इन्द्रः । ह । भूत्वा । असुरान् । ततर्ह ॥ ७ ॥

उक्तलक्षणो ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यमहिम्ना ब्रह्म ब्राह्मणजातिम् अपः स्नानपानार्था गङ्गाद्या नदीः इमम् आत्मनः फलभूतं स्वर्गादिलोकं प्रजापतिम् प्रजानां स्रष्टारम् अवान्तरसृष्टिकरं परमेष्ठिनम् परमे उत्कृष्टे सत्यलोके तिष्ठतीति परमेष्ठी तम् आदिब्रह्माणं विराजम् स्थूलप्रपञ्चशरीराभिमानिनम् ईश्वरं च जनयन् उत्पादयन् वर्तते। स्वस्वकारणाद् उत्पद्यमानानाम् एषां ब्रह्मचर्यं निमित्तकारणम् इति तदाश्रयभूतो ब्रह्मचार्येव जनयन्निति उपचर्यते। अमृतस्य अमरणशीलस्य ब्रह्मणः संबन्धिन्यां योनौ सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिकायां प्रकृतौ प्रथमं ब्रह्मचारी गर्भो भूत्वा उदीरितं सर्वं जनयति। पश्चात् इन्द्रो ह भूत्वा तपोबलाद् इन्द्रत्वं प्राप्य असुरान् सुरविरोधिनो दैत्यान् ततर्ह जघान। ❀ तृह हिंसि हिंसायाम् ❀। इत्थं सर्वजगत्कर्तृत्वेन ब्रह्मचारिणः स्तुतिः॥

ऐसा ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यकी महिमासे ब्राह्मण जातिको उत्पन्न करता रहता है, स्नान पानके लिये गंगा आदि नदियोंको उत्पन्न करता रहता है, अपने फलरूप स्वर्ग आदिक लोकोंको उत्पन्न करता रहता है, प्रजाओंके स्रष्टा अवान्तरसृष्टिकर प्रजापतिको उत्पन्न करता रहता है, परमेष्ठीको उत्पन्न करता रहता है, स्थूलप्रपञ्चशरीराभिमानी ईश्वर विराट्को उत्पन्न करता रहता है (अपने अपने२ कारणोंसे उत्पन्न होने वाले इनका ब्रह्मचर्य निमित्तकारण है अतः उनका आश्रयभूत ब्रह्मचारी ही उनको उत्पन्न करता है ऐसा उपचार किया जाता है) अमरणशील ब्रह्मकी सत्वरजस्तमोगुणात्मक योनि (प्रकृति) में पहिले ब्रह्मचारी गर्भ होकर सब वर्णितोंको उत्पन्न करता है फिर इन्द्र होकर तपो-

२५-६-३०

बलसे इन्द्रत्वको पाकर सुरविरोधी असुरोंको मारता है (इस प्रकार सर्वजगत् कर्तृत्वरूपसे ब्रह्मचारीकी स्तुति की है) ॥७॥

अष्टमी ॥

आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं
दिवं च ।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः संमनसो
भवन्ति ॥ ८ ॥

आऽचार्यः । ततक्ष । नभसी इति । उभे इति । इमे इति । उर्वी इति । गम्भीरे इति । पृथिवीम् । दिवम् । च ।
ते इति । रक्षति । तपसा । ब्रह्मऽचारी । तस्मिन् । देवाः । सम्ऽमनसः । भवन्ति ॥ ८ ॥

इमे परिदृश्यमाने उभे नभसी नभः अन्तरिक्षम् । तत्साहचर्याद् द्विवचनेन पृथिव्युपलक्ष्यते । द्यावापृथिव्यौ आचार्यस्ततक्ष तक्षणेन जनयामास । ❀तक्षू त्वक्ष तनूकरणे । अस्मात् लिट्❀। नभसी विशेष्येते । उर्वी विस्तीर्णे गंभीरे गाम्भीर्ययुक्ते । परिच्छेत्तुम् अशक्ये इत्यर्थः । ते एव व्यस्तं निर्दिशति पृथिवीं दिवं चेति । तं द्यावापृथिव्योरुत्पादकम् आचार्यं ब्रह्मचारी आत्मीयेन तपसा ब्रह्मचर्यनियमेन रक्षति पालयति । तस्मिंस्तथाविधे ब्रह्मचारिणि सर्वे देवाः संमनसः समानमनस्काः प्रीता भवन्ति ॥

इस दीखते हुए आकाश और पृथिवीको आचार्यने तक्षण किया है, ये दोनों विशाल हैं और गम्भीरतासम्पन्न हैं अर्थात् इनकी नाप नहीं की जासकती । इस पृथिवी द्यौ और इनके

उत्पादक आचार्यकी भी ब्रह्मचारी अपने ब्रह्मचर्यनियमसे रक्षा करता है । ऐसे ब्रह्मचारी पर सब देवता अनुग्रह करते हैं ॥८।

नवमी ॥

इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो
दिवं च ।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा

इमाम् । भूमिम् । पृथिवीम् । ब्रह्मचारी । भिक्षाम् । आ । जभार ।
प्रथमः । दिवम् । च ।
ते इति । कृत्वा । सम्ऽइधौ । उप । आस्ते । तयोः । आर्पिता ।
भुवनानि । विश्वा ॥ ९ ॥

इमां परिदृश्यमानां पृथिवीम् प्रथितां विस्तीर्णां भूमिं ब्रह्मचारी प्रथमः प्रथमभावी सन् भिक्षाम् आ जभार भिक्षात्वेन आहृतवान् । अनन्तरं दिवम् द्युलोकं च द्वितीयां भिक्षाम् आजहार । ❀ "हृग्रहोर्भः०" इति भत्वम् ❀ । ते द्यावापृथिव्यौ भिक्षणेन लब्धे समिधौ कृत्वा उपास्ते अग्निं परिचरति । समिन्धनसाधनयोस्तयोर्द्यावापृथिव्योः विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि आर्पिता अर्पितानि स्थापितानि । आश्रित्य वर्तन्त इत्यर्थः ॥

इस विस्तीर्ण भूमिको प्रथमभावी ब्रह्मचारीने भिक्षारूपमें ग्रहण किया फिर द्युलोकको भी भिक्षारूपमें लेलिया भिक्षामें मिलेहुए उन द्यावापृथिवीकी समिधा बनाकर उसने अग्निकी उपासना की थी, समिन्धनके साधन उन द्यावापृथिवीका आश्रय लेकर समस्त प्राणी रहते हैं ॥ ९ ॥

दशमी ॥

अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ
ब्राह्मणस्य ।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म
विद्वान् ॥ १० ॥

अर्वाक् । अन्यः । परः । अन्यः । दिवः । पृष्ठात् । गुहा । निधी
इति निऽधी । निऽहितौ । ब्राह्मणस्य ।
तौ । रक्षति । तपसा । ब्रह्मऽचारी । तत् । केवलम् । कृणुते । ब्रह्म ।
विद्वान् ॥ १० ॥

दिवः द्युलोकस्य पृष्ठात् उपरिभागाद् अर्वाक् अधः भूलोके अन्यः एको निधिर्वेदात्मकः गुहा गुहायाम् आचार्यहृदयरूपायां निक्षिप्तः । अन्यः अपरो निधिस्तत्प्रतिपाद्यदेवतारूपः परः परस्ताद् उपरि देशे गुहायां ज्ञातुम् अशक्ये स्थाने निक्षिप्तः । ब्राह्मणस्य अधीतवेदस्य संबन्धिनौ तौ निहितौ निक्षिप्तौ निधी ब्रह्मचारी तपसा ब्रह्मचर्यनियमेन रक्षति पालयति । विद्वान् वेदार्थरहस्याभिज्ञः तत् शब्दतदर्थात्मकं निधिद्वयं केवलम् निष्प्रपञ्चं ब्रह्म कृणुते कुरुते । स्वात्मभूते परब्रह्मणि वेदराशेस्तदर्थस्य च अध्यस्तत्वेन अधिष्ठानभूतं ब्रह्मैव ताद्रूप्येण साक्षात्करोतीत्यर्थः ॥

[इति] तृतीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

द्युलोकके उपरिभागसे नीचे भूलोकमें एक वेदात्मक निधि आचार्य की हृदयरूपी गुफामें स्थित है । दूसरी तत्प्रतिपाद्यदेवतारूप निधि ऊपरके देश-जाननेके लिये अशक्य स्थान-गुफामें

निक्षिप्त है। वेदको पढ़ने वाले ब्राह्मणकी धरोहड़रूप उन निधियों की ब्रह्मचारी अपने ब्रह्मचर्य नियमरूप तपसे रक्षा करता है, वेद के रहस्यको जानने वाला विद्वान् शब्द और तदर्थात्मक दोनों निधियोंको केवल–निष्प्रपञ्च–ब्रह्म करता है, अर्थात् स्वात्मभूत परब्रह्ममें वेदराशि और उसके अर्थके अध्यस्त होनेसे अधिष्ठान भूत ब्रह्मका ही तादूप्यसे साक्षात्कार करता है ॥१०॥ (१४)

तृतीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त ॥

द्वितीयसूक्ते प्रथमा ॥

अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी
अन्तरेमे ।
तयोः श्रयन्ते रश्मयोधि दृढास्ताना तिष्ठति तपसा
ब्रह्मचारी ॥ ११ ॥

अर्वाक् । अन्यः । इतः । अन्यः । पृथिव्याः । अग्नी इति ।
सम्ऽएतः । नभसी इति । अन्तरा । इमे इति ।
तयोः । श्रयन्ते । रश्मयः । अधि । दृढाः । तान् । आ । तिष्ठति ।
तपसा । ब्रह्मऽचारी ॥ ११ ॥

इतः अस्याः पृथिव्या अर्वाक् अधःप्रदेशे अन्यः एकोग्निः अनुद्यत्सूर्यात्मको वर्तते । अन्यः अपरः पार्थिवोऽग्निः पृथिव्या उपरि वर्तते । ततः सूर्य उदिते सति इमे नभसी अन्तरा अनयोर्द्यावापृथिव्योर्मध्ये तावग्नी समेतः परस्परं संगतौ भवतः । ❀ “अन्तरान्तरेणयुक्ते” इति द्वितीया ❀ । तयोः सूर्याग्न्योः संबन्धिनो रश्मयः परस्परसंमेलनेन अतिदृढाः श्रयन्ते द्यावापृथिव्यौ आश्र-

यन्ति । "वैश्वानरो यतते सूर्येण" इति हि [ऋ० १.९८.१] निगमः । इत्थम् अग्निद्वयोपेतां तां भूमिं ब्रह्मचारी तपसा तपोमहिम्ना आ तिष्ठति अधितिष्ठति । अग्निरूपेण तस्या अधिदेवता भवतीत्यर्थः ॥

इस पृथ्वीके नीचे उदय न हुआ सूर्यरूप एक अग्नि रहता है, दूसरा पार्थिव अग्नि पृथ्वीके ऊपर रहता है, सूर्यका उदय होने पर द्यावापृथिवीके बीचमें ये दोनों अग्नियें मिल जाती हैं, उन सूर्य और अग्निकी किरणें परस्परके सम्मेलनसे अतिदृढ़ होकर द्यावापृथिवीका आश्रय करती हैं । इस प्रकार दोनों अग्नियोंसे सम्पन्न भूमि पर ब्रह्मचारी अपने तापकी महिमासे अधिष्ठित होता है अर्थात् अग्निरूपसे उसका अधिदेवता होता है ११

द्वितीया ॥

अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोनु भूमौ जभार ।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १२ ॥

अभिऽक्रन्दन् । स्तनयन् । अरुणः । शितिङ्गः । बृहत् । शेपः । अनु । भूमौ । जभार ।
ब्रह्मऽचारी । सिञ्चति । सानौ । रेतः । पृथिव्याम् । तेन । जीवन्ति । प्रऽदिशः । चतस्रः ॥ १२ ॥

अभिक्रन्दन् अभितः शब्दं कुर्वन् । एतदेव विव्रियते । स्तनयन् मेघेषु स्तनितं गर्जितं कुर्वन् श्यतिङ्गः श्येतवर्णं जलपूर्णं मेघं

प्राप्तः एवंभूतो वरुणः बृहत् प्रभूतं शेपः आत्मीयं प्रजननं भूमौ पृथिव्याम् अनु जभार जहार । तेन वरुणसंबन्धिना शेपसा ब्रह्मचारी स्वतपोमहिम्ना सर्वजगदुत्पादकम् उदकलक्षणं वरुणसंबन्धि रेतः पृथिव्यां सानौ उन्नतप्रदेशे सिञ्चति वर्षति । एतेन सर्वजगदुत्पादनार्थम् ऊर्ध्वरेतस्कत्वं ब्रह्मचारिणः सूचितं भवति । वारुणमेव रेतः सिञ्चति न स्वकीयम् इत्यर्थस्य अवगमात् । तेन वृष्टेन उदकलक्षणेन रेतसा प्रदिशश्चतस्रः प्राच्याद्या महादिशो जीवन्ति प्राणान् धारयन्ति । तत्रत्याः प्राणिनः समृद्धा भवन्तीत्यर्थः । यस्मिन् राष्ट्रे ब्रह्मचारी निवसति तत्र कालवृष्टिर्भवतीति तात्पर्यार्थः ॥

चारों ओर शब्द करता हुआ, मेघोंमें गर्जना करता हुआ श्वेतवर्णके जलपूर्ण मेघको प्राप्त हुआ वरुण अपने बृहत् प्रजननको पृथिवीमें डालता है, उस वरुणके प्रजननसे ब्रह्मचारी अपने तपकी महिमाके द्वारा उदकरूप वरुणसम्बंधी रेतको पृथ्वीके उन्नत प्रदेशमें बरसाता है (इससे सब जगत्की उत्पत्तिके लिये ब्रह्मचारीका ऊर्ध्वरेतस्कत्व सूचित किया, क्योंकि—वह वरुणके ही रेतःका सिञ्चन करता है अपने रेतःका नहीं, इस अवगमसे) उस वृष्टिरूप वीर्यसे चारों दिशायें—जीवन धारण करती हैं, अर्थात् उनके प्राणी समृद्ध होते हैं । तात्पर्य यह है, कि—जिस राष्ट्रमें ब्रह्मचारी रहता है उस राष्ट्रमें कालवृष्टि होती है ॥ १२ ॥

तृतीया ॥

अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचार्य१प्सु समिधमा
दधाति ।
तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो
वर्षमापः ॥ १३ ॥

अ॒ग्नौ । सू॑र्ये । च॒न्द्रम॑सि । मा॒त॒रिश्व॑न् । ब्र॒ह्म॒ऽचा॒री । अ॒प्ऽसु ।
स॒म्ऽइध॑म् । आ । द॒धा॒ति॒ ।
तासा॑म् । अ॒र्ची॑ंषि । पृ॑थक् । अ॒भ्रे । च॒र॒न्ति॒ । तासा॑म् । आ॑ज्यम् ।
पु॑रुषः । व॒र्षम् । आ॑पः ॥ १३ ॥

ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यनियमवान् पुरुषः अग्नौ पृथिव्यामवस्थिते अन्तरिक्षगते सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् मातरिश्वनि वायौ अप्सु च समिधम् आ दधाति प्रक्षिपति । अत्र अग्न्यादीनां पूर्वपूर्वस्याभावे उत्तरोत्तरस्मिन् समिदाधानं कर्तव्यम् सर्वथा लोपो न कर्तव्यः तत्र सूर्यादिषु संस्मृत्य तद्रश्मियुक्तप्रदेशे समिदाधानम् । अपां संनिधानात् तदपेक्षया तासाम् इति स्त्रीलिङ्गेन प्रतिनिर्देशः । तासां तेषाम् अग्न्यादीनाम् अर्चींषि दीप्तयः अभ्रे अन्तरिक्षे पृथक् चरन्ति असंकीर्णा वर्तन्ते । यद्वा अभ्रे उदकपूर्णे मेघे धनुराकारेण पृथक् पृथग् वर्तन्ते । तासाम् । पूर्ववत् स्त्रीलिङ्गनिर्देशः । तेषाम् अग्न्यादीनां ब्रह्मचारिणा समिध्यमानानाम् आज्यादिकं कार्यम् । अग्न्यादयो ब्रह्मचारिसमिन्धनेन आज्यादिकम् उत्पादयन्तीत्यर्थः । आज्यम् इत्यनेन गोसमृद्धिरुक्ता । पुरुष इत्यनेन पुत्रादिसमृद्धिः । वर्षम् इति काले वृष्टिप्रादुर्भावः । आप इति वापी कूपतटाकादिसमृद्धिः ॥

ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करने वाला ब्रह्मचारी पुरुष पृथ्वी पर स्थित अग्निमें, अन्तरिक्षमें स्थित सूर्यमें, चन्द्रमामें, वायुमें और जलमें समिधाओंको डालता है । अर्थात् अग्नि आदि पूर्व २ के अभावमें अगले २ में समिधान करना चाहिये सर्वथा लोप नहीं करना चाहिये सूर्य आदिसे उनकी किरणोंसे संयुक्त देश समझना चाहिये) इन अग्नि आदिकी दीप्तियें अन्तरिक्षमें पृथक् २

असंकीर्णरूपसे रहती हैं अथवा उदकपूर्ण मेघमें धनुषाकारसे अलग २ रहती हैं । ब्रह्मचारीसे समिद्ध अग्नि आदिका आज्य (घृत) पुरुष वर्षा और जल कार्य होता है । अर्थात् अग्नि आदि ब्रह्मचारीके समिन्धन करनेसे घृत (वाली गौ) आदिको उत्पन्न करते हैं । यहाँ पुरुषशब्दसे पुत्रादिकी समृद्धि समझनी चाहिये, और वर्षा शब्दसे वर्षाका प्रादुर्भाव और जलशब्दसे बावड़ी कुआ तालाव आदिका ग्रहण करना चाहिये ॥ १३ ॥

चतुर्थी ॥

आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः ।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्व१राभृतम् ॥ १४ ॥

आऽचार्यः । मृत्युः । वरुणः । सोमः । ओषधयः । पयः ।
जीमूताः । आसन् । सत्वानः । तैः । इदम् । स्व१रिति स्वः । आऽभृतम् १४

आचार्य एव मृत्युः मारयिता देवः । अपराधाचरणाद् रुष्टस्तस्य जीवनम् अपहरतीत्यर्थः । तथा स एव आचार्यो वरुणः दुरितस्य वारयिता देवः । परिचर्यापरं ब्रह्मचारिणं पापान्निवारयतीत्यर्थः । तथा आचार्य एव सोमश्चन्द्रमाः तद्वद् आह्लादकरत्वात् । ओषधयः व्रीहियवाद्याः । पयः क्षीरम् । तत् सर्वम् आचार्यात्मकमेव तत्पसादलभ्यत्वात् । यद्वा यो मृत्युर्यमः स नचिकेतसे ब्रह्मविद्याम् उपदिश्य आचार्यः संपन्नः । वरुणोपि भृगवे ताम् उपदिश्य आचार्योभवत् । एवं सोमोपीति । सर्वदेवतात्मक आचार्य इत्यर्थः । तत्र आचार्यरूपस्य वरुणस्य ये सत्वानः सदनशीला अनुचरास्ते जीमूता आसन् जीवनम् उदकं तस्य मूतवद् भर्तारः जलपूर्णा मेघा अभवन् । तैर्जीमूतैः इदं स्वः सुष्ठु अरणशीलम् उदकम् आभृतम् आहृतम् । वृष्ट्यर्थम् आत्मनि धारितम् इत्यर्थः । यद्वा इदं स्वः सुभापं सर्वं जगत् आभृतम् । वृष्ट्या समन्तात् पोषितम् इत्यर्थः ॥

२७-६-३०

आचार्य ही मृत्यु हैं अर्थात् मारक देव हैं, तात्पर्य यह है, कि-अपराधका आचरण करनेसे रुष्ट होकर उसके जीवनका अपहरण कर लेते हैं और वही आचार्य वरुण हैं अर्थात् दुरित को निवारण करने वाले देव हैं अर्थात् परिचर्यामें परायण ब्रह्मचारीको पापसे निवारण करते हैं । तथा आचार्य ही चन्द्रमाकी समान आह्लादक होनेसे सोम हैं, व्रीहि यव आदि ओषधियें और क्षीर आचार्यके प्रसादसे ही प्राप्त होता है— अथवा-जो यम हैं वह नचिकेताके लिये ब्रह्मविद्याका उपदेश देकर आचार्य होगए हैं । इसी प्रकार सोम भी सर्वदेवतात्मक आचार्य हैं, इनमें आचार्यरूप वरुणके जो सदनशील अनुचर हैं वे जलपूर्ण मेघ बन गए हैं, उन मेघोंने इस क्षरणशील जलको वृष्टिके लिये अपनेमें धारण कर रक्खा है वा-उन मेघोंने इस सुप्राप जगत्को वृष्टिसे भली प्रकार पुष्ट किया है ॥ १४ ॥

पञ्चमी ॥

अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान् मित्रो अध्यात्मनः १५

अमा । घृतम् । कृणुते । केवलम् । आऽचार्यः । भूत्वा । वरुणः । यत्ऽयत् । ऐच्छत् । प्रजाऽपतौ ।
तत् । ब्रह्मऽचारी । प्र । अयच्छत् । स्वान् । मित्रः । अधि । आत्मनः १५

वरुणो देवः आचार्यो भूत्वा घृतम् क्षरणशीलम् उदकं केवलम् अमा सह कृणुते कुरुते । उदकमेव अनन्यसाधारणं स्वम् आत्मना सहितं करोतीत्यर्थः । सः वरुणः प्रजापतौ स्वजनके ब्रह्मणि यद्यत्

फलम् ऐच्छत् मित्रो देवो ब्रह्मचारी भूत्वा स्वकीयब्रह्मचर्यमाहात्म्येन स्वात् स्वकीयात् आत्मनः शरीरात् । ❀ अधिः पञ्चम्यर्थानुवादी । ल्यब्लोपे च इयं पञ्चमी ❀ । स्वशरीरम् अनपेक्ष्येत्यर्थः । तत् अपेक्षितं सर्वम् आचार्यभूताय वरुणाय प्रायच्छत् दत्तवान् । ततश्च शिष्येण सता ब्रह्मचारिणा विद्योपदेष्टुर्गुरोः प्रीतिकरम् अपेक्षितं धनं संपाद्य प्रदातव्यम् इत्ययमपि एको नियमो ब्रह्मचारिण उक्तो वेदितव्यः ॥

वरुणदेव आचार्य बन कर जिस क्षरणशील जलको अपने साथ रखते हैं, वही वरुण अपने जनक प्रजापतिसे जिस २ फल को चाहते थे, मित्रदेवने ब्रह्मचारी बनकर अपने ब्रह्मचर्यके माहात्म्य वश अपने शरीरसे अर्थात् अपने शरीरकी भी अपेक्षा न रख आचार्य वरुणको वह दक्षिणा दी थी (इससे यह सिद्ध होता है, कि—शिष्य बनने वाले ब्रह्मचारीको विद्याका उपदेश देने वाले गुरुको प्रसन्न करने वाली सब वस्तुएँ धन पाकर देनी चाहियें, यह भी ब्रह्मचारीका एक मुख्य नियम है) ॥ १५ ॥

षष्ठी ॥

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी ॥ १६ ॥

आऽचार्यः । ब्रह्मऽचारी । ब्रह्मऽचारी । प्रजाऽपतिः ।
प्रजाऽपतिः । वि । राजति । विऽराट् । इन्द्रः । अभवत् । वशी १६

आचार्यः प्रथमं विद्याम् उपदिश्य ब्रह्मचार्यात्मना जातः । स च ब्रह्मचारी तपसा ब्रह्मचर्येण अधिकं महिमानं प्राप्य प्रजापतिः जगत्स्रष्टा अभवत् । स च प्रजापतिः वि राजति विराड् भवति ।

"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै" [श्वे० ६. १८] इति श्रुत्युक्तः स्थूलप्रपञ्चशरीराभिमानी ईश्वरो विराट्। स च वशी स्वतन्त्रः इन्द्रः परमैश्वर्ययुक्तः सर्वजगत्स्रष्टा परमात्मा अभवत्। ततः आचार्यः परंपरया सर्वदेवतात्मक इति तस्य माहात्म्यं केन वर्णयितुं शक्यम् इति भावः ॥

आचार्य पहिले विद्याका उपदेश देकर ब्रह्मचारीके रूपसे प्रकट हुए हैं, वह ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य रूप तपसे बड़ी भारी महिमा को पाकर जगत्स्रष्टा प्रजापति हुए हैं, वह प्रजापति विराट् † होजाते हैं, वह स्वतन्त्र परमैश्वर्य युक्त सर्वजगत्–स्रष्टा परमात्मा हुए हैं। भाव यह है, कि-इस प्रकार आचार्यपरम्परासे सर्वदेवतात्मक होजाता है अत एव ब्रह्मचारीके माहात्म्यका वर्णन करनेकी शक्ति किसमें है ? ॥ १६ ॥

सप्तमी ॥

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ १७ ॥

ब्रह्मऽचर्येण । तपसा । राजा । राष्ट्रम् । वि । रक्षति ।
आऽचार्यः । ब्रह्मऽचर्येण । ब्रह्मऽचारिणम् । इच्छते ॥ १७ ॥

ब्रह्म वेदः तदध्ययनार्थम् आचर्यम् आचरणीयं समिदाधान-

---

† श्वेताश्वतर उपनिषत् ६ । १८ में कहा है, कि-"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।-जो पहिले ब्रह्माकी सृष्टि करता है और ब्रह्माके लिये वेदोंको प्रेरित करता है" वह ब्रह्मचारी इस श्रुतिमें कहा हुआ स्थूलप्रपञ्चशरीराभिमानी ईश्वर विराट् होजाता है ।

भैक्षचर्योर्ध्वरेतस्कत्वादिकं ब्रह्मचारिभिरनुष्ठीयमानं कर्म ब्रह्मचर्यम् । तेन ब्रह्मचर्येण तपसा तत्कृतेन उपवासादिव्रतनियमेन च राजा राष्ट्रं स्वकीयं वि रक्षति विशेषेण पालयति । यस्य राज्ञो जनपदे ब्रह्मचर्येण युक्ताः पुरुषास्तपश्चरन्ति तदीयं राष्ट्रम् अभिवर्धत इत्यर्थः । यद्वा राज्ञः कर्तव्यत्वेन कालविशेषेषु श्रुतिस्मृत्युदितं ब्रह्मचर्यं तपोऽनुतिष्ठन् राजा तेनैव ब्रह्मचर्येण तपसा राष्ट्रं पालयतीत्यर्थः । आचार्योपि ब्रह्मचर्येण नियमेन ब्रह्मचारिणम् शिष्यम् इच्छते आत्मनोभिलष्यति। ब्रह्मचर्यनियमस्थमेव आचार्यं शिष्या उपगच्छन्तीत्यर्थः । ❀ इषु इच्छायाम् । व्यत्ययेन आत्मनेपदम् । "इषुगमियमां छः" इति छत्वम् ❀ ॥

वेदका नाम भी ब्रह्म है उस वेदको पढ़नेके लिये आचरण करने योग्य समिदाधान, भिक्षाचर्या और ऊर्ध्वरेतस्कत्व आदि जो ब्रह्मचारियोंसे अनुष्ठीयमान कर्म है वह ब्रह्मचर्य कहलाता है। उस ब्रह्मचर्य के द्वारा, और उसके निमित्त किये जाने वाले उपवासादि व्रत नियमात्मक तपसे राजा अपने राष्ट्रका विशेषरूपसे पालन करता है, तात्पर्य यह है, कि–जिस राजाके राज्यमें ब्रह्मचर्यसे युक्त पुरुष तप करते हैं उसका राष्ट्र बढ़ता है । अथवा–राजाके लिये कर्तव्यरूपसे निर्दिष्ट समय २ पर श्रुति स्मृतिमें कहे हुए ब्रह्मचर्य तपको करता हुआ राजा उस ब्रह्मचर्य और तपके द्वारा राष्ट्रका पालन करता है, आचार्य भी ब्रह्मचर्यसे ब्रह्मचारीको अपना शिष्य बनाना चाहता है, तात्पर्य यह है, कि–ब्रह्मचर्यके नियममें स्थित आचार्यके पास ही शिष्य जाते हैं ॥१७॥

अष्टमी ॥

ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥१८॥

ब्रह्मऽचर्येण । कन्या । युवानम् । विन्दते । पतिम् ।

अनड्वान् । ब्रह्मऽचर्येण । अश्वः । घासम् । जिगीर्षति ॥१८॥

अत्रापि ब्रह्मचर्यं प्रशस्यते । कन्या अकृतविवाहा स्त्री ब्रह्मचर्यं चरन्ती तेन ब्रह्मचर्येण युवानम् युवत्वगुणोपेतम् उत्कृष्टं पतिं विन्दते लभते॥ किं बहुना पशुजातिरपि ब्रह्मचर्येण स्वाभिलषितं फलं लभत इत्याह अनड्वान् इति । अनड्वान् अनोवहन् पुंगवः ब्रह्मचर्येण ऊर्ध्वरेतस्कत्वादिना धर्मेण अनोवहनादिकं स्वकार्यं निर्वर्तयन् उत्कृष्टं पतिं लभते । तथा अश्वः ब्रह्मचर्येण घासम् भक्षणीयं तृणादिकं जिगीर्षति भक्षितुम् इच्छति ॥

(यहाँ पर भी ब्रह्मचर्य की प्रशंसा करते हैं, कि–) जिसका विवाह नहीं हुआ है ऐसी अकृतविवाहा स्त्री ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई–परपुरुष आदि पर चित्त न डुलाती हुई–ब्रह्मचर्य के द्वारा युवा हुए उत्कृष्ट पतिको पाती है (अधिक क्या पशु जाति भी ब्रह्मचर्य के द्वारा अपने अभिलषित फलको पाती है) अनड्वान् ऊर्ध्वरेतस्कत्व आदि ब्रह्मचर्य से अपने कार्य को पूर्ण करता हुआ उत्कृष्ट पतिको पाता है तथा अश्व भी ब्रह्मचर्य से भक्षणीय घास आदि तृणोंको खाना चाहता है ॥ १८ ॥

नवमी ॥

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व१राभरत् ॥ १९ ॥

ब्रह्मऽचर्येण । तपसा । देवाः । मृत्युम् । अप । अघ्नत ।

इन्द्रः । ह । ब्रह्मऽचर्येण । देवेभ्यः । स्वः । आ । अभरत् १९

ब्रह्मचर्यरूपेण तपसा देवाः अग्न्यादयो मृत्युम् मरणम् अपा-

घ्नत अपहृतवन्तः । अमर्त्याः संपन्ना इत्यर्थः । इन्द्रो ह इन्द्रोपि ब्रह्मचर्येणैव साधनेन देवेभ्यः देवानाम् अर्थे स्वः स्वर्गम् आभरत् आहरत् ॥

ब्रह्मचर्य रूपी तपसे अग्नि आदि देवताओंने मरणको दूर भगा दिया है, इन्द्रने भी ब्रह्मचर्य रूपी साधनसे देवताओंके लिये स्वर्ग को सम्पादित किया है ॥ १९ ॥

दशमी ॥

ओष॑धयो भूतभ॒व्यम॑होरा॒त्रे वन॒स्पति॑ः ।
सं॒व॒त्स॒रः स॒हर्तुभि॒स्ते जा॒ता ब्रह्म॒चारि॑णः ॥ २० ॥

ओष॑धयः । भू॒तऽभ॒व्यम् । अ॒हो॒रा॒त्रे इति॑ । वन॒स्पति॑ः ।
स॒म्ऽव॒त्स॒रः । । स॒ह । ऋ॒तु॑ऽभिः । ते । जा॒ताः । ब्र॒ह्म॒ऽचा॒रि॑णः २०

ओषः पाकः आसु धीयत इति ओषधयो व्रीहियवाद्याः अरण्यजा वीरुधश्च । भूतभव्यम् भूतम् उत्पन्नं चराचरात्मकं भव्यम् उत्पत्स्यमानम् । अहोरात्रे अहश्च रात्रिश्च । ❀ "हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च च्छन्दसि" इति नपुंसकलिङ्गता निपात्यते ❀ । वनस्पतिः वनानां पालयिता देवः । ❀ "पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्" इति सुट् । "उभे वनस्पत्यादिषु युगपत्" इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । संवसन्ति अस्मिन्निति संवत्सरो द्वादशमासात्मकः कालः ऋतुभिः वसन्ताद्यैः षड्भिः सह । ते ओषध्यादयः अनुक्रान्ताः सर्वे ब्रह्मचारिणस्तपोमाहात्म्यात् जाताः उत्पन्नाः ॥

[इति] तृतीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

व्रीहि यव आदि औषधियें और वनकी औषधियें, उत्पन्न हुआ चराचरात्मक जगत् और उत्पन्न होने वाला जगत्, दिन और रात्रि, वनका पालक देव छः ऋतुओं सहित द्वादशमा-

सात्मक सम्वत्सर, ये सब ब्रह्मचारीके तपोमाहात्म्यसे ही प्रकट होते हैं ॥ २० ॥ (१५)

तृतीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त

तृतीयसूक्ते प्रथमा ॥

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये ।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥२१॥

पार्थिवाः । दिव्याः । पशवः । आरण्याः । ग्राम्याः । च । ये ।
अपक्षाः । पक्षिणः । च । ये । ते । जाताः । ब्रह्मऽचारिणः २१

पार्थिवाः पृथिव्याः संबन्धिनो जनाः । ❀ "पृथिव्या ञाञौ" इति "तस्येदम्" अर्थे अञ् प्रत्ययः ❀ । तथा दिव्याः दिवि भवाः । ❀ "द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्" इति शैषिको यत् प्रत्ययः ❀ । आरण्याः अरण्ये भवाः पशवः सिंहशार्दूलहरिणाद्याः । ग्राम्याः गवाश्वमहिषाद्याः । एवंभूता ये पशवः सन्ति तथा अपक्षाः पक्षरहिताः प्राणिनो ये सन्ति पक्षिणः पक्षवन्तश्च ये सन्ति ते सर्वे ब्रह्मचारिणो जाताः ब्रह्मचर्यप्रभावाद् उत्पन्ना इत्यर्थः ॥

पार्थिव प्राणी, द्यौके प्राणी, जंगली सिंह शार्दूल हरिण आदि पशु, गौ घोड़े भैंस आदि ग्रामीण पशु ऐसे पशु तथा अपक्ष प्राणी और पक्ष वाले पशु भी ब्रह्मचारीसे ही—ब्रह्मचर्यके प्रभावसे ही—प्रकट हुए हैं ॥ २१ ॥

द्वितीया ॥

पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥२२॥

पृथक् । सर्वे । प्राजाऽपत्याः । प्राणान् । आत्मऽसु । बिभ्रति ।

तान् । सर्वान् । ब्रह्म । रक्षति । ब्रह्मऽचारिणि । आऽभृतम् २२

प्राजापत्याः प्रजापतिना सृष्टा देवमनुष्याद्याः सर्वे आत्मसु शरीरेषु प्राणान् पृथक् नाना स्वस्वसंबन्धिन एव बिभ्रति धारयन्ति पोषयन्ति वा । ❀ डुभृञ् धारणपोषणयोः । जुहोत्यादित्वात् शपः श्लुः । "अदभ्यस्तात्" इति झस्य अदादेशः । "भृञाम् इत्" इति अभ्यासस्य इत्वम् ❀ । तान् सर्वान् प्राणान् ब्रह्मचारिणि आचार्यमुखाद् आभृतम् आहृतम् अध्ययनेन संपादितं ब्रह्म वेदात्मकं रक्षति पालयति । ब्रह्मचार्यधीतं ब्रह्म सर्वप्राणिरक्षणक्षमम् इत्यर्थः ॥

प्रजापतिके रचे हुए देवता मनुष्य आदि सब अपने शरीरोंमें पृथक् २ स्वसम्बन्धी प्राणोंको धारण करते हैं वा पोषण करते हैं, आचार्यके मुखसे आया हुआ ब्रह्मचारीमें स्थित वेदात्मक ब्रह्म ही उन सब प्राणोंकी रक्षा करता है तात्पर्य यह है, कि-ब्रह्मचारीका पढ़ा हुआ वेद सब प्राणियोंकी रक्षा करनेमें समर्थ है २२

तृतीया ॥

देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन
साकम् ॥ २३ ॥

देवानाम् । एतत् । परिऽसूतम् । अनभिऽआरूढम् । चरति । रोचमानम् ।
तस्मात् । जातम् । ब्राह्मणम् । ब्रह्म । ज्येष्ठम् । देवाः । च । सर्वे ।
अमृतेन । न साकम् ॥ २३ ॥

एतत् सर्वपरोक्षं परब्रह्म देवानां परिषूतम् परिगृहीतम् । आत्म-

तया साक्षात्कृतम् इत्यर्थः । रोचमानम् स्वप्रकाशचिद्रूपतया दीप्यमानम् अनभ्यारूढम् अन्यैरनाक्रान्तं सर्वोत्कर्षेण चरति वर्तते । तस्मात् सकाशाद् ब्राह्मणम् ब्रह्मणः संबन्धि ब्राह्मणस्य वा असाधारणं स्वं ज्येष्ठम् प्रवृद्धतमं प्रशस्यतमं वा ब्रह्म वेदात्मकं जातम् प्रादुर्भूतम् । "अस्य महतो भूतस्य निश्वसितम् एतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोथर्ववेदः" इति श्रुतेः [बृ० आ० २. ४. १०] । देवाः तत्प्रतिपाद्या अग्न्यादयश्च सर्वे अमृतेन स्वोपभोग्येन अमृतत्वप्रापकेन सुधारसेन साकम् सह जाता इत्यर्थः ॥

यह सबसे अपरोक्ष–सबको प्रत्यक्ष—परब्रह्म देवताओंसे परिगृहीत है अर्थात् देवताओंने इसको आत्मत्वसे साक्षात् किया है, यह स्वप्रकाशचिद्रूपतासे दमकता रहता है, इससे बढ़कर कोई नहीं है, उससे ब्राह्मणका असाधारण ज्येष्ठ धन वेदात्मक ब्रह्म प्रकट हुआ है † और वेदप्रतिपाद्य अग्नि आदि देवता भी अमृतत्वप्रापक सुधारसके साथ प्रकट हुए हैं ॥ २३ ॥

चतुर्थी ॥

ब्र॒ह्म॒चा॒री ब्रह्म॒ भ्राज॑द् बिभर्ति॒ तस्मि॑न् दे॒वा अधि॒
विश्वे॑ स॒मोता॑ः ।
प्रा॒णा॒पा॒नौ ज॒नय॒न्नाद् व्यानं॒ वाचं॒ मनो॒ हृद॑यं॒ ब्रह्म॑
मे॒धाम् ॥ २४ ॥

---

† बृहदारण्यक २ । ४ । १० में कहा है, कि–"अस्य महतो भूतस्य निश्वसितम् एतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोथर्ववेदः ।–इस महान् भूतके ये ऋग्वेद सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद श्वासरूप हैं" ॥

ब्र॒ह्म॒ऽचा॒री । ब्रह्म॑ । भ्राज॑त् । बि॒भ॒र्ति॒ । तस्मि॑न् । दे॒वाः । अधि॑ । विश्वे॑ । स॒म्ऽओ॑ताः ।

प्रा॒णा॒पा॒नौ । ज॒नय॑न् । आत् । वि॒ऽआ॒नम् । वाच॑म् । मन॑ः । हृ॑दयम् । ब्रह्म॑ । मे॒धाम् ॥ २४ ॥

ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यवान् पुरुषो भ्राजत् दीप्यमानं ब्रह्म वेदात्मकं बिभर्ति धारयति । तस्मिन् अधि उपरि विश्वे सर्वे देवाः समोताः संबद्धाः । “यावतीर्वै देवतास्ताः सर्वा वेदविदि ब्राह्मणे वसन्ति” इति श्रुतेः [तै० आ० २. १५]। स च सर्वेषां देवानां निवासभूतो ब्रह्मचारी प्राणापानौ सर्वप्राणिसंबन्धिनौ जनयन् उत्पादयन् वर्तते । आत् अनन्तरं व्यानम् । “अथ यः प्राणापानयोः संधिः स व्यानः” इति [छा० १. ३. ३] श्रुत्यन्तरप्रसिद्धं व्यानाख्यं वायुम् वाचम् वागिन्द्रियं परापश्यन्त्यादिरूपां वा शब्दात्मिकां वाचम् मनः सर्वेन्द्रियानुग्राहकम् अन्तःकरणम् हृदयम् तदावासस्थानभूतं हृदयकमलम् ब्रह्म वेदात्मकम् मेधाम् आशुविद्याग्रहणकुशलां बुद्धिम् एतत् सर्वं ब्रह्मचारी जनयन् वर्तते॥

ब्रह्मचर्यवान् ब्रह्मचारी पुरुष दीप्यमान वेदात्मक ब्रह्मको धारण करता है, उस पर सब देवता सम्बद्ध हैं ‡। वह सब देवताओं का निवासभूत ब्रह्मचारी सब प्राणियोंके प्राण और अपानोंको प्रकट करता रहता है । इसके अनन्तरः “यः प्राणपानयोः संधिः स व्यानः—जो प्राण और अपानकी संधि है वह व्यान है” इस छान्दोग्य १ । ३ । ३ की श्रुतिमें प्रसिद्ध व्यान नामक वायुको,

---

‡ तैत्तिरीय आरण्यक २ । १५ में कहा है, कि—“यावतीर्वै देवतास्ताः सर्वा वेदविदि ब्राह्मणे निवसन्ति ।–जितने देवता हैं वे सब वेदवेत्ता ब्राह्मणमें निवास करते हैं ।।”

शब्दात्मिका वा परापश्यन्तीरूपा वाणीको, सर्वेन्द्रियोंके अनुग्राहक अन्तःकरणको उसके आवासस्थानरूप हृदयकमलको, वेदात्मक ब्रह्मको, शीघ्रतासे विद्याको ग्रहण कर लेने वाली बुद्धिको उत्पन्न करता हुआ ब्रह्मचारी रहता है ॥ २४ ॥

चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥ २५ ॥

चक्षुः । श्रोत्रम् । यशः । अस्मासु । धेहि । अन्नम् । रेतः । लोहितम् । उदरम् ॥ २५ ॥

तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे ।
स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥ २६ ॥

तानि । कल्पत् । ब्रह्मऽचारी । सलिलस्य । पृष्ठे । तपः । अतिष्ठत् । तप्यमानः । समुद्रे ।

सः । स्नातः । बभ्रुः । पिङ्गलः । पृथिव्याम् । बहु । रोचते २६

पञ्चमी ॥ हे ब्रह्मन् ब्रह्मचार्यात्मक अस्मासु स्तोतृषु चक्षुः रूपग्राहकम् इन्द्रियं श्रोत्रम् शब्दग्राहकम् । प्रधान्याद्ध उपलक्षणत्वेन एतद् इन्द्रियद्वयम् उक्तम् । चक्षुःश्रोत्रादीनि सर्वाणि इन्द्रियाणि यशः कीर्तिं च अस्मासु धेहि धारय । आन्ध्यबाधिर्यादिकं कदाचिदपि अस्माकं मा भूद् इत्यर्थः । तथा भोज्यम् अन्नम् पुत्रादिकारणं रेतः लोहितम् शरीरगतम् असृक् उदरम् उदरोपलक्षितं समस्तशरीरम् । तानि एतानि अन्नादीनि ब्रह्मचारी कल्पत् कल्पयन् सलि-

लस्य पृष्ठे उदकस्य मध्ये तपस्तप्यमानः समुद्रे अतिष्ठत् । वर्तत इत्यर्थः । स तपस्वी ब्रह्मचारी अनिशं स्नातः स्नानेन पवित्रीकृतः बभ्रुः बभ्रुवर्णः । एतदेव विवियते पिङ्गल इति । पिङ्गलवर्णः सन् पृथिव्याम् भूम्यां बहु अधिकं रोचते दीप्यते ॥

[इति] तृतीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे ब्रह्मचर्यात्मक ब्रह्मन् ! आप हम स्तोताओंमें रूपग्राहक चक्षु इन्द्रियोंको, शब्दग्राहक श्रोत्रेन्द्रियको (अन्य सब इन्द्रियोंको) यश तथा कीर्तिको भी हममें स्थापित करिये, तात्पर्य यह है, कि—अंधापन बहिरापन आदि कभी न हो । अन्न, पुत्र आदिके कारण वीर्य, शरीरगत रक्त और उदर सबकी कल्पना करता हुआ ब्रह्मचारी, जलमें तप करता हुआ रहता है वह तपस्वी ब्रह्मचारी सर्वदा स्नानसे पवित्र रहता है बभ्रु और पिंगलवर्णका होकर पृथ्वीमें बड़ा दमकता है॥२५॥२६॥ (१९)

तृतीय अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (४८५)॥

"अग्निं ब्रूमः" इत्यादि सूक्तद्वयम् अर्थसूक्तम् । तस्य बृहद्गणे लघुगणे च पाठात् शान्त्युदकाभिमन्त्रणादौ विनियोगः ।।

अस्यार्थसूक्तस्य "मुञ्चन्तु मा [११. ८. ७] भवाशर्वाविदम् [११. ८. ९] या देवीः पञ्च [११. ८. २२] यन्मातली रथक्रीतम्" [११. ८. २३] इत्येताश्चतस्र ऋचो वर्जयित्वा सप्तप्रतीके अंहोलिङ्गगणे पाठात् "अनुक्तान्यप्रतिषिद्धानि भैषज्यानाम् अंहोलिङ्गाभिः" [कौ० ४. ८] इत्यादिषु सर्वभैषज्यादिकर्मसु गणप्रयुक्तो विनियोगोनुसंधेयः ॥

तथा "हस्तिरथदानानुक्रमं वक्ष्ये" इति प्रक्रम्य उक्तं परिशिष्टे।

तस्मात् सर्वेषु दानेष्वनुक्तविधिकेषु च ।
अग्निं ब्रूम इति सूक्तेनाज्यतन्त्रेण होमयेत् । इति [प०१४.१]॥

"अग्निं ब्रूमः" आदि दो सूक्त अर्थसूक्त कहलाते हैं इसका

बृहद्गण और लघुगणमें पाठ होनेसे शान्त्युदकाभिमन्त्रणादिमें विनियोग होता है।

"मुञ्चन्तु मा" (११ । ८ । ७) "भवाशर्वाविदम्" (११ । ८ । ६) "या देवीः पञ्च" (११ । ८ । २२) और "यन्मातली रथक्रीतम्" (११ । ८।२३) इन ऋचाओंको छोड़कर सप्तप्रतीक-अंहोलिंगगणमें पाठ होनेसे "अनुक्तान्यप्रतिषिद्धानि भैषज्यानां अंहोलिङ्गाभिः" (कौशिकसूत्र ४ । ८) इत्यादिके सर्वभैषज्यादि में गणप्रयुक्त विनियोग देखना चाहिये।

तथा "हस्तिरथदानानुक्रमं वक्ष्ये" का आरंभ करके अथर्व-परिशिष्टमें कहा है, कि–"तस्मात् सर्वेषु दानेषु अनुक्तविधिकेषु च। अग्निं ब्रूम इति सूक्तेनाज्यतन्त्रेण होमयेत् ॥ सब दानोंमें और जिनकी विधि नहीं कही है उनमें "अग्निं ब्रूमः" इस आज्य-तन्त्र वाले सूक्तसे होम करे।" (अथर्वपरिशिष्ट १४ । १) ॥

तत्र प्रथमा ॥

अ॒ग्निं ब्रू॑मो॒ वन॒स्पती॒नोष॑धीरु॒त वी॒रुधः॑ ।
इन्द्रं॒ बृह॒स्पतिं॒ सूर्यं॒ ते नो॑ मुञ्च॒न्त्वंह॑सः ॥ १ ॥

अ॒ग्निम् । ब्रू॒मः॒ । वन॒स्पती॑न् । ओष॑धीः । उ॒त । वी॒रुधः॑ ।
इन्द्र॑म् । बृह॒स्पति॑म् । सूर्य॑म् । ते । नः॒ । मु॒ञ्च॒न्तु॒ । अंह॑सः ॥ १ ॥

अग्निः अग्रणीः सर्वेषां देवानाम् आदिभूतो देवः। "अग्निरग्रे प्रथमो देवतानाम्" इति [तै० ब्रा० २. ४. ३. ३] श्रुतेः। तादृशम् अग्निं ब्रूमः स्तुमः। यद्वा इष्टफलं याचामहे। तथा वनस्पतीन् पृथिव्यधिदैवतेन तेनाग्निना संवर्धितान् महावृक्षान् ओषधीः व्रीहियवाद्याः उत अपि च वीरुधः आरण्या लतारूपाः ताः सर्वा ब्रूमः स्तुमः। तथा इन्द्रम् द्युलोकाधिपतिं बृहस्पतिम् बृहतां

देवानां पतिं सूर्यम् सर्वस्य प्रेरकम् आदित्यं च ब्रूमः स्तुमः । ते सर्वे नः अस्मान् अंहसः पापात् मुञ्चन्तु ॥

हम सब देवताओंके आदिभूत ‡ अग्रणी अग्निदेवकी स्तुति करते हैं, वा उनसे इष्टफलकी याचना करते हैं तथा पृथिवीके अधिदेवता अग्निसे सम्वर्द्धित महावृक्षोंकी, व्रीहि यव आदि औषधियोंकी और वनकी लताओंकी हम स्तुति करते हैं—वा उनसे इष्टफलकी याचना करते हैं, तथा द्युलोकके अधिपति इन्द्रदेवकी, बड़े २ देवताओंके पालक बृहस्पतिकी और सर्वप्रेरक सूर्यदेवकी भी हम स्तुति करते हैं ये सब हमको पापसे मुक्त करें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम् ।
अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २ ॥

ब्रूमः । राजानम् । वरुणम् । मित्रम् । विष्णुम् । अथो इति । भगम् ।

अंशम् । विवस्वन्तम् । ब्रूमः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ।२।

अत्र वरुणादयः सूर्यमूर्तयः स्तूयन्ते । राजानम् राजमानम् ईशितारं वा वरुणं देवं ब्रूमः स्तुमः । मित्रम् सर्वस्य मित्रभूतं देवं विष्णुम् व्यापनशीलं देवम् अथो अपि च भगम् भजनीयं देवम् अंशम् एतत्संज्ञं देवं विवस्वन्तम् विवस्वत्संज्ञं देवं ब्रूमः स्तुमः । ते नो मुञ्चन्त्वंहस इति समानम् ॥ एते च आदित्यास्तैत्तिरीयेऽनुक्रम्यन्ते । "मित्रश्च वरुणश्च । धाता चार्यमा च । अंशश्च भगश्च ।

---

‡ तैत्तिरीयब्राह्मण २ । ४ । ३ । ३ में कहा है, कि—"अग्निरग्रे प्रथमो देवतानाम्" ॥

इन्द्रश्च विवस्वांश्चेत्येते" [तै० आ० १. १३. ३]। आचार्यैस्तु द्वादशादित्याः परिगणिताः।

धात्रर्यममित्राख्या वरुणांशभगा विवस्वदिन्द्रयुताः।
पूषाह्वयपर्जन्यौ त्वष्टा विष्णुश्च भानवः प्रोक्ताः। इति ॥

(इस ऋचामें वरुण आदि सूर्यमूर्तियोंकी स्तुति की जाती है कि-) राजमान ईश्वर वरुणदेवकी हम स्तुति करते हैं, सबके मित्रभूत मित्रदेवकी, व्यापनशील विष्णुकी, भजनीय देवता भगकी अंशदेवकी और विवस्वान् नामक देवकी हम स्तुति करते हैं † वे हमको पापसे मुक्त करें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम्।
त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ३ ॥

ब्रूमः। देवम्। सवितारम्। धातारम्। उत। पूषणम्।
त्वष्टारम्। अग्रियम्। ब्रूमः। ते। नः। मुञ्चन्तु। अंहसः ॥३॥

देवम् दानादिगुणयुक्तं सवितारम् सर्वस्य प्रेरकं ब्रूमः स्तुमः। तथा धातारम्। उतशब्दः अप्यर्थे। पूषणमपि स्तुमः। अग्रियम् अग्रे भवः अग्रियः। प्रथमगण्य इत्यर्थः। ❀ "अग्राद्व यत्" "घच्छौ च" इति घच् प्रत्ययः। चित्त्वाद्व अन्तोदात्तत्वम् ❀। तादृशं त्वष्टारं ब्रूमः स्तुमः ॥ गतम् अन्यत् ॥

---

† तैत्तिरीय आरण्यक १। १३। ३ में आदित्योंका वर्णन इस प्रकार किया है, कि-"मित्रश्च वरुणश्च। धाता चार्यमा च। अंशश्च भगश्च। इन्द्रश्च विवस्वांश्चेत्येते" ॥ और आचार्योंने बारह आदित्योंको कहा है, कि-"धाताऽर्यममित्राख्या वरुणांश भगा विवस्वदिन्द्रयुताः। पूषाह्वयपर्जन्यौ त्वष्टा विष्णुश्च भानवः प्रोक्ताः"

हम दानादिगुण युक्त सर्वप्रेरक सूर्यदेवताकी स्तुति करते हैं, धाता और पूषा देवताकी भी स्तुति करते हैं, अग्रगण्य त्वष्टा देवताकी भी स्तुति करते हैं, ये हमको पापसे मुक्त करें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।
अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ४ ॥

गन्धर्वऽअप्सरसः । ब्रूमः । अश्विना । ब्रह्मणः । पतिम् ।
अर्यमा । नाम । यः । देवः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥४॥

गन्धर्वाश्च अप्सरसश्च गन्धर्वाप्सरसः । “अग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोप्सरसः” [तै० सं० ३. ४. ७. १] इत्यादिमन्त्रवर्णप्रसिद्धान् गन्धर्वाप्सरोरूपान् देवगणान् ब्रूमः स्तुमः । तथा अश्विना अश्विनौ स्तुमः । ब्रह्मणो वेदराशेः पतिं स्वामिनम् तथा अर्यमा नाम अर्यमेति प्रसिद्धो यो देवोस्ति तमपि स्तुमः । ते सर्वे नः अस्मान् अंहसः मुञ्चन्त्विति शेषं समानम् ॥

हम गन्धर्व और अप्सराओंकी स्तुति करते हैं अर्थात् “अग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसः ।–अग्नि गंधर्व है और औषधियें उसकी अप्सरायें हैं” इस तैत्तिरीयसंहिता ३ । ४ । ७ । १ मन्त्रमें प्रसिद्ध गन्धर्व और अप्सरारूप देवताओंकी हम स्तुति करते हैं । तथा अश्विनीकुमारोंकी हम स्तुति करते हैं, वेदोंके पति ब्रह्माकी और अर्यमा नामक देवताकी भी हम स्तुति करते हैं, वे सब देवता हमको पापसे मुक्त करें ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा ।

६३ २८-६-३०

विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ५ ॥

अहोरात्रे इति । इदम् । ब्रूमः । सूर्याचन्द्रमसौ । उभा ।

विश्वान् । आदित्यान् । ब्रूमः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ५

अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रे ते उद्दिश्य इदं स्तुतिवाक्यं ब्रूमः । सूर्यश्च चन्द्रमाश्च सूर्याचन्द्रमसौ अहोरात्रयोरधिष्ठातृदेवौ उभा उभौ स्तुमः । विश्वान् सर्वान् आदित्यान् अदितेः पुत्रान् ब्रूमः स्तुमः ॥ गतम् अन्यत् ॥

दिन और रात्रिको लक्ष्यमें रख कर हम इस स्तुतिवाक्यको कहते हैं, दिन और रात्रिके अधिष्ठात्री देवता सूर्य और चन्द्रमा की हम स्तुति करते हैं अदितिके सब पुत्रोंकी भी हम स्तुति करते हैं वे सब हमको पापसे मुक्त करें ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः ।
आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ६ ॥

वातम् । ब्रूमः । पर्जन्यम् । अन्तरिक्षम् । अथो इति । दिशः ।

आशाः । च । सर्वाः । ब्रूमः । ते । न । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥ ६ ॥

वातम् वायुं ब्रूमः स्तुमः । पर्जन्यम् वृष्टिप्रदं देवम् अन्तरिक्षम् आकाशम् अथो अपि च दिशः दिग्देवता आशाः विदिशश्च सर्वास्ता ब्रूमः स्तुमः ॥

हम वायुदेवकी स्तुति करते हैं, वृष्टिप्रद पर्जन्यदेवकी स्तुति करते हैं आकाशकी दिग्देवता और विदिशाके देवताओंकी भी स्तुति करते हैं, वे सब हमको पापसे मुक्त करें ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादहोरात्रे अथो उषाः ।
सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ॥ ७ ॥

मुञ्चन्तु । मा । शपथ्यात् । अहोरात्रे इति । अथो इति । उषाः ।
सोमः । मा । देवः । मुञ्चन्तु । यम् । आहुः । चन्द्रमाः । इति ७

शपथ्यात् शपथप्रभवात् पापात् मा मां मुञ्चन्तु अहोरात्रे अहरभिमानिदेवता रात्र्यभिमानिदेवता च अथो अपि च उषाः अहोरात्रयोः संधौ वर्तमाना उषःकालाभिमानिनी देवता । तासां बहुत्वात् मुञ्चन्तु इति बहुवचनम् । तथा सोमो देवः मा मां तस्मात् पापात् मुञ्चतु । तं विशिनष्टि । यं सोम चन्द्रमा इति आहुः अभिज्ञाः कथयन्ति । स सोमोत्र मोचक इत्यर्थः ॥

शपथसे होने वाले पापसे दिन और रात्रिके अभिमानी देवता मुझको मुक्त करें, दिन और रात्रिकी संधिमें वर्तमान उषःकालके अभिमानी देवता मुझको शपथजनित पापसे मुक्त करें। विद्वान् पुरुष जिन सोमको चन्द्रमा कहते हैं वह सोम मुझको शपथजनित पापसे मुक्त करें ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः ।
शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ८ ॥

पार्थिवाः । दिव्याः । पशवः । आरण्याः । उत । ये । मृगाः ।
शकुन्तान् । पक्षिणः । ब्रूमः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ।८।

पार्थिवाः इत्यादि व्याख्यातम् [११. ७. २१] । हरिण-

शार्दूलसिंहाद्या मृगाः । तान् पार्थिवादीन् स्तुम इति शेषः । शकुन्तान् शकुनभूतान् पक्षिणः पिङ्गलादीन् ब्रूमः स्तुमः ॥

पृथिवीके जन, द्यौके प्राणी, वनके सिंह शार्दूल आदि पशु, ग्रामके गौ भैंस आदि पशु हैं उनकी और शकुनभूत पिंगल आदि पक्षियोंकी हम स्तुति करते हैं वे हमको पापसे मुक्त करें ॥८॥

नवमी ॥

भ॒वा॒श॒र्वावि॒दं ब्रू॑मो रु॒द्रं पशु॒पति॑श्च॒ यः ।
इषूर्या॑ ए॑षां संवि॒द्म ता नः सन्तु॒ सदा॑ शि॒वाः ॥९॥

भ॒वा॒श॒र्वौ॑ । इ॒दम् । ब्रू॒मः । रु॒द्रम् । प॒शु॒ऽपतिः । च॒ । यः ।
इ॑षूः । याः । ए॒षा॒म् । स॒म्ऽवि॒द्म । ताः । न॒ः । स॒न्तु॒ । सदा॑ ।
शि॒वाः ॥ ९ ॥

भवश्च शर्वश्च भवाशर्वौ । तावुद्दिश्य इदं स्तुतिवाक्यं ब्रूमः वदामः । तथा रुद्रं स्तुमः । यश्च पशुपतिर्देवस्तमपि स्तुमः । एते च देवाः "भवाशर्वौ मृडतम्" [११. २] इत्यस्मिन् सूक्ते प्रपञ्चिताः । एषां देवानां या इषूः शरान् संविद्मः संजानीमः ता नः अस्माकं सदा सर्वदा शिवाः सुखहेतवः सन्तु भवन्तु ॥

भव और शर्व देवताओंको अभिलक्षित करके हम इस वचन को कहते हैं, और रुद्र तथा पशुपति देवताकी भी हम स्तुति करते हैं, इन देवताओंके जिन बाणोंको हम जानते हैं, वे हमारे लिये सुखके हेतु होवें ॥ ९ ॥

दशमी ॥

दिवं॑ ब्रू॒मो॒ नक्ष॑त्राणि॒ भूमिं॑ य॒क्षाणि॒ पर्व॑तान् ।
स॒मु॒द्रा न॒द्यो॑ वेश॒न्तास्ते नो॑ मुञ्च॒न्त्वंहसः ॥ १० ॥

दिवम् । ब्रूमः । नक्षत्राणि । भूमिम् । यक्षाणि । पर्वतान् ।
समुद्राः । नद्यः । वेशन्ताः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥१०॥

दिवम् द्योतमानां द्यां ब्रूमः स्तुमः । तत्राश्रितानि नक्षत्राणि पुण्यकृतां धामानि । “सुकृतां वा एतानि ज्योतींषि यन्नक्षत्राणि” इति श्रुतेः [तै० सं ५. ४. १. ३] । तानि स्तुमः । तथा भूमिं स्तुमः । यक्षाणि पूज्यानि तत्रत्यानि पुण्यक्षेत्राणि स्तुमः । तथा पर्वतान् हिमवत्प्रमुखान् महागिरीन् स्तुमः । समुद्राः सप्तसंख्याका भूम्याश्रिताः प्रसिद्धाः । नद्यश्च गङ्गाद्याः । वेशन्ताः तदपेक्षया अल्पानि अन्यानि सरांसि । तान् सर्वान् स्तुमः ॥

[इति] तृतीयेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

हम द्योतमान द्यौकी स्तुति करते हैं और उसमें आश्रित पुण्यात्माओंके स्थानरूप † नक्षत्रोंकी स्तुति करते हैं, भूमिकी स्तुति करते हैं और भूमिमें पूज्य पुण्यक्षेत्रोंकी स्तुति करते हैं, हिमाचल आदि महापर्वतोंकी स्तुति करते हैं, सात समुद्रोंकी, गंगा आदि नदियोंकी उनकी अपेक्षा अल्प जल वाले सरोवर आदिकी स्तुति करते हैं वे हमको पापसे मुक्त करें १० (१७)

तृतीय अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त ॥

“सप्तऋषीन् वा इदं ब्रूमः” इति सूक्तस्य पूर्ववद् विनियोगः ।

श्रौतदर्शपूर्णमासयोः प्राशित्रभक्षणानन्तरम् “यन्मातली रथक्रीतम्” इत्यनया ब्रह्मा अद्भिर्मार्जयेत् । तद् उक्तं वैताने । “प्राशित्रं यवमात्रम् अधस्ताद् उपरिष्टाद् वाभिघारितम्” इत्युपक्रम्य “मातल्याद्भिर्मार्जयित्वा प्राणान् संस्पृशते” इति [वै० १. ३] ॥

---

† तैत्तिरीयसंहिता ५ । ४ । १ । ३ में कहा है, कि—“सुकृतं वा एतानि ज्योतींषि यन्नक्षत्राणि ।—जो नक्षत्र हैं ये पुण्यात्माओं के धाम हैं” ॥

"सप्त ऋषीन् वा इदं ब्रूमः" इस सूक्तका पहिलेकी समान विनियोग है ।

श्रौत दर्श पूर्णमासके प्राशित्रभक्षणके अनन्तर "यन्मातली रथक्रीतम्" ऋचासे ब्रह्मा जलसे मार्जन करे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"मातल्याद्भिर्मार्जयित्वा प्राणान् संस्पृशते" (वैतानसूत्र १ । ३) ॥

पञ्चमसूक्ते प्रथमा ॥

स॒प्त॒र्षीन् वा इ॒दं ब्रू॒मो॒पो दे॒वीः प्र॒जाप॑तिम् ।
पि॒तॄन् य॒मश्रे॑ष्ठान् ब्रू॒मस्ते नो॑ मु॒ञ्चन्त्वंह॑सः ॥ ११ ॥

स॒प्त॒ऽऋ॒षीन् । वै । इ॒दम् । ब्रू॒मः॒ । अ॒पः । दे॒वीः । प्र॒जाऽप॑तिम् ।
पि॒तॄन् । य॒मऽश्रे॑ष्ठान् । ब्रू॒मः॒ । ते॒ । नः॒ । मु॒ञ्च॒न्तु॒ । अं॒ह॑सः ॥११॥

सप्तऋषीन् उद्दिश्य खलु इदं स्तुतिवचनं ब्रूमः । अथ वा तान् इदं फलं याचामहे । तथा अपो देवीः अब्देवताः प्रथमसृष्टाः स्तुमः । प्रजापतिम् तासां स्रष्टारं स्तुमः । तथा यमश्रेष्ठान् यमः श्रेष्ठो मुख्योधिपतिर्येषां तान् पितॄन् बर्हिषदग्निष्वात्तादीन् ब्रूमः स्तुमः ॥

हम सप्तर्षियोंके निमित्त इसको अर्थात् स्तुति वचनको कहते हैं वा सप्तर्षियोंसे इसकी अर्थात् फलकी याचना करते हैं तथा जलदेवताओंकी स्तुति करते हैं और उनके स्रष्टा प्रजापतिकी स्तुति करते हैं और जिनमें यम श्रेष्ठ हैं उन बर्हिषद अग्निष्वात्ता आदि पितरोंकी स्तुति करते हैं वे हमको पापसे मुक्त करें ॥ ११ ॥

द्वितीया ॥

ये दे॒वा दि॑वि॒षदो॑ अ॒न्तरि॑क्ष॒सद॑श्च॒ ये ।
पृ॒थि॒व्यां श॒क्रा ये श्रि॒तास्ते नो॑ मु॒ञ्चन्त्वंह॑सः ॥१२॥

ये । देवाः । दिविऽसदः । अन्तरिक्षऽसदः । च । ये ।
पृथिव्याम् । शक्राः । ये । श्रिताः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥

ये दिविसदः द्युलोके सीदन्तः उपविशन्तो देवाः । ❀ षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु । "सत्सूद्विष०" इत्यादिना क्विप् ❀ । तथा ये च अन्तरिक्षसदः अन्तरिक्षे उपविष्टाः तथा पृथिव्याम् भूमौ शक्राः शक्ता देवा ये श्रिताः आश्रिताः ॥ अन्यद् गतम् ॥

जो द्युलोकमें रहने वाले देवता हैं, अन्तरिक्षमें रहने वाले जो देवता हैं और पृथिवीमें जो समर्थ देवता हैं वे हमको पापसे मुक्त करें ॥ १२ ॥

तृतीया ॥

आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः ।
अङ्गिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १३ ॥

आदित्याः । रुद्राः । वसवः । दिवि । देवाः । अथर्वाणः ।
अङ्गिरसः । मनीषिणः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥ १३ ॥

आदित्याः अदितेः पुत्रा द्वादशसंख्याकाः । रुद्राः एकादश । वसवः अष्टौ । एते च दिवि वर्तमाना गणत्रयात्मका देवाः । विंशतिकाण्डात्मकस्यास्य वेदस्य द्रष्टारो महर्षयः अथर्वाणस्तेपि तत्संख्याकाः । अङ्गिरसोपि अस्य वेदस्य द्रष्टारस्तावन्तः । मनीषिणः मनस ईषिणः सर्वज्ञाः ते सर्वे अस्माभिः स्तुताः नः अस्मान् अंहसः पापात् मुञ्चन्तु ॥

अदितिके पुत्र बारह आदित्य ग्यारह रुद्र, आठ वसु ये गणत्रयरूपसे द्यौमें वर्तमान देवता बीस काण्ड वाले अथर्ववेदके द्रष्टा

महर्षि अथर्वा, आंगिरस, और मनीषी हमसे स्तुत होकर हमको पापसे मुक्त करें ॥ १३ ॥

चतुर्थी ॥

यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा ।
यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १४ ॥

यज्ञम् । ब्रूमः । यजमानम् । ऋचः । सामानि । भेषजा ।
यजूंषि । होत्राः । ब्रूमः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥ १४ ॥

यज्ञम् अग्निष्टोमादिकं ब्रूमः स्तुमः । तथा यजमानम् तत्फलभाजं स्तुमः । ऋचः तस्मिन् यज्ञे याज्यादिरूपेण विनियुक्ताः पादबद्धा मन्त्राः । तथा सामानि फलवद्यज्ञसाधनस्तोत्रनिर्वर्तकानि प्रगीतमन्त्रात्मकानि रथन्तरबृहद्वैरूपादीनि । भेषजा यानि च भेषजानि शान्तिकराणि वामदेव्यादीनि। यजूंषि तस्मन् यज्ञे आध्वर्यवकर्मसु करणतया विनियुक्तानि क्रियमाणानुवादीनि वा प्रश्लिष्टपठितानि । होत्राः । होता मैत्रावरुणो ब्राह्मणाच्छंसी पोता नेष्टा अच्छावाक आग्नीध्र इति तस्मिन् सोमयागे सप्त वषट्कर्तारः तेषां क्रिया होत्राः । एतान् ऋक्सामादीन् यज्ञावयवान् ब्रूमः स्तुमः ॥

हम अग्निष्टोम आदिक यज्ञोंकी स्तुति करते हैं और उनके फलको पाने वाले यजमानकी प्रशंसा करते हैं, और उन यज्ञोंमें याज्यादिरूपसे विनियुक्त पादबद्ध मन्त्रों (ऋचाओं) की स्तुति करते हैं, तथा फलप्रद यज्ञके साधन स्तोत्रोंको सम्पन्न करने वाले प्रगीत, रथन्तर, बृहत्, वैरूप आदि सामोंकी स्तुति करते हैं, और शान्तिकर वामदेव्य ओषधियोंकी हम स्तुति करते हैं, यज्ञमें अध्वर्युके द्वारा प्रयुक्त अनुवादादिरूप यजुओंकी हम प्रशंसा करते हैं । होता मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी, पोता, नेष्टा, अच्छावाक, आग्नीध्र

ये सोमयागके जो सात वषट्कर्ता हैं इनकी क्रियाएँ होत्र कहलाती हैं, उन होत्रोंकी हम स्तुति करते हैं वे हमको पापसे मुक्त करें १४

पञ्चमी ॥

पञ्च॑ रा॒ज्यानि॑ वी॒रुधा॒ं सोम॑श्रेष्ठानि ब्रूमः ।
द॒र्भो भ॒ङ्गो यव॒ः सह॒स्ते नो॑ मुञ्चन्त्व॒ंह॑सः ॥ १५ ॥

पञ्च॑ । रा॒ज्यानि॑ । वी॒रुधा॑म् । सोम॑ऽश्रेष्ठानि । ब्रू॒मः ।
द॒र्भः । भ॒ङ्गः॑ । यवः॑ । सहः॑ । ते । न॒ः । मु॒ञ्च॒न्तु॒ । अंह॑सः १५

वीरुधाम् विरोहणशीलानाम् ओषधीनां पञ्चसंख्याकानि राज्यानि राज्ञा भिषजा विनियुज्यमानानि पत्त्रकाण्डपुष्पफलमूलात्मकानि सोमश्रेष्ठानि । सोमो ह्यासां राजा । अतः स एव श्रेष्ठः प्रशस्यतमो येषां तथाविधानि वीरुधां राज्यानि ब्रूमः स्तुमः । तथा दर्भः कुशमयः प्रसिद्धः । भङ्गः शणः । यवः ओषधिविशेषः प्रसिद्धः । सहः कश्चिद् ओषधिविशेषः । एतेपि अस्माभिः स्तुताः पापाद् मुञ्चन्तु ॥ यद्वा वीरुधाम् ओषधीनां मध्ये पञ्चसंख्याकानि राज्यानि राज्ञः सोमस्य कर्माणि क्रियाविशेषनिष्पन्नानि । भेषजानीत्यर्थः । तानि च सोमश्रेष्ठानि सोमो लतारूपेण उत्पन्नः श्रेष्ठः प्रशस्यतमः येषां तानि । एतेन सोमलतात्मकम् एकं राज्यम् इत्युक्तं भवति । दर्भादीनि च चत्वारि एवं पञ्च राज्यानि स्तुम इति ॥

विरोहणशील ओषधियोंके पाँच राज्य हैं अर्थात् भिषगात्मक राजासे विनियुज्मान पत्र काण्ड पुष्प फल मूलात्मक पाँच राज्य हैं, इन लताओंमें सोम श्रेष्ठ है, ऐसे लताओंके राज्यकी हम स्तुति करते हैं, दर्भ (कुशा , भङ्ग (सन) यव और सह नामक ओषधि ये सब भी हमसे स्तुति पाकर हमको पापसे मुक्त करदें ॥

६४ २९-९-३०

अथवा-औषधियोंमें पाँच राज्य हैं अर्थात् राजा सोमकी क्रियाओंसे तयार होती हैं, इनमें सोम श्रेष्ठ होता है। इनमें सोमलतात्मक एक राज्य होता है और दर्भ चार राज्य हैं अत एव हम इन पाँचों राज्योंकी स्तुति करते हैं ये हमको पापसे मुक्त करें॥

षष्ठी ॥

अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
मृत्यूनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १६ ॥

अरायान् । ब्रूमः । रक्षांसि । सर्पान् । पुण्यऽजनान् । पितॄन् ।
मृत्यून् । एकऽशतम् । ब्रूमः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः १६

अरायान् दानप्रतिबन्धकान् हिंसकान् ब्रूमः स्तुमः । यद्वा अरायाः आर्तिकरा रक्षोवद् बाधकाः पिशाचविशेषाः । तान् ब्रूमः स्तुमः । तथा रक्षांसि । ❀ रक्षो रक्षितव्यम् अस्माद् इति यास्कः [नि० ४. १८] ❀ । राक्षसान् । सर्पान् पन्नगान् । पुण्यजनान् यातुधानान् । पितॄन् पूर्वपुरुषान् पितृलोकं गतान् । मृत्यून् मारयितॄन् देवान् एकशतम् एकोत्तरशतसंख्याकान् । "शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्यः । आत्मैकशतम्" [तै० ब्रा० १. ७. ६. ४] श्रुतेर्मर्त्यः पुरुषः एकशतप्रकारः । ततो मारयितुर्मृत्योरपि तावत्प्रकारत्वं युज्यत एव । तथा च अन्यत्रापि मन्त्रवर्णो दृश्यते । "अपास्य योसिनात् पाशान् मृत्यून् एकशतं च" इति । तान् सर्वान् ब्रूमः स्तुमः ॥

हम दानप्रतिबन्धक हिंसकोंकी स्तुति करते हैं अथवा पीड़ा देने वाले राक्षसोंकी समान बाधक पिशाचोंकी स्तुति करते हैं और जिनसे रक्षा करनी चाहिये उन राक्षसोंकी स्तुति करते हैं, सर्पों

की, यातुधानोंकी, पितृलोकमें गए हुए पूर्वपुरुष पितरोंकी स्तुति करते हैं, एकसौ एक मृत्युओं—मारक देवताओंकी स्तुति करते हैं†॥

सप्तमी ॥

ऋ॒तून् ब्रू॑म ऋ॒तुप॑तीनार्त॒वानु॒त हा॑यनान् ।
स॑माः सं॑वत्स॒रान् मा॒सांस्ते नो॑ मु॒ञ्चन्त्वं॑हसः ॥ १७॥

ऋ॒तून् । ब्रू॒मः॒ । ऋ॒तु॒ऽपतीन् । आ॒र्त॒वान् । उ॒त । हा॒य॒नान् ।

स॑माः । स॒म्ऽव॒त्स॒रान् । मा॑सान् । ते । नः॒ । मु॒ञ्च॒न्तु॒ । अं॑हसः

ऋतून् वसन्ताद्यान् ब्रूमः स्तुमः । तथा ऋतुपतीन् तेषाम् ऋतूनाम् अधिपतीन् । तत्र वसन्तस्य वसवोधिपतयः । "वसन्तेनर्तुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुतम्" इति श्रुतेः [तै० ब्रा० २.६.१६.१]। ग्रीष्मस्य रुद्रा अधिपतयः । "ग्रीष्मेण देवा ऋतुना रुद्राः पञ्चदशे स्तुतम्" इति [तै० ब्रा० २. ६. १६. १] आम्नानात् । वर्षर्तोरादित्या अधिपतयः । "वर्षाभिर्ऋतुनादित्याः" इति [तै० ब्रा० २. ६. १६. १] श्रूयमाणत्वात् । शरदृतोर्ऋभवोधिपतयः । "शारदेनर्तुना देवा एकविंश ऋभवः स्तुतम्" इति [तै० ब्रा० २. ६. १६. २] श्रुतेः । "हेमन्तशिशिरयोः समा-

---

† तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । ७ । ६ । ४ में कहा है, कि—"शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्यः । आत्मैकशतम् ।—पुरुष सौ वर्षकी आयु वाला होसकता है, उसमें सैंकड़ों पराक्रम होसकते हैं और पुरुष एक सौ एक प्रकारके है" इस श्रुतिके अनुसार पुरुष एक सौ एक प्रकारके हैं अत एव मारक मृत्युके भी उतने ही भेद होना ठीक ही है । दूसरे मन्त्रोंमें भी एक सौ एक मृत्युओंका वर्णन है, कि—"अपास्य योऽसिनात् पाशान् मृत्यून् एकशतं च" ॥

सेन” [ऐ० ब्रा० १. १] इति एकत्वश्रवणात् समासेन तयोर्मरुतोधिपतयः । श्रूयते हि । “हेमन्तेनर्तुना देवा मरुतस्त्रिणवे स्तुतम्” इति [तै० ब्रा० २. ६. १९. २]। इत्थं वसुरुद्रादीन् ऋतुपतीन् ब्रूमः स्तुमः । आर्तवान् तत्तदृतुविशेषसंबन्धिनः पदार्थान् । उतशब्दः अप्यर्थे । हायनान् समाः संवत्सरान् इति पर्यायशब्दाश्चान्द्रसौरसावनभेदेन त्रिविधसंवत्सराभिप्रायाः । मासान् चैत्राद्यान् । एतान् सर्वान् ब्रूमः स्तुमः ॥

हम वसन्त आदि ऋतुओंकी स्तुति करते हैं और वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरद् हेमन्त और शिशिर ऋतुओंके अधिपति वसु रुद्र आदित्य ऋभु और मरुद्गणोंकी हम स्तुति करते हैं और इन ऋतुओं में होने वाले पदार्थोंकी स्तुति करते हैं (जिनमें मास शुक्ल प्रतिपदासे आरम्भ होकर अमावस्या पर पूर्ण होता है उन) चान्द्र सम्वत्सरोंकी हम स्तुति करते हैं (और जिनमें संक्रान्तिके आरंभ से संक्रान्तिकी समाप्ति तक मास पूर्ण होता है उन) सौरसंवत्सरों की (और जिनमें कृष्ण प्रतिपदासे आरम्भ कर पूर्णिमाके दिन मास पूर्ण होता है उन) सावन सम्वत्सरोंकी हम स्तुति करते हैं तथा चैत्र आदि मासोंकी हम स्तुति करते हैं, ये हमको पापसे से मुक्त करदें ॥ १७ ॥

अष्टमी ॥

एत देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्च उदेत ।
पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वे देवाः समेत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १८ ॥

आ । इत । देवाः । दक्षिणतः । पश्चात् । प्राञ्चः । उत्ऽएत । पुरस्तात् । उत्तरात् । शक्राः । विश्वे । देवाः । सम्ऽएत्य । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥ १८ ॥

हे देवाः दक्षिणतः दक्षिणस्यां दिशि स्थिता यूयम् एत आगच्छत । एवं चतसृषु दिक्षु अवस्थिताः सर्वे देवाः समेत्य समागत्य ते यूयम् अस्मान् अंहसः पापात् । मुञ्चतेति शेषः ॥

हे देवताओं ! दक्षिण दिशामें स्थित तुम आओ और हे पश्चिम उत्तर तथा पूर्वदिशामें स्थित देवताओं ! तुम अपनी २ दिशाओं से शीघ्रतापूर्वक आओ और आकर हमको पापसे मुक्त करो १८

नवमी ॥

विश्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
विश्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१९॥

विश्वान् । देवान् । इदम् । ब्रूमः । सत्यऽसंधान् । ऋतऽवृधः ।
विश्वाभिः । पत्नीभिः । सह । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः १९

विश्वे देवा नाम देवगणाः । तान् उद्दिश्य इदं स्तुतिवचनं ब्रूमः वदामः । यद्वा इदं फलं याचामहे । कीदृशान् । सत्यसंधान् सत्यप्रतिज्ञान् । ऋतावृधः ऋतम् इति सत्यस्य यज्ञस्य वा नामधेयम् तस्य वर्धयितॄन् । विश्वाभिः पत्नीभिः विश्वाख्याभिर्देवीभिः सह । तान् ब्रूमः इत्यर्थः । ते न इत्यादि समानम् ॥

हम सत्यप्रतिज्ञ यज्ञवर्धक विश्वेदेवताओंकी उनकी सब पत्नियों सहित स्तुति करते हैं अथवा उनसे फलकी याचना करते हैं वे हमको पापसे मुक्त करें ॥ १९ ॥

दशमी ॥

सर्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
सर्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २० ॥

सर्वान् । देवान् । इदम् । ब्रूमः । सत्यऽसंधान् । ऋतऽवृधः ।
सर्वाभिः । पत्नीभिः । सह । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥२०॥

विश्वशब्दस्य स्थाने सर्वशब्द एव विशेषः । उक्तान् अनुक्तांश्च सर्वान् देवान् । अन्यत् पूर्ववद् योज्यम् ॥

हम सब पत्नियोंसहित सत्यप्रतिज्ञ यज्ञवर्धक देवताओंसे फल की याचना करते हैं वे हमको पापसे मुक्त करें ॥ २० ॥

एकादशी ॥

भूतं ब्रूमो भूतपतिं भूतानामुत यो वशी ।
भूतानि सर्वा संगत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २१ ॥

भूतम् । ब्रूमः । भूतऽपतिम् । भूतानाम् । उत । यः । वशी ।
भूतानि । सर्वा । सम्ऽगत्य । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥२१॥

भूतम् लब्धसत्ताकं वस्तुमात्रं ब्रूमः स्तुमः । भूतपतिम् तस्य भूतस्य अधिपतिम् ईश्वरम् । उत अपि च तेषां सर्वेषां भूतानां यो वशी वशयिता नियन्ता तमपि स्तुमः । सर्वा सर्वाणि तानि भूतानि संगत्य संभूयागत्य ॥ गतम् अन्यत् ॥

हम सत्ता वाली वस्तुमात्र—भूत—की स्तुति करते हैं, और इन भूतोंके अधिपति ईश्वरकी स्तुति करते हैं और जो इन भूतोंका नियमन करने वाले देवता हैं उनकी भी हम स्तुति करते हैं, वे सब एकत्रित होकर आवें और आकर हमको पापसे मुक्त करें २१

द्वादशी ॥

या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः ।
संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवाः ॥२२॥

याः । दे॒वीः । पञ्च॑ । प्र॒ऽदिशः॑ । ये । दे॒वाः॑ । द्वाद॑श । ऋ॒तवः॑ ।

स॒म्ऽव॒त्स॒रस्य॑ । ये । दं॑ष्ट्राः । ते । न॒ः । स॒न्तु॒ । सदा॑ । शि॒वाः॥२२

याः प्रसिद्धाः पञ्चसंख्याकाः प्रदिशः प्रधानदिशः देवीः देव्यो दानादिगुणयुक्ता देवतारूपा वा सन्ति ये देवाः दानादिगुणयुक्ता द्वादशसंख्याका ऋतवः “मधुश्च माधवश्च” इत्येवम् [तै० सं० १. ४. १४] अनुक्रान्ता मासाः तथा संवत्सरस्य द्वादशमासात्मकस्य प्रजापतेर्ये दंष्ट्राः दशन्ति खादन्ति एभिरिति दंष्ट्रा दन्तविशेषाः । ❀ “दाम्नीशस०” इत्यादिना करणे ष्ट्रन् प्रत्ययः ❀। ते चात्र संवत्सरसंबन्धिनो विष्ट्यादिदुष्टकालात्मकाः । ते सर्वे नः अस्माकं सदा सर्वदा शिवाः कल्याणहेतवः सन्तु ॥

जो देवतारूप प्रधान पाँच दिशायें हैं और जो दानादिगुणयुक्त बारह (ऋतु) मास हैं और द्वादशमासात्मक प्रजापतिरूप सम्वत्सरकी, जिनसे डसा जाता है ऐसे विष्टि आदि दुष्टकालात्मक जो, डाढ़े हैं, वे सब हमारे लिये सुखके कारण हों ॥२२॥

त्रयोदशी ॥

यन्मात॑ली रथक्री॒त॒म॒मृतं॑ वेद॑ भेष॒जम् ।
तदिन्द्रो॑ अ॒प्सु प्रावे॑शय॒त् तदापो॑ दत्त भेष॒जम् २३

यत् । मात॑ली । र॒थ॒ऽक्री॒तम् । अ॒मृत॑म् । वेद॑ । भे॒ष॒जम् ।

तत् । इ॑न्द्रः । अ॒प्ऽसु । प्र । अ॒वेशय॒त् । तत् । आप॑ः । द॒त्त॒ ।

भे॒ष॒जम् ॥ २३ ॥

मातली इन्द्रस्य सारथिः रथक्रीतम् रथस्य क्रयेण लब्धम् अमृतम् अमरणसाधनं यद् भेषजं वेद जानाति तत् भेषजम् इन्द्रस्तस्य रथस्य अधिपतिर्देवः अप्सु उदकेषु प्रावेशयत् प्राक्षिपत् ।

हे आपः यूयं तत् मातलिना क्रीतम् इन्द्रेण क्षिप्तं भेषजम् औषधं दत्त अस्मभ्यं प्रयच्छत ॥

पञ्चमं सूक्तम् ॥

इति सायणाचार्यविरचिते अथर्वसंहिताभाष्ये एकादशकाण्डे तृतीयोनुवाकः ॥

इन्द्रका सारथी मातलि रथक्रयसे मिले हुए जिस अमरण-साधन भेषजको जानता है, उस भेषजको उस रथके अधिपति देवता इन्द्रने जलमें डाल दिया है, हे जलों ! तुम उस मातलिकी खरीदी हुई और इन्द्रकी डाली हुई औषधिको हमैं दो २३ (१-)

पञ्चम सूक्त समाप्त (४८६)

एकादश काण्डमें तृतीय अनुवाक समाप्त ॥

चतुर्थेनुवाके षट् सूक्तानि । तत्र आद्यैस्त्रिभिः सूक्तैर्ब्रह्मौदनाख्ये सवयज्ञे हुतशिष्टस्य ओदनस्य सर्वजगत्कारणभूतब्रह्माभेदेन स्तुतिः क्रियते । तत्रैव एषां विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

चौथे अनुवाकमें छः सूक्त हैं । इनमें पहिले तीन सूक्तोंसे ब्रह्मौदन नामक सवमें होमनेसे बचे हुए ओदनकी सर्वजगत्कारणभूत ब्रह्मके अभेदसे स्तुति की गई है । उसमें इनका विनियोग देखना चाहिये ।

तत्र प्रथमसूक्ते प्रथमा ॥

उच्छि॑ष्टे॒ नाम॑ रू॒पं चोच्छि॑ष्टे लो॒क आहि॑तः ।
उच्छि॑ष्ट॒ इन्द्र॑श्चा॒ग्निश्च॒ विश्व॑म॒न्तः स॒माहि॑तम् ॥ १ ॥

उत्ऽशि॑ष्टे । नाम॑ । रू॒पम् । च॒ । उत्ऽशि॑ष्टे । लो॒कः । आऽहि॑तः ।
उत्ऽशि॑ष्टे । इन्द्रः॑ । च॒ । अ॒ग्निः । च॒ । विश्व॑म् । अ॒न्तः । स॒म्ऽआहि॑तम् ॥ १ ॥

उच्छिष्टे। होमाद् ऊर्ध्वं शिष्यते अवशिष्यत इति हुतावशिष्टः प्राशनार्थ ओदनः उच्छिष्टः। तस्य देवसृष्टिहेतुत्वं तावच्छ्रूयते हि। "अदितिः पुत्रकामा साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनम् अपचत्। तस्या उच्छेषणम् अददुः। तत् प्राश्नात्। सा रेतोधत्त। तस्यै धाता चार्यमा चाजायेताम्" इत्यादि [तै० ब्रा० १. १. ९. १]। तथा अस्मिन्नेव वेदे मुण्डकोपनिषदि अन्नस्य सर्वजगद्धेतुता समाम्नास्यते।

तपसा चीयते ब्रह्म ततोन्नम् अभिजायते।
अन्नात् प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम्॥

इति [मु० १. १. ८]। तस्मिन् उच्छिष्टे हुतशिष्टे अन्ने नाम नामधेयात्मकः शब्दप्रपञ्चः रूपम् तेन निरूपणीयः अर्थप्रपञ्चश्च तद् उभयम् आहितम् आस्थितम्। नामरूपात्मकः प्रपञ्चस्तस्मिन् कारणभूते समाश्रित्य लब्धसत्ताकोवतिष्ठत इत्यर्थः। यद्वा "अथात आदेशो नेति नेति" [बृ० आ० २. ३. ११] "नेह नानास्ति किंचन" [बृ० आ० ४.२.२१] इत्येवं दृश्यप्रपञ्चनिषेधाद् ऊर्ध्वं तदवधित्वेन शिष्यते अवशिष्यत इत्युच्छिष्टं बाधावधित्वेन शिष्यमाणं परं ब्रह्म। तस्मिन् शुक्त्यादौ रजतादिवत् नाम रूपं चेति द्विधाभूतं समस्तं जगत् आहितम् आरोपितम्। वर्तत इत्यर्थः। इत्थं सामान्येन सर्वजगदाधारत्वम् अभिधाय विशेषतो निर्दिशति उच्छिष्टे लोक आहित इत्यादिना। उच्छिष्टे उच्छिष्यमाणे ब्रह्माभिन्ने कारणभूते तस्मिन्नोदने लोकः पृथिव्यादिरूपः सर्वो लोकः आहितः आस्थितः। तस्मिन्नेव उच्छिष्टे द्युलोकाधिपतिः इन्द्रश्च पृथिव्यधिपतिः अग्निश्च उभौ आहितौ। किं बहुना एतदुपलक्षितं विश्वम् सर्वं जगत् अन्तः मध्ये समाहितम् सम्यग् ईश्वरेण स्थापितम्

(होमके अनन्तर जो बचता है वह होमनेसे बचा हुआ प्राशनके लिये रक्खा हुआ ओदन यहाँ उच्छिष्ट शब्दसे अभिहित हुआ

है। वह देवताओंकी सृष्टिका कारण हुआ है, यह श्रुतियोंमें प्रसिद्ध ही है, कि-"अदितिः पुत्रकामा साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनं अपचत्। तस्या उच्छेषणं अददुः। तत् प्राशनात्। सा रेतोऽधत्त। तस्यै धाता चार्यमा चाजायेताम्०।-पुत्राभिलाषिणी अदितिने साध्यदेवताओंके लिये ब्रह्मौदनका पाक किया, उन्होंने अदितिके लिये उच्छेषण दिया। उसने उसका प्राशन किया। फिर वीर्य धारण किया, तब उसके धाता और अर्यमा उत्पन्न हुए" (तैत्तिरीयब्राह्मण १।१।६।१)। तथा इस वेदके ही मुण्डकोपनिषद्में अन्नकी सर्वजगद्धेतुता कही है, कि-"तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नं अभिजायते। अन्नात् प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम्॥-ब्रह्म तपसे वृद्धिको प्राप्त होता है, उससे अन्न होता है, अन्नसे प्राण मन सत्य और लोक प्रकट हुए हैं और कर्मोंमें जो अमृत है वह भी प्रकट हुआ है।" [मुण्डकोपनिषत् १।१।८] उस उच्छिष्टमें अर्थात् होमनेसे बचे हुए अन्नमें नाम अर्थात् नामधेयात्मक शब्दप्रपञ्च और रूप अर्थात् निरूपणीय अर्थप्रपञ्च भी ये दोनों ही आहित हैं अर्थात् नामरूपात्मक प्रपञ्च उस कारणभूतमें आश्रय करके सत्ताको पाकर प्रादुर्भूत होता है। अथवा-"अथातो आदेशो नेति नेति अब यह आदेश है, कि-यह ब्रह्म नहीं है, यह ब्रह्म नहीं है" (बृहदारण्यक २। ३। ११) और "नेह नानास्ति किञ्चन-ब्रह्मके अतिरिक्त इस जगत्की अन्य अनेक वस्तुएँ (तत्त्व) नहीं हैं" (बृहदारण्यक ४। २। २१) इस प्रकार दृश्यप्रपञ्चके निषेधसे ऊपर जो तदवधित्वसे बाकी रहता है वह उच्छिष्ट बाधाकी अवधिसे बचा हुआ-परब्रह्म है, उस परब्रह्ममें सीपीमें चाँदी आदिकी समान नाम और रूप इन दोमें वर्तमान सब जगत् आरोपित है। इस प्रकार सामान्यरूपसे जगदाधारत्वको कह कर अब विशेषरूपसे कहते हैं, कि-उस उच्छिष्यमाण ब्रह्माभिन्न कारणभूत ओदनमें पृथिवी आदिक समस्त लोक आहित हैं, उसी

उच्छिष्टमें द्युलोकाधिपति इन्द्र और पृथिवीके अधिपति अग्नि ये दोनों स्थित हैं अधिक क्या इनसे उपलक्षित सकल विश्व ही इस ओदनके मध्यमें ईश्वरके द्वारा भली प्रकार स्थापित किया हुआ है १

द्वितीया ॥

उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम् ।
आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः ॥ २ ॥

उत्ऽशिष्टे । द्यावापृथिवी इति । विश्वम् । भूतम् । सम्ऽआहितम् ।
आपः । समुद्रः । उत्ऽशिष्टे । चन्द्रमाः । वातः । आऽहितः ॥२॥

प्रथमयर्चा संग्रहेण उक्त एवार्थः एतदाभिर्मन्त्रैर्बहुधा प्रपञ्च्यते । द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ उच्छिष्टे उच्छिष्यमाणे ब्रह्मणि तदात्मके हुतशिष्टौदने वा समाहिते । आश्रित्य वर्तेते इत्यर्थः । भूतम् तत्रत्यं यद् भूतजातं विश्वम् सर्वं तद् उच्छिष्टे समाहितम् सम्यग् निहितम् । तदाधारवशात् प्रचलतीत्यर्थः । तथा आपः व्यापनशीलाः प्रथमसृष्टा जगत्कारणभूताः तासां समुदायात्मकः समुद्रश्च तस्मिन् उच्छिष्टे समाहिताः । चन्द्रमाः तस्मात् समुद्रात् मथ्यमानाद् उत्पन्नः वातः वायुः अन्तरिक्षाधिपतिर्देवः आहितः आश्रितः ॥

(पहिली ऋचासे सूत्ररूपमें जो बातें कही हैं उन्हींका इन ऋचाओंसे विस्तार करते हैं, कि—) द्यावापृथिवी उच्छिष्यमाण ब्रह्ममें वा तदात्मक होमनेसे अवशिष्ट ओदनमें समाहित है अर्थात् उसका आश्रय लेकर रहते हैं, और इनमें रहने वाला जो भूतसंघ है वह भी उच्छिष्टमें समाहित है, उसके आधारवश प्रचलन करता है, तथा व्यापनशील प्रथमसृष्ट जगत्कारणभूत जल और जलोंका समुदायरूप समुद्र भी उस उच्छिष्टमें समाहित है, उस समुद्रके मथनेसे उत्पन्न हुआ चन्द्रमा और अन्तरिक्षाधिपति वायुदेव ये सब उसी ब्रह्ममें समाश्रित हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

सन्नुच्छिष्टे असंश्चोभौ मृत्युर्वाजः प्रजापतिः ।
लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि ३

सन् । उत्ऽशिष्टे । असन् । च । उभौ । मृत्युः । वाजः । प्रजाऽपतिः ।
लौक्याः । उत्ऽशिष्टे । आऽयत्ताः । व्रः । च । द्रः । च । अपि ।
श्रीः । मयि ॥ ३ ॥

सन् सत्तया क्रोडीकृतो भावरूपः प्रपञ्चः । असन् अभावात्मकश्च । उभौ सदसतौ उच्छिष्टे तस्मिन् उदीरितलक्षणे । कार्यत्वेन वर्तेते इत्यर्थः । तथा तस्य सदसदात्मकस्य प्रपञ्चस्य मारको मृत्युः वाजः तदीयं बलं तस्य सर्वस्य स्रष्टा प्रजापतिश्च तत्रैव आहिताः । तथा लौक्याः लोकसंबन्धिन्यः प्रजाः तस्मिन् उच्छिष्टे आहिताः स्थापिताः । तथा व्रः वारको वरुणः द्रः द्रावकः अमृतमयः सोमः । परस्परसमुच्चयार्थौ चकारौ । तावपि अस्मिन् आहितौ । तत्प्रसादात् श्रीः संपत् मयि विदुषि आहिता आस्थिता भवतु ॥

सत्तारूपसे क्रोडीकृत भावरूप प्रपञ्च और अभावात्मक प्रपञ्च ये दोनों सत् और असत् उस पूर्वोक्त लक्षण वाले उच्छिष्टमें आश्रित हैं अर्थात् कार्यत्वरूपसे वर्तमान रहते हैं । तथा सदसदात्मक प्रपञ्चके मारक मृत्युदेव, उनका बल, और उन सबके स्रष्टा प्रजपति भी वहाँ ही आश्रित हैं और लोककी प्रजाएँ भी उसी उच्छिष्टमें आश्रित हैं, तथा वारक वरुणदेव और द्रावक अमृतमय सोम–ये दोनों भी इसीमें समाहित हैं, उसके प्रसादसे मुझ विद्वान्में सम्पत्ति आश्रित हो ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश ।

नाभि॑मिव स॒र्वत॑श्च॒क्रमुच्छि॑ष्टे दे॒वता॑ः श्रि॒ताः ॥४॥

दृ॒ढः । दृं॒ह॒ऽस्थि॒रः । न्यः । ब्रह्म॑ । वि॒श्व॒ऽसृज॑ः । दश॑ ।

नाभि॑म्ऽइव । स॒र्व॑तः । च॒क्रम् । उत्ऽशि॑ष्टे । दे॒वता॑ः । श्रि॒ताः ४

दृढः दृढाङ्गः । प्रवृद्धशरीरो देव इत्यर्थः । ❀ दृह दृहि वृद्धौ । "दृढः स्थूलबलयोः" इति निष्ठायां निपात्यते ❀ । दृंहस्थिरः दृंहणेन स्थिरीकृतो लोकः । न्यः नेतारस्तत्रत्याः प्राणिनः । ब्रह्म परिवृढं जगत्कारणम् अव्यक्तात्मकम् । विश्वसृजः विश्वस्य स्रष्टारो नव ब्रह्माणः तत्स्रष्टा [दशमः एवं] दशसंख्याकाः । यद्वा नव प्राणाः मुख्यः प्राण एकः । एते हि प्रथमसृष्टा विश्वस्य स्रष्टारः । एते सर्वे उच्छिष्टे समाहिताः । अपि च देवताः इन्द्राद्याः सर्वे देवा नाभिमिव चक्रम् यथा रथचक्रं मध्यस्थं नाभिं सर्वत आवेष्ट्य वर्तते एवम् उच्छिष्टे श्रिताः आश्रिताः । कारणभूतं ब्रह्म आवेष्ट्य वर्तन्त इत्यर्थः ॥

दृढ़ शरीर वाला देव, और दृंहणसे स्थिर किया हुआ लोक और तहाँके नेता प्राणी, परिवृढ़ जगत्कारण अव्यक्त ब्रह्म, विश्वकी रचना करने वाले नौ ब्रह्म और उनकी रचना करने वाला दशम ब्रह्म । अथवा—नौ प्राण और मुख्य प्राण एक ये प्रथमसृष्ट दश प्राण विश्वके स्रष्टा हैं—ये सब उच्छिष्टमें समाहित हैं और इन्द्र आदि सब देवता भी, रथचक्रकी नाभि चारों ओरको घेरे रहती है, इसी प्रकार उस उच्छिष्टका आश्रय लेकर रहते हैं अर्थात् कारणभूत ब्रह्मका आवेष्टन करके रहते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

ऋक् साम॒ यजु॑रु॒च्छिष्ट॑ उद्गी॒थः प्रस्तु॑तं स्तु॒तम् ।
हि॒ङ्का॒र उ॒च्छिष्टे॒ स्वर॒ः साम्नो॑ मे॒डिश्च॒ तन्मयि॑ ॥५॥

ऋक् । साम । यजुः । उत्ऽशिष्टे । उत्ऽगीथः । प्रऽस्तुतम् । स्तुतम् ।

हिङ्ऽकारः । उत्ऽशिष्टे । स्वरः । साम्नः । मेडिः । च । तत् । मयि

अनयोत्तरया च यज्ञाङ्गानां तदाश्रितत्वं प्रतिपाद्यते ऋक् साम यजुरिति । सर्वत्र जातावेकवचनम् । ऋचः पादबद्धा मन्त्रा यज्ञे याज्यानुवाक्यादिरूपेण विनियुक्ताः । सामानि प्रगीतमन्त्राः “आज्यैः स्तुवते” “पृष्ठैः स्तुवते” इत्येवं स्तोत्रसाधनत्वेन 'विनियुक्ताः । यजूंषि प्रश्लिष्टपठिता अनुष्ठेयार्थप्रकाशका मन्त्राः । तेषां लक्षणं जैमिनिराचार्योऽसूत्रयत् । “तेषाम् ऋग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था” [जै० २. १. ३५] “गीतिषु सामाख्या” [जै० २. १. ३६] “शेषे यजुःशब्दः” [जै० २. १. ३७] इति । एवं त्रिविधा मन्त्रा उच्छिष्टे उच्छिष्यमाणे ब्रह्मणि समाश्रिताः । तत्र आज्यादिस्तोत्रनिर्वर्तकानां साम्नां पञ्च भक्तयः हिङ्कारप्रस्तावोद्गीथप्रतिहारनिधनाख्याः प्रयोगशास्त्रेण कल्पिताः । तत्र च उद्गात्रा गीयमानो 'भाग उद्गीथः । प्रस्तुतम् प्रस्तोत्रा गीयमानः प्रस्तावाख्यो भागः । प्रस्तूयते स्तुतेः प्रारम्भः क्रियते अनेनेति प्रस्तुतम् । ❀ प्रपूर्वात् स्तौतेः करणे निष्ठा ❀ । स्तुतम् स्तोत्रम् स्तवनकर्म । हिङ्कारः सर्वैरुद्गातृभिः आदौ प्रयुज्यमानो हिं इति शब्दः । स्वरः कृत्स्नसामाश्रितः क्रुष्टप्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थमन्द्रातिमन्द्रात्मकः सप्तविधः स्वरः । अथ वा कानिचित् सामानि आ इ ई इत्येवमात्मकैः स्वरैः परिसमाप्यन्ते । तानि च सामानि स्वरनिधनानि इत्युच्यन्ते । स आकारोत्र स्वरशब्देन विवक्षितः । स च साम्नः सम्बन्धी । तथा मेडिः मेलयिता ऋगक्षराणां गानविशेषस्य च संसर्जकः स्तोभविशेषः । अथ वा मेलिरिति वाङ्नाम । साम्नः संबन्धिनी वाक् । कानिचित् सामानि वाङ्निधनानि

गीयन्ते । तदभिप्रायम् एतत् । तद्ध एतद्ध उद्गीथादिकं सर्वम् उच्छिष्टे समाश्रितम् । तत् सर्वं मयि यज्ञसमृद्ध्यर्थं भवत्वित्यर्थः ॥

(इस ऋचासे और अगली ऋचासे भी यज्ञाङ्गोंका तदाश्रितत्व प्रतिपादित किया जाता है, कि–) यज्ञमें याज्यानुवाक्यादिरूपसे विनियुक्तपादबद्ध मन्त्र ऋक् "आज्यैः स्तुवते" "पृष्ठैः स्तुवते" इत्यादि स्तोत्रसाधनत्वसे विनियुक्त प्रगीत–मन्त्र साम, प्रश्लिष्टपठित अनुष्ठेय अर्थके प्रकाशक मन्त्र यजुः ‡ इस प्रकार ये तीनों प्रकारके मन्त्र उच्छिष्यमाण ब्रह्ममें समाश्रित हैं (यहाँ आज्यादि स्तोत्रोंको सम्पन्न करने वाले सामोंकी हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन नामक पाँच भक्तियें प्रयोगशास्त्रमें कल्पित हैं इनमें) जो उद्गाता जिस भागको गाता है वह उद्गीथ कहलाता है । प्रस्तोता जिसको गाता है वह प्रस्ताव नामक भाग प्रस्तुत कहलाता हैं । और जिससे स्तुतिका प्रारम्भ किया जाता है वह प्रस्तुत कहलाता है । और स्तवन स्तोत्रकर्म स्तुत कहलाता है, सब उद्गताओंसे अदिमें प्रयुज्यमान हिं शब्द हिंकार कहलाता हैं । और पूर्ण सामका आश्रय लेने वाला क्रुष्ट प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ मन्द और अतिमन्दरूप सात प्रकारका स्वर । अथवा– कुछ साम आ इ ई अदि स्वरोंसे समाप्त किये जाते हैं वे साम स्वर–निधन कहलाते हैं वह आकार ही यहाँ स्वर शब्दसे अभिलषित है । ऋचाओंके अक्षरोंका और गानविशेषका मिलाने वाला एक स्तोत्र मेडि–अथवा सामसम्बन्धी वाणी–ये सब उद्गीथ आदि उच्छिष्टमें समाश्रित हैं, तात्पर्य यह है, कि–यह सब मुझ में यज्ञसमृद्धिके लिये होवें ॥ ५ ॥

---

‡ इनका लक्षण जैमिनि आचार्यने इस प्रकार लिखा है, कि– "तेषां ऋक् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था" (जैमिनीयसूत्र २।१।३५) "गीतिषु सामाख्या" (जै० २ । १ । ३६) "शेषे यजुःशब्दः" (जै० २ । १ । ३७)॥

षष्ठी ॥

ऐ॒न्द्रा॒ग्नं पा॑वमा॒नं म॒हाना॑म्नीर्महाव्र॒तम् ।
उच्छि॑ष्टे य॒ज्ञस्याङ्गा॑न्य॒न्तर्गर्भ॑ इव मा॒तरि॑ ॥ ६ ॥

ऐ॒न्द्रा॒ग्नम् । पा॒व॒मा॒नम् । म॒हाऽना॑म्नीः । म॒हा॒ऽव्र॒तम् ।
उत्ऽशि॑ष्टे । य॒ज्ञस्य॑ । अङ्गा॑नि । अ॒न्तः । गर्भः॑ऽइव । मा॒तरि॑ ६

ऐन्द्राग्नम् इन्द्राग्न्योः स्तावकम् "इन्द्राग्नी आ गतं सुतम्" इति तृचे [ऋ० ३. १२. १] गीयमानं साम ऐन्द्राग्नं प्रातःसवने प्रयुज्यमानम् । पावमानम् त्रिष्वपि सवनेषु सवनादौ गीयमानं पवमानसोमदेवताकं साम । ❀ उभयत्र "सास्य देवता" इति अण् प्रत्ययः ❀ । महानाम्नीः महानाम्न्यः । "विदा मघवन् विदा गातुम् अनुशंसिषो दिशः" [ऐ० आ० ४. १] इत्याम्नाता ऋचः । तत्र गीयमानं शाक्वरं सामापि महानाम्नीशब्देनोच्यते। ताश्च द्वादशाहमध्यवर्तिनि दशरात्रे पञ्चमेऽहनि पृष्ठसामत्वेन विनियुक्ताः । महाव्रतम् राजनगायत्रबृहद्रथन्तरभद्राख्यैः पञ्चभिः सामभिः क्रियमाणं स्तोत्रम् । तच्च गवामयनस्योपान्त्येहनि प्रथमं पृष्ठस्तोत्रम् । एकाहोपि सोमयागस्तद्वान् महाव्रतम् इति आख्यायते । एवम् ऐन्द्राग्नादीनि यज्ञस्य अङ्गानि उच्छिष्टे अन्तः मध्ये मातरि गर्भ इव वर्तन्ते । यथा मातुरुदरमध्ये आश्रितो गर्भः पुष्यन् अभिवर्धते एवम् एतान्यपि कारणभूते ब्रह्मणि आश्रितत्वेन भाव्यमानानि अङ्गिनं यज्ञं फलसमृद्धं कुर्वन्तीत्यर्थः ॥

इन्द्र और अग्निकी जिसके द्वारा स्तुति की जाती है वह 'इन्द्राग्नी आ गतं सुतम्' इस ऋग्वेदसंहिता ३ । १२ । १ के तृचसे गाया जाने वाला और प्रातःसवनमें प्रयुज्यमान साम ऐन्द्राग्न, तीनों सवनोंमें गाया जाने वाला पवमान सोमदेवताका साम पावमान,

“विदा मघवन् विदा गातुं अनुशंसिषो दिशः” ये ऐतरेय आरण्यक ४ । १ में कही हुई महानाम्नी नामक ऋचाएँ अथवा तहाँ गाया जाने वाला महानाम्नी शब्दसे अभिहित शाक्वर नामक साम, इन शाक्वर सामकी ऋचाओंका बारह दिनके मध्यमें होने वाले दशरात्रके पञ्चम दिनमें पृष्ठसामरूपसे विनियोग होता है । राजन गायत्र बृहद् रथन्तर और भद्रनामक पाँच सामोंसे किया जाने वाला स्तोत्र महाव्रत कहलाता है, यह गवामयनके अन्तके दिनसे पहिले दिनमें होने वाला प्रथम पृष्ठस्तोत्र होता है और इस प्रथम पृष्ठस्तोत्र वाला एकाह सोमयाग भी महाव्रत कहलाता है । इस प्रकारके ये ऐन्द्राग्न आदि यज्ञके अङ्ग उच्छिष्टके भीतर इस प्रकार रहते हैं, जिस प्रकार माताके भीतर गर्भ रहते हैं । तात्पर्य यह है, कि—जैसे माताके उदरके मध्यमें आश्रित गर्भ पुष्टि पाता हुआ बढ़ता है,इसी प्रकार कारणभूत ब्रह्ममें आश्रितत्वसे भाव्यमान ये, अंगी यज्ञको फलसमृद्ध करते हैं ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

रा॒ज॒सूयं॑ वाज॒पेयं॑मग्नि॒ष्टोमस्तद॑ध्व॒रः ।
अ॒र्का॒श्व॒मे॒धावुच्छिष्टे जी॒वबर्हिर्म॒दिन्तमः ॥ ७ ॥

रा॒ज॒ऽसू॑यम् । वा॒ज॒ऽपे॑यम् । अ॒ग्नि॒ऽस्तो॒मः । तत् । अ॒ध्व॒रः ।
अ॒र्क॒ऽअ॒श्व॒मे॒धौ । उत्ऽशि॑ष्टे । जी॒वऽब॑र्हिः । म॒दिन्ऽत॑मः ॥ ७ ॥

अङ्गवद् अङ्गिनामपि तदाश्रयत्वम् इतः परं प्रतिपाद्यते । राजा सूयते प्रेर्यते यस्मिन् कर्मणि तद् राजसूयम् इष्टिपशुसोमदर्विहोमात्मकं शस्त्रप्रधानम् । ❀ “राजसूयसूर्य०” इत्यादिना क्यपि निपात्यते । “गतिकारकोपपदात् कृत्” इति कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । वाजपेयम् वाजः अन्नं द्रवीकृत्य पेयं यस्मिन् कर्मणि

षष्ठी ॥

ऐ॒न्द्रा॒ग्नं पा॑वमा॒नं म॒हाना॑म्नीर्महाव्र॒तम् ।
उच्छि॑ष्टे य॒ज्ञस्याङ्गा॑न्य॒न्तर्गर्भ॑ इव मा॒तरि॑ ॥ ६ ॥

ऐ॒न्द्रा॒ग्नम् । पा॒व॒मा॒नम् । म॒हाऽना॑म्नीः । म॒हा॒ऽव्र॒तम् ।
उत्ऽशि॑ष्टे । य॒ज्ञस्य॑ । अङ्गा॑नि । अ॒न्तः । गर्भः॑ऽइव । मा॒तरि॑ ६

ऐन्द्राग्नम् इन्द्राग्न्योः स्तावकम् "इन्द्राग्नी आ गतं सुतम्" इति तृचे [ऋ० ३. १२. १] गीयमानं साम ऐन्द्राग्नं प्रातःसवने प्रयुज्यमानम् । पावमानम् त्रिष्वपि सवनेषु सवनादौ गीयमानं पवमानसोमदेवताकं साम । ❀ उभयत्र "सास्य देवता" इति अण् प्रत्ययः ❀ । महानाम्नीः महानाम्न्यः । "विदा मघवन् विदा गातुम् अनुशंससिषो दिशः" [ऐ० आ० ४. १] इत्याम्नाता ऋचः । तत्र गीयमानं शाक्वरं सामापि महानाम्नीशब्देनोच्यते। ताश्च द्वादशाहमध्यवर्तिनि दशरात्रे पञ्चमेऽहनि पृष्ठसामत्वेन विनियुक्ताः । महाव्रतम् राजनगायत्रबृहद्रथन्तरभद्राख्यैः पञ्चभिः सामभिः क्रियमाणं स्तोत्रम् । तच्च गवामयनस्योपान्त्येहनि प्रथमं पृष्ठस्तोत्रम् । एकाहोपि सोमयागस्तद्वान् महाव्रतम् इति आख्यायते । एवम् ऐन्द्राग्नादीनि यज्ञस्य अङ्गानि उच्छिष्टे अन्तः मध्ये मातरि गर्भ इव वर्तन्ते । यथा मातुरुदरमध्ये आश्रितो गर्भः पुष्यन् अभिवर्धते एवम् एतान्यपि कारणभूते ब्रह्मणि आश्रितत्वेन भाव्यमानानि अङ्गिनं यज्ञं फलसमृद्धं कुर्वन्तीत्यर्थः ॥

इन्द्र और अग्निकी जिसके द्वारा स्तुति की जाती है वह 'इन्द्राग्नी आ गतं सुतम्' इस ऋग्वेदसंहिता ३ । १२ । १ के तृचसे गाया जाने वाला और प्रातःसवनमें प्रयुज्यमान साम ऐन्द्राग्न, तीनों सवनोंमें गाया जाने वाल पवमान सोमदेवताका साम पावमान,

"विदा मघवन् विदा गातुं अनुशंसिषो दिशः" ये ऐतरेय आरण्यक ४ । १ में कही हुई महानाम्नी नामक ऋचाएँ अथवा तहाँ गाया जाने वाला महानाम्नी शब्दसे अभिहित शाक्वर नामक साम, इन शाक्वर सामकी ऋचाओंका बारह दिनके मध्यमें होने वाले दशरात्रके पञ्चम दिनमें पृष्ठसामरूपसे विनियोग होता है । राजन गायत्र बृहद् रथन्तर और भद्रनामक पाँच सामोंसे किया जाने वाला स्तोत्र महाव्रत कहलाता है, यह गवामयनके अन्तके दिनसे पहिले दिनमें होने वाला प्रथम पृष्ठस्तोत्र होता है और इस प्रथम पृष्ठस्तोत्र वाला एकाह सोमयाग भी महाव्रत कहलाता है । इस प्रकारके ये ऐन्द्राग्न आदि यज्ञके अङ्ग उच्छिष्टके भीतर इस प्रकार रहते हैं, जिस प्रकार माताके भीतर गर्भ रहते हैं । तात्पर्य यह है, कि–जैसे माताके उदरके मध्यमें आश्रित गर्भ पुष्टि पाता हुआ बढ़ता है,इसी प्रकार कारणभूत ब्रह्ममें आश्रितत्वसे भाव्यमान ये, अंगी यज्ञको फलसमृद्ध करते हैं ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः ।
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥ ७ ॥

राजऽसूयम् । वाजऽपेयम् । अग्निऽस्तोमः । तत् । अध्वरः ।
अर्कऽअश्वमेधौ । उत्ऽशिष्टे । जीवऽबर्हिः । मदिन्ऽतमः ॥ ७ ॥

अङ्गवद् अङ्गिनामपि तदाश्रयत्वम् इतः परं प्रतिपाद्यते । राजा सूयते प्रेर्यते यस्मिन् कर्मणि तद् राजसूयम् इष्टिपशुसोमदर्विहोत्मकं शस्त्रप्रधानम् । ❀ "राजसूयसूर्य०" इत्यादिना क्यपि निपात्यते । "गतिकारकोपपदात् कृत्" इति कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । राजपेयम् राजः अन्नं द्रवीकृत्य पेयं यस्मिन् कर्मणि

तत् तथोक्तम् । “राजा स्वर्गकामो राजसूयेन यजेत” इति [आश्व० ६. ६. १६] क्षत्रिय एव राजसूये कर्मणि अधिकारी । वाजपेये तु ब्राह्मणक्षत्रियौ उभावपि अधिक्रियेते । श्रूयते हि । “स वा एष ब्राह्मणस्य चैव राजन्यस्य च यज्ञः । तं वा एतं वाजपेयम् इत्याहुः” इति [तै० ब्रा० १. ३. ७. ३] । तथा अग्निष्टोमः चरमस्तोत्रे यज्ञायज्ञीये अग्निः स्तूयत इति अग्निष्टोमः द्वादशस्तोत्रशस्त्रसहितः सर्वसोमानां प्रकृतिभूतः सोमयागः । तत् । ❀ लिङ्गव्यत्ययः ❀ । सोऽध्वरः हिंसाप्रत्यवायरहितः । “अग्नीषोमीयं पशुम् आलभेत” इति आलभ्य पशुहिंसाया विहितत्वेन “न हिंस्यात् सर्वभूतानि” इति निषेधशास्त्रस्य तत्रानुप्रवेशाभावात् । अर्काश्वमेधौ अर्कश्चित्योग्निः । अश्वो मेधः पशुर्यस्मिन् त्रिरात्रात्मके अहीने सोमे सोऽश्वमेधः । तौ अर्काश्वमेधौ । अथ वा विराडात्मना उपास्यमानश्चित्योग्निः अर्कः । तस्य च तथात्वेन उपासनम् ऐतरेयकोपनिषदि समाम्नायते । “एतं ह्येव बह्वृचा महत्युक्थे मीमांसन्ते । एतमग्नावध्वर्यवः । एतं महाव्रते छन्दोगाः” इति [ऐ० आ० ३. २. ३.] । अश्वमेधशब्देन च “उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः” [बृ० आ० १. १. १] इत्याद्युपनिषदा अश्वमेधाङ्गस्य अश्वस्य विराडात्मना यद् उपासनम् उक्तं तद् विवक्षितम् । “तावेतावर्काश्वमेधौ” [बृ० आ० १. २. ७] इति तदुपासनप्रकरणे समाम्नानात् । एतदेवाभिप्रेत्य तैत्तिरीयैरपि आम्नायते । “अर्को वा एष यद् अग्निः असावादित्योश्वमेधः” इति [तै०सं० ५. ७. ५. २] । एते राजसूयादयः सर्वे उच्छिष्टे उच्छिष्यमाणे निष्प्रपञ्चे ब्रह्मणि तदात्मना भाव्यमाने ओदने वा समाश्रिताः । तथा जीवबर्हिः जीवावस्थान्येव बर्हींषि यस्य यागविशेषस्य स तथोक्तः । मदिन्तमः मादयितृतमः देवानां तृप्तिविशेषकरः अन्योपि सोमयागः । स सर्वोपि उच्छिष्टे समाश्रित इत्यर्थः । ❀ “नाद्घस्य” इति तमपो नुडागमः ❀ ॥

(अब अङ्गकी समान अंगियोंका भी तदाश्रयत्व प्रतिपादन करते हैं, कि- जिसमें राजाको प्रेरित किया जाता है वह इष्टि पशु सोम दर्वि होमात्मक राजसूय यज्ञ, जिसमें वाज अर्थात् अन्न पतला करके पिया जाता है वह वाजपेय † यज्ञ, जिसमें चरमस्तोत्र यज्ञायज्ञीयमें अग्निकी स्तुति की जाती है वह अग्निष्टोम यज्ञ, द्वादशस्तोत्रशस्त्रसहित सर्वसोमोंका प्रकृतिभूत सोमयाग हिंसाके प्रत्यवायसे रहित होनेके कारण अध्वर ‡ कहलाता है, चित्याग्नि अर्कयज्ञ, जिस तीन रातसे क्रममें न होने वाले यज्ञमें अश्व पशु होता है वह अश्वमेध यज्ञ, अथवा विराडात्मकसे उपास्यमान चित्य अग्नि अर्क ÷, और अश्वमेधके अंग अश्वकी

---

† आश्वलायनसूत्र ९ । ९ । १९ में कहा है, कि-"राजा स्वर्गकामो राजसूयेन यजेत ।-स्वर्गकी कामना वाला राजा राजसूयसे यजन करे" ॥ अत एव क्षत्रिय ही राजसूय यज्ञका अधिकारी है । और वाजपेय यज्ञमें तो ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनोंका अधिकार है श्रुतिमें भी कहा है, कि-"स वा एष ब्राह्मणस्य चैव राजन्यस्य च यज्ञः । तं वा एतं वाजपेयं इत्याहुः ।-यह ब्राह्मण और क्षत्रियका यज्ञ है, इसको वाजपेय यज्ञ कहते हैं" (तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । ३ । २ । ३)॥

‡ "अग्नीषोमीयं पशुम् आलभेत ।" इस प्रकार आलम्भन करके हिंसाके विहित होनेसे "न हिंस्यात् सर्वभूतानि" यह निषेधशास्त्र यहाँ प्रवृत्त नहीं होता है ।

÷ इसकी इस प्रकारकी उपासनाका ऐतरेयकोनिषत्में वर्णन है, कि-"एतं ह्येव बह्वृचा महत्युक्थे मीमांसन्ते । एतमग्नावध्वर्यवः । एतं महाव्रते छन्दोगाः ।-बह्वृच इसीकी महा उक्थमें मीमांसा करते हैं । अध्वर्यु अग्निमें इसीको करते हैं और छन्दोग महाव्रतमें इसीको करते हैं" (ऐतरेय आरण्यक ३ । २ । ३)।

उपनिषत् प्रतिपाद्य विराडात्मारूपसे उपासनारूप अश्वमेध + ये सब राजसूय आदि उच्छिष्यमाण निष्प्रपञ्च ब्रह्ममें वा तादात्म्य से भाव्यमान ओदनमें समाश्रित हैं । और जीवबर्हिःयाग, तथा देवताओंकी विशिष्टतृप्ति करने वाला मदिन्तम नामक सोमयाग भी उसी उच्छिष्टमें समाश्रित हैं ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्दसा सह ।
उत्सन्ना यज्ञाः सत्राण्युच्छिष्टेधि समाहिताः ॥८॥

अग्निऽआधेयम् । अथो इति । दीक्षा । कामऽप्रः । छन्दसा । सह । उत्ऽसन्नाः । यज्ञाः । सत्राणि । उत्ऽशिष्टे । अधि । सम्ऽआहिताः

अग्न्याधेयम् अग्नयो गार्हपत्यादयो यस्मिन् कर्मणि आधीयन्ते तद् अग्न्याधेयम् । अथो अग्न्याधानानन्तरमेव सोमयागस्य या दीक्षा दीक्षणीयेष्ट्यादिरूपा कामप्रच्छन्दसा कामान् अभिलषितान् फलविशेषान् प्राति यजमानस्य पूरयतीति कामप्रम् । ❀ प्रा पूरणे । “आतोनुपसर्गे कः” इति कप्रत्ययः ❀ । तादृशेन छन्दसा

+ अश्वमेधके विषयमें बृहदारण्यक १ । १ । १ में कहा है, कि–“उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः ।–यह उषा ही पवित्र अश्व का शिर है” । इस प्रकार जो उपनिषत्में अश्वमेधके अंग अश्वकी विराड्रूपसे जो उपासना कही है वही यहाँ विवक्षित है । इसी बातको बृहदारण्यक उपनिषत् १ । २ । ७ में कहा है, कि–“तावेतावर्काश्वमेधौ ।–वही ये अर्क और अश्वमेध यज्ञ है”॥ इसी बातको तैत्तिरीयसंहिता वाले भी कहते हैं, कि–“अर्को वा एष यद् अग्निः । असावादित्योश्वमेधः ।–जो अग्नि है यही अर्क है और जो आदित्य हैं यही अश्वमेध है” ॥

गायत्रीत्रिष्टुबादिना सवननिष्पादकेन सह । उत्सन्नयज्ञाः इदानीं दुरधिगमतया अनुष्ठानाभावात् लुप्तप्राया यज्ञा उत्सन्नयज्ञा इत्युच्यन्ते । तानेव निर्दिशति सत्त्राणीति । सीदन्ति एषु बहवो यजमानाः कर्तृत्वेनेति बहुकर्तृकाः सोमयागाः सत्त्राणि उच्यन्ते । श्रूयते हि । "चतुर्विंशतिपरमाः सप्तदशावराः सत्त्रम् आसीरन्" इति । तानि च त्रयोदशरात्रप्रभृतीनि विश्वसृजाम् अयनान्तानि । न खल्विदानींतनानाम् अल्पमतीनाम् अल्पायुषां तदनुष्ठानं संभवतीति तेषाम् उत्सन्नयज्ञत्वम् । एवम् अनुक्रान्ता अग्न्याधेयादयः सर्वे यागा उच्छिष्टे ब्रह्मणि अधि समाहिताः समाश्रिताः ॥

जिसमें गार्हपत्य आदि अग्नियोंकी स्थापना की जाती है वह अग्न्याधेय, और यजमानकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले गायत्री त्रिष्टुप् आदि सवननिष्पादक छन्दोसहित अग्न्याधेयके अनन्तर ही सोमयागकी जो दीक्षणीयेष्टिरूप दीक्षा होती है वह दीक्षा, और इस समय कठिनतासे होसकने वाले अत एव अनुष्ठानके अभाववश लुप्त हुए उत्सन्न यज्ञ, कि–जिनमें बहुतसे यजमान कर्तारूपसे बैठते हैं वे बहुकर्तृक सोमयागात्मक सत्र ‡ ये सब यज्ञ उच्छिष्यमाण ब्रह्म वा तादात्म्यरूपसे भावित ओदनमें समाश्रित हैं८

नवमी ॥

अ॒ग्नि॒हो॒त्रं च॑ श्र॒द्धा च॑ वषट्का॒रो व्र॒तं तपः॑ ।
द॒क्षि॑णे॒ष्टं पू॒र्तं चोच्छि॒ष्टेधि॑ स॒माहि॑ताः ॥ ९ ॥

---

‡ श्रुतिमें कहा है, कि–"चतुर्विंशतिपरमाः सप्तदशावराः सत्रं आसीदन् ।–अधिकसे अधिक चौबीस और न्यूनसे न्यून सत्रह सत्रमें बैठते हैं" वे यज्ञ त्रयोदशरात्रसे विश्वसृजोंके अयन तक हैं । आज कलके अल्पमति अल्पायु पुरुषोंसे उनका अनुष्ठान नहीं बन सकता अत एव उनका उत्सन्नयज्ञत्व है ।

अग्निऽहोत्रम् । च । श्रद्धा । च । वषट्ऽकारः । व्रतम् । तपः ।
दक्षिणा । इष्टम् । पूर्तम् । च । उत्ऽशिष्टे । अधि । सम्ऽआहिताः

अग्नये होत्रं होमः अस्मिन् कर्मणि इति अग्निहोत्रम् "सायं प्रातरग्निहोत्रं जुहुयात्" इति [आप० ६. १५. १४] विहितम् । श्रद्धा श्रद्धानं तदनुष्ठानविषया आस्तिक्यबुद्धिः । ❀ "श्रदन्तरोरुपसर्गवद् वृत्तिरिष्यते" इति वचनात् "आतश्चोपसर्गे" इति अङ् । परस्परसमुच्चयार्थौ चकारौ ❀ । वषट्कारः याज्यान्ते हविःप्रदानाय प्रयुज्यमानो वौषट् इति शब्दः । व्रतम् । "नानृतं वदेत् । नास्य ब्राह्मणोनाश्वान् गृहे वसेत्" [तै० ब्रा० १. १. ४. २] इत्यादिशास्त्रविहितम् आहिताग्नेः प्रातिस्विकम् अनृतवदनवर्जनादिरूपं कर्म

अहिंसा सत्यम् अस्तेयं शौचम् इन्द्रियनिग्रहः ।

इत्येवमादिरूपं वर्ज्यसाधारणं च व्रतशब्देन विवक्षितम् । तपः शरीरसंतापकरं कृच्छ्रचान्द्रायणादिकम् । यद्वा "पयो ब्राह्मणस्य व्रतम् यवागू राजन्यस्य आमिक्षा वैश्यस्य" इति [तै० आ० २. ८. १.] दीक्षादिवसेषु देहयात्रार्थं विहितं पयःपानादिकं व्रतम् । तपो ब्रह्मचर्यं चित्तैकाग्र्यं वा ।

मनसश्चेन्द्रियाणां चैकाग्र्यं तप उच्यते ।

इति स्मरणात् । दक्षिणा "तस्य द्वादशशतं दक्षिणा" इत्यादिशास्त्रेण विहिता ऋत्विगानतये देयद्रव्यस्य क्लृप्तिः । तथा इष्टम् श्रुतिविहितं यागहोमादि कर्म । पूर्तम् स्मृतिपुराणाभिहितं वापीकूपतटाकदेवायतनारामादिनिर्माणम् । एते च अग्निहोत्रादयः सर्वे उच्छिष्टे उच्छिष्यमाणे प्रपञ्चासंस्पृष्टे ब्रह्मणि । ❀ अधिः सप्तम्यर्थानुवादी ❀ । समाहिताः समाश्रिताः ॥

"सायं प्रातरग्निहोत्रं जुहुयात् ।–सायंकाल और प्रातःकालके

समय अग्निहोत्रमें होम करे" इस आपस्तम्बश्रौतसूत्र ६।१५।१४ से विहित जिसमें अग्निमें होम किया जाता है वह अग्निहोत्र, कर्मोंके अनुष्ठानकी आस्तिक्यबुद्धि श्रद्धा, याज्यान्तमें हविः प्रदानके लिये प्रयोग किया जाने वाला शब्द वौषट्, "नानृतं वदेत्। नास्य ब्राह्मणोऽनाश्वान् गृहे वसेत्।–झूँठ न बोले, इसके घरमें बिना खाया हुआ (भूखा) ब्राह्मण न रहने पावे" इस तैत्तिरीय-ब्राह्मण १।१।४।२ आदि शास्त्रोंसे विहित आहिताग्निका प्रतिदिनका अनृतभाषणवर्जनादिक कर्म तथा "अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।–अहिंसा सत्य अस्तेय पवित्रता और इन्द्रियनिग्रह" आदि और जिसका सर्वसाधारणको त्याग करना चाहिये ये सब व्रतशब्दसे कहे जाने वाले कर्म व्रत, अथवा 'पयो ब्राह्मणस्य व्रतम् यवागू राजन्यस्य आमिक्षा वैश्यस्य॥—पय ब्राह्मणका व्रत है राजन्यको व्रतमें यवागू पीनी चाहिये और वैश्यको आमिक्षाका भक्षण करना चाहिये' इस तैत्तिरीय आरण्यक २।८।१ से विहित दीक्षादिवसोंमें देहयात्राके लिये विहित पयःपान आदि व्रत, "मनसश्चेन्द्रियाणां चैकाग्र्यं तप उच्यते।–मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता तप कहलाती है" इत्यादिसे विहित चित्तका एकाग्रतारूपी तप, "तस्य द्वादशशतं दक्षिणा'–उस यज्ञ की दक्षिणा बारह सौ है" इत्यादि शास्त्रसे विहित ऋत्विजको प्रसन्न करनेके लिये दी जाने वाली दक्षिणा, श्रुतिविहित यागादि कर्म इष्ट, स्मृति और पुराणोंसे विहित वावड़ी कूप तालाव देवालय बगीचे आदिका बनवानारूप पूर्त, ये सब अग्निहोत्र आदि प्रपञ्चसे अछूने उच्छिष्यमाण ब्रह्ममें वा तादात्म्यरूपसे भावित ओदनमें आश्रित हैं॥ ९॥

दशमी॥

एकरात्रो द्विरात्रः सद्यःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः।

ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥१०॥

एकऽरात्रः । द्विऽरात्रः । सद्यःऽक्रीः । प्रऽक्रीः । उक्थ्यः ।

आऽउतम् । निऽहितम् । उत्ऽशिष्टे । यज्ञस्य । अणूनि । विद्यया १०

एकां रात्रिं व्याप्य वर्तमानः सोमयाग एकरात्रः । तथा द्वे रात्री व्याप्य वर्तमानः सोमयागो द्विरात्रः । द्विरात्रप्रभृतयः सोमयागा अहीना इत्युच्यन्ते । "द्विरात्रप्रभृतय उपरिष्टाद् अतिरात्रा अहीना एकादशरात्रात्" इति सूत्रितत्वात् । अतो नैषां सत्रेऽन्तर्भाव इति पृथगुपादानम् । ❀ "अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः" इति समासान्तः अकारप्रत्ययः ❀ । सद्यस्क्रीः प्रक्रीः इत्युभौ एकाहौ सोमयागविशेषौ । सद्यस्तदानीमेव क्रीयते सोमोस्मिन्निति सद्यःक्रीः । प्रक्रीशब्दोपि इत्थं निर्वक्तव्यः । उक्थ्यः अग्निष्टोमसंस्थात ऊर्ध्वभावीनि त्रीणि स्तुतशस्त्राणि उक्थसंज्ञकानि यस्य सन्ति स सोमयाग उक्थ्यः । तद् एतद् एकरात्रादिकम् उच्छिष्टे उदीरितलक्षणे ओतम् आबद्धं निहितम् निक्षिप्तम् । वर्तत इत्यर्थः । इत्थं यज्ञस्य संबन्धीनि अणूनि सूक्ष्माणि रूपाणि विद्यया भावनया । तत्रैव कारणभूते ब्रह्मणि निहितानीत्यर्थः ॥

इति चतुर्थेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

एक रात्रिमें होने वाला सोमयाग एकरात्र, तथा जो सोमयाग दो रात्रियोंमें होता है वह द्विरात्र ‡, जिसमें तत्काल ही सोमका

---

‡ द्विरात्र आदि सोमयाग अहीन कहलाते हैं "द्विरात्रप्रभृतय उपरिष्टाद् अतिरात्रा अहीना एकादशरात्रात् ।–द्विरात्रसे लेकर एकादशरात्र तकके सोमयाग अहीन कहलाते हैं" अतः इनका सत्रोंमें अन्तर्भाव न होनेसे पृथक् वर्णन किया है ॥

क्रयण होता है वह सद्यःक्री एकाह सोमयाग, और जिसमें सोम का प्रकृष्टरूपसे क्रयण होता है वह प्रक्री एकाह सोमयाग, जिसमें अग्निष्टोम संस्थासे आगे तीन उक्थसंज्ञक उक्थ स्तुत शस्त्र (स्तुति) होते हैं ऐसा उक्थ नामक सोमयाग, ये सब उच्छिष्टमें बँधे हुए रहते हैं इसी प्रकार यज्ञके सूक्ष्मरूप भी विद्या अर्थात् भावनासे कारणभूत ब्रह्ममें ही स्थित हैं ॥ १० ॥ (१९)

चतुर्थे अनुवाके प्रथम सूक्त समाप्त ॥

द्वितीयसूक्ते प्रथमा ॥

चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह ।
षोडशी सप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते
हिताः ॥ ११ ॥

चतुःऽरात्रः । पञ्चऽरात्रः । षट्ऽरात्रः । च । उभयः । सह ।
षोडशी । सप्तऽरात्रः । च । उत्ऽशिष्टात् । जज्ञिरे । सर्वे । ये ।
यज्ञाः । अमृते । हिताः ॥ ११ ॥

चतसृभी रात्रिभिरावर्त्यमानः सोमयागश्चतूरात्रः । एवं पञ्चरात्रषड्रात्रसप्तरात्रा व्याख्येयाः । उभय इत्यनेन चतूरात्रादीनां द्विगुणितत्वं विवक्षितम् । उभौ चतूरात्रलक्षणौ अवयवावस्य सः अष्टरात्र उभयः । एवं पञ्चरात्रो द्विगुणितो दशरात्रो भवति । षड्रात्रो द्विगुणितो द्वादशरात्र इत्येवम् अवगन्तव्यम् । सहशब्द एतेषां साहित्यम् आचष्टे । षोडशी उक्थ्यसंस्थात उपरि षोडशं षोडशसंख्यापूरकं स्तोत्रं शस्त्रं च यस्यास्ति स सोमयागः षोडशी । तन्निर्वचनम् एवम् आम्नायते । "यद्ध वात्र षोडशं स्तोत्रं षोडशं शस्त्रं तेन षोडशी । तत् षोडशिनः षोडशित्वम्" इति [तै० सं०

६. ६. ११. १]। ये च अन्ये यज्ञा अमृते हिताः अमृतलक्षणफलजनने समर्थाश्चतूरात्रादयः सर्वे ते यज्ञा उच्छिष्टात् ब्रह्मौदनोच्छेषणाद् उच्छिष्यमाणात् जगत्कारणाद् ब्रह्मण एव वा जज्ञिरे जाता बभूवुः। ❀ जनी प्रादुर्भावे। "गमहन०" इति उपधालोपः। "द्विर्वचनेचि" इति स्थानिवत्त्वात् साकस्य द्विर्वचनम् ❀ ॥

चार रात्रियोंमें पूर्ण होने वाला चतूरात्र, पञ्चरात्र, षड्रात्र और इनके दुगुनेके साथ अर्थात् अष्टरात्र दशरात्र, द्वादशरात्र, और उक्थसंस्थाके अनन्तर जिनमें सोलह स्तोत्र और शस्त्र होते हैं वह षोडशी + सोमयाग, सप्तरात्र—ये तथा अन्य अमृत-रूप फल देनेमें समर्थ यज्ञ भी ब्रह्मौदनके उच्छेषणसे उच्छिष्यमाण उच्छिष्टसे वा जगत्-कारण ब्रह्मसे ही प्रादुर्भूत हुए हैं ॥ ११ ॥

द्वितीया ॥

प्रतीहारो निधनं विश्वजिच्चाभिजिच्च यः ।
साह्नातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोपि तन्मयि ॥ १२ ॥

प्रतिऽहारः । निऽधनम् । विश्वऽजित् । च । अभिऽजित् । च । यः ।
साह्नऽअतिरात्रौ । उत्ऽशिष्टे । द्वादशऽअहः । अपि । तत् । मयि १२

उद्गीथभक्त्यनन्तरभाविनी प्रतिहर्त्रा उच्यमाना साम्नश्चतुर्थी

+ तैत्तिरीयसंहिता ६ । ६ । ११ । १ में कहा है, कि–"यद्वात्र षोडशं स्तोत्रं षोडशं शस्त्रं तेन षोडशी । तत् षोडशिनः षोडशत्वम् ॥–क्योंकि–इसमें सोलह स्तोत्र और सोलह शस्त्र (स्तुति का एक भेद) होते हैं, इसीलिये ये षोडशी याग कहलाता है । यही षोडशीका षोडशित्व है" ॥

भक्तिः प्रतिहारः। ❀ “उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्” इति सांहितिको दीर्घः ❀। येन भागेन साम परिसमाप्यते तन्निधनम् तच्च सर्वैरुद्गातृभिर्वक्तव्यम्। विश्वजिदभिजितौ द्वौ सोमयागौ अग्निष्टोमसंस्थौ। साह्नातिरात्रौ। एकेन अह्ना समाप्यमानः सवनत्रयात्मकः सोमयागः साह्नः। रात्रिम् अतीत्य वर्तत इति अतिरात्रः एकोनत्रिंशत्स्तुनशस्त्रवान् सोमयागः। एते प्रतिहारादयः उच्छिष्टे ब्रह्मणि परिकल्पिताः। द्वादशाहोऽपि। द्वादशानाम् अह्नां समाहारो यस्मिन् क्रतौ स क्रतुर्द्वादशाहः। स च सत्राहीनात्मकः। सोपि तस्मिन् ब्रह्मणि आश्रितः। ❀ “राजाहःसखिभ्यः०” इति टच् समासान्तः। “न संख्यादेः समाहारे” इति अह्नादेशाभावः ❀। यद् एतद् अनुक्रान्तं यज्ञजातं तत् सर्वं मयि भवत्विति प्रार्थना अवगन्तव्या॥

उद्गीथभक्तिके अनन्तर होने वाली प्रतिहर्ताके द्वारा उच्चारित सामकी चौथी भक्ति प्रतिहार कहलाती है। जिस भागसे सामको समाप्त किया जाता है वह निधन कहलाता है (उसका सब उद्गाताओं को उच्चारण करना चाहिये)। विश्वजित् और अभिजित् नामक दो सोमयाग अग्निष्टोमसंस्थ हैं। एक दिनमें पूर्ण होने वाला तीन सवनका सोमयाग साह्न कहलाता है। और जिसमें रात्रि भरसे अधिक समय लगता है वह उन्तीस स्तुन और शस्त्र वाला सोमयाग अतिरात्र कहलाता है। ये प्रतिहार आदि सब उच्छिष्ट ब्रह्म में समाहित हैं। बारह दिनमें होने वाला अहीनात्मक सत्र द्वादशाह कहलाता है वह भी उस ब्रह्ममें आश्रित है। ये सब यज्ञ मुझमें होवें-ऐसी प्रार्थना है॥ १२ ॥

तृतीया ॥

सूनृता संनतिः क्षेमः स्वधोर्जामृतं सहः।

उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः कामाः कामेन तातृपुः ॥१३॥

सूनृता । सम्ऽनतिः । क्षेमः । स्वधा । ऊर्जा । अमृतम् । सहः ।

उत्ऽशिष्टे । सर्वे । प्रत्यञ्चः । कामाः । कामेन । ततृपुः ॥१३॥

सूनृता प्रियसत्यात्मिका वाक् । संनतिः फलस्य नतिः उपनतिः । तस्य उपनतस्य फलस्य परिरक्षणं क्षेमः । स्वधा पितॄणां संबन्धिनी तृप्तिकरी । यद्वा अन्ननामैतत् । सर्वप्राण्युपभोग्यम् अन्नम् । ऊर्जा प्राणस्य स्थापकं बलकरम् अन्नम् । ❀ ऊर्ज बलप्राणनयोः । अस्मात् पचाद्यच् ❀ । अमृतम् देवोपभोग्यम् अमृतत्वप्रापकं पीयूषम् । सहः पराभिभवनक्षमं बलम् । एते सर्वे कामाः काम्यमानाः फलविशेषा उच्छिष्टे ब्रह्मणि आश्रिताः प्रत्यञ्चः आत्माभिमुखम् अञ्चन्तः प्राप्नुवन्तः कामेन काम्यमानेन अभिलषितफलेन तातृपुः यजमानं तर्पयन्ति प्रीणयन्ति । ❀ तृप प्रीणने । "छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" इति वर्तमाने लिट् ❀ ॥

प्रिय और सत्य वाणी सूनृता, फलकी उपनति संनति, उस उपनत (प्राप्त) हुएकी रक्षा क्षेम, पितरोंको तृप्त करने वाली स्वधा, प्राणका स्थापक बलप्रद अन्न, देवताओंका उपभोग्य अमृतत्व देने वाला पीयूष अमृत, दूसरोंको दबानेका बल सहः । ये सब अभिलाषा करने योग्य फल संसारप्रपञ्चसे अस्पृष्ट ब्रह्ममें आश्रित हैं । ये आत्माके अभिमुख करते हुए अभिलषित फलसे यजमानको तृप्त करते हैं ॥ १३ ॥

चतुर्थी ॥

नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेधि श्रिता दिवः ।
आ सूर्यो भात्युच्छिष्टेहोरात्रे अपि तन्मयि ॥ १४ ॥

नव । भूमीः । समुद्राः । उत्ऽशिष्टे । अधि । श्रिताः । दिवः ।
आ । सूर्यः । भाति । उत्ऽशिष्टे । अहोरात्रे इति । अपि । तत् । मयि

नव भूमीः नवखण्डात्मिकाः पृथिव्यः । समुद्राः सप्तसंख्याकाः । दिवः द्युलोका उपरितनाः । उच्छिष्टे अधि उच्छिष्यमाणे ब्रह्मणि श्रिताः आश्रिताः । सूर्यश्चायम् उच्छिष्टे उच्छिष्यमाणे स्वप्रकाशे परब्रह्मणि आश्रितः सन् आ भाति आसमन्ताद् दीप्यते । "तस्य भासा सर्वम् इदं विभाति" इति श्रुतेः [क० व० ५. १५] । अहोरात्रे अपि तद् आश्रित्य आभातः । तद् उक्तं सर्वं मयि भवत्विति ॥

नौ खण्ड वाली भूमि, सात समुद्र, ऊपरके द्युलोक, ये सब उच्छिष्यमाण ब्रह्ममें आश्रित हैं । यह सूर्यदेव भी उच्छिष्यमाण स्वप्रकाश परब्रह्ममें आश्रित होकर चारों ओर दमकते हैं ‡ । दिन रात्रि भी उसीका आश्रय लेकर दमकते हैं । ये सब मुझमें होजावें ॥ १४ ॥

पञ्चमी ॥

उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः ।
बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता ॥१५॥

उपऽहव्यम् । विषुऽवन्तम् । ये । च यज्ञाः । गुहा । हिताः ।
बिभर्ति । भर्ता । विश्वस्य । उत्ऽशिष्टः । जनितुः । पिता १५

उपहव्यम् एतत्संज्ञं सोमयागम् । विषूवन्तम् । गवामयनाख्यस्य संवत्सरसत्त्रस्य मासषट्कात्मकयोः पूर्वोत्तरपक्षयोर्मध्ये एकविंशस्तोमकोनुष्ठेयः सोमयागो विषूवान् तम् । ये चान्ये यज्ञा गुहा

---

‡ कठोपनिषत् ५ । १५ में कहा है, कि—"तस्य भासा सर्वं इदं विभाति ।—उसकी कान्तिसे यह सब दमक रहा है" ।

हिताः गुहायां निगूढा अज्ञायमाना वर्तन्ते तान् सर्वान् यज्ञान् अयम् उच्छिष्टः उच्छिष्यमाण ओदनः परमात्मा वा बिभर्ति धारयति पोषयति वा । कीदृशः स इति विशेष्यते । विश्वस्य सर्वस्य जगतो भर्ता । जनितुः जनयितुः स्वजनकस्य सर्वयज्ञानुष्ठातुः पिता पुण्यलोके तस्योत्पादकः । परमात्मपक्षे तु लोके यो जनयिता तस्य सर्वस्यापि पिता । सर्वे जनयितारोपि अस्मात् प्रथमम् उत्पद्य ततः स्वकार्यं जनयन्तीत्यर्थः । ततः सर्वकारणकारणभूत इति भावः ॥

उपहव्य नामक सोमयागको सम्वत्सरसत्र गवामयनके छः छः मासके पूर्व और उत्तर पक्षके मध्यमें जो एकविंश स्तोमोंसे अनुष्ठित होता है उस सोमयाग विषूवान्को, और जो यज्ञ अज्ञात पड़े हुए हैं उन सब यज्ञोंको यह उच्छिष्यमाण ओदन वा परमात्मा पुष्ट वा धारण करता है वह तादात्म्योपलक्षित ओदन सब जगत्का भरण करने वाला है और सबयज्ञके अनुष्ठाता अपने जनकका पिता है अर्थात् उनको पुण्यलोकमें उत्पन्न करने वाला है (परमात्माके पक्षमें यह अर्थ होगा, कि-) लोकमें जो उत्पादक है वह उसका ही उत्पादक है-पिता है । अर्थात् सब उत्पन्न करने वाले भी पहिले इससे उत्पन्न होकर फिर अपने कार्यको उत्पन्न करते हैं अत एव यह सब कारणोंका भी कारण है ॥ १५ ॥

षष्ठी ॥

पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसोः पौत्रः पितामहः ।
स क्षियति विश्वस्येशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्यः ॥ १६

पिता । जनितुः । उत्ऽशिष्टः । असोः । पौत्रः । पितामहः ।
सः । क्षियति । विश्वस्य । ईशानः । वृषा । भूम्याम् । अतिऽघ्न्यः ॥

उच्छिष्टः हुतावशिष्ट ओदनः जनितुःजनयितुः स्वोत्पादकस्य पिता लोकान्तरे दिव्यशरीरस्य उत्पादकः। तथा असोः प्राणस्य पौत्रः। प्राणचलनात् शरीरस्य चलनं तेन च ओदनस्य पाक इति व्यवधानापेक्षया पौत्रत्वम्। तथा तस्यैव प्राणस्य अयं पितामहः। भाविस्वर्गभोगयोग्यस्य शरीरस्य तावद् अयं पिता। तस्य शरीरोत्पत्त्यनन्तरं तत्र प्राणसंचार इति भाविशरीरव्यवधानाद् भाविनः प्राणस्य अयं परंपरया उत्पादक इति पितामहत्वम् ॥ "अथात आदेशो नेति" [बृ० आ० २. ३. ११] इति दृश्यप्रपञ्चनिषेधावधित्वेन उच्छिष्यमाणः परमात्मा यदा उच्छिष्टशब्दार्थः तदा एवं योजना। जनितुर्जनयितुः उत्पादकस्य प्राणिजातस्य उच्छिष्यमाणः परमात्मा पिता। स्वस्वकार्यम् उत्पादयतां सर्वेषाम् अयम् आद्यस्रष्टेत्यर्थः। तथा असोः प्राणस्य प्रथमसृष्टस्य हिरण्यगर्भात्मनः पौत्रः। पुत्रश्चतुर्मुखो ब्रह्मा तत्सृष्टा देवादयः पौत्राः। तदात्मना परमात्मैव अवस्थित इत्यर्थः। तत्र यः पितामहो हिरण्यगर्भः तस्य च परमात्मनश्च वास्तवभेदाभावात् पितामहत्वमपि विज्ञेयम्। एवंभूतः स उच्छिष्टः विश्वस्य सर्वस्य जगत ईशानः ईश्वरो भवन् वृषा कामानां वर्षिता अतिघ्न्यः अतिक्रान्तहननः सन् भूम्याम् पृथिव्यां क्षियति निवसति। सर्वप्राणिशरीरेषु वर्तते ॥

होमनेसे बचा हुआ अत एव उच्छिष्ट कहाने वाला यह ओदन अपने उत्पादकका भी उसको दूसरे लोकमें दिव्य शरीरसे सम्पन्न करके उत्पन्न करने वाला होनेसे उसका पिता है। प्राणके चलनसे शरीरका चलन होता है और शरीरके चलनेसे ओदनका पाक होता है इस प्रकार यह ओदन प्राणका पौत्र है। और आगेके स्वर्गके भोगके योग्य शरीरका यह पिता है और उस शरीरकी उत्पत्तिके अनन्तर ही प्राणका सञ्चार होता है अत एव यह प्राणका पितामह है।। "अथात आदेशो नेति नेति" इस बृहदा-

रण्यक २ । ३ । ११ के अनुसार दृश्यप्रपञ्चके निषेधकी अवधिरूपसे बचा हुआ परमात्मा जब उच्छिष्ट शब्दका अर्थ होता है उस पक्षमें यह अर्थ होगा, कि–) उत्पादक प्राणियोंका उच्छिष्यमाण परमात्मा ही पिता है, तात्पर्य यह है, कि–अपने २ कर्मको उत्पन्न करने वाले सबका यह आद्यस्रष्टा है । प्रथमसृष्ट हिरण्यगर्भात्मक प्राणका यह पौत्र है, पुत्र चतुर्मुख ब्रह्मा हुए और उनके रचे हुए देवता आदिक पौत्र हुए तात्पर्य यह है, कि–परमात्मा ही उनके रूपमें स्थित हैं । इनमें जो पितामह हिरण्यगर्भ हैं उनका और परमात्माका वास्तवमें अभेद है अतएव वह पितामह भी है । ऐसा वह उच्छिष्ट सब जगत्का ईश्वर रहता हुआ, कामनाओंकी वर्षा करता हुआ और हनन न करता हुआ पृथ्वीमें रहता है अर्थात् सब प्राणियोंके शरीरमें रहता है ॥ १६ ॥

सप्तमी ॥

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च ।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥ १७ ॥

ऋतम् । सत्यम् । तपः । राष्ट्रम् । श्रमः । धर्मः । च । कर्म । च ।
भूतम् । भविष्यत् । उत्ऽशिष्टे । वीर्यम् । लक्ष्मीः । बलम् । बले ॥

ऋतम् मनसा यथार्थसंकल्पनम् । सत्यम् वाचा यथार्थभाषणम् । तपः शरीरसंतापकरो व्रतोपवासादिनियमविशेषः । राष्ट्रम् राज्यम् । श्रमः शान्तिः शब्दादिविषयोपभोगस्य उपरतिः । धर्मः तज्जन्यः अपूर्वविशेषः । कर्म वर्णाश्रमानुसारेण विहितं यागदानहोमादि । भूतम् उत्पन्नं जगत् । भविष्यत् उत्पत्स्यमानम् । एतत् सर्वम् उच्छिष्टे ब्रह्मणि तदात्मके ओदने वा कार्यत्वेन नित्यम् आश्रितम् तथा वीर्यम् सामर्थ्यम् । लक्ष्मीः सर्ववस्तुसंपत्तिः ।

बलम् सर्वकर्मनिर्वर्तनक्षमं शरीरगतं सामर्थ्यं बले बलवति तस्मिन् उच्छिष्टे । वर्तन्त इत्यर्थः ॥

मनसे यथार्थ संकल्प करना ऋत कहलाता है वह ऋत, वाणीसे यथार्थ कथनरूप सत्य, शरीरको संताप देने वाला व्रत उपवास और नियमरूप तप, राज्य, शब्द आदि विषयोंके उपभोगकी उपरति श्रान्ति श्रम, उससे उत्पन्न होने वाला अपूर्व-धर्म, वर्णाश्रमके अनुसार किया हुआ याग दान होम आदि कर्म, उत्पन्न हुआ जगत्–भूत, उत्पन्न होने वाला जगत् भविष्यत्, ये सब उच्छिष्ट ब्रह्ममें वा तदात्मक ओदनमें कार्यरूपसे नित्य आश्रित हैं । तथा शक्ति, सब वस्तुओंकी भली प्रकार प्राप्ति सम्पत्ति, और सब कार्योंको पूर्ण करनेकी शक्तिरूप शरीरगत बल ये सब उस बलवान् ब्रह्ममें समाश्रित हैं ॥ १७ ॥

अष्टमी ॥

समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः ।
संवत्सरोध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥ १८ ॥

सम्ऽऋद्धिः । ओजः । आऽकूतिः । क्षत्रम् । राष्ट्रम् । षट् । उर्व्यः ।
सम्ऽवत्सरः । अधि । उत्ऽशिष्टे । इडा । प्रऽएषाः । ग्रहाः । हविः १८

समृद्धिः इष्टफलस्य अभिवृद्धिः । ओजः शारीरबलम् अष्टमो धातुः । आकूतिः इष्टफलविषयः संकल्पः । क्षत्रम् क्षात्रं तेजः । राष्ट्रम् क्षत्रधर्मेण परिपालनीयं राज्यम् । षट् षट्संख्याका उर्व्यः । ताश्च मन्त्रान्तरे परिगण्यन्ते । "षण्मोर्वीरंहसस्पान्तु द्यौश्च पृथिवी चाहश्च" रात्रिश्चापश्चौषधयश्च इति [आश्व १. २. १] । तथा संवत्सरः द्वादशमासात्मकः कालः । इडा नाम देवता यस्याः प्रीतये यज्ञेषु हुतशिष्टात् पुरोडाशादेर्भागोवदीयते । प्रैषाः कर्मसु

ऋत्विजां प्रेरका मन्त्राः । ग्रहाः वायव्यैर्गृह्यमाणा ऐन्द्रवायवादयः सोमाः । हविश्चरुपुरोडाशादिलक्षणम् । एतत् सर्वम् उच्छिष्टे अधि उच्छिष्यमाणे ब्रह्मणि आधारे । वर्तत इत्यर्थः ॥

इष्ट फलकी वृद्धि-समृद्धि, शरीरका बल अष्टम धातुरूप ओज, इष्टफल विषयक संकल्प-आकूति, क्षात्र तेज, क्षत्रधर्मसे पालन करने योग्य राज्य-राष्ट्र, और आश्वलायन श्रौतसूत्र १ । २ । १ में कही हुई "षण्मोर्वीरंहसस्पान्तु द्यौश्च पृथिवी चाहश्च रात्रिश्चापश्चौषधयश्च ।-द्यौ पृथिवी दिन रात्रि जल और औषधियें ये छः उर्वियें मेरी रक्षा करें" छः उर्वियें तथा बारह मास वाला काल सम्वत्सर, जिसकी प्रीतिके लिये होमनेसे बचा हुआ पुरोडाश आदिका भाग दिया जाता है वह इडा देवता, ऋत्विजोंको कर्ममें प्रेरित करने वाले मन्त्र प्रैष, वायव्योंसे गृह्यमाण ऐन्द्रवायवादि सोमरूप ग्रह, चरु पुरोडाशादिरूप हवि, ये सब उच्छिष्यमाण ब्रह्मात्मक आधारमें रहते हैं ॥ १८ ॥

नवमी ॥

चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः ।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास्तदिष्टयः ॥ १९ ॥

चतुःऽहोतारः । आप्रियः । चातुःऽमास्यानि । निऽविदः ।
उत्ऽशिष्टे । यज्ञाः । होत्राः । पशुऽबन्धाः । तत् । इष्टयः ॥१९॥

चतुर्होतारः चतुर्होतृसंज्ञका मन्त्राः "चित्ति स्रुक्" इत्याद्याः पञ्चानुवाकास्तैत्तिरीयके [तै० आ० ३. १-५] समाम्नाताः । यद्यपि तेषां दशहोता चतुर्होता [पञ्चहोता] षड्ढोता सप्तहोतेति क्रमेण संज्ञा तथापि ते सर्वे चतुर्होतृसंज्ञयैवोच्यन्ते । तथा च तत्रैव होतृविध्यवसाने श्रूयते । "त्वं वै मे नेदिष्ठं हूतः प्रत्यश्रौषीः । त्वं

वै नानाख्यातार इति । तस्मान्नु हैनांश्चतुर्होतार इत्याचक्षते" इति [तै० ब्रा० २. ३. ११. ४] । आप्रियः पशुयागसंबन्धिनां प्रयाजानां याज्याः । श्रूयते हि तन्नामनिर्वचनम् । "आप्रीभिराप्नुवन् तद् आप्रीणाम् आप्रित्वम्" इति [तै० ब्रा० २. २. ८. ६] । भगवान् आश्वलायनोपि सूत्रयति स्म । "एकादश प्रयाजाः । तेषां प्रैषाः । प्रथमं प्रैषसूक्तम् । अध्वर्युप्रेषितो मैत्रावरुणः प्रैष्यति । प्रैषैर्होतारम् । होता यजत्याप्रीभिः प्रैषसलिङ्गाभिः" इति [आश्व० ३. २. १-५] । चातुर्मास्यानि चतुर्षु मासेषु क्रियमाणानि वैश्वदेववरुणप्रघाससाकमेधशुनासीरीयाख्यानि चत्वारि पर्वाणि "अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति" इति [श० प० २. ६. ३. १, आप० ८. १. १] श्रुत्या विहितानि । निविदः स्तोतव्यगुणप्रकर्षनिवेदनपरा मन्त्राः "अग्निर्देवेद्धः । अग्निर्मन्विद्धः । इन्द्रो मरुत्वान्त्सोमस्य पिबतु । इन्द्रो देवः सोमं पिबतु" [निवि० १. १-३] इत्येवमाद्याः । "निविद्भिर्न्यवेदयंस्तन्निविदां निवित्त्वम्" इति हि [ऐ० ब्रा० ३. ६] ब्राह्मणम् । तथा यज्ञा यागाः । होत्राः होतृप्रमुखाः सप्त वषट्कर्तारः । पशुबन्धाः अग्नीषोमीयसवनीयानुबन्ध्यात्मकाः सोमाङ्गभूताः पशुयागाः स्वतन्त्राश्च "वायव्यं श्वेतम् आलभेत" [तै० सं० २. १. १. १]इत्यादिना विहिताः । इष्टयोपि अङ्गभूताः स्वतन्त्राश्च । तद् एतद् अनुक्रान्तं चतुर्होतृप्रभृतिकं सर्वम् उच्छिष्टे उच्छिष्यमाणे ब्रह्मणि तदात्मके ओदने वा समाश्रित्य वर्तत इत्यर्थः ॥

तैत्तिरीय आरण्यक ३ । १–५ में "चित्ति स्रुक्" आदि पाँच अनुवाक कहे हैं उनके मन्त्र चतुर्होता कहलाते हैं [यद्यपि क्रमशः इनकी चतुर्होता पञ्चहोता षड्ढोता सप्त–होता आदि संज्ञायें सुनी जाती हैं तथापि ये सब चतुर्होता नामसे ही अभिहित होते हैं । तहाँ ही होतृविधिके अन्तमें श्रुतिमें कहा है, कि–"त्वं वै मेनेदिष्ठं

हूतः प्रत्यश्रौषीः । त्वं वै नानाख्यातार इति । तस्मान्नु हैनान् चतुर्होतार इत्याचक्षते" (तैत्तिरीयब्राह्मण २ । ३ । ११ । ४)] पशुयागके प्रयाजोंके याज्य आप्रिय † यथा "अक्षय्यं वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवन्ति ।– चातुर्मास्योंसे यजन करने वाले अक्षय पुण्यको पाते हैं" इस शतपथब्राह्मण २ । ६ । ३ । १ और आपस्तम्बश्रौतसूत्र ८ । १ । १ के अनुसार चारों मासोंमें किये जाने वाले वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध और शुनासीर नामक चार पर्व । स्तुतिके पात्रकी गुणाधिकताको दिखाने वाले मन्त्र निवित् ‡ । याग । होता आदि सात वषट्कर्ता । अग्नीषोमीय सवनीय अनुबन्ध्यात्मक सोमाङ्गभूत पशुयाग, तथा "वायव्यं श्वेतं आलभेत ।–वायुके लिये श्वेतका आलभन करे" तैत्तिरीयसंहिता २ । १ । १ आदिसे विहित स्वतन्त्र पशुयाग,

---

† आप्रिओंके नामका निर्वचन इस प्रकार है, कि–"आप्रीभिराप्नुवन् तद् आप्रीणां आप्रित्वम् ।–आप्रिओंसे प्राप्त किया यही आप्रिओंका आप्रित्व है" (तैत्तिरीयब्राह्मण २ ।२।८।६) । भगवान् आश्वलायनने भी सूत्र बनाया है, कि–'एकादश प्रयाजाः । तेषां प्रैषाः । प्रथमं प्रैषसूक्तम् । अध्वर्युप्रेषितो मैत्रावरुणः प्रैष्यति । प्रैषैर्होतारम् । होता यजत्याप्रीभिः प्रैषसलिङ्गाभिः ।–ग्यारह प्रयाज होते हैं, उनके प्रैष होते हैं, प्रथम प्रैषसूक्त होता है, अध्वर्युसे प्रेषितः मैत्रावरुण प्रैषोंसे होताको प्रेषित करता है । होता प्रैषसलिङ्ग आप्रिओंसे यजन करता है' (आश्वलायनश्रौतसूत्र ३।२।१–५)॥

‡ "अग्निर्देवेद्धः । अग्निर्मन्विद्धः । इन्द्रो मरुत्वान् सोमस्य पिबतु । इन्द्रो सोमं पिबतु" ये निवित् १ । १–३ आदिक मन्त्र निवित् कहलाते हैं । ऐतरेयब्राह्मण ३ । ९ में कहा है, कि–"निविद्भिर्न्यवेदयंस्तन्निविदां निवित्त्वम् ।–निविद् मन्त्रोंसे निवेदन करते हैं यही निविदोंका निवित्त्व है" ॥

स्वतन्त्र तथा अंगभूत इष्टियें। ये चतुर्होता आदि सब उच्छिष्यमाण ब्रह्ममें आश्रित हैं ॥ १९ ॥

दशमी ॥

अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह ।
उच्छिष्टे घोषिणीरापः स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही ॥२०॥

अर्धऽमासाः । च । मासाः । च । आर्तवाः । ऋतुऽभिः । सह ।
उत्ऽशिष्टे । घोषिणीः । आपः । स्तनयित्नुः । श्रुतिः । मही २०

अर्धमासाः पञ्चदशदिवसात्मकाः पक्षाः । मासाश्चैत्राद्याः । आर्तवाः तत्तदृतुसंबन्धिनः पदार्थविशेषाः । ऋतुभिः तैर्वसन्ताद्यैः सह । सर्व एते उच्छिष्टे समाश्रिताः । तथा घोषिणीः घोषिण्यः घोषयुक्ता आपः । स्तनयित्नुः स्तनयन् गर्जितं कुर्वन् मेघः । शुचिः शुद्धा मही महती भूमिः । एतेपि तस्मिन् उच्छिष्टे । समाश्रिता इत्यर्थः ॥

[इति] चतुर्थेऽनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

पन्द्रह दिवसरूप पक्ष, चैत्र आदि मास, वसन्त आदि ऋतुओं सहित सब ऋतुओंके पदार्थ आर्तव ये सब उच्छिष्टमें आश्रित हैं। घोषसम्पन्न जल गर्जना करता हुआ मेघ, पवित्र और विशाल भूमि, ये सब उच्छिष्टमें समाश्रित हैं ॥ २० ॥ (२०)

चतुर्थ अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त

तृतीयसूक्ते प्रथमा ॥

शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा ।
अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥२१॥

शर्कराः । सिकताः । अश्मानः । ओषधयः । वीरुधः । तृणा ।

अभ्राणि । विऽद्युतः । वर्षम् । उत्ऽशिष्टे । सम्ऽश्रिता । श्रिता २१

शर्कराः क्षुद्रपाषाणविशेषाः । सिकताः वालुकाः । अश्मानः पाषाणाः । ओषधयः व्रीहियवाद्याः । वीरुधः विरोहणशीला लताः । तृणा तृणानि गवादिभिरुपभोग्यानि । अभ्राणि उदकपूर्णा मेघाः । विद्युतस्तडितः । वर्षम् वृष्टिः । एते सर्वे उच्छिष्टे संश्रिताः समवस्थिताः । श्रिताः इति पुनरुक्तिरादरार्था । यद्वा ये च अन्ये संश्रिताः स्वाश्रयसमवेताः पदार्थास्ते सर्वे श्रिता इति ॥

क्षुद्र पाषाणरूप शर्करा, रेता, पत्थर, व्रीहि जौ आदि औषधि, विरोहणशील लतायें गौ आदिके खानेकी वस्तु तृण, जलपूर्ण मेघ, बिजलियें, ये सब उच्छिष्ट में आश्रित हैं और जो स्वाश्रयसमवेतपदार्थ हैं वे भी सब ब्रह्ममें ही आश्रित हैं ॥ २१ ॥

द्वितीया ॥

राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिर्व्याप्तिर्मह एधतुः ।
अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिश्चाहिता निहिता हिता ॥ २२ ॥

राद्धिः । प्रऽआप्तिः । सम्ऽआप्तिः । विऽआप्तिः । महः । एधतुः । अतिऽआप्तिः । उत्ऽशिष्टे । भूतिः । च । आऽहिता । निऽहिता । हिता ॥ २२ ॥

राद्धिः संसिद्धिः सम्यग् निष्पत्तिः । प्राप्तिः प्रेप्सितस्य फलस्य अधिगमः । समाप्तिः सम्यग् आप्तिः । व्याप्तिः विविधा आप्तिः । महः तेजः उत्सवो वा । एधतुः अभिवृद्धिः । अत्याप्तिः अतिक्रान्ता आप्ति । भूतिः समृद्धिः । सा च आहिता आभिमुख्येन स्थिता निहिता निक्षिप्ता । अत्र सर्वत्र उपसर्गवशाद् अर्थभेदोवगन्तव्यः । राद्ध्यादयः सर्वास्तस्मिन् उच्छिष्टे हिताः स्थिताः ॥

भली भाँति पूर्णरूपराद्धि, इष्ट फलकी प्राप्ति, भली प्रकार प्राप्ति-समाप्ति, अनेक प्रकारकी वस्तुओंकी प्राप्ति व्याप्ति, तेज वा उत्सव, अभिवृद्धि, अत्याप्ति, समृद्धि, ये सब उच्छिष्ट ब्रह्ममें आश्रित हैं ॥ २२ ॥

तृतीया ॥

यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२३॥

यत् । च । प्राणति । प्राणेन । यत् । च । पश्यति । चक्षुषा ।
उत्ऽशिष्टात् । जज्ञिरे । सर्वे । दिवि । देवाः । दिविऽश्रितः २३

यच्च प्राणिजातं प्राणेन प्राणवायुना प्राणति प्राणनव्यापारं करोति यद्वा प्राणेन घ्राणेन्द्रियेण प्राणति गन्धान् आजिघ्रति यच्च प्राणिजातं चक्षुषा चक्षुरिन्द्रियेण पश्यति नीलपीतादिकं साक्षात्करोति ते सर्वे प्राणिनः उच्छिष्टात् उच्छिष्यमाणाद् ब्रह्मणः सकाशात् जज्ञिरे । तथा दिविश्रितः द्युलोके स्थिताः । ❀ श्रिञ् सेवायाम् । "क्विप् च" इति क्विप् । "तत्पुरुषे कृति बहुलम्" इत्यत्र "हृदद्युभ्यां ङेरुपसंख्यानम्" इति अलुक् ❀ । ये च अन्ये दिवि द्युलोके वर्तमाना देवास्ते सर्वे उच्छिष्टाज्जज्ञिरे ॥

प्राणिसमूह जो प्राणवायुसे प्राणनव्यारपारको करता है, अथवा घ्राणेन्द्रियसे गन्धोंको सूँघता है । और प्राणी जो नेत्रेन्द्रियसे नील पीत आदिका साक्षात्कार करते हैं, ये सब उच्छिष्ट ब्रह्मसे प्रकट हुए हैं, जो देवता द्युलोकमें स्थित हैं और भी जो देवता द्युलोकमें वर्तमान हैं वे सब उच्छिष्टसे ही प्रादुर्भूत हुए हैं ।२३।

चतुर्थी ॥

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।

उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२४॥

ऋचः । सामानि । छन्दांसि । पुराणम् । यजुषा । सह ।
उत्ऽशिष्टात् । जज्ञिरे । सर्वे । दिवि । देवाः । दिविऽश्रितः २४

उच्छिष्टाज्जज्ञिर इति उत्तरोर्धर्चः अनुषज्यते । ऋचः पादबद्धा मन्त्राः । सामानि गीतविशिष्टा मन्त्राः । छन्दांसि गायत्र्युष्णिगादीनि चतुरुत्तराधिकानि सप्तसंख्याकानि । पुराणम् पुरातनवृत्तान्तकथनरूपम् आख्यानम् । यजुषा यजुर्मन्त्रेण सह उच्छिष्टाज्जज्ञिरे । शेषं पूर्ववत् ॥

पादबद्ध मन्त्र ऋक, गीतात्मक मन्त्र साम, गायत्री उष्णिक् आदि चार अक्षरोंसे अधिकके सात छन्द, पुरातन वृत्तान्तका वर्णन करने वाले पुराण, यजुर्वेदके मन्त्रों सहित उच्छिष्टसे ही प्रादुर्भूत हुए हैं और जो द्युलोकके आश्रयसे रहने वाले देवता हैं वे भी उच्छिष्टसे ही प्रादुर्भूत हुए हैं ॥ २४ ॥

पञ्चमी ॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्र१क्षितिश्च क्षितिश्च या ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२५॥

प्राणापानौ । चक्षुः । श्रोत्रम् । अक्षितिः । च । क्षितिः । च । या ।
उत्ऽशिष्टात् । जज्ञिरे । सर्वे । दिवि । देवाः । दिविऽश्रितः ।२५।

प्राणापानौ प्राणवृत्तिः अपानवृत्तिश्च । चक्षुः रूपदर्शनसाधनम् इन्द्रियम् । श्रोत्रम् शब्दग्रहणसाधनम् इन्द्रियम् । अक्षितिः क्षयाभावः । या च क्षितिः क्षयः । यद्वा अक्षितिः अक्षीयमाणा देवता । क्षितिः क्षयाभिमानिनी । एते सर्वे पदार्था उच्छिष्टाज्जज्ञिरे इति ॥

प्राणवृत्ति, और अपानवृत्ति, रूपदर्शनकी साधन नेत्रेन्द्रिय, शब्दग्रहणकी साधन कर्णेन्द्रिय, क्षयका अभाव, क्षय, द्युलोकमें स्थित देवता ये सब उच्छिष्टसे प्रादुर्भूत हुए हैं ॥ २५ ॥

षष्ठी ॥

आनन्दा मोदाः प्रमुदोभीमोदमुदश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२६॥

आऽनन्दाः । मोदाः । प्रऽमुदः । अभिमोद्ऽमुदः । च । ये ।
उत्ऽशिष्टात् । जज्ञिरे । सर्वे । दिवि । देवाः । दिविऽश्रितः २६

आनन्दाः विषयोपभोगजनिताः सुखविशेषाः । मोदाः विषयदर्शनजन्या हर्षाः । ❀ मुद हर्षे इत्यस्माद् भावे घञ् ❀। प्रकृष्टा मुदः प्रमुदः प्रकृष्टविषयलाभजन्या हर्षाः । ये च अभीमोदमुदः आभिमुख्येन वर्तमानो मोदः अभिमोदः । ❀ "उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्" इति दीर्घः ❀। अभिमोदेन मोदयन्ति हर्षयन्तीत्यभिमोदमुदः संनिहिताः सुखहेतवः पदार्थाः । ते सर्वे उच्छिष्टाज्जज्ञिरे इति ॥

विषयोपभोगजनित सुखरूप आनन्द, विषयदर्शनसे होनेवाला हर्ष मोद, श्रेष्ठ वस्तुके मिलनेसे होने वाला हर्ष प्रमुद, अभिमुख वर्तमान मोद होकर मोद देने वाले सुखहेतुक पदार्थ अभीमोदमुद, तथा स्वर्गमें रहने वाले सब दिविश्रित् देवता ये सब उच्छिष्ट ब्रह्मसे ही प्रकट हुए हैं ॥ २६ ॥

सप्तमी ॥

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२७॥

दे॒वाः । पि॒त॑रः । म॒नु॒ष्या॑ः । ग॒न्ध॑र्व॒ऽअ॒प्स॒र॒सः । च॒ । ये ।
उ॑त्ऽशिष्टात् । ज॒ज्ञि॒रे॒ । सर्वे॑ । दि॒वि । दे॒वाः । दि॒वि॒ऽश्रि॑तः २७

देवाः अष्टौ वसव एकादश रुद्रा इत्येवं गणशो वर्तमानाः। पितरः पितृलोकनिवासिनः पूर्वपुरुषाः। मनुष्याः मनोः सकाशाद् उत्पन्ना मनुष्यजात्याक्रान्ताः। ❀ "मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च" इति मनुशब्दाद् यत् प्रत्ययः षुगागमश्च। "तित् स्वरितः" इति स्वरितत्वम् ❀ । गन्धर्वाप्सरसः गन्धर्वाः विश्वावसुप्रभृतयः। अप्सरसः उर्वशीप्रभृतयः। ये च एते देवाद्या अनुक्रान्तास्ते सर्वे उच्छिष्टात् ब्रह्मौदनोच्छेषणाद् उच्छिष्यमाणाद् ब्रह्मणः सकाशाद् वा जज्ञिरे उत्पन्नाः। तथा दिवि द्युलोके वर्तमाना ये च अन्ये देवाः तथा दिविश्रितः दिवम् आश्रित्य वर्तमाना देवजनाः ते सर्वे उच्छिष्टाज्जज्ञिरे इति ॥

इति चतुर्थेऽनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

आठ वसु, ग्यारह रुद्र आदिक गणोंमें वर्तमान देव, पितृलोकनिवासी पूर्वपुरुष पितर, मनुजीसे उत्पन्न हुए मनुष्य-जातिरूप मनुष्य, विश्वावसु आदि गंधर्व, उर्वशी आदि अप्सरायें, और स्वर्गमें रहने वाले दिविश्रित् देवता ये सब उच्छिष्यमाण ब्रह्मसे ही प्रादुर्भूत हुए हैं ॥ २७ ॥

चतुर्थ अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (४८७) ॥

"यन्मन्युर्जायाम्" इत्यादिसूक्तत्रयम् अर्थसूक्तम्। अस्य सूक्तत्रयस्य ब्रह्मयज्ञजपे विनियोगः। अनेन च सूक्तत्रयेण षाट्कौशिकस्य शरीरस्य मध्ये आत्मत्वेन प्रविष्टं ब्रह्म उपदेक्ष्यन् उपलब्ध्यधिकरणभूतस्य तस्य शरीरस्य तत्साधनभूतानाम् इन्द्रियाणां च देवानां प्रश्नप्रतिवचनरूपेण उत्पत्तिम् अभिधित्सुस्तदुपायभूतां सृष्टिं प्रश्नप्रतिवचनाभ्याम् उपोद्घातयति "यन्मन्युः" इति त्र्यृचेन ॥

'यन्मृत्युर्जायाम्' इत्यादि तीन सूक्त एक ही प्रयोजनके कारण अर्थसूक्त कहलाते हैं। इस सूक्तत्रयका ब्रह्मयज्ञजपमें विनियोग होता है। सूक्तत्रयसे छः कोश वाले शरीरके मध्यमें आत्मत्वसे प्रविष्ट ब्रह्मका उपदेश देकर आत्माकी उपलब्धिके अधिकरणभूत उस शरीरकी और तत्साधनभूत इन्द्रियोंकी उत्पत्तिको देवताओंके प्रश्नोत्तररूपसे कहनेकी इच्छासे तदुपायभूता सृष्टिको प्रश्नप्रतिवचनोंके द्वारा "यन्मृत्युः" ऋचसे उपोद्घातित करते हैं।

तत्र प्रथमा ॥

यन्मन्युर्जायामावहत् संकल्पस्य गृहादधि ।
क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥ १ ॥

यत् । मन्युः । जायाम् । आऽअवहत् । सम्ऽकल्पस्य । गृहात् । अधि ।
के । आसन् । जन्याः । के । वराः । कः । ऊं इति । ज्येष्ठऽवरः। अभवत् ॥ १ ॥

स्वमहिमप्रतिष्ठस्य परब्रह्मणः सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिकाया मायाशक्तेश्च प्राणिकर्मपरिपाकजनितसंबन्धवशाज्जायमाना "सोकामयत बहु स्यां प्रजायेय" [तै० आ० ८. ६] इत्यादिश्रुतिप्रतिपाद्या या पारमेश्वरी सिसृक्षावस्था सा लौकिकविवाहत्वेन रूप्यते। यत् यदा मन्युः मन्यते सर्वं जानातीति मन्युः निरावरणज्ञान ईश्वरः। अत एव तस्य सर्वदेवतात्मकत्वम् आम्नायते। "मन्युर्भगो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो विश्ववेदाः" [तै० ब्रा० २. ४. १. ११] इति। ❀ मन ज्ञाने इत्यस्माद् औणादिको युप्रत्ययः ❀। स जायाम् आवहत् जायतेस्यां सर्वं जगद् इति

जाया सिसृक्षावस्थापन्ना पारमेश्वरी मायाशक्तिः । ताम् आभिमुख्यं प्रापयत् । भार्यात्वेन अभ्यमन्यतेत्यर्थः । लोके हि जाया कस्यचित् श्वशुरस्य गृहाद् आनीयते । तद् दर्शयति संकल्पस्येति । "सोकामयत बहु स्यां प्रजायेय" इति [तै० आ० ८. ६] प्राथमिक ईश्वरकृतः संकल्पः । तस्य गृहाद् आवासात् । तद्वशादेव हि एषा सिसृक्षावस्था समजायत इत्येवं व्यपदिश्यते । ❀ अधिः पञ्चम्यर्थानुवादी ❀ । तदा तस्मिन् जायाया आवहने जन्याः जनसम्बन्धिनो बान्धवा वधूवरपक्षीयाः के आसन् । सृष्टेः प्राक् कस्यचिदपि अभावाद् एवं प्रश्नः । के वा वराः कन्यावरणस्य कर्तारः । को नाम तस्मिन् समये ज्येष्ठवरः प्रधानभूतो वरः उद्वाहकर्ता अभवत् ॥

(अपनी महिमामें प्रतिष्ठित परब्रह्मसे और सत्त्वरजस्तमोगुणरूपा मायाशक्तिसे प्राणियोंकी कर्मपरिपाकके कारण जायमान जो, "सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय ।–उसने कामना की, कि–मैं बहुत होजाऊँ प्रजनन करूँ" इस तैत्तिरीय आरण्यक ८ । ६ आदिकी श्रुतियोंमें प्रतिपादित, पारमेश्वरी सिसृक्षावस्था रचना करनेकी इच्छाकी अवस्था–है उसका लौकिकविवाहरूपसे वर्णन किया जाता है, कि–) जब सबको जानने वाले निरावरणज्ञान ईश्वर † मन्युने जिसमें सब जगत् उत्पन्न होता है उस सिसृक्षा-

---

† मन्यु शब्द मन ज्ञाने धातुसे बना है "मन्यते सर्वं जानातीति मन्युः–जो सबको जानता है वह मन्यु है" । अर्थात् निरावरणज्ञान ईश्वर मन्यु शब्दका अर्थ है अत एव उसके सर्वदेवातात्मकत्वका वर्णन शास्त्रोंमें किया है, कि–"मन्युर्भगो मन्युरेवासदेवो मन्युर्होता वरुणो विश्ववेदाः ।–मन्यु ही भग है और मन्यु ही देवता था, मन्यु ही होता है और मन्यु ही विश्ववेदाः [सब को जानने वाला] है" (तैत्तिरीय ब्राह्मण २ । ४ । १ । ११)

वस्थासम्पन्न पारमेश्वरी मायाशक्ति जायाको संकल्पके घर ‡ से विवाहा था। उस समय सृष्टिसे पहिले किसीके भी न होने पर वरपक्ष और कन्यापक्षके सम्बन्धी कौन हुए थे और कन्याको वरण करने वाले कौन २ थे और इनमें प्रधान उद्वाहकर्ता कौन था?

द्वितीया ॥

तप॑श्चै॒वास्तां॒ कर्म॑ चा॒न्तर्म॑ह॒त्य॑र्ण॒वे ।
त आ॒सं॑ ज॒न्या॑स्ते व॒रा ब्रह्म॑ ज्येष्ठव॒रो॑ भवत् ॥ २ ॥

त॑पः । च॒ । ए॒व । आ॒स्ता॒म् । कर्म॑ । च॒ । अ॒न्तः । म॒ह॒ति । अ॒र्ण॒वे ।
ते । आ॒स॒न् । जन्या॑ः । ते । व॒राः । ब्रह्म॑ । ज्ये॒ष्ठ॒ऽव॒रः । अ॒भ॒व॒त् २

तस्मिन् सृष्टिसमये स्रष्टुः परमेश्वरस्य तपः स्रष्टव्यपर्यालोचनात्मकम् । "यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः" इति श्रुतेः [मु० १. १. ६]। तस्य कर्म च प्राणिभिरनुष्ठितं पुण्यापुण्यात्मकं सुखदुःखफलोन्मुखं परिपक्वं कर्म च आस्ताम् अभवताम् । एवकारेण तदुभयव्यतिरिक्तस्य सत्ता निवार्यते । तपःकर्मणी एव सम्यगुपकरणत्वेन तस्मिन् समये अवस्थिते इत्यर्थः । श्रूयते हि । "तपसा चीयते ब्रह्म" [मु० १. १. ८]। "स तपोतप्यत । स तपस्तप्त्वा इदं सर्वम् असृजत" इति [तै० आ० ८. ६]। तपःकर्मणोः सत्ताया आधारं निर्दिशति । महति प्रभूते अर्णवे समुद्रे प्रलयकालीने अन्तः मध्ये । ❀ "आपो वा इदम् अग्रे सलिलम्

---

‡ संसारमें जायाको किसी श्वशुरके घरसे लाया जाता है अत एव यहाँ संकल्पको श्वशुरके रूपमें दिखाया है। उस संकल्प का वर्णन "सोकामयत बहुस्यां प्रजायेय" इस तैत्तिरीयारण्यक ८। ६ की श्रुतिमें हैं ॥

आसीत्" इति हि [तै० ब्रा० १. १. ३. ५] ब्राह्मणम् । अर्णांसि उदकानि विद्यन्ते अस्मिन् इति अर्णवः । "अर्णसो लोपश्च" इति मत्वर्थीयो वकारः सलोपश्च ❀ । अनयोरेव तपःकर्मणोर्वस्त्वन्तराभावाद् व्यक्तिबाहुल्यबहुत्वम् उपचर्य कृतस्य प्रश्नस्य प्रतिवचनं त आसं जन्या इति । ❀ निर्दिश्यमानप्रतिनिर्दिश्यमानयोः एकताम् आपादयन्ति सर्वनामानि पर्यायेण तल्लिङ्गताम् उपाददत इति न्यायेन त इति प्रतिनिर्दिश्यमानापेक्षं पुंल्लिङ्गत्वम् ❀ । तास्तपःकर्मव्यक्तयो जन्याः विवाहप्रवृत्ता बन्धुजना आसन् । त एव वराः वरयितारश्च आसन् । यत् सिसृक्षावस्थं जगत्कारणं ब्रह्म मायाशक्तिरूपाया जायाया आवहने स एव ज्येष्ठवरः अभवत् । प्रधानभूत उद्वाहकर्ताभवद् इत्यर्थः ॥

उस सृष्टिके समय स्रष्टा परमात्माका रचने योग्यकी पर्यालोचनारूप तप था, (क्योंकि–मुण्डक उपनिषत् १ । १ । ६ की श्रुतिमें कहा है, कि–"यः सर्वज्ञः स सर्ववित् यस्य ज्ञानमयं तपः । जो ब्रह्म सर्वज्ञ है वह सर्ववित् है उसका तप ज्ञानमय तप है") और दूसरा उसका प्राणियोंसे अनुष्ठित पुण्यापुण्यरूप–सुख-दुःखफल देनेको उन्मुख परिपक्व कर्म था ये दो ही थे तीसरा कोई नहीं था अर्थात् तप और कर्म ही उस समय उपकरणरूपमें थे । (श्रुतिमें भी कहा है, कि–"तपसा चीयते ब्रह्म" मुण्डक १ । १ । ८ "स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा इदं सर्वं असृजत । उसने तप किया और तप करके इस सबकी रचना की ।" अब तप और कर्मकी सत्ताके आधारको दिखाते हैं, कि–) ये दोनों प्रलयकालीन महासमुद्रके भीतर थे (तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । १ । ३ । ५ में भी कहा है, कि-"आपो वा इदं अग्रे सलिलं आसीत् । यह जगत् पहिले जल ही था") ये तप और कर्म ही वरपक्ष और कन्यापक्षके विवाहमें लगे हुए बन्धु थे और ये ही वरयिता

(वराती) थे और जो सिसृक्षावस्थ जगत् कारण ब्रह्म है वह मायाशक्तिरूपा जायाको लाने वाला ज्येष्ठवर–उद्वाहकर्ता-था २ तृतीया ॥

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद् वदेत् ३

दश । साकम् । अजायन्त । देवाः । देवेभ्यः । पुरा ।
यः । वै । तान् । विद्यात् । प्रतिऽअक्षम् । सः । वै । अद्य ।
महत् । वदेत् ॥ ३ ॥

यद् ब्रह्म सशक्तिकम् अभवद् इत्युक्तं तस्मात् सकाशाद् देवेभ्यः अधिष्ठातृभ्यः अग्न्यादिभ्यः पुरा तेषां उत्पत्तेः प्रागेव दशसंख्याका देवाः दीव्यन्ति स्वस्वविषयं प्रकाशयन्तीति देवा ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि। यद्वा सप्त शीर्षण्याः प्राणा द्वौ अवाञ्चौ मुख्यः प्राण एक इति दश । अथ वा "प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रम्" इत्युत्तरत्र वक्ष्यमाणा दशसंख्याका देवाः साकम् सह अजायन्त । श्रूयते हि ।

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । इति [मु० २. १. ३] यो वै यः खलु उपासकः तान् देवान् प्रत्यक्षं विद्यात् अपरोक्षं जानीयात् स खलु विद्वान् अद्य इदानीं महत् देशकाल-कृतपरिच्छेदरहितं सर्वगतं ब्रह्म वदेत् उपदिशेत् ॥

(जिस ब्रह्मके सशक्तिक होनेका वर्णन पहिले किया है उस सशक्तिक ब्रह्मसे) अग्नि आदि अधिष्ठात्री देवताओंकी उत्पत्ति के पहिले अपने २ विषयको प्रकाशित करने वाले ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियरूप दश देवता प्रादुर्भूत हुए । वा दो कान दो नथुने दो नेत्र और एक मुख ये सात शिरके और एक मुख्य

प्राण तथा दो गौण प्राण इस प्रकार दश देवता प्रकट हुए हैं अथवा अगले मन्त्रमें प्रतिपादित प्राण आदि दश देवता प्रकट हुए हैं (मुण्डक उपनिषत् २ । १ । ३ में कहा है, कि-"एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च" ।) जिस उपासकने इन देवताओंको अपरोक्षरूपसे जान लिया हो वही विद्वान् पुरुष देश काल आदिके परिच्छेदसे रहित अत एव महत्-सर्वगत—ब्रह्मका उपदेश देसकता है ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ् मनस्ते वा आकूतिमावहन् ॥४॥

प्राणापानौ । चक्षुः । श्रोत्रम् । अक्षितिः । च । क्षितिः । च । या ।
व्यानऽउदानौ । वाक् । मनः । ते । वै । आऽकूतिम् । आ । अवहन्

हृदम्बुजमध्ये अवस्थितस्य क्रियाशक्त्यात्मकस्य मुख्यप्राणस्य प्राणापानाख्या वृत्तयः । चक्षुः दर्शनसाधनम् इन्द्रियम् । श्रोत्रम् शब्दग्रहणसाधनम् इन्द्रियम् । अक्षितिः अक्षीयमाणा ज्ञानशक्तिः । क्षितिः क्षीयमाणा निवासहेतुभूता वा क्रियाशक्तिः । ज्ञानशक्तिर्हि आत्मस्वरूपत्वेन नित्यत्वाद् न कदाचित् क्षीयते । क्रियाशक्तिस्तु अपवर्गसमये लिङ्गशरीरेण सह निवर्तत इति क्षितिशब्दाभिधेया । ❀ परस्परसमुच्चयार्थौ चकारौ ❀ । या एवंविधा द्विविधा शक्तिः । अस्तीत्यर्थः । व्यानोदानौ अन्नरसं सर्वासु नाडीषु विविधम् अनिति प्रेरयतीति व्यानः । उत् ऊर्ध्वम् अनिति उद्गारादिव्यापारं करोतीति उदानः । एते प्राणस्य द्वे वृत्ती । वाक् वदनसाधनम् इन्द्रियम् । मनः सर्वेन्द्रियानुग्राहकं सुखादिज्ञानसाधनम् अन्तःकरणम् । त एते प्राणापानादयो दश देवाः आकूतिम् पुरुषकृतं सं-

कल्पम् आवहन् आभिमुख्येन प्रापयन्ति । पुरुषस्य अभिमतम् अर्थं निष्पादयन्तीत्यर्थः ॥

हृदयकमलके मध्यमें स्थित क्रियाशक्तिरूप मुख्यप्राणकी प्राण और अपान नामक दो वृत्तियें, दर्शनसाधन नेत्रेंद्रिय, शब्दको ग्रहण करनेवाली श्रोत्रेंद्रिय, क्षीण न होनेवाली ज्ञानशक्ति अक्षिति, क्षीण होने वाली वा निवासकी हेतुभूत क्षिति†, अन्नरसको सब नाड़ियोंमें अनेक प्रकारसे प्रेरित करने वाली व्यानवृत्ति, ऊपर को उद्गार (डकार) आदि व्यापारको करनेवाली उदान वृत्ति, बोलनेकी साधन वाणी, सब इन्द्रियों पर अनुग्रह करने वाला, सुखादि ज्ञानका साधन अन्तःकरण, ये प्राण अपान आदि दश देवता पुरुषके किये हुए संकल्पको अभिमुख करके प्राप्त कराते हैं अर्थात् पुरुषके अभिमत अर्थको निष्पन्न कराते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अजाता आसन्नृतवोथो धाता बृहस्पतिः ।
इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठमुपासत ॥ ५ ॥

अजाताः । आसन् । ऋतवः । अथो इति । धाता । बृहस्पतिः ।
इन्द्राग्नी इति । अश्विना । तर्हि । कम् । ते । ज्येष्ठम् । उप । आसत५

ऋतवः वसन्ताद्याः कालविशेषास्तस्मिन् सृष्टिसमये अजाता आसन् अनुत्पन्ना अभवन् । अथो अपि च धाता एतत्संज्ञकः

---

† ज्ञानशक्ति आत्मस्वरूपसे नित्य रहनेके कारण कभी क्षीण नहीं होती अत एव उसको अक्षिति कहा है । और क्रियाशक्ति अपवर्ग (मोक्ष) के समय लिङ्गशरीरके साथ निवृत्त होजाती है अत एव उसको क्षिति कहा है ।

७० ६-१०-३०

अदितेः पुत्रः । बृहस्पतिः बृहतां देवानां पतिः सुरगुरुः । इन्द्राग्नी । अश्विना अश्विनौ एतत्संज्ञौ देवौ । एते षड् देवा ऋतूनाम् अधिपतयः । तेपि । तस्मिन् समये अजाता अभवन् । एवं तर्हि तस्मिन् काले ते धात्रादयः स्वोत्पत्त्यर्थं ज्येष्ठम् वृद्धतमं कारणभूतं कं जनयितारम् उपासते अभ्यर्थयन्ते । अस्य प्रश्नस्य उत्तरम् अनन्तरभाविनी ऋक् ॥

उस सृष्टिके समय कालविशेष वसन्त आदि ऋतु उत्पन्न नहीं हुई थीं, धाता नामक अदितिके पुत्र, बड़े २ देवताओंके पति सुरगुरु बृहस्पति, इन्द्र, अग्नि और अश्विनीकुमार ये वसन्त आदि ऋतुओंके अधिपति देवता भी उत्पन्न नहीं हुए थे, इस दशामें इन धाता आदिने अपनी उत्पत्तिके लिये ज्येष्ठ कारणभूत किस उत्पादककी अभ्यर्थना की थी ? (इसका उत्तर अगली ऋचामें दिया जावेगा) ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत् ते ज्येष्ठमुपासत ॥ ६ ॥

तपः । च । एव । आस्ताम् । कर्म । च । अन्तः । महति । अर्णवे ।
तपः । ह । जज्ञे । कर्मणः । तत् । ते । ज्येष्ठम् । उप । आसत ६

पूर्वोर्धर्चो व्याख्यातः । तत्र जगत्स्रष्टुरीश्वरस्य स्रष्टव्यपर्यालोचनात्मकं तपः कर्मणः कल्पान्तरे प्राणिभिरनुष्ठितात् पुण्यापुण्यात्मकात् परिपक्वात् कर्मणः सकाशात् जज्ञे । स्वमहिमप्रतिष्ठस्य असङ्गोदासीनस्य सृष्ट्युन्मुखत्वं प्राणिकर्मपरिपाककृतम् इति तदीयस्य तपसोपि कर्मैव कारणम् इत्यर्थः । अतस्ते धात्रादयो ज्येष्ठम् वृद्धतमं सृष्टेः कारणभूतं परिपक्वं स्वकृतं तत् कर्म

उपासते स्वोत्पादनाय प्रार्थयन्ते । देवमनुष्यादिरूपस्य सर्वस्य जगतः कर्मैव मूलकारणम् इत्यर्थः ॥

ज्ञानमय तप और प्राणियोंका फलोन्मुख कर्म ही महासमुद्रके भीतर उपकरणरूपमें थे। इनमें भी जगत्स्रष्टा ईश्वरका रचने योग्यकी पर्यालोचनारूप तप, पूर्वकल्पमें प्राणियोंके अनुष्ठित पुण्य और अपुण्यरूप परिपक्वकर्मसे ही उत्पन्न हुआ था, तात्पर्य यह है, कि–अपनी महिमामें ही प्रतिष्ठित रहने वाले असङ्ग उदासीन ईश्वरके सृष्टिके उन्मुख होनेमें भी प्राणियोंके कर्मका परिपाक ही कारण है अर्थात् उसके तपका भी कर्म ही कारण है। अतः वे धाता आदि वृद्धतम सृष्टिके कारणभूत अपने किये हुए परिपक्व कर्मकी ही स्वोत्पादनके लिये प्रार्थना करते हैं । तात्पर्य यह है, कि-देव मनुष्य आदि सब जगत्का कर्म ही मूलकारण है ६

सप्तमी ॥

येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद् विदुः ।
यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित् ।७।

या । इतः । आसीत् । भूमिः । पूर्वा । याम् । अद्धातयः । इत् । विदुः ।

यः । वै । ताम् । विद्यात् । नामऽथा । सः । मन्येत । पुराणऽवित्

इतः अस्याः पुरोवर्तिन्या भूमेः पूर्वा पूर्वभाविनी अतीतकल्पस्था या भूमिः आसीत् अभवत् । यां पूर्वां भूमिम् अद्धातयः अद्धा प्रत्यक्षम् अतन्ति व्याप्नुवन्ति इति अद्धातयः तपःप्रभावसमासादितसार्वज्ञ्याः अतीतानागतज्ञा महर्षयः । इच्छब्दः अवधारणे । त एव विदुः जानन्ति । नान्ये । ताम् अतीतकल्पस्थां भूमिं यो

वै यः खलु नामथा नामप्रकारेण तस्यां यद्यद् वस्त्वस्ति तत् सर्वं नामग्राहं विद्यात् जानीयात् । ❀ नामशब्दात् छान्दसस्थाल् प्रत्ययः ❀ । पुराणवित् पुरातनस्य अर्थस्य वेदिता स विद्वान् मन्येत इदानींतनीमपि सर्वां भूमिं मन्येत जानीयात् ज्ञातुं शक्नोतीत्यर्थः ॥

इस सामने वर्तमान भूमिसे पहिले जो बीते हुए कल्पकी भूमि थी उसको तपके प्रभावसे सर्वज्ञताको पाने वाले महर्षि ही जानते हैं, दूसरे नहीं जानते हैं । उस अतीत कल्पकी भूमिको जो उसमें इस २ नामकी वस्तु थी, इस रूपमें जान जाय वह पुरातन अर्थका वेत्ता विद्वान् पुरुष आज कलकी भूमिको भी इसी रूपमें जान सकता है ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

कुत॒ इन्द्रः॒ कुतः॒ सोमः॒ कुतो॑ अ॒ग्निर॑जायत ।
कुत॒स्त्वष्टा॒ सम॑भव॒त् कुतो॑ धा॒ताजा॑यत ॥ ८ ॥

कु॑तः । इन्द्रः॑ । कु॑तः । सोमः॑ । कु॑तः । अ॒ग्निः । अ॒जा॒य॒त॒ ।
कु॑तः । त्वष्टा॑ । सम् । अ॒भ॒व॒त् । कु॑तः । धा॒ता । अ॒जा॒य॒त॒ ॥८॥

धात्रादयो देवा अजाता आसन्निति उक्तम् । तेषाम् उत्पत्तिकारणम् अनया पृच्छ्यते । कुतः कस्मात् कारणाद् इन्द्रः अजायत उदपद्यत । एवम् उत्तरत्रापि योजना । एषां प्रश्नानां प्रतिवचनम् उत्तरया ऋचा क्रियते ॥

(उस समय धाता आदि देवता उत्पन्न नहीं हुए थे, यह बात पहिले ही कह दी है अब ऋचासे उनकी उत्पत्तिके कारणको बूझते हैं और अगली ऋचासे इसका उत्तर दिया जावेगा) इन्द्र किस कारणसे उत्पन्न हुआ है, सोम कौनसे कारणसे प्रकट हुआ है

और अग्नि कौनसे कारणसे प्रकट हुआ है, त्वष्टा किस कारणसे प्रकट हुआ है और धाता किस कारणसे प्रादुर्भूत हुआ है ८

नवमी ॥

इन्द्रा॒दिन्द्रः॒ सोमा॒त् सोमो॑ अ॒ग्नेर॒ग्निर॑जायत ।
त्वष्टा॑ ह ज॒ज्ञे त्वष्टु॑र्धा॒तुर्धा॒ताजा॑यत ॥ ९ ॥

इन्द्रा॑त् । इन्द्रः॑ । सोमा॑त् । सोमः॑ । अ॒ग्नेः । अ॒ग्निः । अ॒जा॒य॒त॒ ।
त्वष्टा॑ । ह॒ । ज॒ज्ञे॒ । त्वष्टुः॑ । धा॒तुः । धा॒ता । अ॒जा॒य॒त॒ ॥ ९ ॥

पूर्वस्मिन् कल्पे यादृग्रूप इन्द्रस्तस्माद् इन्द्राद् इदानींतन इन्द्रो जज्ञे । तत्समानरूपो जात इत्यर्थः । एवं सोमात् सोम इत्यादिषु योजना । पूर्वपूर्वसृष्ट्यनुसारेणैव इदानींतना अपि इन्द्रादयो देवाः सृष्टा इत्यर्थः । "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वम् अकल्पयत्" इति श्रुतेः [ऋ० सं० १०. १९०. ३] । यद्वा इन्द्रात् इन्द्रत्वप्रापकात् कर्मणः इन्द्रो जज्ञे । इन्द्रशब्दः स्वकारणभूते कर्मणि उपचर्यते । इत्थं सोमात् सोम इत्यादावपि द्रष्टव्यम् । "तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत् ते ज्येष्ठम् उपासते" [६] इति हि कर्मणः सर्वजगत्कारणत्वम् उक्तम् । ❀ अस्मिन् पक्षे इन्द्राद् इन्द्र इति "जनिकर्तुः प्रकृतिः" इति पञ्चमी ❀ । अथ वा अधिभूतम् अवस्थिता ये इन्द्रादयः तेभ्यः सकाशाद् अध्यात्मम् अवस्थितानाम् अधिष्ठातृदेवानाम् उत्पत्तिः कथ्यत इति बोद्धव्यम् ॥

पहिले कल्पमें जैसे रूप वाला इन्द्र था उससे उसकी ही समान रूप वाला आज कलका इन्द्र प्रकट हुआ है पहिले कल्पमें जैसे रूप वाला सोम था उससे उसकी ही समान आज कलका सोम प्रकट हुआ है, इसी प्रकार पूर्व कल्पके अग्नि त्वष्टा और धातासे उनकी ही समान रूप वाले अग्नि त्वष्टा और धाता देवता प्रकट

हुए हैं, तात्पर्य यह है, कि-पहिली सृष्टिके अनुसार ही आज कलके इन्द्र आदि रचे गए हैं। इसी बातको ऋग्वेदसंहिता १०। १९०। ३ में कहा है, कि-"सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।-धाताने पूर्वकल्पके अनुसार सूर्य और चन्द्रमाकी सृष्टिकी"॥ अथवा इन्द्रत्वमापक कर्मसे इन्द्र प्रकट हुआ यह अर्थ करना चाहिये, इस पक्षमें इन्द्र शब्दका स्वकारणभूत कर्ममें उपचार होता है, यही बात सोम आदिके लिये भी लगानी चाहिये। छठी ऋचामें कर्मका सर्वजगत्कारणत्व कहा ही जा चुका है, कि—"तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत्ते ज्येष्ठमुपासते"। अथवा यह समझना चाहिये, कि-अधिभूतरूपमें जो देवता अवस्थित थे उनसे अध्यात्मरूपमें अवस्थित अधिष्ठात्री देवताओंका यहाँ वर्णन है ॥ ९ ॥

दशमी ॥

ये त आस॒न् दश॑ जा॒ता दे॒वा दे॒वेभ्यः॑ पु॒रा ।
पु॒त्रेभ्यो॑ लो॒कं द॒त्त्वा कस्मिं॒स्ते लो॒क आस॑ते ॥१०॥

ये । ते॑ । आस॑न् । दश॑ । जा॒ताः । दे॒वाः । दे॒वेभ्यः॑ । पु॒रा ।
पु॒त्रेभ्यः॑ । लो॒कम् । द॒त्त्वा । कस्मि॑न् । ते । लो॒के । आस॑ते १०

देवेभ्यः अधिष्ठातृभ्यः अग्न्यादिदेवताभ्यः पुरा पूर्वं ये ते देवाः प्रागुक्ताः प्राणापानाद्या दशसंख्याका जाता आसन् ते पुत्रेभ्यः आत्मजेभ्यो लोकम् स्वकीयं स्थानं दत्त्वा कस्मिन् लोके स्थाने आसते उपविशन्ति। यथा लौकिका जनाः पुत्रान् उत्पाद्य तेषां स्वकीयं स्थानं दत्त्वा स्थानान्तरं स्वनिवासार्थम् आश्रयन्ति एवम् एषां सृष्टानाम् इन्द्रियाणां तदधिष्ठातॄणां च देवानां निवासाश्रयः क इति प्रश्नार्थः। अस्य प्रश्नस्य "देवाः पुरुषम् आविशन्" [१३] इति प्रतिवचनम् अग्रे भविष्यति ॥

[इति] चतुर्थेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

जिन अग्नि आदि अधिष्ठात्री देवताओंसे, पूर्वोक्त प्राण अपान आदि दश देवता प्रकट हुए हैं, वे अपने आत्मजोंको अपना स्थान देकर किस लोकमें रहते हैं (तात्पर्य यह है, कि-जैसे लौकिक पुरुष पुत्रोंको उत्पन्न करके उनको अपना स्थान दे अपने निवास के लिये दूसरे स्थान पर चले जाते हैं, इस प्रकार इन रचे हुए इन्द्रिय-देवताओंका और उनके अधिष्ठात्री देवताओंका भी निवासस्थान कौनसा है ? इसका उत्तर १३ वीं ऋचामें दिया जावेगा) ॥ १० ॥ (२२)

चतुर्थ अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त

पञ्चमसूक्ते प्रथमा ॥

यदा केशानस्थि स्नाव मांसं मज्जानमाभरत् ।
शरीरं कृत्वा पादवत् कं लोकमनु प्राविशत् ॥ ११ ॥

यदा । केशान् । अस्थि । स्नाव । मांसम् । मज्जानम् । आऽअभरत् ।
शरीरम् । कृत्वा । पादऽवत् । कम् । लोकम् । अनु । प्र । अविशत् ।

यदा यस्मिन् सृष्टिकाले केशान् शिरोरुहान् अस्थिस्नावादिधातून् शरीरोपादानभूतान् स्रष्टा समभरत् एकत्र संभृतवान् । तत्र अस्थि प्रसिद्धम् स्नाव अस्थ्नां संधिबन्धनार्थं सिराजालम् मांसम् प्रसिद्धम् मज्जा अस्थ्यन्तर्गतो रसः । तैः संभृतैः पादवत् । उपलक्षणम् एतत् । हस्तपादाद्यङ्गोपाङ्गसहितं शरीरं कृत्वा निर्माय । तदानीं कम् ऽन्यं लोकं स्थानम् अनु प्राविशत् । तदेव शरीरम् आत्मभावेन प्राविशद् इत्यर्थः । "तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" [तै० आ० ८. ६] "अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि" [छा० उ० ६. ३. २] इत्यादिश्रुतेः ॥

जब स्रष्टाने सृष्टिके समय बाल, हड्डी, नसें, मांस मज्जाको एकत्रित किया तो उनसे हाथ पैर आदि अंगोंपांगसहित शरीर को रच कर किस अन्य स्थानमें उसने प्रवेश किया था–तात्पर्य यह है, कि--उसी शरीरमें आत्मभावसे प्रवेश किया यह था। इस विषयमें "तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्।–उस शरीरको रच कर वह उसमें ही प्रवेश कर गया" (तैत्तिरीय आरण्यक ८।६) और "अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि।–इस जीवरूपसे प्रवेश करके मैं नाम और रूपोंको प्रकट करता हूँ" (छान्दोग्योपनिषत् ६।३।२) ॥ ११ ॥

द्वितीया ॥

कुतः केशान् कुतः स्नाव कुतो अस्थीन्याभरत् ।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आभरत् १२

कुतः । केशान् । कुतः । स्नाव । कुतः । अस्थीनि । आ । अभरत् ।
अङ्गा । पर्वाणि । मज्जानम् । कः । मांसम् । कुतः । आ । अभरत्

केशादीन् संभृत्य ईश्वरः शरीरं स्रष्टवान् इत्युक्तम् । अत्र केशाद्युपादानत्वं स्रष्टृत्वं च वस्त्वन्तरविरहात् स्वात्मन एवेति काक्वा प्रतिपाद्यते । स्रष्टा ईश्वरः कुतः कस्माद् उपादानकारणात् केशान् सम्" अभरत् । किं तदुपादानकारणम् । न किंचिद् अस्ति । "सदेव सोम्येदम् अग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्" [छा० उ० ६. २, १] इति अद्वितीयत्वश्रुतेर्वस्त्वन्तरस्याभावात् स्वात्मन एव केशादीन् समभरद् इत्यर्थः । तथा च अभिन्ननिमित्तोपादानत्वम् ईश्वरस्य श्रूयते । "सोकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति" [तै० आ० ८.६] तत्र कामयितृत्वात् कुलालादिवन्निमित्तत्वम् । प्रजायेयेति उत्तमपुरुषश्रुत्या स्वस्यैव बहुभावावस्थानप्रतिपादनाद् उपादानत्वम् ।

आह च भगवान् बादरायणः । "प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्" [बा० १. ४. २३] इति । तथा कुतः कस्माद् उपादानकारणात् स्नाव उत्पन्नम् । न कस्माचित् । किं तु स्वस्मादेव । एवम् उत्तरत्रापि योज्यम् । अङ्गा अङ्गानि हस्तपादादीनि पर्वाणि तत्संधीन् मज्जानम् अस्थ्यन्तर्गतं रसम् । कर्मकर्तृभावस्य एकत्र विरोधात् केशाद्युपादानभूताद् अन्य एव कश्चित् संभर्ता स्याद् इत्याशङ्क्य तदनन्यत्वमपि प्रतिपादयति क इति । कः अन्यः एतान् आभरत् । न कश्चिद् अस्ति । उपादानभावेन स्थित एव ईश्वरः केशादीनाम् आहर्तापि अभवद् इत्यर्थः । विचित्रशक्तियोगित्वेन एकस्यैव कर्तृत्वं कर्मत्वं च न व्याहन्यत इत्यर्थः । यद्वा कुतः केशान् इत्यादिषु सर्वत्र कारणप्रश्नमात्रं क्रियते । को मांसम् इति कर्तृप्रश्नमात्रम् । तस्य सर्वस्य प्रतिवचनम् उत्तरया क्रियते ॥

(ईश्वरने केश आदि सामग्रीको एकत्रित कर सृष्टि की, यह बात पहिले कह दी है । अब यह कहते हैं, कि-केश आदि उपादानत्व और स्रष्टत्व और किसी वस्तुके न होनेसे स्वात्मासे ही प्रकट हुए हैं) स्रष्टा ईश्वरने किस उपादानकारणसे केशोंको एकत्रित किया था ? अर्थात् वह उपादान कारण कौनसा है ? कोई उपादानकारण नहीं है "सदेव सोम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्" इस छान्दोग्योपनिषत् ६ । २ । १ के अनुसार अद्वितीयत्व श्रुति होनेसे दूसरी वस्तु न होनेसे उसने अपनेसे ही केशोंको एकत्रित किया । तथैव ईश्वरका अभिन्न–निमित्तोपादानत्व भी श्रुतिमें कहा है, कि–"सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय ।–उसने कामना की कि—मैं बहुत होकर प्रकट होऊँ" (तैत्तिरीय आरण्यक ८ । ६) यहाँ कामयिता होनेसे कुलाल आदिकी समान निमित्तकारणत्व है और "प्रजायेय" इस उत्तमपुरुषसे अपनेको ही बहुभावावस्थानप्रतिपादनके कारण उपादानकारणत्व है ।

७१ ७-१०-३०

इसी बातको भगवान् वेदव्यासजीने वेदान्तसूत्र १ । ४ । २३ में कहा है, कि—"प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्" ॥ स्नाव कहाँसे उत्पन्न हुआ ? कहींसे नहीं अपनेसे ही उत्पन्न हुआ और उसने अस्थियोंको कहाँसे उत्पन्न किया कहींसे नहीं अपनेसे ही, उसने हाथ पैर आदि अंगोंको, उनके जोड़ोंको, अस्थियोंके भीतर रहने वाले रस मज्जाको और मांसको कहाँसे एकत्रित किया, कहींसे नहीं अपनेमेंसे ही एकत्रित किया इनको और कौन एकत्रित कर सकता है । (कर्मकर्तृभावके एकत्र होनेमें विरोध स्पष्ट है अत एव उपादान केश आदिसे संभर्ता और ही होना चाहिये ऐसी आशंकाको हटानेके लिये कहा है, कि-और कौन एकत्रित कर सकता है-संभर्ता होसकता है ? उपादानभावसे स्थित ही ईश्वर केशादि आदिका आहर्ता भी हुआ था, विचित्रशक्तिके कारण एकका ही कर्तृत्व और कर्मत्व व्याहत नहीं होसकता ॥ अथवा-"कुतः केशान्" इत्यादिमें सर्वत्र कारणप्रश्न ही किया है और "को मांसम्" में ही कर्तृप्रश्न है । इन सबका उत्तर अगली ऋचामें दिया जावेगा) ॥ १२ ॥

तृतीया ॥

संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १३ ॥

सम्ऽसिचः । नाम । ते । देवाः । ये । सम्ऽभारान् । सम्ऽअभरन् ।
सर्वम् । सम्ऽसिच्य । मर्त्यम् । देवाः । पुरुषम् । आ । अविशन् १३

ये देवाः प्रागुक्ता ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियात्मकाः साधिष्ठातृकाः प्राणापानाद्या वा संभारान् संभ्रियन्त इति संभाराः प्राग् उदीरिताः केशाद्याः तान् समभरन् एकत्र संभृतवन्तः ते देवाः

संसिचो नाम । संसिञ्चन्ति । सम् इति एकीभावे । तान् संभारान् एकीकृत्य बन्धकेन रसेन आबध्नन्तीति संसिचः संसेचनसमर्थाः । संधायका इत्यर्थः । ते मर्त्यम् मरणधर्माणम् सर्वं शरीरं संसिच्य असृजा आर्द्रीकृत्य पुरुषम् पुरुषाकृतिं कृत्वा तम् आविशन् प्रविष्टवन्तः । यावत् शरीरे प्राणा निवसन्ति तावन्तं कालं प्राणाधिष्ठितं शरीरं सर्वव्यवहारक्षमं भवति । तस्मात् प्राणदेवाः पृथिव्यादिपञ्चभूतमात्राभ्यः समुद्भूतं प्रागुदीरितकेशास्थ्यादिधातुमयं पुरुषशरीरं प्रविश्य वर्तन्त इत्यर्थः ॥

जो ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय वा प्राणापान आदि साधिष्ठातृक देवता हैं वे संभारोंको एकत्रित करते हैं और उनका नाम संभारों को एकत्रित करके बंधक रससे एकत्रित करके संसिञ्चन करने वाले, संसिच् है । वे मरणधर्मी पूर्ण शरीरको रक्तसे गीला करके उसकी पुरुषाकृति बना उसमें प्रवेश कर गए । तात्पर्य यह है, कि-शरीरमें जब तक प्राण रहते हैं तब तक प्राणाधिष्ठित शरीर व्यवहार करनेमें समर्थ रहता है । इस लिये प्राणदेव पृथिवी आदि पञ्च भूतमात्राओंसे समुद्भूत पूर्वोक्त केश अस्थि आदि धातुमय पुरुषशरीरमें प्रवेश करके रहते हैं ॥ १३ ॥

चतुर्थी ॥

ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम् ।
पृष्टीर्बर्जह्ये पार्श्वे कस्तत् समदधादृषिः ॥ १४ ॥

ऊरू इति । पादौ । अष्ठीवन्तौ । शिरः । हस्तौ । अथो इति । मुखम् । पृष्टीः । बर्जह्ये३ इति । पार्श्वे इति । कः । तत् । सम् । अदधात् । ऋषिः ॥ १४ ॥

ऊरू जान्वोरुपरि वर्तमानौ । पादौ तयोरधस्ताद्भागौ । अष्ठी-

वन्तौ ऊरुपादयोर्मध्यस्थे जानुनी । शिरः मूर्धानम् । हस्तौ बाहू । अथो अपि च मुखम् आस्यम् । पृष्टीः पृष्ठवंशस्य अभितो वर्तमानाः पर्शूः । बर्जह्ये एतत्संज्ञौ अवयवौ । उभे पार्श्वे । तत् अनुक्रान्तं सर्वम् अङ्गजातं क ऋषिः संधानोपायज्ञानवान् समदधात् परस्परं संहितं संश्लिष्टं कृतवान् । अस्य प्रश्नस्य प्रतिवचनम् उत्तरया क्रियते ॥

घुटनोंके ऊपर वर्तमान भाग ऊरू, उनके नीचेके भाग पाद, ऊरू और पादके मध्यस्थ भाग अष्ठीवान् (घुटने), शिर, हाथ, मुख, पसलियें बर्जह्य, और पृष्टि इन सब अंगोंको संधानके उपायको जानने वाले किस ऋषिने परस्पर संश्लिष्ट किया है (इसका उत्तर अगली ऋचामें दिया जावेगा) ॥ १४ ॥

पञ्चमी ॥

शिरो हस्तावथो मुखं जिह्वां ग्रीवाश्च कीकसाः ।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत् संधा समदधान्मही ॥१५॥

शिरः । हस्तौ । अथो इति । मुखम् । जिह्वाम् । ग्रीवाः । च । कीकसाः ।
त्वचा । प्रऽआवृत्य । सर्वम् । तत् । सम्ऽधा । सम् । अदधात् । मही ॥ १५ ॥

शिरः मूर्धानम् । हस्तौ बाहू । अथो अपि च मुखम् आस्यम् । जिह्वाम् तन्मध्ये वर्तमानां रसनाम् । ग्रीवाः कन्धराः । कीकसाः कीकसान् अस्थीनि । उपलक्षणम् एतत् । एतदुपलक्षितानि प्रागुदीरितानि अस्थिस्नावादीनि ऊरुपादादीनि च सर्वाणि अङ्गानि त्वचा चर्मणा प्रावृत्य प्रावृतानि आच्छन्नानि कृत्वा सर्वं तत्

अङ्गजातं मही । ❀ वर्णोपजनश्छान्दसः ❀ । महती संधा संधानकर्त्री देवता समदधात् संहितं परस्परसंश्लिष्टं स्वस्वव्यापारक्षमं कृतवती । ❀ संधेति । "आतश्चोपसर्गे" इति संपूर्वाद् दधातेः कर्तरि कप्रत्ययः ❀ ॥

मस्तक भुजा मुख जिह्वा ग्रीवा अस्थिएँ इन सबको चर्मसे ढक कर महती सन्धानक्षम देवताने अपना २ व्यापार करनेमें समर्थ किया ॥ १५ ॥

षष्ठी ॥

यत्तच्छरीरमशयत् संधया संहितं महत् ।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाभरत् ॥ १६ ॥

यत् । तत् । शरीरम् । अशयत् । सम्ऽधया । सम्ऽहितम् । महत् । येन । इदम् । अद्य । रोचते । कः । अस्मिन् । वर्णम् । आ । अभरत् ॥ १६ ॥

तत् उक्तप्रकारं यत् शरीरं संधया संधात्र्या देवतया संहितं कृतावयवसंधानं महत् प्रवृद्धम् अशयत् शेते । वर्तत इत्यर्थः । इदं शरीरम् अद्य इदानीं येन वर्णेन कृष्णगौरादिरूपेण रोचते दीप्यते अस्मिन् शरीरे को नाम देवः तं वर्णम् आभरत् आहरत् संपादितवान् । अस्य प्रतिवचनम् उत्तरया क्रियते ॥

इस प्रकार संधात्री देवताके द्वारा जिसके अवयव जोड़े गए हैं ऐसा जो महाशरीर वर्तमान है वह शरीर आज कल जिस कृष्ण गौर वर्णसे दमक रहा है इस शरीरमें किस देवताने वर्णको स्थापित किया है (इसका उत्तर अगली ऋचामें दिया जावेगा) १६

सप्तमी ॥

सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदजानाद् वधूः सती ।

ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत् ॥ १७ ॥

सर्वे । देवाः । उप । अशिक्षन् । तत् । अजानात् । वधूः । सती । ईशा । वशस्य । या । जाया । सा । अस्मिन् । वर्णम् । आ । अभरत् ॥ १७ ॥

सर्वे इन्द्रादयो देवाः उपाशिक्षन् समीपे शक्ता भवितुम् ऐच्छन् । वधूः सती परमेश्वरेण कृतोद्वाहा भगवती आद्या परचिद्रूपिणी शक्तिः तत् देवैः कृतम् अजानात् ज्ञातवती । या एषा विश्वस्य सर्वस्य जगतः ईशा ईशाना नियन्त्री मायाशक्तिः । "यन्मन्युर्जायाम् आवहद्" [१] इति ह्युक्तम् । सा पारमेश्वरी शक्तिः अस्मिन् षाट्कौशिके शरीरे गौरपीतनीलादिवर्णम् आभरत् आहरत् । उदपादयद् इत्यर्थः ॥

इन्द्र आदि सब देवता इस शरीरके पास रहना चाहते थे अत एव (प्रथममन्त्रमें वर्णित) वधू बनती हुई भगवती आद्या परचिद्रूपिणी शक्तिने देवताओंकी इस इच्छाको जाना, यह परमात्मा की वधूरूपिणी शक्ति सकल जगत्की ईश्वरी है इसीने इस छः कोश वाले शरीरमें गौर पीत नील आदि वर्णोंको उत्पन्न किया है ॥

अष्टमी ॥

यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः ।
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १८ ॥

यदा । त्वष्टा । विऽअतृणत् । पिता । त्वष्टुः । यः । उत्तरः । गृहम् । कृत्वा । मर्त्यम् । देवाः । पुरुषम् । आ । अविशन् १८

यत् पूर्वं सामान्येन उक्तं "देवाः पुरुषमाविशन्" इति तद् अत्र

विशेष्यते। "यावच्छो वै रेतसः सिक्तस्य त्वष्टा रूपाणि विकरोति तावच्छो वै तत् प्रजायते" इति हि श्रूयते [तै० सं० १.५.६.२]। तत्र यः अध्यात्मम् अवस्थितस्त्वष्टा मनुष्यगवाश्वादिरूपाणां विकर्ता देवः तस्य त्वष्टुः पिता उत्पादकः उत्तरः उत्कृष्टतरो यस्त्वष्टा अधिदैवं स्थितः विचित्रस्य जगतो निर्माता एतत्संज्ञो देवः स यदा यस्मिन् काले व्यतृणत् विविधं चक्षुःश्रोत्रादीनि छिद्राणि पुरुषशरीरे तर्दनेन अकरोत्। ❀ उतृदिर् हिंसानादरयोः ❀। तदा मर्त्यम् मरणधर्मकं त्वष्ट्रा देवेन वितृण्णं बहुच्छिद्रं पुरुषशरीरं गृहं कृत्वा आवासस्थानं कृत्वा देवाः इन्द्रियाणि प्राणापानादयश्च तं पुरुषम् आविशन् प्रविष्टवन्तः ॥

(पहिले जो सामान्यरीतिसे कहा था, कि–"देवाः पुरुषमाविशन्" उसीको यहाँ पर स्पष्ट करते हैं, श्रुतिमें कहा है, कि–"यावच्छो वै रेतस सिक्तस्य त्वष्टा रूपाणि विकरोति तावच्छो वै तत् प्रजायते" तैत्तिरीयसंहिता १। ५। ६। २) जो अध्यात्मरूपसे अवस्थित मनुष्य गौ अश्व आदि रूपोंका कर्ता त्वष्टा देवता है उस त्वष्टाका उत्पादक जो श्रेष्ठ अधिदैवत त्वष्टा है, कि–जो इस विचित्र जगत्का निर्माता है उसने जिस समय चक्षु श्रोत्र आदि छिद्रोंको पुरुषके शरीरमें तर्दनसे किया उस समय इन्द्रिय (देवता) और प्राण अपान आदिने मरणधर्मीको त्वष्टाके द्वारा बहुतसे छिद्र वाला पुरुषशरीररूप घर बना कर उस पुरुषमें प्रवेश किया ॥ १८ ॥

नवमी ॥

स्वप्नो॒ वै त॒न्द्रीर्निर्ऋ॑तिः पा॒प्मानो॒ नाम॑ दे॒वताः॑ ।
ज॒रा खाल॑त्यं॒ पालि॑त्यं॒ शरी॑र॒मनु॒ प्रावि॑शन् ॥१९॥

स्वप्नः॑ । वै । त॒न्द्रीः॑ । निःऽऋ॑तिः । पा॒प्मानः॑ । नाम॑ । दे॒वताः॑ ।

ज॒रा। खाल॑त्यम्। पा॑लित्यम्। शरी॑रम्। अनु॑। प्र। अ॒वि॒श॒न् १९

इत्थं शरीरस्योत्पत्तिम् अभिधाय प्रथमसृष्टानाम् इन्द्रियाणां प्राणापानादीनां च तत्र प्रवेश उक्तः। तावता सात्मकं सत् तच्छरीरं सर्वव्यवहारक्षमं जातम्। इतः परं सर्वविकाराश्रयत्वम् अस्य उच्यते। स्वप्नः स्वापो निद्रा। ❀ ञिष्वप् शये। "स्वपो नन्" इति भावे नन् प्रत्ययः ❀। वैशब्दो लोकप्रसिद्धिं द्योतयति। तन्द्री अलसता। निर्ऋतिः पापदेवता दुर्गतिः। पाप्मानः ब्रह्महत्यादिपापानि। स्वप्नादिरूपा एता देवताः पुरुषशरीरम् अनुप्राविशन्। तथा जरा वयोहानिकरी चरमावस्था। खालित्यम् चित्तस्य चक्षुरादीनां च स्खलनम्। पालित्यम् पलितत्वम्। एतदभिमानिनो देवाश्च शरीरम् अनु प्राविशन्॥

(इस प्रकार शरीरकी उत्पत्तिका वर्णन करके उसमें प्रथमसृष्ट इन्द्रियोंका और प्राण अपान आदिका भी प्रवेश कहा, इतनेसे वह शरीर सात्मक होकर सब व्यवहारोंको करनेमें समर्थ होगया। अब इसके सब विकारोंके आश्रय होनेका वर्णन करते हैं, कि-) निद्रा, अलसता, पापदेवता दुर्गति निर्ऋति, ब्रह्महत्यादि पाप, ये निद्रादि देवता इस पुरुषके शरीरमें प्रविष्ट हुए हैं तथा आयुकी हानि करने वाली अन्तिम अवस्था जरा, चित्त और नेत्र आदिका स्खलन खालित्य, पलितत्व, इनके अभिमानी देवताओंने भी शरीरमें प्रवेश किया॥ १९॥

दशमी॥

स्तेयं॑ दुष्कृ॒तं वृ॑जि॒नं स॒त्यं य॒ज्ञो यशो॑ बृ॒हत्।
बलं॑ च क्ष॒त्रमोजं॑श्च॒ शरी॑र॒मनु॒ प्रावि॑शन्॥ २०॥

स्ते॑यम्। दुः॒ऽकृ॒तम्। वृ॒जि॒नम्। स॒त्यम्। य॒ज्ञः। यशः॑। बृ॒हत्।

बलम् । च । क्षत्रम् । ओजः । च । शरीरम् । अनु । प्र । अविशन् २०

स्तेयम् स्तैन्यं तस्करत्वम् । ❀ "स्तेनाद् यन्नलोपश्च" इति स्तेनशब्दाद् भावे यत्–प्रत्ययो नलोपश्च ❀ । दुष्कृतम् दुष्कर्म सुरापानादिकम् । वृजिनम् तज्जनितं दुरितम् । सत्यम् यथार्थकथनम् । यज्ञो यागः । यशः कीर्तिः । बृहत् प्रभूतम् । यशसो विशेषणम् एतत् । बलम् प्रसिद्धम् एतत् । क्षत्रम् क्षत्रियसंबन्धि तेजः । ओजः शरीरगतो बलहेतुरष्टमो धातुः । एते सर्वे पुरुषस्य शरीरम् अनु प्राविशन् । जीवच्छरीरम् आश्रित्य उत्पद्यन्त इत्यर्थः ॥

इति चतुर्थेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

चोरी, सुरापानादि दुष्कर्म, उससे उत्पन्न होने वाला पाप, यथार्थकथन, याग, महायश, बल, क्षत्रसम्बन्धी तेज, शरीरगत बलहेतुक अष्टम धातु ओज, इन सबने भी पुरुषके शरीरमें प्रवेश किया अर्थात् ये जीवित शरीरका आश्रय लेकर उत्पन्न होते हैं २०

चतुर्थ अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त ॥

षष्ठसूक्ते प्रथमा ॥

भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोरातयश्च याः ।
क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥२१॥

भूतिः । च । वै । अभूतिः । च । रातयः । अरातयः । च । याः ।
क्षुधः । च । सर्वाः । तृष्णाः । च । शरीरम् । अनु । प्र । अविशन् २१

भूतिः समृद्धिः । अभूतिः असमृद्धिः । ❀ परस्परसमुच्चयार्थौ चकारौ ❀ । वैशब्दः प्रसिद्धौ । रातयो मित्राणि । अरातयः शत्रवः । या इमा भूतिप्रभृतयः क्षुधः बुभुक्षा अन्नाकाङ्क्षाः तृष्णाः पिपासाः एताश्च सर्वाः पुरुषस्य शरीरम् अनु प्राविशन् । आश्रित्य प्रभवन्तीत्यर्थः ॥

७२ ८ १०-३०

समृद्धि असमृद्धि मित्र शत्रु ये जो समृद्धि आदि हैं तथा जो बुभुक्षा पिपासा आदि हैं इन सबने पुरुषके शरीरमें प्रवेश किया है अर्थात् ये सब पुरुषके शरीरका आश्रय लेकर प्रकट होते हैं २१

द्वितीया ॥

निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।
शरीरं श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा चानु प्राविशन् ॥२२॥

निन्दाः । च । वै । अनिन्दाः । च । यत् । च । हन्त । इति ।
न । इति । च ।

शरीरम् । श्रद्धा । दक्षिणा । अश्रद्धा । च । अनु । प्र । अविशन् २२

निन्दाः कुत्सनानि । अनिन्दाः अकुत्सनानि । हन्तेति हर्षे । यच्च वस्तु हर्षजनकम् । नेत्ययं शब्दः संनिहितस्य हन्तार्थस्य हर्षस्य निषेधे । यच्च वस्तु हर्षाजनकम् । श्रद्धा श्रद्धानम् अभिलाषविशेषः । दक्षिणा दक्ष्यते समृध्यते अनयेति दक्षिणा धनसमृद्धिः । ❀ दक्ष वृद्धौ इत्यस्माद् द्रुदक्षिभ्याम् इनन् [उ० २. ५०] इति इनन् प्रत्ययः ❀ । अश्रद्धा श्रद्धानाभावः अभिलाषराहित्यम् एतानि सर्वाणि पुरुषस्य शरीरम् अनु प्राविशन् । तद् आश्रित्य प्रादुर्भवन्तीत्यर्थः ॥

निन्दा, अनिन्दा, हर्षजनक वा हर्षनाशक वस्तु, श्रद्धा, जिससे धन समृद्ध होता है वह धनसमृद्धि दक्षिणा, अश्रद्धा (अभिलाषाराहित्य) इन सबने भी पुरुषके शरीरमें प्रवेश किया अर्थात् ये जीवित रहते हुए शरीरका आश्रय लेकर उत्पन्न होते हैं ।२२।

तृतीया ॥

विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।

शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः ॥ २३ ॥

विद्याः । च । वै । अविद्याः । च । यत् । च । अन्यत् । उपऽदेश्यम् ।
शरीरम् । ब्रह्म । प्र । अविशत् । ऋचः । साम । अथो इति । यजुः

विद्याः शास्त्रजनितज्ञानानि । अविद्याः अज्ञानानि । यच्चान्यत् वस्तु उपदेश्यम् उपदेशसमधिगम्यं विद्याविद्यानाम् आश्रयभूतं तच्छाब्दं ब्रह्म पुरुषस्य शरीरं प्राविशत् । परापश्यन्त्यादिरूपेण तत्रैव प्रादुर्भवतीत्यर्थः ॥ अथो अपि च ऋक्सामयजुरात्मकास्त्रयो वेदाः पुरुषशरीरम् अनु प्राविशन् । यद्वा ऋगादीनां पृथगुपादानात् तदङ्गभूताः पुराणादयो विद्याशब्देन विवक्षिताः । अविद्याशब्देन च वेदविरुद्धागमाः ॥

विद्या अर्थात् शास्त्रजनित ज्ञान, अविद्या अर्थात् अज्ञान, इनके अतिरिक्त और जो उपदेश्य वस्तु है अर्थात् उपदेशसे मिलने वाला अविद्या और विद्याका आश्रयभूत शाब्द ब्रह्म है उस सबने पुरुषके शरीरमें प्रवेश किया तात्पर्य यह है, कि—परा पश्यन्ती आदि रूपसे वह तहाँ ही प्रादुर्भूत होता है । तथा ऋक् यजुः सामात्मक तीनों वेदोंने भी पुरुषके शरीरमें प्रवेश किया (अथवा ऋक् आदिका अलग वर्णन होनेसे विद्या शब्दसे वेदके अंग पुराण आदि को लेना चाहिये और अविद्यासे वेदविरुद्ध आगम का ग्रहण करना चाहिये) ॥ २३ ॥

चतुर्थी ॥

आनन्दा मोदाः प्रमुदोभीमोदमुदश्च ये ।
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् ॥ २४ ॥

आऽनन्दाः । मोदाः । प्रऽमुदः । अभिमोदऽमुदः । च । ये ।

हसः । नरिष्टा । नृत्तानि । शरीरम् । अनु । प्र । अविशन् २४

पूर्वोर्धर्चो व्याख्यातः [११. ६.२६] । हसः हासः । ❀ हसे हसने । "स्वनहसोर्वा" इति भावे अप् ❀ । नुरिष्टाः मनुष्यस्य इच्छागोचराः शब्दस्पर्शादिविषयाः । नृत्तानि नर्तनानि भरतशास्त्रोक्तानि एते आनन्दादयः सर्वे पुरुषस्य शरीरम् अनु प्राविशन्

आनन्द, मोद प्रमुद, अभीमोदमुद, हँसना, मनुष्यकी इच्छाके गोचर शब्द स्पर्श आदि विष, भरतशास्त्रोक्त नर्तन इन सबने भी पुरुषके शरीरमें प्रवेश किया ॥ २४ ॥

पञ्चमी ॥

आलापाश्च प्रलापाश्चाभीलापलपश्च ये ।
शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः ॥ २५ ॥

आऽलापाः । च । प्रऽलापाः । च । अभिलापऽलपः । च । ये । शरीरम् । सर्वे । प्र । अविशन् । आऽयुजः । प्रऽयुजः । युजः २५

आलापाः आभाषणानि सार्थकानि वचनानि । प्रलापाः निरर्थकानि वचनानि । ❀ लप व्यक्तायां वाचि । भावे घञ् ❀ । ये च अभीलापलपः अभिलापः उक्तविधः शब्दः तेन लपन्ति ब्रुवन्तीति अभीलापलपः शब्दस्य उच्चारयितारः । ❀ "क्विप् च" इति लपेः क्विप् ❀ । ते सर्वे आलापादयः पुरुषशरीरं प्राविशन् । आयुजः आयोजनानि प्रयुजः प्रयोजनानि युजः योजनानि । ❀ सर्वत्र संपदादिलक्षणो भावे क्विप् । उपसर्गवशाद् अमीषान् अर्थभेदोऽवगन्तव्यः ❀ । एवम् आयोजनादिक्रियाः शरीरम् अनु प्राविशन् ॥

सार्थक वचन-आलाप, निरर्थक वचन-प्रलाप, शब्दके उच्चा-

रूक, इन सबने भी पुरुषके शरीरमें प्रवेश किया, आयोजन प्रयोजन और योजन ये सब भी पुरुषशरीरमें प्रविष्ट हैं ॥ २५ ॥

षष्ठी ॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ्मनः शरीरेण त ईयन्ते ॥ २६ ॥

प्राणापानौ । चक्षुः । श्रोत्रम् । अक्षितिः । च । क्षितिः । च । या ।
व्यानऽउदानौ । वाक् । मनः । शरीरेण । ते । ईयन्ते ॥ २६ ॥

त्रयः पादाः पूर्ववद् [११. ९. २५] व्याख्येयाः। ते प्राणापानादयः सर्वे शरीरम् अनुप्रविश्य तेन सह ईयन्ते स्वस्वव्यापारेषु प्रवर्तन्ते । ❀ ईङ् गतौ । दिवादित्वात् श्यन् प्रत्ययः ❀ ॥

प्राण, अपान, चक्षु-श्रोत्र, अक्षिति, क्षिति, व्यान, उदान, वाणी और मन ये सब शरीरमें प्रवेश करके उसके साथ अपने २ व्यापारोंमें प्रवृत्त होते हैं ॥ २६ ॥

सप्तमी ॥

आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः ।
चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन् ॥२७॥

आऽशिषः । च । प्रऽशिषः । च । सम्ऽशिषः । विऽशिषः । च । याः ।
चित्तानि । सर्वे । सम्ऽकल्पाः । शरीरम् । अनु । प्र । अविशन्

आशिषः आशासनानि इष्टफलप्रार्थनानि । ❀ "आशासः क्वौ०" इति वचनाद् इत्वम् ❀ । तथा प्रशिषः प्रशासनानि । संशिषः संशासनानि । विशिषः विविधानि शासनानि । ❀ अत्र उपसर्गवशाद् धात्वर्थस्य भेदोऽवगन्तव्यः ❀ । या एता आशी-

राद्याः सन्ति। चित्तानीति बहुवचनेन मनोबुद्ध्यहंकाराः संगृह्यन्ते। तथा संकल्पा इति बहुवचनेन सर्वा अन्तःकरणवृत्तयः। एते सर्वे पुरुषस्य शरीरम् अनु प्राविशन् ॥

इष्टफलकी प्रार्थनारूप आशासन, प्रशासन, संशासन, विविध प्रकारके शासन, ये तथा चित्त मन बुद्धि अहंकार, अन्तःकरण की सकल वृत्तियें इन सबने भी पुरुषके शरीरमें प्रवेश किया अर्थात् ये जीवित शरीरका आश्रय लेकर प्रकट होते हैं ॥२७॥

अष्टमी ॥

आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।
गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन् २८

आस्तेयीः । च । वास्तेयीः । च । त्वरणाः । कृपणाः । च । याः ।
गुह्याः । शुक्राः । स्थूलाः । अपः । ताः । बीभत्सौ । असादयन्

आसमन्तात् स्नानम् आस्नेयम् । ❀ ष्णा शौचे । "अचो यत्" इति भावे यत् । "ईद्यति" इति ईत्त्वम् ❀ । तत्संबन्धिन्य आपः आस्नेय्यः । ❀ "तस्येदम्" इति अण् । "टिड्ढाणञ्०" इति ङीप् ❀ । वाशब्दो विकल्पार्थः । ❀ तस्य सुप् सुपेति स्नेयशब्देन समासः ❀ । विकल्पेन स्नानं वास्नेयं तत्सम्बन्धिन्य आपः । यद्वा । ❀ आस उपवेशने इत्यस्माद् औणादिको नप्रत्ययः ❀ । आसनस्य शरीरे प्राणावस्थानस्य निमित्तभूता आपः आस्नेय्यः । तथा वस्नम् मूल्यद्रव्यं सर्वव्यवहारास्पदं शरीरं तदुपादानभूता आपः वास्नेय्यः । "पञ्चम्याम् आहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति" इति श्रुतेः । ❀ आस्नशब्दाद् वस्नशब्दाच्च शैषिको ढक् प्रत्ययः ❀ । तथा त्वरणाः त्वरया गच्छन्त्यः । कृपणाः कृशा अल्पाः । एवंभूताश्च या आपः सन्ति । याश्च

गुह्याः गुहायां भवाः । शुक्राः शुक्लवर्णाः शुक्रात्मना परिणता वा । स्थूलाः स्थौल्योपेता महत्यः आपः व्यापनशीला नद्यादिरूपेण वर्तमाना ताः सर्वा आपः बीभत्सौ बीभत्स्यमाने जुगुप्स्यमाने पुरुषशरीरे असादयन् । अथ वा ता एव आपो बीभत्सौ जुगुप्स्यमाने पुरुषे स्वकार्यं शरीरम् असादयन्नित्यर्थः । ❀ वध बन्धने । मान्बधदान्शान्भ्यः०" इति सन् प्रत्ययः । स च "बधेर्वैरूप्ये" इति स्मरणात् कुत्सनेऽर्थे भवति । "सनाशंसभिक्ष उः" इति उप्रत्ययः ❀ ॥

जिनसे भली प्रकार स्नान होसकता है ऐसे जल, और नहीं भी होसकता ऐसे जल, प्राणको स्थिर रखने वाले जल, वा शरीरके उपादानभूत सर्वव्यवहारास्पद जल, त्वरासे जाने वाले त्वरण जल, अल्प जल, गुहामें होने वाले जल, शुक्ररूपमें परिणत हुए जल, नदी आदि के रूपमें वर्तमान स्थूल जल, इन सबने निन्दित शरीरमें अपने कार्यको स्थापित किया ॥ २८ ॥

नवमी ॥

अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन् ।
रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ २९ ॥

अस्थि । कृत्वा । सम्ऽइधम् । तत् । अष्ट । आपः । असादयन् ।
रेतः । कृत्वा । आज्यम् । देवः । पुरुषम् । आ । अविशन् २९

अस्थि प्राणिशरीरसंबन्धि अस्थिजातं समिधम् समिन्धनसाधनं शरीरपरिपाकस्य निमित्तं कृत्वा तत् तत्र षाट्कौशिके शरीरे अष्टसंख्याका आस्नेयीश्चेत्यादिना अनुक्रान्ता अपः असादयन् । आज्यं रेतः शुक्लं कृत्वा तस्य समिन्धनस्य अभिवृद्धिकारणम्

परिकल्प्य। अत्रास्थीनि पुरुषशरीरान्तर्गतानि शरीरवृद्धिहेतुत्वात् समित्त्वेन रूप्यन्ते रेतश्च स्वशरीरवृद्धेः पुत्राद्युत्पत्तिहेतुत्वेन च आज्यत्वेन रूप्यते। अत एव तैत्तिरीयके अग्न्याधेयप्रकरणे आधीयमानासु समित्सु अस्थित्वं तदञ्जनसाधने आज्ये रेतस्त्वं च आरोप्य स्तूयते। "अस्थि वा एतद् यत् समिधः। एतद् रेतो यद् आज्यम्" इति [तै० ब्रा० १. १. ९. ४]। इत्थं कृत्वा देवाः इन्द्रियाणि तदधिष्ठातारः अग्न्यादयो वा पुरुषशरीरं प्राविशन् ॥

आठ जलोंने प्राणियोंकी अस्थियोंको समिन्धनसाधन बनाकर शरीरपरिपाकके लिये शरीरमें स्थापित किया और उस समिधनकी वृद्धिके लिये वीर्यको घृत बनाया (यहाँ शरीरकी अस्थिएँ शरीरकी वृद्धिका कारण होनेसे समिधाएँ मानी गई हैं और वीर्य अपने शरीरकी वृद्धिका और पुत्रादिकी उत्पत्तिका हेतु होनेसे घृत माना गया है, अत एव तैत्तिरीयब्राह्मणके अग्न्याधेयप्रकरणमें समिधाओंके रखनेके समय, समिधाओंमें अस्थित्व और तदञ्जनसाधन घृतमें वीर्यत्वका आरोपण करके स्तुति की है, कि-"अस्थि वा एतद् यत् समिधः। एतद् रेतो यत् आज्यम्।-जो समिधाएँ हैं वे अस्थियें हैं और जो घृत है वह रेत है" (तैत्तिरीयब्राह्मण १।१।९।४) इस प्रकार देवता अर्थात् इन्द्रियें वा उनके अधिष्ठात्री अग्नि आदि देवताओंने पुरुषके शरीरमें प्रवेश किया ॥ २९ ॥

दशमी॥

या आपो॒ याश्च॑ दे॒वता॒ या वि॒राड् ब्रह्म॑णा स॒ह।
शरी॑रं॒ ब्रह्म॒ प्रावि॑श॒च्छरी॒रेधि॑ प्र॒जाप॑तिः ॥ ३० ॥

याः। आप॑ः। याः। च॒। दे॒वता॑ः। या। वि॒ऽराट्। ब्रह्म॑णा। स॒ह।

शरीरम् । ब्रह्म । प्र । अविशत् । शरीरे । अधि । प्रजाऽपतिः ३०

याः प्रागुदीरिता आपः याश्च देवताः इन्द्रियाभिमानिन्यः या च "विराड् वा इदम् अग्र आसीत्" [८. १०. १] इत्यादिना सार्वात्म्येन उक्ता विराट्संज्ञा देवता ब्रह्मणा ब्राह्मणतेजसा सह वर्तमाना ताः सर्वाः शरीरं प्राविशन् । तदनन्तरं यज्जगत्कारणं परं ब्रह्म तदपि अन्तर्यामिरूपेण तच्छरीरं प्राविशत् । तस्मिन् शरीरे अधि प्रजापतिः प्रजानां पालयिता पुत्राद्युत्पादको जीवो वर्तते ॥

जो पूर्वोक्त जल हैं, जो इन्द्राभिमानी देवता हैं, जो "विराड् वा इदं अग्रं आसीत्" इस (८ । १० । १) से सार्वात्म्यरूपमें प्रतिपादित विराट्संज्ञक देवता है ये ब्राह्मणतेजके साथ रहनेवाले देवता शरीरमें प्रविष्ट हुए । तदनन्तर जो जगत्कारण परब्रह्म है वह भी अन्तर्यामीरूपसे शरीरमें प्रवेश कर गया । उस शरीरमें प्रजाओंका पालक–पुत्रादिका उत्पादक जीव रहता है ॥ ३० ॥

एकादशी ॥

सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ॥ ३१ ॥

सूर्यः । चक्षुः । वातः । प्राणम् । पुरुषस्य । वि । भेजिरे ।

अथ । अस्य । इतरम् । आत्मानम् । देवाः । प्र । अयच्छन् । अग्नये

"आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत्" [ऐ० आ० २. ४. २] इति श्रुतेः सूर्यः चक्षुरभिमानी देवः । स च पुरुषस्य संबन्धि चक्षुरिन्द्रियम् आत्मीयभागत्वेन स्वीकृतवान् । वातः वायुः प्राणम् घ्राणेन्द्रियं भागत्वेन स्वीचकार । "वायुः प्राणो भूत्वा

नासिके प्राविशत्" [ऐ० आ० २. ४. २] इति श्रुतेः । उपलक्षणम् एतत् । एवम् अन्यान्यपि इन्द्रियाणि पुरुषसंबन्धीनि तत्तदधिदेवता वि भेजिरे विभज्य स्वीकृतवत्यः । अथ अनन्तरम् इतरम् प्राणेन्द्रियव्यतिरिक्तम् आत्मानम् षाट्कौशिकं स्थूलशरीरम् अग्नये सर्वे देवा भागत्वेन प्रायच्छन् । अग्निना मरणानन्तरं स्थूलशरीरमेव केवलं दह्यते ।

ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा कर्मेन्द्रियाण्यपि ॥
वायवः पञ्च बुद्धिश्च मनः सप्तदशं विदुः ॥

इति यत् सप्तदशात्मकं लिङ्गशरीरम् उक्तं तस्य मुक्तिपर्यन्तं विनाशाभावात् तत्तद्देवतारूपेण अवस्थानमेवेत्यर्थः ॥

"आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशत् ।–आत्यिने चक्षु बन कर नेत्रोंमें प्रवेश किया" इस ऐतरेय आरण्यक २ । ४ । २ की श्रुतिके अनुसार चक्षुका जो अभिमानी देवता सूर्य है उसने पुरुषकी चक्षुरिन्द्रियको अपने भागरूपमें स्वीकार किया । वायुने घ्राणेंद्रियको अपने भागरूपमें स्वीकार किया । इस विषयमें ऐतरेय आरण्यक २ । ४ । २ में कहा है, कि–"वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत् ।–वायुने प्राण बन कर नासिकामें प्रवेश किया" (ये दोनों इन्द्रियें उपलक्षणरूपमें यहाँ दिखाई गई हैं अत एव पुरुष सम्बन्धीअन्य इन्द्रियोंको भी उनके अधिदेवताओंने अपने भागरूप में स्वीकार किया) इसके अनन्तर प्राणेन्द्रियोंसे अतिरिक्त इसके छः कोश वाले स्थूलशरीरको अग्निके निमित्त सब देवता भागरूपमें देते हैं । अर्थात् मरणके अनन्तर केवल स्थूल शरीर ही भस्म होता है और जो "ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा कर्मेन्द्रियाण्यपि । वायवः पञ्च बुद्धिश्च मनः सप्तदशं विदुः ॥" पाँच ज्ञानेंद्रिय, पाँच कर्मेंद्रिय, प्राणापान आदि पाँच वायु, मन तथा बुद्धि इन सत्रहसे संगठित लिंगशरीर है वह मुक्तिपर्यन्त विनष्ट नहीं

होता मुक्तिके समय ही विनष्ट होता है अत एव तत्तद्देवतारूपसे अवस्थान ही होता है ॥ ३१ ॥

द्वादशी ॥

तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥ ३२ ॥

तस्मात् । वै । विद्वान् । पुरुषम् । इदम् । ब्रह्म । इति । मन्यते ।
सर्वाः । हि । अस्मिन् । देवता । गावः । गोस्थेऽइव । आसते ॥

तस्मात् खलु कारणात् विद्वान् उक्तप्रकारं सर्वं जानन् पुरुषम् पुरुषशरीरम् इदम् अपरोक्षम् अन्तर्बहिर्व्याप्य अवस्थितं ब्रह्मेति मन्यते जानाति । कुत इत्यत आह । हि यस्मात् सर्वा देवताः प्राणापानादिवायवः सर्वेन्द्रियाणि तदधिष्ठातारः अग्न्यादयश्च अस्मिन् शरीरे आसते निवसन्ति । तत्र दृष्टान्तः गावो गोष्ठ इव । यथा गावः स्वकीये गोष्ठे स्थाने विस्रम्भेण निवसन्ति तथेत्यर्थः । तस्मात् सर्वाभिर्देवताभिः आश्रितं जीवरूपेण अन्तर्यामिरूपेण च ब्रह्मणा प्रविष्टं पुरुषशरीरं तत्तादात्म्येन विद्वान् साक्षात्करोतीत्यर्थः ॥

इस कारण इन सब बातोंको जानने वाला विद्वान् पुरुष पुरुषशरीरको भीतर बाहर व्याप्त होकर स्थित अपरोक्ष ब्रह्म ही समझता है । क्योंकि—जैसे गौएँ अपने गोठमें विश्वस्त होकर रहती हैं इसी प्रकार सब देवता अर्थात् प्राण अपान आदिक वायुएँ और उनके अधिष्ठात्री अग्नि आदि देवता इस शरीरमें रहते हैं । तात्पर्य यह है, कि सब देवताओंसे आश्रित, जीवरूप और अन्तर्यामीरूपसे भी ब्रह्मके द्वारा प्रविष्ट पुरुषशरीरका विद्वान् पुरुष तत्तदात्म्यभावसे साक्षात्कार करता है ॥ ३२ ॥

त्रयोदशी ॥

प्र॒थ॒मेन॑ प्रमा॒रेण॑ त्रे॒धा विष्व॒ङ् वि गच्छति ।
अ॒द एके॑न॒ गच्छत्य॒द एके॑न गच्छती॒हैके॑न॒ नि षे॑वते

प्र॒थ॒मेन॑ । प्र॒ऽमा॒रेण॑ । त्रे॒धा । विष्व॑ङ् । वि । ग॒च्छ॒ति॒ ।
अ॒दः । एके॑न । गच्छ॑ति । अ॒दः । एके॑न । ग॒च्छ॒ति॒ । इ॒ह । एके॑न ।
नि । से॒व॒ते॒ ॥ ३३ ॥

शरीरम् अभिमन्यमानो जीवात्मा तेन शरीरेण तत्र प्रविष्टैरिन्द्रियैश्च पुण्यापुण्यात्मकानि कर्माणि अनुष्ठाय तत्फलोपभोगार्थं मरणानन्तरं स्वर्गनरकादीनि स्थानानि प्राप्नोति । तद् अत्र निरूप्यते । प्रथमेन प्रथमभाविना स्थूलशरीरेण प्रमृतेन । ❀ हेतौ तृतीया ❀ । भोगायतनस्य शरीरस्य तदारम्भककर्मक्षयेण । त्यागाद्धेतोरित्यर्थः । त्यक्तशरीरः स जीवात्मा त्रेधा त्रिप्रकारं विष्वङ् नाना नि गच्छति नियमेन प्रयाति ॥ अदः विप्रकृष्टं स्वर्गाख्यं स्थानम् एकेन पुण्येन कर्मणा गच्छति प्राप्नोति । अदः विप्रकृष्टं नरकाख्यं स्थानम् एकेन पापेन कर्मणा गच्छति प्राप्नोति । तथा इह अस्मिन् भूलोके एकेन पुण्यपापात्मकेन मिश्रितेन कर्मणा नि षेवते नितरां सुखदुःखात्मकान् भोगान् सेवते । श्रूयते हि । “पुण्येन पुण्यलोकं नयति पापेन पापम् उभाभ्यामेव मनुष्यलोकम्” इति ॥

(शरीरका अभिमान करता हुआ जीवात्मा उस शरीरसे और उस शरीरमें प्रविष्ट इन्द्रियोंसे भी पुण्य पापरूप कर्मोंका अनुष्ठान करके उनका फल भोगनेके लिये स्वर्ग नरक आदि स्थानों को प्राप्त होता है, इसी बातका इस मन्त्रमें निरूपण किया जाता है, कि–पहिले उत्पन्न हुए स्थूलशरीरका मरण होने पर अर्थात्

भोगायतन शरीरको उसका आरम्भ करने वाले कर्मोंका क्षय होनेके कारण त्यागनेसे वह त्यक्तशरीर जीवात्मा तीन प्रकारसे नियममें बँधा हुआ जाता है। एक प्रकारके पुण्यकर्मसे स्वर्गनामक स्थानको प्राप्त होता है और एक प्रकारके (पाप) कार्यसे नरक नामक स्थानको प्राप्त होता है तथा पुण्य और पाप दोनोंसे मिले हुए कर्मसमूहसे इस भूलोकमें सुख दुःखात्मक भोगोंका सेवन करता है। (अन्य श्रुतिमें भी कहा है, कि—"पुण्येन पुण्यलोकं नयति पापेन पापं उभाभ्यामेव मनुष्यलोकम्") ॥ ३३ ॥

चतुर्दशी ॥

अ॒प्सु स्ती॒मासु॑ वृ॒द्धासु॑ शरी॑रमन्त॒रा हि॒तम् ।
त॒स्मिंछवो॒ऽध्य॑न्त॒रा त॒स्माच्छवो॒ऽध्यु॑च्यते ॥ ३४ ॥

अ॒प्ऽसु । स्ती॒मासु॑ । वृ॒द्धासु॑ । शरी॑रम् । अ॒न्त॒रा । हि॒तम् ।
तस्मि॑न् । शवः॑ । अधि॑ । अ॒न्त॒रा । तस्मा॑त् । शवः॑ । अधि॑ । उ॒च्य॒ते॒

स्तीमासु अनार्द्रं सर्वं जगद् आर्द्रं कुर्वतीषु । ❀ तिम ष्टिम ष्टीम आर्द्रीभावे । तत्र स्तीमतेः पचाद्यच् ❀ । तथाविधासु वृद्धासु प्रवृद्धासु अप्सु उदकेषु अन्तरा मध्ये शरीरम् ब्रह्माण्डात्मकं समष्टिभूतं हितम् निहितं वर्तते । । स्मर्यते हि ।

अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यम् अवाकिरत् ।
तद् अण्डम् अभवद्धैमं कोटिसूर्यसमप्रभम् । [म०स्मृ० १.९]

इति । तस्मिन् ब्रह्माण्डशरीरे अधि उपरि अन्तरा मध्ये च शवः बलात्मकः सूत्रात्मा सर्वाधारभूतवस्त्वात्मकः परमेश्वरो वर्तते । तस्मात् समष्टिशरीराद् अधिकत्वेन स [शवः] बलात्मकः सूत्रात्मा उच्यते । श्रूयते हि । "वायुर्वै गौतम तत् सूत्रम् ।

वायुना वै गौतम सूत्रेणायं लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि भवन्ति” इति [बृ० आ० ३. ७. ६] ॥

चतुर्थेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

[इति] एकादशकाण्डे चतुर्थोनुवाकः ॥

सब अनार्द्र जगत्‌को आर्द्र करने वाले प्रवृद्ध जलोंके मध्यमें ब्रह्मांडात्मक समष्टिभूत शरीर स्थित है । मनुस्मृतिमें भी कहा है, कि- “अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवाकिरत् । तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥-पहिले जलकी ही सृष्टि की और उसमें वीर्यको निक्षिप्त किया तब वह सूर्यकी समान कान्ति वाला हैम अण्ड हुआ”) उस ब्रह्माण्डशरीरके भीतर और ऊपर शव अर्थात् बलात्मक सूत्रात्मा सर्वाधारभूतवस्तुरूप परमेश्वर रहता है । इस समष्टि शरीरसे अधिक होनेके कारण वह शव बलात्मक सूत्रात्मा कहलाता है (बृहदारण्यक ३ । ७ । ६ में भी कहा है, कि- “वायुर्वै गौतम तत् सूत्रम् । वायुना वै गौतम सूत्रेणायं लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि भवन्ति”) ॥३४॥ (२४)

चतुर्थ अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (४८८)

एकादश काण्डमें चतुर्थ अनुवाक समाप्त

पञ्चमेनुवाके षट् सूक्तानि । तत्र “ये बाहवः” इत्यादि सूक्तत्रयम् अर्थसूक्तम् । “उत्तिष्ठत सं नह्यध्वम्” इत्यादि सूक्तत्रयम् अर्थसूक्तम् । आभ्याम् अर्थसूक्ताभ्यां जयकामो राजा युद्धकाले यथालिङ्गं स्वीयान् भटान् प्रति संप्रैषं कुर्यात् जपं कुर्याच्च ॥

तथा शत्रुजयकर्मणि “ये बाहवः” इत्यनुवाकेन पृषदाज्यं सक्तूंश्च जुहुयात् ॥

तथा अनेनानुवाकेन धनुरिध्मेऽग्नौ पृषदाज्येन अक्त्वा धनुःसमिध आदध्यात् । इष्विध्मेग्नौ पृषदाज्येन अक्त्वा इषुसमिध आदध्यात् ॥

तथा अनेनानुवाकेन पृषदाज्येन धनुः संपात्य विमृज्य अभिमन्त्र्य योद्धुध्रे जयकामाय राज्ञे प्रयच्छेत् ॥

भाङ्गपाशान् अनेनानुवाकेन पृषदाज्येन संपात्य अभिमन्त्र्य परसेनाक्रमणस्थानेषु प्रक्षिपेत् ॥

तथा मौञ्जपाशान् आमपात्राणि त्रिसंधीनि लोहमयानि पात्राणि वज्ररूपाणि अर्बुदरूपाणि वा अनेनानुवाकेन पृषदाज्येन संपात्य अभिमन्त्र्य युद्धस्थानेषु प्रक्षिपेत् ॥

तथा अनेन अनुवाकेन शितिपदीं गां पृषदाज्येन संपात्य अभिमन्त्र्य राज्ञश्चिह्नितकेतुदण्डे रहस्यं बध्नीयात् । अन्यां शितिपदीं गां संपात्य अभिमन्त्र्य शत्रुसेनामध्ये निरस्येत् । ततो युद्धार्थं सेनानायकम् उत्सृजेत् ॥

एतत् सर्वं कौशिकेन सूत्रितम् । "ये बाहव उत्तिष्ठतेति यथालिङ्गं संप्रेष्यति । होमार्थे पृषदाज्यम् । प्रदानान्तानि वाप्यानि । वाप्यैस्त्रिषन्धीनि वज्ररूपाण्यर्बुदरूपाणि । शितिपदीं संपातवतीं दर्भरज्ज्वा क्षत्रियायोपासङ्गदण्डे बध्नाति । द्वितीयाम् अस्यति" इति [कौ० २. ७] ॥

पाँचवें अनुवाकमें छः सूक्त हैं। इनमें "ये बाहवः" आदि तीन सूक्तोंका समूह अर्थसूक्त कहलाता है। और "उत्तिष्ठत संनह्यध्वम्" आदि तीन सूक्तोंका समूह दूसरा अर्थसूक्त कहलाता है। विजयको चाहने वाला राजा इन दोनों अर्थसूक्तोंसे युद्धके समय लिंगानुसार अपने भटोंके प्रति सम्प्रैष और जपको करे।

तथा शत्रुजप कर्ममें "ये बाहवः" अनुवाकसे विन्दुरूपमें घीकी और सत्तुओंकी आहुति देय।

तथा इस अनुवाकसे धनुषरूपी ईंधन वाली अग्निमें पृषदाज्यसे भीगी हुई धनुषसमिधाओंको रक्खे। और बाणरूपी ईंधन वाली अग्निमें पृषदाज्यसे भीगी हुई बाणसमिधाओंको रक्खे।

तथा इस अनुवाकसे पृषदाज्यसे सम्पातित अभिमंत्रित और विमार्जित करके विजयाभिलाषी योद्धा राजाको देदेय।

इस अनुवाकसे भंग अर्थात् सनके पृषदाज्यसे सम्पातित और अभिमन्त्रित करके शत्रुकी सेनाके घूमनेके स्थानमें डाल देय ।

तथा मूँजके पाशोंको, कच्चे पात्रोंको तीन स्थानमें जुड़े हुए लोहेके वज्ररूप वा अर्बुदरूप पात्रोंको इस अनुवाकके द्वार पृषदाज्यसे सम्पातित और अभिमन्त्रित करके युद्धस्थानमें डालदेय ।

तथा इस अनुवाकसे शितिपदीगौको पृषदाज्यसे सम्पातित और अभिमन्त्रित करके राजाके चिन्हित केतुदण्डमें एकान्तमें बाँध देय । दूसरी शितिपदी (चितकबरे पैरों वाली) गौको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके शत्रुसेनाके मध्यमें छोड़ देय । तदनंतर युद्ध करनेके लिये सेनानायकको भेजे ।

इस सबके विषयमें कौशिकसूत्र २ । ७ का प्रमाण है, कि– "ये बाहव उत्तिष्ठतेति यथालिङ्गं संप्रेष्यति । होमार्थे पृषदाज्यम् । प्रदानान्तानि वाप्यानि । वाप्यैस्त्रिसंधीनि वज्ररूपाण्यर्बुदरूपाणि । शितिपदीं सम्पातवतीं दर्भरज्ज्वा क्षत्रियायोपासङ्गदण्डे बध्नाति । द्वितीयां अस्यति" (कौशिकसूत्र २ । ७) ॥

तत्र प्रथमा ॥

ये बा॒ह॒वो या इष॑वो॒ धन्व॑नां वी॒र्या॑णि च ।
अ॒सीन् प॑र॒शूनायु॑धं चि॒त्ताकू॒तं च॒ यद्धृ॒दि ।
स॒र्वं तद॑र्बुदे॒ त्वम॒मित्रे॑भ्यो दृ॒शे कु॑रूदा॒रांश्च॒ प्र द॑र्शय १

ये । बा॒हवः । याः । इष॑वः । धन्व॑नाम् । वी॒र्या॑णि । च॒ ।
अ॒सीन् । प॒र॒शून् । आयु॑धम् । चि॒त्त॒ऽआ॒कू॒तम् । च॒ । यत् । हृ॒दि ।
सर्व॑म् । तत् । अ॒र्बु॒दे॒ । त्वम् । अ॒मित्रे॑भ्यः । दृ॒शे । कु॒रु॒ । उ॒त्ऽआ॒रान् । च॒ । प्र । द॒र्श॒य॒ ॥ १ ॥

ये अस्मदीयानां योद्धॄणां भटानां बाहवः आयुधग्राहिणो हस्ताः या इषवः बाणाः तथा धन्वनाम् धनुषाम् अस्मदीयानां यानि च वीर्याणि वीरकर्माणि शत्रुनिपातनसामर्थ्यानि सन्ति तान् सर्वान् बाह्वादीन् असीन् खड्गान् परशून् परश्वधान् कुठारविशेषान् यद् अन्यदपि आयुधम् आयोधनसाधनशस्त्रम् यच्च अस्मदीयानां योद्धॄणां हृदि हृदये अवस्थितं चित्ताकूतम् चित्तेन मनसा संकल्प्यमानं शत्रूणां मारणम् । यद्वा चित्तानि अस्मदीयानां भटानां धैर्ययुक्तानि मनांसि आकूतानि संकल्पाः इमम् अनेन प्रकारेण हनिष्यामि इमम् अनेनेत्येवं बहुधा भिन्नाः । ❀ "द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्" इति एकवद्भावाद् एकवचनम् ❀ । ये बाहव इत्यादिना यद् एतद् अनुक्रान्तं तत् सर्वम् हे अर्बुदे ❀ । अर्बुदो नाम सर्पऋषिः । तथा च ऐतरेयके समाम्नायते । "अर्बुदः काद्रवेयः सर्पऋषिर्मन्त्रकृत्" इति [ऐ०ब्रा० ६.१] । तस्य द्वौ पुत्रौ अर्बुदिश्च न्यर्बुदिश्चेति । ❀ अपत्येर्थे "अत इञ्" इति इञ् । "संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः" इति आदिवृद्धिर्न क्रियते ❀ । अर्बुदस्य हे पुत्र हे सर्प त्वम् उक्तं सर्वम् अमित्रेभ्यः अस्मच्छत्रुभ्यः दृशे दृष्टये कुरु । यथा शत्रूणां मनसि भीतिर्जायते तथा अस्मदीयानि युद्धोपकरणानि दर्शयेत्यर्थः । अपि च उदारान् उद्गतान् अन्तरिक्षचरान् रक्षःपिशाचादीन् मन्त्रसामर्थ्योद्भावितान् शत्रूणां भीत्यर्थं प्रदर्शय । यद्वा सूर्यरश्मिप्रभवा उल्कादय आन्तरिक्षा उत्पाता उदाराः । तानपि तेभ्यः पराजयार्थं प्रदर्शय । "तस्मात् तेपानाद् उदारा अजायन्त" इति तैत्तिरीयकम् [तै० ब्रा० २. २. ९. २] । उदारयन्ति आर्तिम् उद्भावयन्तीति उदाराः । ❀ ऋ गतौ । अस्मात् उत्पूर्वात् ण्यन्तात् पचाद्यच् ❀ ॥

हमारे योधाओंके जो आयुधोंको ग्रहण करने वाले हाथ हैं, जो बाण हैं और हमारे धनुषोंके जो शत्रुओंको गिरानेमें समर्थ

६-१०-३०

वीरकर्म हैं इन सबोंको, तथा खड्ग फरसे तथा जो कुछ अन्य आयुध हैं उनको और हमारे योधाओंके हृदयमें जो शत्रुओंको मारनेके संकल्प उठ रहे हैं उनको हे मन्त्रकर्ता † अर्बुदनामक सर्पऋषिके पुत्र अर्बुदे ! तू हमारे शत्रुओंके दृष्टिगोचर कर अर्थात् शत्रुओंके हृदयमें जिस प्रकार भय हो तिस प्रकार इन सब सामग्रियोंको दिखा और मन्त्रशक्तिसे प्रकट किये हुए अन्तरिक्षचर राक्षस पिशाच आदिको शत्रुओंके डरानेके लिये दिखा। अथवा–सूर्यकी किरणोंसे होने वाले उल्का आदि अन्तरिक्षके उत्पातोंको दिखा ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे ॥ २ ॥

उत् । तिष्ठत । सम् । नह्यध्वम् । मित्राः । देवऽजनाः । यूयम् ।
सम्ऽदृष्टा । गुप्ता । वः । सन्तु । या । नः । मित्राणि । अर्बुदे २

हे मित्राः मित्रभूता अस्माकं जये प्रवृत्ता हे देवजनाः यूयम् उत्तिष्ठत अस्मात् सेनानिवेशाद् उद्गच्छत। ❀ "उदोनूर्ध्वकर्मणि" इति पर्युदस्तत्वाद् आत्मनेपदाभावः ❀ । सं नह्यध्वम् उत्थानानन्तरं युद्धाय संनद्धा भवत । तथा वः युष्माभिः संदृष्टाः सम्यग्निरीक्षिताः अस्मदीया भटाः गुप्ताः रक्षिताः सन्तु भवन्तु । व इति तृतीयार्थे षष्ठी । हे अर्बुदे सर्प नः अस्माकं या यानि मित्राणि अस्मदीयैः शत्रुभिः सह योद्धुम् आगतानि तानि त्वया गुप्तानि रक्षितानि भवन्त्वित्यर्थः ॥

---

† ऐतरेयब्राह्मण ६ । १ में कहा है, कि–"अर्बुदः काद्रवेयः सर्पऋषिर्मन्त्रकृत् ।–कद्रूके पुत्र अर्बुद मन्त्रकर्ता सर्पऋषि हैं" ॥

हे हमारी जयमें प्रवृत्त अत एव मित्ररूप देवताओं! आप इस छावनीसे उठ कर खड़े हूजिये और उठ कर युद्धके लिये तयार हूजिये, तथा आपके द्वारा भली प्रकार निरीक्षित हुए हमारे भट रक्षित होवें और हे अर्बुदे सर्प! जो हमारे मित्र हमारे शत्रुओं से लड़नेके लिये आए हैं वे आपसे रक्षित रहें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

उत्तिष्ठतमा रभेथामादानसंदानाभ्याम् ।
अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ॥ ३ ॥

उत् । तिष्ठतम् । आ । रभेथाम् । आदानऽसंदानाभ्याम् ।
अमित्राणाम् । सेनाः । अभि । धत्तम् । अर्बुदे ॥ ३ ॥

हे अर्बुदे त्वं च न्यर्बुदिश्च युवाम् उत्तिष्ठतम् स्थानाद् उच्चलतम् । आ रभेथाम् युद्धम् उपक्रमेथाम् । ❀ रभ राभस्ये । राभस्यं कार्योपक्रम इति तद्वृत्तिः ❀ । अनन्तरम् आदानसंदानाभ्याम् आदीयते गृह्यते अनेनेति ग्रहणार्थं रज्जुयन्त्रम् आदानम् । संदीयते बध्यते अनेनेति संदानं बन्धनरज्जुः । ताभ्यां रज्जुभ्याम् अमित्राणां शत्रूणां संबन्धिनीं सेनाम् अभि धत्तम् बध्नीतम् ॥ ❀ अभिपूर्वो दधातिर्बन्धने वर्तते । यथा । "अश्वाभिधानीम् आदत्ते" इति [तै० सं० ५. १. २. १] ❀ ॥

हे अर्बुदे सर्प! आप और न्यर्बुदि भी दोनों अपने स्थानसे उठिये और युद्धका आरम्भ करिये और जिसको पकड़नेके लिये ग्रहण किया जाता है उस आदान नामक रज्जुसे और जिससे बाँधा जाता है उस संदान नामक रज्जुसे आप शत्रुओंकी सेनाको वश में करिये ॥ ३ ॥

अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः ।
याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं च पृथिवी मही ।
ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्यामहं जितमन्वेमि सेनया ॥ ४ ॥

अर्बुदिः । नाम । यः । देवः । ईशानः । च । निऽअर्बुदिः ।
याभ्याम् । अन्तरिक्षम् । आऽवृतम् । इयम् । च । पृथिवी । मही ।
ताभ्याम् । इन्द्रमेदिऽभ्याम् । अहम् । जितम् । अनु । एमि ।
सेनया ॥ ४ ॥

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परि वारय ॥ ५ ॥

उत् । तिष्ठ । त्वम् । देवऽजन । अर्बुदे । सेनया । सह ।
भञ्जन् । अमित्राणाम् । सेनाम् । भोगेभिः । परि । वारय ॥५॥

चतुर्थी ॥ अर्बुदिन्यर्बुद्योर्माहात्म्यम् अनया प्रतिपाद्यते । अर्बुदिरिति प्रसिद्धः सर्पात्मको यो देवः तथा ईशानः सर्वस्य ईशिता यश्च न्यर्बुदिरिति प्रसिद्धः सर्पः याभ्याम् अर्बुदिन्यर्बुदिभ्याम् अन्तरिक्षं सर्वम् आवृतम् स्वशरीरैरावेष्टितम् इयं परिदृश्यमाना मही महती पृथिवी च याभ्याम् आवृता । तौ सर्पात्मकौ देवौ संग्रामजयकर्मणि सर्वोत्कर्षेण वर्तेते इत्यर्थः ॥

पञ्चमी ॥ ताभ्यां द्यावापृथिव्यौ व्याप्य वर्तमानाभ्याम् इन्द्रमेदिभ्याम् इन्द्रस्य स्निग्धाभ्याम् । ❀ ञिमिदा स्नेहने । अस्मात् ताच्छीलिको णिनिः ❀ । अर्बुदिन्यर्बुदिभ्यां जितं शत्रुबलम्

अहं पश्चात् सेनया अन्वेमि; अनुगच्छामि । हे देवजन देवजातीय अर्बुदे त्वं सेनया आत्मीयया सह उत्तिष्ठ उद्गच्छ । शत्रून् प्रथमम् अभियाहीत्यर्थः । अनन्तरम् अमित्राणाम् शत्रूणां सेनां भञ्जन् आमर्दयन् भग्नवीर्यां कुर्वन् भोगेभिः भोगैः आत्मीयैः सर्पशरीरैः परि वारय परिवेष्टय । यथा शत्रुसेना अस्मान् न पश्यति तथा तदीयानि अक्षीणि पिधेहीत्यर्थः ॥

(इस ऋचासे अर्बुदि और न्यर्बुदिके माहात्म्यका वर्णन करते हैं, कि-) जो अर्बुदि नामक प्रसिद्ध सर्पदेवता है तथा जो सबका ईश्वर न्यर्बुदि नामक प्रसिद्ध सर्प है और जिन अर्बुदि न्यर्बुदि नामक सर्पोंसे सब जगत् घिरा हुआ है अर्थात् उन्होंने अपने शरीरसे सम्पूर्ण जगत्को बाँध रक्खा है और इस विशाल पृथिवीको भी बाँध रक्खा है तात्पर्य यह है, कि-यह सर्पात्मक दोनों देव संग्रामजयकर्ममें सर्वोत्कृष्टरूपसे वर्तमान रहते हैं ।

इन द्यावापृथिवीको व्याप्त करके रहने वाले इन्द्रके स्नेही अर्बुदि न्यर्बुदि नामक सर्पोंसे जीते हुए शत्रुबल पर मैं पीछेसे सेना लेकर चढ़ूँगा, हे देवजातीय अर्बुदे ! तू अपनी सेनाके साथ उठ अर्थात् शत्रुओं पर प्रथम ही चढ़ाई कर । फिर शत्रुओंकी सेना का मर्दन कर भग्नवीर्य करके अपने सर्पशरीरोंसे उसको चारों ओरसे घेर ले अर्थात् शत्रुसेना जिस प्रकार हमारी ओर न देख सके तिस प्रकार उसकी आँखोंको ढक दे ॥ ४ ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

सप्त जातान् न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन् ।
तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठ सेनया ॥ ६ ॥

सप्त । जातान् । निऽअर्बुदे । उत्ऽआराणाम् । सम्ऽईक्षयन् ।

तेभिः । त्वम् । आज्ये । हुते । सर्वैः । उत् । तिष्ठ । सेनया ६

हे न्यर्बुदे एतत्संज्ञ सर्प उदाराणाम् प्रागुक्तलक्षणानां मध्ये सप्तसंख्याकान् जातान् उत्पन्नान् दृष्टितिरोधायकान् समीक्षयन् शत्रूणां दर्शयंस्त्वम् आज्ये हुते । उपलक्षणम् एतत् । आज्योपलक्षितेषु द्रव्येषु हुतेषु सत्सु तेभिः तैः सर्वैरुपलक्षितः सन् अस्मदीयया सेनया सह उत्तिष्ठ उद्गच्छ ॥

हे न्यर्बुदि नामक सर्प ! तू पूर्वोक्त लक्षणों वाले दृष्टिके मन्द करने वाले सात–उदार–उत्पातोंको शत्रुओंको दिखाता हुआ घृत आदिके होमने पर उन उत्पातोंको लेकर हमारी सेनाके साथ उठ ६

सप्तमी ॥

प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
विकेशी पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥ ७ ॥

प्रतिऽघ्नाना । अश्रुऽमुखी । कृधुऽकर्णी । च । क्रोशतु ।
विऽकेशी । पुरुषे । हते । रदिते । अर्बुदे । तव ॥ ७ ॥

हे अर्बुदे तव रदिते दन्तैर्विलेखने खादने सति तथा तेन रदनेन शत्रूभूते पुरुषे हते मृते सति तदीया जाया प्रतिघ्नाना प्रतिमुखं स्वकीयं वक्षस्ताडयन्ती । ❀ प्रतिपूर्वात् हन्तेर्लटः शानच् । "गमहन०" इति उपधालोपः ❀ । अश्रुमुखी वाष्पमुखी कृधुकर्णी । कृध्विति ह्रस्वनाम । कर्णाभरणपरित्यागेन ह्रस्वकर्णी च विकेशी विकीर्णशिरोरुहा च सती क्रोशतु रोदनं करोतु । ❀ क्रुश आह्वाने रोदने च ❀ ॥

हे अर्बुदि नामक सर्प ! तू जब अपने दाँतोंसे डस कर मेरे शत्रुको मारले उस समय उसकी स्त्री उसकी ओर मुख करके अपने

वक्षःस्थलको पीटे, आँसू बहावे, कानोंके आभूषणोंको त्याग कर हस्तकर्णी होजावे और बालोंको खोल कर रोने लगे ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

संकर्षन्ती करूकरं मनसा पुत्रमिच्छन्ती ।
पतिं भ्रातरमात्स्वान् रदिते अर्बुदे तव ॥ ८ ॥

सम्ऽकर्षन्ती । करूकरम् । मनसा । पुत्रम् । इच्छन्ती ।
पतिम् । भ्रातरम् । आत् । स्वान् । रदिते । अर्बुदे । तव ॥८॥

हे अर्बुदे तव त्वदीये रदिते रदने दन्तैर्विलेखने सति विषावेशवशात् शत्रुस्त्री करूकरं संकर्षन्ती । करु इति अनुकरणशब्दोयम् । तत्करोतीति करूकरम् हस्तपादाद्यवयवगतं संधिमद् अस्थिजातं तत् सम्यक् कर्षन्ती । लोके हि भयवशाद् उभयोर्हस्तयोः परस्पराङ्गुलिनिपीडनेन तादृशं शब्दम् उत्पादयन्ति । तदनन्तरं मनसा अन्तःकरणेन विषप्रतीकाराय पुत्रम् आत्मीयं सुतम् इच्छन्ती। तदनन्तरं पतिम् भर्तारम् इच्छन्ती । ततो भ्रातरम् आत्मीयं सहजम् । आत् अनन्तरं स्वान् स्वकीयान् बन्धुजनान् विषनिर्हरणाय इच्छन्ती । इत्थम् इतिकर्तव्यतामूढा भवत्वित्यर्थः ॥

हे अर्बुदे ! तेरे दाँतोंसे डसने पर विषका आवेश होनेसे शत्रुस्त्री हाथ पैरकी संधिकी अस्थियोंको दबा कर करु-शब्द (कट कट शब्द) को करने लगे । फिर मनसे विषका प्रतीकार करने के लिये अपने पुत्रको चाहे, पतिका ध्यान रक्खे, भाईको चाहे तथा विषको दूर करनेके लिये अपने बांधवोंको चाहे। इस प्रकार कर्तव्यविमूढ़ होजावे ॥ ८ ॥

नवमी ॥

अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ।

ध्वाङ्क्षाः शकुनयस्तृप्यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते
अर्बुदे तव ॥ ९ ॥

अलिक्लवाः । जाष्कमदाः । गृध्राः । श्येनाः । पतत्रिणः ।

ध्वाङ्क्षाः । शकुनयः । तृप्यन्तु । अमित्रेषु । सम्ऽईक्षयन् । रदिते ।
अर्बुदे । तव ॥ ९ ॥

अलिक्लवाः । विशिष्टक्लैव्ययुक्ता विक्लवाः तद्विपरीता अलिक्लवा । धृष्टाः पक्षिण इत्यर्थः । याश्च पक्षिजातयः क्रमदाः क्रमस्य शरीरावसादस्य दात्र्यः । ता अनुक्रामति । गृध्राः श्वेतवर्णा मांसाभिलाषिणः पक्षिणः । श्येनाः प्रसिद्धाः । पतत्रिणः अन्ये च मांसभक्षकाः पक्षिणः पतत्रिशब्देन विवक्षिताः । ध्वाङ्क्षाः काकाः । एवमात्मकाः शकुनयः हे अर्बुदे तव रदिते त्वदीये रदने विषदन्तैर्विलेखने अमित्रेषु अस्मदीयेषु शत्रुषु सति समीक्षयन् । ❀ व्यत्ययेन एकवचनम् ❀ । तन्मरणं प्रतीक्षमाणास्तदनन्तरं तद्भक्षणेन तृप्यन्तु तृप्ता भवन्तु ॥

हे अर्बुदे ! तेरे काटने पर हमारे शत्रुओंके मरणकी बाट देखते हुए शरीरको कष्ट देने वाले ढीट गिद्ध बाज और कौए आदि पक्षी उनके मांससे तृप्त होवें ॥ ९ ॥

दशमी ॥

अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः ।
पौरुषेयेधि कुणपे रदिते अर्बुदे तव ॥ १० ॥

अथो इति । सर्वम् । श्वापदम् । मक्षिका । तृप्यतु । क्रिमिः ।
पौरुषेये । अधि । कुणपे । रदिते । अर्बुदे । तव ॥ १० ॥

अथो अपि च सर्वं श्वापदम् शुनः पदानीव पदानि यस्य सृगालव्याघ्रादेः तत् सर्वं श्वापदम् । मक्षिका मांसनिषेविणी या नीलमक्षिकेति प्रसिद्धा । क्रिमिः मांसेषु जीर्णेषु जायमानः प्राणी । एतत् सर्वम् हे अर्बुदे तव रदिते सति पौरुषेये पुरुषसंबन्धिनि कुणपे शवशरीरे अधि उपरि तृप्यतु । तव खादनेन सर्वेषु शत्रुषु मृतेषु तच्छरीराणि गृध्रादयः पक्षिश्वसृगालादयश्च भक्षयन्त्वित्यर्थः ॥

[इति] पञ्चमेऽनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

और जिनका कुत्तेकी समान पैर होता है ऐसे गीदड़ व्याघ्र आदि श्वापद, मांसका सेवन करनी वाली नीली मक्खी, मांसके जीर्ण होने पर प्रादुर्भूत होने वाले प्राणी कीड़े ये सब, हे अर्बुदे! तेरे काटने पर शत्रुके शवके ऊपर तृप्त होवें अर्थात् तेरे काटनेसे सब शत्रुओंके मर जाने पर उनके शरीरोंको गीध कौए कुत्ते गीदड़ आदि भक्षण कर जावें ॥ १० ॥ (२१)

पञ्चम अनुवाक में प्रथम सूक्त समाप्त

"आ गृह्णीतम्" इति सूक्तस्य शत्रुजयकर्मणि विनियोग उक्तः ॥

"आ गृह्णीतं" सूक्तका शत्रुजयकर्ममें विनियोग कह दिया है।

द्वितीयसूक्ते प्रथमा ॥

आ गृ॑ह्णीत॒ं सं बृ॑ह॑तं प्राणापा॒नान् न्य॑र्बुदे ।
नि॒वा॒शा घो॒षाः सं य॑न्त्व॒मित्रे॑षु स॒मी॒क्षय॑न् र॒दि॒ते
अ॑र्बु॒दे तव॑ ॥ ११ ॥

आ । गृ॒ह्णी॒तम् । सम् । बृ॒ह॒तम् । प्रा॒णा॒पा॒नान् । नि॒ऽअ॒र्बु॒दे॒ ।
नि॒ऽवा॒शाः । घोषाः॑ । सम् । य॒न्तु॒ । अ॒मित्रे॑षु । स॒म्ऽई॒क्षय॑न् ।
र॒दि॒ते । अ॒र्बु॒दे॒ । तव॑ ॥ ११ ॥

हे न्यर्बुदे त्वं च अर्बुदिश्च युवां शत्रुसंबन्धिनः प्राणापानान् आ गृह्णीतम् आसमन्तात् स्वीकुरुतम् । तदनन्तरं सं वृहतम् समूलम् उत्खिदतम् । ❀ वृहू उद्यमने । तुदादित्वात् शप्रत्ययः ❀ ॥ हे अर्बुदे तव रदिते सति अमित्रेषु शत्रुषु तद् रदितं समीक्षयन् । ❀ षष्ठ्यर्थे प्रथमा ❀ । समीक्षयतां जनानां निवाशाः नीचीनं वाश्यमाना आभाष्यमाणा घोषाः शब्दाः सं यन्तु सम्यग्वर्तन्ताम् । विषनिपीडितानाम् आर्तस्वरा उत्पद्यन्ताम् इत्यर्थः ॥

हे न्यर्बुदि ! और अर्बुदि ! आप दोनों शत्रुओंके प्राणोंको ग्रहण करें, तदनन्तर उसको जड़सहित उखाड़ फेंके, हे अर्बुदि ! तेरे काटने पर शत्रु उस उस डसनेके स्थानको देख कर रोवाराट मचाने लगें ॥ ११ ॥

द्वितीया ॥

उद् वेपय सं विजन्तां भियामित्रान्त्सं सृज ।
उरुग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान् न्यर्बुदे ॥ १२ ॥

उत् । वेपय । सम् । विजन्ताम् । भिया । अमित्रान् । सम् । सृज ।
ऊरुऽग्राहैः । बाहुऽअङ्कैः । विध्य । अमित्रान् । निऽअर्बुदे ॥१२॥

हे न्यर्बुदे एतत्संज्ञ सर्पजातीय देव अमित्रान् अस्मदीयान् शत्रून् उद् वेपय उत्कम्पय । ❀ टुवेपृ कम्पने इति धातुः ❀ । ते च अनन्तरं सं विजन्ताम् भयात् स्वस्थानात् प्रचलिताः उद्विग्ना भवन्तु । ❀ ओविजी भयचलनयोः ❀ । भिया अस्मत्सकाशाज्जनितया भीत्या सं सृज संयोजय तदनन्तरम् ऊरुग्राहैः ऊरूणां ग्रहणैः बाहुवङ्कैः बाहुना वक्रबन्धनैः अमित्रान् अस्मदीयान् शत्रून् विध्य ताडय ॥

हे न्यर्बुदि नामक सर्पजातीय देव ! आप हमारे शत्रुओंको

कँपाइये और वे भी अपने स्थानसे प्रचलित होकर उद्विग्न होवें । उनको आप हमसे भयभीत करिये फिर आप हमारे शत्रुओंको टाँगोंके और हाथोंके क्रियाराहित्यसे ताड़ित करिये ॥ १२ ॥

तृतीया ॥

मुह्य॑न्त्वेषां बा॒हव॑श्चित्ताकू॒तं च॒ यद्धृ॒दि ।
मै॒षामुच्छे॑षि॒ किं च॒न र॑दि॒ते अ॑र्बुदे॒ तव॑ ॥ १३ ॥

मुह्य॑न्तु । ए॒षा॒म् । बा॒हवः॑ । चि॒त्त॒ऽआ॒कू॒तम् । च॒ । यत् । हृ॒दि ।
मा । ए॒षा॒म् । उत् । शे॒षि॒ । किम् । च॒न । र॒दि॒ते । अ॒र्बु॒दे॒ । तव

हे अर्बुदे तव रदिते खादने सति एषां शत्रूणां बाहवः विषावेशवशाद् मुह्यन्तु मूढा व्यापारासमर्था भवन्तु । एषां शत्रूणां हृदि हृदये यत् चित्ताकूतम् चित्तेन संकल्पितम् अर्थजातं तदपि मुह्यतु मूढं विस्मृतं भवतु । यद्वा चित्तानि मनांसि आकूतानि कर्तव्यविशेषविषयास्तद्वृत्तयः । तत् सर्वं मुह्यतु । अपि च एषां शत्रूणां संबन्धि किं चन किमपि रथतुरगहस्त्यादिलक्षणं बलं मा उच्छेषि उच्छिष्टम् अवशिष्टं मा भूत् । सर्वमपि त्वया हन्यताम् इत्यर्थः ॥

हे अर्बुदि ! आपके डसने पर शत्रुओंकी भुजाएँ विषका आवेश होने पर मूढ़ होजावें अर्थात् व्यापार करनेमें असमर्थ होजावें और इन शत्रुओंके हृदयोंमें जो संकल्प हों वह भी उनको विस्मृत हो जावें, इन शत्रुओंका रथ हाथी घोड़ा आदि कुछ भी न बचे अर्थात् आप सबको नष्ट कर डालिये ॥ १३ ॥

चतुर्थी ॥

प्र॒ति॒घ्ना॒नाः सं धा॑व॒न्तूरः॑ प॒टू॒रावा॑घ्ना॒नाः ।
अ॒घा॒रिणी॑र्वि॒के॒श्यो॒ रु॒दत्यः॑ पु॒रुषे॑ ह॒ते र॑दि॒ते अ॑र्बुदे॒ तव॑

प्रतिऽघ्नानाः । सम् । धावन्तु । उरः । पट्टरौ । आऽघ्नानाः ।
अघारिणीः । विऽकेश्यः । रुदत्यः । पुरुषे । हते । रदिते । अर्बुदे ।
तव ॥ १४ ॥

हे अर्बुदे तव रदिते खादने सति पुरुषे स्वकीये भर्तरि हते सति तदीयाः स्त्रियः प्रतिघ्नानाः प्रतिमुखं स्वशरीरम् आघ्नत्यस्ताडयन्त्यः । तथा उरः वक्षःस्थलं पट्टरौ तत्प्रदेशौ च आघ्नानाः हस्ताभ्याम् आताडयन्त्यः । विकेश्यः विकीर्णकेश्यः । अघारिणीः अघेन भर्तृवियोगजनितेन दुःखेन आर्ताः । रुदत्यः संजातरोदनाः सत्यः सं धावन्तु मृतपुरुषसमीपं शीघ्रं गच्छन्तु । ❀ "सर्तेर्वेगितायां गतौ धावादेशो वक्तव्यः" इति "पाघ्रा०" इत्यादिना धाव् आदेशः ❀ ॥

हे अर्बुदि ! तेरे काटनेसे अपने भर्ताके मर जाने पर उनकी स्त्रियें मुखको पीटती हुई छातियोंको कूटती हुई, पट्टर नामक स्थानोंको ताड़ित करती हुईं बालोंको खोल भर्तृवियोगजनित दुःखसे आर्त हो रोती हुईं मरे हुए स्वामीकी ओर दौड़ें॥ १४ ॥

पञ्चमी ॥

श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे ।
अन्तःपात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम् ।
सर्वास्ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय

श्वन्ऽवतीः । अप्सरसः । रूपकाः । उत । अर्बुदे ।
अन्तःऽपात्रे । रेरिहतीम् । रिशाम् । दुर्निहितऽएषिणीम् ।

सर्वाः । ताः । अर्बुदे । त्वम् । अमित्रेभ्यः । दृशे । कुरु ।
उत्ऽआरान् । च । प्र । दर्शय ॥ १५ ॥

श्वन्वतीः शुना क्रीडार्थेन सारमेयेण सहिता अप्सरसः गन्धर्वस्त्रियः । रूपकाः मायावशात् केवलं रूपमात्रेण उपलभ्यमानाः सेनारूपकाः । हे अर्बुदे ताः सर्वा अमित्रेभ्यो दर्शय । तथा पात्रे अन्तः मध्ये रेरिहतीम् पुनःपुनर्लिहतीं दुर्णिहितैषिणीम् दुष्टनिक्षिप्तम् इच्छन्तीं वशाम् गाम् हे अर्बुदे त्वं सर्वास्ताः प्राग् उदीरिता अमित्रेभ्यः शत्रुभ्यो दृशे दर्शनाय कुरु । उदारान् उल्कापातादीन् अद्भुतान् विकृतदर्शनान् यक्षराक्षसांश्च प्र दर्शय ॥

हे अर्बुदि ! क्रीड़ा करनेके लिये कुत्तोंको साथमें रखने वाली अप्सराओंको, मायावश केवल रूपमात्रसे जाननेमें आने वाले सेनारूपकोंको आप शत्रुओंको दिखाइये । तथा पात्रके मध्य में वारंवार चाटती हुई दुष्ट निक्षिप्तको चाहने वाली वशा गौको तथा उल्कापात आदिको और विकृतदर्शनयक्षराक्षसोंको दिखाइये॥

खडूरेधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम् ।
य उदारा अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
सर्पा इतरजना रक्षांसि ॥ १६ ॥

खडूरे । अधिऽचङ्क्रमणाम् । खर्विकाम् । खर्वऽवासिनीम् ।
ये । उत्ऽआराः । अन्तःऽहिताः । गन्धर्वऽअप्सरसः । च । ये ।
सर्पाः । इतरऽजनाः । रक्षांसि ॥ १६ ॥

चतुर्दंष्ट्रांछ्यावदतः कुम्भमुष्काँ असृङ्मुखान् ।

स्वभ्यसा ये चोद्भयसाः ॥ १७ ॥

चतुःऽदंष्ट्रान् । श्यावऽदतः । कुम्भऽमुष्कान् । असृक्ऽमुखान् । स्वऽभ्यसाः । ये । च । उत्ऽभ्यसाः ॥ १७ ॥

षष्ठी ॥ दूरभूतं खं खदूरम् आकाशे दूरदेशे अधि उपरि चङ्क्रमाम् चङ्क्रमणशीलां मायावशाद् इतस्ततः प्रादुर्भवन्तीं खर्विकाम् अल्पहस्वां खर्ववाशिनीम् खर्वम् अल्पं शब्दायमानां मानवशात् मितभाषमाणाम् हे अर्बुदे त्वं शत्रुभ्यः प्र दर्शय यथा ते पराजयेरन् । ये उदाराः यक्षराक्षसादयः अन्तर्हिताः स्वमायया व्यवहिताः अस्मद्दृग्गोचरा न भवन्ति ये च गन्धर्वाप्सरसस्तथाविधाः तान् सर्वान् पराजयार्थं शत्रुभ्यो दर्शय ॥

सप्तमी ॥ सर्पाः सर्पस्वरूपाः इतरजनाः इतरजनसंज्ञका देवाः । यद्वा सर्पाः सर्पात्मका देवास्तदपेक्षया इतरजनाः तत्सदृशा देवजातयः । रक्षांसि राक्षसाः । ते च चतुर्दंष्ट्रा दंशनसाधनचतुर्दन्तयुक्ताः । तान् । श्यावदतः श्यामवर्णदन्तयुक्तान् । एतानपि मायामयान् अमित्रेभ्यो दर्शय । तथा कुम्भमुष्कान् कुम्भाकृतिमुष्कयुक्तान् । असृङ्मुखान् रक्तास्यान् । स्वभ्यसाः स्वायत्तभीतयो राक्षसाः । ये च उद्भयसाः उद्गतभीतयः । ❀ भ्यस भये । "घञर्थे कविधानम्" इति कप्रत्ययः ❀ । घोरेण रूपेण इत्थं विविधभयजनका राक्षसा इत्यर्थः । तान् सर्वान् अमित्रेभ्यो मायया दर्शय ॥

आकाशमें दूर देश पर घूमने वाली मायावश इधर उधर प्रकट होती हुई, छोटी, मानवश थोड़ा शब्द करने वालीको आप शत्रुओं को दिखाइये, जिससे वह पराजित होजावें । जो यक्ष राक्षस आदि अपनी मायासे अन्तर्हित होनेके कारण हमारे दृग्गोचर नहीं होते हैं और जो गंधर्व हैं उनको आप पराजयके लिये शत्रुओंको दिखाइये ॥

जो सर्परूप देवता हैं और जो इतरजन नामक देवता हैं और जो चार काले दाँत वाले राक्षस हैं इन मायामय व्यक्तियोंको भी वैरियोंको भी दिखाइये तथा घड़ेकी समान अण्डकोशों वाले, रक्त से सने मुख वाले, भयको वशमें रखने वाले निर्भय राक्षसोंको भी मायासे दिखाइये ॥ १६ ॥ १७ ॥

अष्टमी ॥

उद् वेपय त्वमर्बुदेमित्राणाममूः सिचः ।
जयांश्च जिष्णुश्चामित्राँ जयतामिन्द्रमेदिनौ ॥१८॥

उत् । वेपय । त्वम् । अर्बुदे । अमित्राणाम् । अमूः । सिचः ।
जयन् । च । जिष्णुः । च । अमित्रान् । जयताम् । इन्द्रऽमेदिनौ ।

हे अर्बुदे त्वम् अमित्राणाम् शत्रूणाम् अमूः सेनाः शुचः शोचमाना विषावेशजनितशोकार्ताः उद् वेपय उत्कम्पय । ❀ शुच शोके । अस्मात् "क्विप् च" इति क्विप् ❀ । तथा अमित्रान् शत्रून् जयन् पराभावयन् जिष्णुः जयशीलश्च अर्बुदिर्न्यर्बुदी इन्द्रमेदिनौ इन्द्रेण सह स्निह्यन्तौ जयताम् अस्माकं जयं कुरुताम् ॥

हे अर्बुदे ! आप वैरियोंकी सेनाओंको विषके आवेशके कारण शोक करने वाली करके कँपाइये। विजयशील अर्बुदि और न्यर्बुदि कि–जो इन्द्रके मित्र हैं वे वैरियोंको हराते हुए हमारी विजय करें १८

नवमी ॥

प्रब्लीनो मृदितः शयां हतोऽमित्रो न्यर्बुदे ।
अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ॥ १९॥

प्रऽब्लीनः । मृदितः । शयाम् । हतः । अमित्रः । निऽअर्बुदे ।

अग्निऽजिह्वाः । धूमऽशिखाः । जयन्तीः । यन्तु । सेनया ॥ १९ ॥

हे न्यर्बुदे अमित्रः अस्मदीयः शत्रुः प्रव्लीनः प्रभीतः मृदितः संपिष्टगात्रः हतः गतासुः शयाम् शेताम् । ❀ "लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तलोपः । व्ली भये । अस्मात् प्रपूर्वात् कर्मणि निष्ठा । तकारस्य नत्वम् ❀ । अग्निजिह्वाः अग्नेर्ज्वालाः धूमशिखाः धूमप्ररोहाः मायावशात् त्वयोत्पादिताः जयन्तीः शत्रुबलं जयन्त्यः सेनया अस्मदीयया सह यन्तु गच्छन्तु ॥

हे न्यर्बुदे ! हमारा वैरी भयभीत हो अवयवोंके चूर्णित होजाने पर मर कर शयन करे और धूमशिखा अग्निजिह्वायें वैरियों की सेनाओंको जीतती हुई हमारी सेनाके साथ चलें ॥ १९ ॥

दशमी ॥

तयार्बुदे प्रणुत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ।
अमित्राणां शचीपतिर्मामीषां मोचि कश्चन ॥ २० ॥

तया । अर्बुदे । प्रऽनुत्तानाम् । इन्द्रः । हन्तु । वरम्ऽवरम् ।
अमित्राणाम् । शचीऽपतिः । मा । अमीषाम् । मोचि । कः । चन

हे अर्बुदे त्वया प्रणुत्तानाम् युद्धरङ्गात् प्रच्याविताताम् । ❀ "नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्त०" इति निपातनात् निष्ठानत्वाभावः ❀ । अमित्राणाम् शत्रूणां शचीपतिः शच्याः पतिः इन्द्रः वरंवरम् श्रेष्ठं श्रेष्ठं हन्तु मारयतु । अमीषां शत्रूणां मध्ये कश्चन कश्चिदपि मा मोचि मा मुच्यताम् क्रमशः सर्वो हन्यताम् इत्यर्थः । ❀ मुच्लृ मोक्षणे इत्यस्मात् कर्मणि माङि लुङ् । "चिण् भावकर्मणोः" इति च्लेश्चिण् आदेशः । "चिणो लुक्" इति तशब्दस्य लुक् ❀ ॥

[इति] पञ्चमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे अर्बुदे ! आपके द्वारा युद्धरंगसे प्रच्यावित हमारे वैरियोंमेंसे श्रेष्ठ २ को शचीपति इन्द्र चुन २ कर मारें और इन वैरियोंमेंसे कोई भी न छूटने पावे ॥ २० ॥ (२६)

पञ्चम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त

“उत् कसन्तु हृदयानि” इति सूक्तस्य शत्रुजयकर्मणि विनियोग उक्तः ॥

“उत्कसन्तु हृदयानि” सूक्तका शत्रुजयकर्ममें विनियोग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु ।
शौष्कास्यमनु वर्तताममित्रान् मोत मित्रिणः ॥२१॥

उत् । कसन्तु । हृदयानि । ऊर्ध्वः । प्राणः । उत् । ईषतु ।
शौष्कऽआस्यम् । अनु । वर्तताम् । अमित्रान् । मा । उत । मित्रिणः

शत्रूणां संबन्धीनि हृदयानि अन्तःकरणानि उत् कसन्तु शरीराद् उद्गच्छन्तु । तथा प्राणः प्राणवायुः ऊर्ध्वः सन् उदीषतु शत्रुशरीरान्निर्गच्छतु । ❀ ईश गतौ ❀ । अमित्रान् शत्रून् शौष्कास्यम् शुष्कास्यता । भीतिवशाद् आस्यस्य निर्द्रवत्वम् । तद् अनु वर्तताम् अनुगच्छतु । आस्यशोषणेन शत्रवो म्रियन्ताम् इत्यर्थः । अपि च मित्रिणः अस्माकं मित्रभूतान् जनान् मा अनुवर्तताम् । तेषाम् आस्यशोषो मा भूद् इत्यर्थः ॥

शत्रुओंके अन्तःकरण शरीरसे निकल जावें, और प्राणवायु भी ऊपरको जाकर शत्रुके शरीरसे निकल जावें, शत्रुओंको डरके कारण शुष्कास्यता प्राप्त हो, अर्थात् मुख सूखनेसे शत्रु मर जावें । और यह शुष्कास्यता हमारे मित्रोंको प्राप्त न होवे ॥ २१ ॥

११-१०-३०

द्वितीया ॥

ये च॒ धीरा॒ ये चाधी॑रा॒: परा॑ञ्चो बधि॒रा॒श्च ये ।
त॒म॒सा ये च॑ तूप॒रा अथो॑ बस्ताभिवा॒सिन॑: ।
स॒र्वांस्ताँ अ॑र्बुदे॒ त्वम॒मित्रे॑भ्यो दृ॒शे कु॑रूदा॒रांश्च॑ प्र द॒र्शय

ये । च॒ । धीरा॑: । ये । च॒ । अधी॑रा: । परा॑ञ्च: । ब॒धि॒रा: । च॒ । ये ।
त॒म॒सा: । ये । च॒ । तू॒प॒रा: । अथो॒ इति॑ । ब॒स्त॒ऽअ॒भि॒वा॒सिन॑: ।
स॑र्वान् । तान् । अ॒र्बु॒दे॒ । त्वम् । अ॒मित्रे॑भ्य: । दृ॒शे । कु॒रु॒ ।
उ॒त्ऽआ॒रान् । च॒ । प्र । द॒र्श॒य॒ ॥ २२ ॥

ये च धीराः शूरा भटाः ये च अधीराः अशूराः कातराः । पराञ्चः पराङ्मुखा युद्धात् पलायमानाः ये च बधिराः भयवशात् हतश्रवणसामर्थ्याः । तमसा मोहेन ये च तूपराः तूपरः शृङ्गहीनः पशुः । तद्वद् अवस्थिताः । अथो अपि च बस्ताविवाशिनः बस्ताश्च अवयश्च बस्तावयः तद्वद् वाशितुं शीलम् एषां ते बस्ताविवाशिनः । बस्ताविध्वनिं कुर्वाणा इत्यर्थः । हे अर्बुदे त्वं सर्वांस्तान् स्वमायया उद्भावितान् अमित्रेभ्यः शत्रुभ्यो दृशे दर्शनाय कुरु पराजयार्थम् । गतम् अन्यत् ॥

जो धीर योधा हैं और जो कातर अधीर हैं और जो युद्धसे पराङ्मुख होकर भाग जाते हैं और भयके कारण जिनकी शक्ति नष्ट होजाती है और जो मोहके कारण भग्नशृंग पशुकी समान खड़े रह जाते हैं और जो भेड़ बकरियोंकी समान शब्द करने वाले योधा हैं, हे अर्बुदे ! अपनी मायासे प्रकट कियेहुए उन सबको आप शत्रुओंका पराजय करनेके लिये शत्रुओंकी दृष्टिके सामने करिये ॥ २२ ॥

तृतीया ॥

अर्बुदिश्च त्रिषंधिश्चामित्रान् नो वि विध्यताम् ।
यथैषामिन्द्र वृत्रहन् हनाम शचीपतेमित्राणां सहस्रशः

अर्बुदिः । च । त्रिऽसंधिः । च । अमित्रान् । नः । वि । विध्यताम् ।
यथा । एषाम् । इन्द्र । वृत्रऽहन् । हनाम । शचीऽपते । अमित्राणाम् ।
सहस्रऽशः ॥ २३ ॥

त्रिषंधिः कश्चित् सेनामोहको देवः संधित्रयोपेतवज्रायुधाभिमानी वा । स च अर्बुदिश्च उभौ नः अस्माकम् अमित्रान् शत्रून् वि विध्यताम् विविधं ताडयताम् । हे वृत्रहन् वृत्रस्य हन्तरिन्द्र हे शचीपते शच्या देव्याः पते यथा येन प्रकारेण एषाम् अमित्राणाम् शत्रूणां सम्बन्धिनो जनान् सहस्रशः सहस्रसंख्याकान् एकोद्योगेन हनाम मारयाम । तथा वि विध्यताम् इति संबन्धः । ❀ "संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम्" इति सहस्रशब्दात् शस् प्रत्ययः ❀ ॥

तीन संधि वाले वज्रका अभिमानी वा सेनामोहक त्रिषन्धि-नामक देव और अर्बुदि ये दोनों हमारे शत्रुओंको अनेक प्रकारसे नष्ट करें हे शचीपति इन्द्र ! हम जिस प्रकार इन शत्रुओंको सहस्रों प्रकारसे मार सकें इस प्रकार आप इनको ताड़ित करिये ॥२३॥

चतुर्थी ॥

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः ।
गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय

वनस्पतीन् । वानस्पत्यान् । ओषधीः । । उत । वीरुधः ।
गन्धर्वऽअप्सरसः । सर्पान् । देवान् । पुण्यऽजनान् । पितॄन् ।
सर्वान् । तान् । अर्बुदे । त्वम् । अमित्रेभ्यः । दृशे । कुरु ।
उत्ऽआरान् । च । प्र । दर्शय ॥ २४ ॥

वनस्पतीन् वृक्षान् । वानस्पत्यान् वनस्पतिविकारान् । ओषधीः व्रीहियवाद्याः । उत वीरुधः विरोहणशीला आरण्याः । गन्धर्वाप्सरसः गन्धर्वान् अप्सरसश्च सर्पान् विकृतवेषान् भुजङ्गान् देवान् पुण्यजनान् यक्षान् पितॄन् मृतान् पूर्वपुरुषान् मायामयान् । तान् सर्वान् हे अर्बुदे त्वं शत्रुभ्यो दृष्टिविषयान् कुरु । उक्तार्थम् अन्यत् ॥

वृक्षोंको, वृक्षोंसे बने हुए पदार्थोंको, व्रीहि यव आदि औषधियोंको, लताओंको, गन्धर्व और अप्सराओंको, सर्पोंको, देवताओंको यक्षोंको और मरे हुए मायामय पूर्वपुरुषोंको हे अर्बुदे! तू शत्रुओंको दिखा और आन्तरिक्ष उत्पातोंको भी दिखा॥२४॥

पञ्चमी ॥

ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः ।
ईशां व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव

ईशाम् । वः । मरुतः । देवः । आदित्यः । ब्रह्मणः । पतिः ।
ईशाम् । वः । इन्द्रः । च । अग्निः । च । धाता । मित्रः । प्रजाऽपतिः ।
ईशाम् । नः । ऋषयः । चक्रुः । अमित्रेषु । सम्ऽईक्षयन् । रदिते ।
अर्बुदे । तव ॥ २५ ॥

हे शत्रवः वः युष्माकं मरुदाद्या देवाः। प्रत्ययश्रवणसामर्थ्यात् चक्रुरिति अन्ते श्रूयमाणं सर्वत्र संबध्यते। ईशां चक्रुः ईश्वराः शिक्षका भवन्तु। तथा इन्द्रश्च अग्निश्च इत्यनुक्रान्ताश्च देवाः हे शत्रवः वः युष्मान् ईशां चक्रुः ईश्वराः युष्माकं नियन्तारो भवन्तु। तथा ऋषयः अथर्वाङ्गिरःप्रभृतयः ईशां चक्रुः ईश्वराः शिक्षका भवन्तु। ❀ ईश ऐश्वर्ये। "इजादेश्च गुरुमतोनृच्छः" इति आम् प्रत्ययः। "आम्प्रत्ययवत् कृञोनुप्रयोगस्य" इत्यनुप्रयुज्यमानस्य करोतेः आत्मनेपदाभावश्छान्दसः ❀। हे अर्बुदे अमित्रेषु अस्मदीयेषु शत्रुषु तव रदिते दन्तैर्विलेखने खादने सति तत् समीक्षयन्। ❀ व्यत्ययेन एकवचनम् ❀। अवलोकयन्तो देवाद्याः। ईशां चक्रुः इति संबन्धः॥

हे शत्रुओ! मरुत् आदि देवता तुमको दण्ड दें इन्द्र और अग्नि देवता तुम्हारे नियन्ता होवें, आदित्य, ब्रह्मणस्पति, धाता, मित्र, प्रजापति, अथर्वा, अङ्गिरा आदि ऋषि तुम्हारे शिक्षक होवें, हे अर्बुदे! आपके काटने पर इन्द्र आदि देवता ऐसा करें॥ २५॥

षष्ठी॥

तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम्।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ॥२६॥

तेषाम्। सर्वेषाम्। ईशानाः। उत्। तिष्ठत। सम्। नह्यध्वम्। मित्राः। देवऽजनाः। यूयम्।

इमम्। सम्ऽग्रामम्। सम्ऽजित्य। यथाऽलोकम्। वि। तिष्ठध्वम्

तेषां सर्वेषाम् अस्मदीयानां शत्रूणाम् ईशानाः ईश्वराः शिक्षकाः

सन्तः उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं च तेषां शिक्षणाय उत्थाय संनद्धा भवत । हे मित्रा देवजनाः यूयम् इमम् अस्मदीयं प्रस्तुतं संग्रामं संजित्य सम्यग् जित्वा अस्मदीयान् शत्रून् निरस्य यथालोकम् यथास्थानं वि तिष्ठध्वम् । स्वंस्वं स्थानं गच्छतेत्यर्थः । ❀ "समवप्रविभ्यः स्थः" इति आत्मनेपदम् ❀ ॥

[इति] पञ्चमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे देवजनों ! हमारे मित्ररूप आप हमारे शत्रुओंके शिक्षक बननेके लिये तयार हूजिये और आप हमारे इस प्रस्तुत संग्राम को जीत कर अर्थात् हमारे शत्रुओंको अपमानित कर अपने २ स्थानको चले जाइये ॥ २६ ॥ (२७)

पञ्चम अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (४८२) ॥

"उत्तिष्ठत" इति सूक्तस्य शत्रुजयकर्मणि संप्रैषणादिषु विनियोग उक्तः ॥

"उत्तिष्ठत सूक्तका शत्रुजयकर्मके सम्प्रैषण आदिमें विनियोग कहा है ।

तत्र प्रथमा ॥

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह ।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥ १ ॥

उत् । तिष्ठत । सम् । नह्यध्वम् । उत्ऽआराः । केतुऽभिः । सह ।
सर्पाः । इतरऽजनाः । रक्षांसि । अमित्रान् । अनु । धावत ॥१॥

हे उदाराः औदार्यगुणोपेताः सेनानायकाः केतुभिः आत्मीयैर्ध्वजैः सह उत्तिष्ठत युद्धार्थम् उद्गच्छत सं नह्यध्वम् संनद्धाः कवचादिभिः संबद्धा युद्धोद्युक्ता भवत । यद्वा उदाराः पूर्वोक्ता मायामया अद्भुतरूपा यातुधानाद्याः । तत्र संबोध्याः ॥ सर्पाः हे सर्पा-

कृतयो देवजनाः। इतरजनाः सर्पव्यतिरिक्ता देवजातयः एतत्संज्ञाः। हे रक्षांसि राक्षसाः यूयमपि अस्मदीयान् अमित्रान् शत्रून् अनु धावत अनु पृष्ठतः शीघ्रं गच्छत ॥

हे उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न सेनानायकों ! तुम अपनी ध्वजाओंके साथ युद्धके लिये सन्नद्ध होजाओ कवच आदि पहिर कर युद्धके लिये चल दो, हे सर्पकी समान आकार वाले देवजनों ! हे सर्पोंके अतिरिक्त देवताओं ! और हे राक्षसों ! तुम भी हमारे वैरियोंके पीछे दौड़ो ॥ १ ॥

ई॒शां वो॑ वेद॒ रा॒ज्यं त्रिषं॑धे अरु॒णैः के॒तुभिः॑ स॒ह ।
ये अ॒न्तरि॑क्षे॒ ये दि॒वि पृ॑थि॒व्यां ये च॑ मान॒वाः ।
त्रिषं॑धे॒स्ते चेत॑सि दु॒र्णामा॑न॒ उपा॑सताम् ॥ २ ॥

ई॒शाम् । वः॒ । वे॒द॒ । रा॒ज्य॑म् । त्रिऽसं॑धे । अ॒रु॒णैः । के॒तुऽभिः॑ । स॒ह ।
ये । अ॒न्तरि॑क्षे । ये । दि॒वि । पृ॒थि॒व्याम् । ये । च॒ । मा॒न॒वाः ।
त्रिऽसं॑धेः । ते । चेत॑सि । दु॒ःऽनामा॑नः । उप॑ । आ॒स॒ता॒म् ॥ २ ॥

अयो॑मुखाः सू॒चीमु॑खा॒ अथो॑ विक॒ङ्कतीमु॑खाः ।
क्र॒व्यादो॒ वात॑रंहस॒ आ सं॑जन्त्व॒मित्रा॒न् वज्रे॑ण॒ त्रिषं॑धिना ॥

अयः॑ऽमुखाः । सू॒चीऽमु॑खाः । अथो॒ इति॑ । वि॒क॒ङ्कतीऽमु॑खाः ।
क्र॒व्य॒ऽअदः॑ । वात॑ऽरंहसः । आ । स॒ज॒न्तु॒ । अ॒मित्रा॑न् । वज्रे॑ण ।
त्रिऽसं॑धिना ॥ ३ ॥

द्वितीया ॥ हे अमित्राः वः युष्माकं राज्यम् राष्ट्रं त्रिसंधिर्वज्रा-

भिमानी देवः ईशां वेद ईशितव्यत्वेन जानातु । युष्मत्तः अपहृत्य स्ववशं करोत्वित्यर्थः । ❀ ईश ऐश्वर्ये । "इजादेश्च गुरुमतः०" इति पूर्ववद् आम् प्रत्ययः । कृभ्वस्तिव्यतिरिक्तस्य विदेरनुप्रयोगश्छान्दसः ❀ । हे त्रिसंधे वज्रात्मक देव अरुणैः अरुणवर्णैः केतुभिः आत्मीयैर्ध्वजैः सह । उत्तिष्ठेति शेषः । ये केतवः अन्तरिक्षे उत्पातरूपेण प्रादुर्भवन्ति ये च दिवि द्युलोके ये च पृथिव्याम् भूलोके मानवाः मनुष्यसंबन्धिनः केतवः । तैः केतुभिः सहेति पूर्वत्र संबन्धः ॥

तृतीया ॥ हे त्रिसंधे त्वे तव चेतसि मनसि वर्तमानं दुर्णामानम् दुष्टसंज्ञकम् अस्मदीयं शत्रुम् उपासताम् संभजन्ताम् । के पुनस्त इत्याह॥ अयोमुखाः अयःसदृशतुण्डयुक्ताः पक्षिणः । सूचीमुखाः सूच्याकारतुण्डयुक्ताः पक्षिणः । अथो अपि च विकङ्कतीमुखाः विकङ्कतः बहुकण्टको वृक्षविशेषः । ❀ "छन्दसीवनिपौ०" इति मत्वर्थीय ईकारः ❀ । विकङ्कतवद् बहुकण्टकयुक्तमुखाः पक्षिविशेषाः ॥ क्रव्यादः क्रव्यम् आममांसम् अदन्ति भक्षयन्तीति क्रव्यादो गृध्रादयः । ❀ "क्रव्ये च" इति अद भक्षणे इत्यस्माद् विट् प्रत्ययः ❀ । वातरंहसः वातवेगाः त्रिसंधिना एतत्संज्ञेन देवेन वज्रेण वज्रायुधाभिमानिना प्रेरिताः सन्तः अमित्रान् अस्मदीयान् शत्रून् आ सजन्तु आसक्ता भवन्तु । यद्वा संधित्रयोपेतेन वज्रायुधेन आसक्तान् संबद्धान् कुर्वन्तु । यथा ते वज्रेण हन्येरन् तथा प्रयतन्ताम् इत्यर्थः । यस्य हि निकटे एवंरूपाः पक्षिण उपसर्पन्ति तस्य मरणम् अवश्यं भवतीति शाकुनिकशास्त्रप्रसिद्धिः ॥

हे वैरियों ! त्रिषन्धि नामक जो वज्राभिमानी देवता है वह तुम्हारे राष्ट्रको दण्ड देनेयोग्य समझे अर्थात् राज्यको तुमसे छीन कर अपने वशमें कर लेय । हे त्रिषन्धिनामक देव ! आप अपनी अरुण वर्णकी ध्वजाओंके साथ उठिये, जो केतु अन्तरिक्षमें उत्पात-

रूपसे प्रकट होते हैं और जो द्युलोकमें उत्पातरूपमें होते हैं और जो मनुष्योंकी ध्वजाएँ पृथिवीमें होती हैं उनके साथ हे त्रिषधे ! आप उठिये ॥ २ ॥

हे त्रिसंधे ! आपके चित्तमें जो खोटे नाम वाले प्राणियोंका समूह है वह हमारे वैरीकी उपासना करे । (उन प्राणियोंका वर्णन करते हैं, कि–) लोहेकी समान चोंच वाले पक्षी, सुईकी समान चोंच वाले पक्षी, और बहुतसे काँटों वाले वृक्षोंकी समान काँटेदार मुखवाले पक्षी, कच्चे मांसका भक्षण करने वाले गीध आदि पक्षी त्रिषंधि नामक देवके प्रेरणा करने पर वायुकी समान वेगसे जाकर वैरियों पर टूट पड़ें (शकुनशास्त्रमें भी यह बात प्रसिद्ध है, कि–जिसके समीप ऐसे पक्षी जाते हैं उसका मरण ही होता है) ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणपं बहु ।
त्रिषंधेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे ॥ ४ ॥

अन्तः । धेहि । जातऽवेदः । आदित्य । कुणपम् । बहु ।
त्रिऽसंधेः । इयम् । सेना । सुऽहिता । अस्तु । मे । वशे ॥ ४ ॥

हे जातवेदः जातानां वेदितः सांग्रामिकाग्ने आदित्य । ❀ "सुपां सुलुक्०" इति विभक्तेर्लुक् ❀ । आदित्यम् दिवि वर्तमानं सूर्यं बहु बहुलं कुणपम् । ❀ तृतीयार्थे द्वितीया ❀ । बहुलेन शवशरीरेण अन्तरिक्षे निपद्यमानेन अन्तर्धेहि आच्छादय । त्रिषंधेर्देवस्य संबन्धिनी इयं सेना मे मम वशे सुहितास्तु सम्यग् निहितास्तु । तया वयं शत्रून् जयेमैवेत्यर्थः ॥

हे सांग्रामिक अग्ने ! आप स्वर्गमें वर्तमान सूर्यको शवशरीरोंके

कारण आच्छादित कर दीजिये, त्रिसन्धिदेवकी सेना मेरे वशमें भली प्रकार आजावे, उस सेनासे हम वैरियोंको जीत ही डालें ४

पञ्चमी ॥

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
अयं बलिर्व आहुतस्त्रिषंधेराहुतिः प्रिया ॥ ५ ॥

उत् । तिष्ठ । त्वम् । देवऽजन । अर्बुदे । सेनया । सह ।
अयम् । बलिः । वः । आऽहुतः । त्रिऽसंधेः । आऽहुतिः । प्रिया ५

हे देवजन देवजातीय अर्बुदे त्वम् आत्मीयया सेनया सह उत्तिष्ठ उद्गच्छ । हे अर्बुदे आहुतिः हूयमानः पृषदाज्यहोमः वः युष्माकम् अयं बलिः तृप्तिकरो हविर्भागः । यतो बलिप्रियास्त्वदीयाः सर्पाः अतोऽस्मदीयं हूयमानं पृषदाज्यं स्वीकृत्य अस्मदीयान् शत्रून् मारयन्तु इत्यर्थः । तथा त्रिषंधेर्देवस्य या सेना प्राग उक्ता सापि आहुतिप्रिया अनयाहुत्या प्रीता सती शत्रून् हिनस्तु ॥

हे देवजातीय अर्बुदे ! आप अपनी सेनाके साथ उठिये, हे अर्बुदे ! यह होमा हुआ पृष्टदाज्यहोम आपको तृप्त करने वाला हविर्भाग है। तात्पर्य यह है, कि—आपके सर्प बलिप्रिय हैं अतः हमारे होमे हुए पृष्टदाज्यको स्वीकृत करके हमारे शत्रुओंका विनाश करें। और त्रिषन्धिदेवकी जो सेना है वह भी इस आहुतिसे प्रसन्न होकर शत्रुओंका संहार करे ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

शितिपदी सं द्यतु शरव्ये३यं चतुष्पदी ।
कृत्येमित्रेभ्यो भव त्रिषंधे सह सेनया ॥ ६ ॥

शितिऽपदी । सम् । द्यतु । शरव्या । इयम् । चतुःऽपदी ।

कृत्ये । अमित्रेभ्यः । भव । त्रिऽसंधेः । सह । सेनया ॥ ६ ॥

शितिः श्वेतवर्णः पादे यस्याः सा शितिपदी गौः । सेयं चतुष्पदी पादचतुष्टयोपेता शरव्या शरूणां बाणानां समूहः शरव्या। ❀ "पाशादिभ्यो यः" इति समूहेर्थे यप्रत्ययः ❀ । शरसंहतिरूपा भूत्वा सं पततु शत्रून् संप्राप्नोतु । हे कृत्ये कृत्यारूपिणि शितिपदि त्वम् अमित्रेभ्यः शत्रुभ्यः कृत्यारूपा संहर्त्री भव । त्रिषंधेर्देवस्य सेनया सह । सेनापि तव सहायभूतेत्यर्थः ॥

यह श्वेत वर्णके पादों वाली चार पैरकी गौ बाणोंकी समूहरूप होकर शत्रुओंके ऊपर पतित हो । हे कृत्यारूपिणि शितिपदि ! तू शत्रुओंके लिये कृत्यारूपिणी हो त्रिसंधिदेवकी सेना भी तेरी सहायता करनेके लिये उद्यत रहे ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
त्रिषंधेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः ॥ ७ ॥

धूमऽअक्षी । सम् । पततु । कृधुऽकर्णी । च । क्रोशतु ।
त्रिऽसंधेः । सेनया । जिते । अरुणाः । सन्तु । केतवः ॥ ७ ॥

शत्रुसंबन्धिनी सेना धूमाक्षी धूमेन मायामयेन आवृतानि अक्षीणि चक्षूंषि यस्याः सा तथोक्ता । ❀ "बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्" इति षच् समासान्तः । "षिद्गौरादिभ्यश्च" इति ङीष् ❀ । तादृशी सती सं पततु सम्यग् निपद्यताम् । तथा कृधुकर्णी अल्पश्रोत्रा पटहध्वनिना हतश्रवणसामर्थ्या च सा परकीया सेना क्रोशतु आक्रोशतु । इतिकर्तव्यतामूढा भवतु । इत्थं त्रिषंधेर्देवस्य सम्बन्धिन्या सेनया परकीये बले जिते जेतव्ये सति तत्संबन्धिनः अरुणाः अरुणवर्णाः केतवः ध्वजाः सन्तु भवन्तु ॥ यद्वा

कारण आच्छादित कर दीजिये, त्रिसन्धिदेवकी सेना मेरे वशमें भली प्रकार आजावे, उस सेनासे हम वैरियोंको जीत ही डालें ४

पञ्चमी ॥

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
अयं बलिर्व आहुतस्त्रिषंधेराहुतिः प्रिया ॥ ५ ॥

उत् । तिष्ठ । त्वम् । देवऽजन । अर्बुदे । सेनया । सह ।
अयम् । बलिः । वः । आऽहुतः । त्रिऽसंधेः । आऽहुतिः । प्रिया५

हे देवजन देवजातीय अर्बुदे त्वम् आत्मीयया सेनया सह उत्तिष्ठ उद्गच्छ । हे अर्बुदे आहुतिः हूयमानः पृषदाज्यहोमः वः युष्माकम् अयं बलिः तृप्तिकरो हविर्भागः । यतो बलिप्रियास्त्वदीयाः सर्पाः अतोऽस्मदीयं हूयमानं पृषदाज्यं स्वीकृत्य अस्मदीयान् शत्रून् मारयन्तु इत्यर्थः । तथा त्रिषंधेर्देवस्य या सेना प्राग उक्ता सापि आहुतिप्रिया अनयाहुत्या प्रीता सती शत्रून् हिनस्तु ॥

हे देवजातीय अर्बुदे ! आप अपनी सेनाके साथ उठिये, हे अर्बुदे ! यह होमा हुआ पृष्टदाज्यहोम आपको तृप्त करने वाला हविर्भाग है। तात्पर्य यह है, कि-आपके सर्प बलिप्रिय हैं अतः हमारे होमे हुए पृष्टदाज्यको स्वीकृत करके हमारे शत्रुओंका विनाश करें। और त्रिषन्धिदेवकी जो सेना है वह भी इस आहुतिसे प्रसन्न होकर शत्रुओंका संहार करे ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

शितिपदी सं द्यतु शरव्ये३यं चतुष्पदी ।
कृत्येमित्रेभ्यो भव त्रिषंधे सह सेनया ॥ ६ ॥

शितिऽपदी । सम् । द्यतु । शरव्या । इयम् । चतुःऽपदी ।

कृत्ये॑ । अ॒मित्रे॑भ्यः । भ॒व॒ । त्रि॒ऽसं॑धेः । स॒ह । सेन॑या ॥ ६ ॥

शितिः श्वेतवर्णः पादे यस्याः सा शितिपदी गौः । सेयं चतुष्पदी पादचतुष्टयोपेता शरव्या शरूणां बाणानां समूहः शरव्या । ❀ “पाशादिभ्यो यः” इति समूहेर्थे यप्रत्ययः ❀ । शरसंहतिरूपा भूत्वा सं पततु शत्रून् संप्राप्नोतु । हे कृत्ये कृत्यारूपिणि शितिपदि त्वम् अमित्रेभ्यः शत्रुभ्यः कृत्यारूपा संहर्त्री भव । त्रिषंधेर्देवस्य सेनया सह । सेनापि तव सहायभूतेत्यर्थः ॥

यह श्वेत वर्णके पादों वाली चार पैरकी गौ बाणोंकी समूहरूप होकर शत्रुओंके ऊपर पतित हो । हे कृत्यारूपिणि शितिपदि ! तू शत्रुओंके लिये कृत्यारूपिणी हो त्रिसंधिदेवकी सेना भी तेरी सहायता करनेके लिये उद्यत रहे ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

धू॒मा॒क्षी सं॑ पत॑तु कृधुक॒र्णी च॑ क्रोशतु ।
त्रिषं॑धे॒ः सेन॑या जि॒ते अ॑रु॒णाः सन्तु॑ के॒तवः॑ ॥ ७ ॥

धू॒म॒ऽअ॒क्षी । सम् । प॒त॒तु॒ । कृ॒धु॒ऽक॒र्णी । च॒ । क्रो॒श॒तु॒ ।
त्रिऽसं॑धेः । सेन॑या । जि॒ते । अ॒रु॒णाः । स॒न्तु॒ । के॒तवः॑ ॥ ७ ॥

शत्रुसंबन्धिनी सेना धूमाक्षी धूमेन मायामयेन आवृतानि अक्षीणि चक्षूंषि यस्याः सा तथोक्ता । ❀ “बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्” इति षच् समासान्तः । षिद्गौरादिभ्यश्च” इति ङीष् ❀ । तादृशी सती सं पततु सम्यग् निपद्यताम् । तथा कृधुकर्णी अल्पश्रोत्रा पटहध्वनिना हतश्रवणसामर्थ्या च सा परकीया सेना क्रोशतु आक्रोशतु । इतिकर्तव्यतामूढा भवतु । इत्थं त्रिषंधेर्देवस्य सम्बन्धिन्या सेनया परकीये बले जिते जेतव्ये सति तत्संबन्धिनः अरुणाः अरुणवर्णाः केतवः ध्वजाः सन्तु भवन्तु ॥ यद्वा

धूमैरक्षीणि आवृण्वती कृत्या धूमाक्षी । सा सं पततु शत्रुसेनां समागच्छतु । तथा कृधुकर्णी । कृधु इति अल्पनाम । कर्णयोः अल्पत्वापादिका श्रवणशक्तेर्विहन्त्री कृत्या कृधुकर्णी । सा च भीत्युत्पादनाय क्रोशतु । एवं त्रिषंधेः सेनया परकीये बले जिते सति तदीयाः केतवः अरुणाः रुधिरेणाक्ताः अरुणवर्णा भवन्तु ।

शत्रुकी सेनाके नेत्र मायामय धूमसे ढक जावें ऐसा होने पर वह गिरने लगे और नगाड़ोंकी ध्वनिसे श्रवणशक्तिके नष्ट होजाने पर (कर्तव्यविमूढ़ हो) रोने लगे । जब त्रिसन्धिदेव इस प्रकार अपनी सेनासे शत्रुओंको जीतना चाहें तो उनके केतु लाल लाल होजावें ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति
श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणपे
रदन्ताम् ॥ ८ ॥

अव । अयन्ताम् । पक्षिणः । ये । वयांसि । अन्तरिक्षे । दिवि । ये । चरन्ति ।
श्वापदः । मक्षिकाः । सम् । रभन्ताम् । आमऽअदः । गृध्राः । कुणपे । रदन्ताम् ॥ ८ ॥

अथ जयानन्तरभावीनि कार्याणि प्रार्थ्यन्ते । अन्तरिक्षे आकाशे ये वयांसि पक्षिणः संचरन्ति ते पक्षिणः अवायन्ताम् मृते शत्रुबले मांसभक्षणाय अवाङ्मुखं निपद्यन्ताम् । ❀ अय पय गतौ । अनुदात्तेत्वाद् आत्मनेपदम् ❀ । तथा दिवि द्युलोके ये पक्षिणश्चरन्ति तेऽप्यवायन्ताम् । तथा श्वापदः शुनः पादा इव पादा

येषां ते तथोक्ताः श्वसृगालादयः मक्षिकाश्च सं रभन्ताम् शत्रुसेनायां शवभक्षणार्थम् उपक्रमन्ताम् । तथा आमादः आममांसभक्षका गृध्राः पक्षिविशेषाः कुणपे शत्रुसेनासम्बन्धिशवशरीरे रदन्ताम् स्वतुण्डैः पादैश्च विलिखन्तु । भक्षणाय उद्युञ्जताम् इत्यर्थः । ❀ रद विलेखने ❀ ॥

(अब विजयके अनन्तर होने वाले कार्योंकी प्रार्थना की जाती है, कि–) आकाशमें जो पक्षी विचरण करते हैं वह शत्रुदलके मरने पर मांसका भक्षण करनेके लिये नीचेको मुख करके गिरें, और द्युलोकमें जो पक्षी विचरण करते हैं वे भी नीचेको मुख करके शवों पर गिरें, और कुत्तेकी समान पैरों वाले गीदड़ आदि और मक्षिकाएँ भी शत्रुसेना पर शवभक्षणके लिये धावा बोल दें । तथा कच्चे मांसका भक्षण करने वाले गीध भी शत्रुदलके शवोंको अपनी चोंच और पञ्जोंसे कुरेदें ॥ ८ ॥

नवमी ॥

यामिन्द्रेण संधां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते ।
तयाहमिन्द्रसंधया सर्वान् देवानिह हुव इतो जयत
मामुतः ॥ ९ ॥

याम् । इन्द्रेण । सम्ऽधाम् । सम्ऽअधत्थाः । ब्रह्मणा । च ।
बृहस्पते ।
तया । अहम् । इन्द्रऽसंधया । सर्वान् । देवान् । इह । हुवे ।
इतः । जयत । मा । अमुतः ॥ ९ ॥

हे बृहस्पते देव इन्द्रेण देवानाम् अधिपतिना ब्रह्मणा च तत्स्रष्ट्रा प्रजापतिना च यां संधाम् सन्धानक्रियां प्रतिज्ञारूपां समधत्ताः । ❀ छान्दसो वर्णविकारः ❀ । संहितवान् असि । तथा च मन्त्रा-

न्तरम् । "इयं वः सा सत्या संधाभूद् याम् इन्द्रेण समधद्ध्वम्" इति [तै० सं० १. ७. ८. ४.] । हे इन्द्र तया संधया प्रतिज्ञारूपया संधानक्रियया सर्वान् देवान् इह अस्मिन् संग्रामे हुवे आह्वयामि । हे आहूता देवाः इतः आसु अस्मदीयासु सेनासु जयत जयं कुरुत । अमुतः अमीषु परसेनासु मा जयत ॥

हे बृहस्पति–देव ! आपने देवराज इन्द्रसे और उनके रचयिता ब्रह्माजीसे जो संधानक्रियारूप प्रतिज्ञा की है हे इन्द्र ! उस प्रतिज्ञारूप संधानक्रियासे मैं सब देवताओंको इस संग्राममें बुलाता हूँ, हे आहूत देवताओं ! इस हमारी सेनामें विजयको प्रदान करिये और शत्रुकी सेनाओंको विजय न दीजिये ॥ ९ ॥

दशमी ॥

बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः ।
असुरक्षयणं वधं त्रिषंधिं दिव्याश्रयन् ॥ १० ॥

बृहस्पतिः । आङ्गिरसः । ऋषयः । ब्रह्मऽसंशिताः ।
असुरऽक्षयणम् । वधम् । त्रिऽसंधिम् । दिवि । आ । अश्रयन् १०

आङ्गिरसः अङ्गिरसः पुत्रो बृहस्पतिः देवमन्त्री ब्रह्मसंशिताः ब्रह्मणा मन्त्रेण स्वभ्यस्तेन तीक्ष्णीकृता अन्य ऋषयश्च असुरक्षयणम् असुराणां क्षयकरं वधम् हननसाधनम् आयुधं त्रिषंधिम् एतत्संज्ञं देवं सन्धित्रयोपेतं वज्रं वा दिवि द्युलोके स्थितम् आश्रयन् असेवन्त । समभजन्तेत्यर्थः ॥

इति पञ्चमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

अङ्गिराके पुत्र देवमन्त्री बृहस्पति और अपने अभ्यस्त मन्त्रसे तीक्ष्ण हुए अन्य ऋषि भी असुरोंका क्षय करनेवाले हननसाधन वज्रनामक आयुधका स्वर्गमें आश्रय लिया करते हैं ॥१०॥ (२८)

पञ्चम अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त

"येनासौ गुप्त आदित्यः" इति सूक्तस्य शत्रुसेनाजयकर्मणि विनियोग उक्तः ॥

"येनासौ गुप्त आदित्यः" सूक्तका शत्रुसेनाजयकर्ममें विनियोग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः ।
त्रिषंधिं देवा अभजन्तौजसे च बलाय च ॥ ११ ॥

येन । असौ । गुप्तः । आदित्यः । उभौ । इन्द्रः । च । तिष्ठतः ।
त्रिऽसंधिम् । देवाः । अभजन्त । ओजसे । च । बलाय । च ११

येन त्रिसंधिना असौ दूरे दिवि दृश्यमान आदित्यः गुप्तः रक्षितः असुरकृतोपद्रवपरिहारेण पालितः स आदित्य इन्द्रश्च उभौ येन त्रिसन्धिना वज्रेण बलेन तिष्ठतः स्वस्थाने प्रतिष्ठितौ भवतः तं त्रिसन्धिम् असुरक्षयणम् आयुधभूतं देवं देवाः सर्वे अभजन्त असेवन्त । किमर्थम् । ओजसे ओजो नाम शरीरान्तर्गतोऽष्टमो धातुः । बलं तेजः । तस्मै च तत्कार्याय बलाय च । ❀ उभयत्र तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ ॥

जिस त्रिसन्धिदेवने इन असुरोंके उपद्रवको दूर करके द्यौमें दीखते हुए सूर्यदेवकी रक्षा की थी । वह सूर्य और इन्द्र उस त्रिसन्धि (वज्र) के बलसे ही स्वर्गमें स्थिर रहते हैं ऐसे असुरक्षयके आयुधरूप त्रिसन्धिका सब देवता ओज और बलके लिये सेवन करते हैं ॥ ११ ॥

द्वितीया ॥

सर्वाँल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया ।

बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् १२

सर्वान् । लोकान् । सम् । अजयन् । देवाः । आऽहुत्या । अनया ।
बृहस्पतिः । आङ्गिरसः । वज्रम् । यम् । असिञ्चत । असुरऽक्षयणम् । वधम् ॥ १२ ॥

देवाः इन्द्रादयः अनया आहुत्या अनेन पृषदाज्यहोमेन सर्वान् लोकान् समजयन् असुरान् निहत्य प्राप्नुवन् । आङ्गिरसः अङ्गिरसः पुत्रो बृहस्पतिः असुरक्षयणम् असुराणां क्षयकरं यं वधम् हननसाधनं वज्रम् आयुधम् असिञ्चत सेचनेन निर्मितवान् । पृषदाज्याहुतिरेव वज्रात्मना परिणतेत्यर्थः । अनया वज्ररूपया आहुत्येति पूर्वत्रान्वयः ॥

इन्द्र आदि सब देवताओंने इस पृषदाज्यहोमसे असुरोंको मार कर सब लोकोंको प्राप्त किया था, अंगिराके पुत्र बृहस्पतिने इस हननसाधन आयुधको सेचन निर्मित किया था ॥ १२ ॥

तृतीया ॥

बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ।
तेनाहममूं सेनां नि लिम्पामि बृहस्पतेमित्रान् हन्म्योजसा ॥ १३ ॥

बृहस्पतिः । आङ्गिरसः । वज्रम् । यम् । असिञ्चत । असुरऽक्षयणम् । वधम् ।

तेन । अहम् । अमूम् । सेनाम् । नि । लिम्पामि । बृहस्पते । अमित्रान् । हन्मि । ओजसा ॥ १३ ॥

पूर्वोर्धर्चः पूर्ववद् व्याख्येयः । हे बृहस्पते तेन त्वया निर्मितेन असुराणाम् अन्तकारिणा वज्रेण अहम् अमूः शात्रवीः सेनाम् । ❀ व्यत्ययेन एकवचनम् ❀ । सेनाः नि लिम्पामि नितरां छिनद्मि । सेनाच्छेदनानन्तरं तदधिपतीन् अमित्रान् शत्रून् ओजसा आत्मीयेन बलेन नि हन्मि निहिनस्मि ॥

अंगिराके पुत्र बृहस्पतिने असुरोंके क्षयके साधन जिस वज्र को निर्मित किया है उस वज्रसे बृहस्पते ! मैं शत्रुओंको बलपूर्वक मारता हूँ, सेनाको नष्ट करता हूँ ॥ १३ ॥

चतुर्थी ॥

सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अश्नन्ति वषट्कृतम् ।
इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः ॥ १४ ॥

सर्वे । देवाः । अतिऽआयन्ति । ये । अश्नन्ति । वषट्ऽकृतम् ।
इमाम् । जुषध्वम् । आऽहुतिम् । इतः । जयत । मा । अमुतः १४

सर्वे इन्द्रादयो देवाः अत्यायन्ति शत्रून् अतिक्रम्य असमदभिमुखम् आगच्छन्ति । ते विशेष्यन्ते । ये देवा वषट्कृतम् वषट्कारेण दत्तं हविः अश्नन्ति भुञ्जते । ते सर्वे यूयम् इमाम् असमदीयाम् आहुतिं जुषध्वम् सेवध्वम् । तया प्रीता यूयम् इतः । ❀ सप्तम्यर्थे तसिल् प्रत्ययः ❀ । आसु अस्मदीयासु सेनासु जयत जयं कुरुत । अमुतः अमूषु परकीयासु सेनासु मा जयत । तत्र पराजय एव भवत्वित्यर्थः ॥

जो वषट्कारसे दी हुई हविका भोग लगाते हैं वे इन्द्र आदि सब देवता वैरियोंको जीतकर हमारी ओर आरहे हैं हे ऐसे सब देवताओं ! आप हमारी सेनाको विजय दीजिये और वैरियोंको पराजय दीजिये ॥ १४ ॥

७८

१३-१०-३०

पञ्चमी ॥

सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिषंधेराहुतिः प्रिया ।
संधां महतीं रक्षत ययाग्रे असुरा जिताः ॥ १५ ॥

सर्वे । देवाः । अतिऽआयन्तु । त्रिऽसंधेः । आऽहुतिः । प्रिया ।
सम्ऽधाम् । महतीम् । रक्षत । यया । अग्रे । असुराः । जिताः १५

सर्वे इन्द्रादयो देवाः अत्यायन्ति शत्रून् अतिक्रम्य अस्मदभिमुखम् आगच्छन्तु । तथा त्रिसन्धेः एतन्नाम्नः सेनामोहकस्य देवस्य इयम् अस्मदीया आहुतिः प्रिया प्रीतिकरी भवतु । हे देवाः संधाम् जयविषयप्रतिज्ञां महतीम् प्रौढां रक्षत । सा च त्रिसंधेराहुतिः तां प्रतिज्ञां रक्षतु । यया सन्धया अग्रे पूर्वं देवासुरयुद्धकाले असुरा जिताः पराजयं प्रापिताः । तां संधाम् इति पूर्वत्रान्वयः ॥

इन्द्र आदि सब देवता वैरियोंका अतिक्रमण करके हमारी ओर आवें, और यह हमारी आहुति त्रिसंधि नामक देवको प्रसन्न करे, हे देवताओं ! आप जयविषयक बड़ी प्रौढ़ प्रतिज्ञाकी रक्षा करिये । इसी प्रतिज्ञासे अपने पहिले असुरोंको जीता था ॥१५॥

वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु ।
इन्द्र एषां बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।
आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य
पन्थाम् ॥ १६ ॥

वायुः । अमित्राणाम् । इषुऽअग्राणि । आ । अञ्चतु ।

इ॑न्द्रः । ए॒षा॒म् । बा॒हून् । प्रति॑ । भ॒न॒क्तु॒ । मा । श॒क॒न् । प्र॒ति॒ऽधा॑म् । इषुम् ।

आ॒दि॒त्यः । ए॒षा॒म् । अ॒स्त्रम् । वि । ना॒श॒य॒तु॒ । च॒न्द्रमा॑ः । यु॒ता॒म् । अ॑गतस्य । पन्था॑म् ॥ १६ ॥

षष्ठी ॥ वायुर्देवः अमित्राणाम् शत्रूणाम् इष्वग्राणि इषूणाम् शराणाम् अग्राणि आश्वतु अभिमुखं गच्छतु । प्रतिकूलवातेन लक्ष्यप्राप्तेः प्रागेव निपात्यन्ताम् इत्यर्थः । तथा इन्द्रो देवः एषां शत्रूणां बाहून् प्रति भनक्तु प्रातिकूल्येन भग्नान् आयुधग्रहणासमर्थान् करोतु । ❀ भञ्जो आमर्दने । रुधादित्वात् श्नम् प्रत्ययः ❀ । अतस्ते इषुम् बाणं प्रतिधाम् पुनर्धनुषि प्रतिहितां कर्तुं मा शकन् शक्ता न भवन्तु । ❀ शक्लृ शक्तौ । माङि लुङि लृदित्त्वात् च्लेः अङ् आदेशः ❀ ॥

सप्तमी ॥ एषां शत्रूणाम् अस्त्रम् आयुधजातम् आदित्यः सूर्यो वि नाशयतु सामर्थ्यकुण्ठनेन विनष्टं करोतु । तथा चन्द्रमाः सोमः अगतस्य अप्राप्तस्य आजिगमिषतः शत्रोः पन्थाम् पन्थानम् अस्मत्प्राप्त्युपायभूतं मार्गं युताम् ततः पृथक्कुरुताम् । तादृशं मार्गं शत्रुर्न पश्यत्वित्यर्थः । ❀ यु मिश्रणामिश्रणयोः । अस्मात् लोटि अदादित्वात् शपो लुक् ❀ ॥

वायुदेव वैरियोंके बाणोंके अग्रभागके सामने जावें, अर्थात् प्रतिकूल वायुके कारण वे लक्ष्यप्राप्तिसे पहिले ही गिर जावें, तथा इन्द्रदेव वैरियोंकी भुजाओंको आयुध ग्रहण करनेमें असमर्थ करदें (तोड़ डालें) अतएव वे फिर बाणको प्रत्यञ्चा पर न चढ़ा सकें ॥

सूर्यदेव इन वैरियोंके आयुधोंको शक्तिहीन करके खुटले कर देंय, तथा चन्द्रमा न आये हुए अर्थात् आने वाले वैरीके हमारे

पास आनेके मार्गको पृथक् कर दें अर्थात् उस मार्गको वैरी न देख सके ॥ १६ ॥

अष्टमी ॥

यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि

यदि । प्रऽईयुः । देवऽपुराः । ब्रह्म । वर्माणि । चक्रिरे ।
तनूऽपानम् । परिऽपानम् । कृण्वानाः । यत् । उपऽऊचिरे । सर्वम् ।
तत् । अरसम् । कृधि ॥ १७ ॥

यदि प्रेयुरित्येका पूर्वम् [५. ८. ६] आम्नाता । सा तत्रैव व्याख्याता ॥

हे देव ! यदि पहिले उन्होंने तनूनपान और परिपाणको करते समय अपने मन्त्रमय कवच बना लिये हों तो उस समय उन्होंने जो कुछ कहा हो उस सबको आप नीरस करिये ॥ १७ ॥

नवमी ॥

क्रव्यादानुवर्तयन् मृत्युना च पुरोहितम् ।
त्रिषंधे प्रेहि सेनया जयामित्रान् प्र पद्यस्व ॥ १८ ॥

क्रव्यऽअदा । अनुऽवर्तयन् । मृत्युना । च । पुरःऽहितम् ।
त्रिऽसंधे । प्र । इहि । सेनया । जय । अमित्रान् । प्र । पद्यस्व १८

हे त्रिषंधे एतत्संज्ञक देव पुरोहितम् पुरस्तात् स्थितं शत्रुं क्रव्यादा । क्रव्यम् आममांसम् अत्ति भक्षयतीति क्रव्यात् । तेन अनुवर्तयन् अनुगमयन् । मृत्युना मारकेण देवेन च अनुगमयन् । सेनया आत्मीयया प्रेहि प्रगच्छ । गत्वा च अमित्रान् शत्रून्

जय तदर्थं प्र पद्यस्व शत्रुमध्यं प्रविश । ❀ पद गतौ । दिवादित्वात् श्यन् प्रत्ययः ❀ ॥

हे त्रिसन्धि नामक देव ! आप सामने स्थित शत्रुको कच्चे मांसका भक्षण करने वाले राक्षसके पासको खदेड़ते हुए, मृत्यु के देवसे मिलाते हुए अपनी सेनासहित उस पर चढ़ाई करिये और चढ़ कर शत्रुओंके मध्यमें विजयके लिये प्रवेश करिये १८

दशमी ॥

त्रिषंधे तमसा त्वममित्रान् परि वारय ।
पृषदाज्यप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥ १९ ॥

त्रिऽसंधे । तमसा । त्वम् । अमित्रान् । परि । वारय ।
पृषदाज्यऽप्रनुत्तानाम् । मा । अमीषाम् । मोचि । कः । चन ॥१९॥

हे त्रिषंधे एतत्संज्ञक देव त्वं तमसा मायामयेन अन्धकारेण अमित्रान् शत्रून् परि वारय परिवृतान् परिवेष्टितान् कुरु । पृषदाज्यप्रणुत्तानाम् दधिमिश्रम् आज्यं पृषदाज्यम् । तद् अस्मिन् कर्मणि होम्यत्वेन विहितम् । तेन हूयमानेन प्रणुत्तानां प्रकर्षेण क्षिप्तानाम् अमीषां शत्रूणां मध्ये कश्चन एकोऽपि मा मोचि मुक्तो मा भूत् । सर्वांस्तमसा प्रावृत्य मारयेत्यर्थः ॥

हे त्रिषंधि नामक देव ! आप अपने मायामय अन्धकारसे शत्रुओंको घेर लीजिये दही मिला हुआ घृत पृषदाज्य कहलाता है, उस पृषदाज्यसे खदेड़े हुए शत्रुओंमेंसे एक भी न छूटने पावे अर्थात् आप सबको अंधकारसे घेर कर मार डालिये ॥ १९ ॥

एकादशी ॥

शितिपदी सं पतत्वमित्राणाममूः सिचः ।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां न्यर्बुदे ॥ २० ॥

शितिऽपदी । सम् । पततु । अमित्राणाम् । अमूः । सिचः ।
मुह्यन्तु । अद्य । अमूः । सेनाः । अमित्राणाम् । निऽअर्बुदे ॥२०॥

शितिः श्वेतवर्णः पादे यस्याः सा शितिपदी गौः । सा परसेनामध्ये विसृज्यमाना अमित्राणां शत्रूणां शुचः शोचमाना अस्मदायुधैर्निपीडयमाना अमूः सेनाः सं पततु संगच्छतु । हे न्यर्बुदे एतत्संज्ञक सर्प अमित्राणाम् शत्रूणाम् अमूः दूरे दृश्यमानाः सेना अद्य इदानीं युद्धसमये मुह्यन्तु मूढा भवन्तु । स्वमायावशेन तासां मोहम् उत्पादयेत्यर्थः ॥

इति पञ्चमेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

शितिपदी गौ हमारे आयुधोंसे पीड़ा पाकर इन शोक करती हुई शत्रुसेनाओंमें कूद पड़े, हे न्यर्बुदि नामक सर्प ! दूर पर दीखती हुई शत्रुओंकी सेनाएँ मूढ़ होजावें अर्थात् आप अपनी मायासे उनको मोहमें डाल दीजिये ॥ २० ॥ (२९)

पञ्चम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त

“मूढा अमित्रा न्यर्बुदे” इति सूक्तस्य शत्रुजयकर्मणि विनियोग उक्तः ॥

“मूढा अमित्रा न्यर्बुदे” सूक्तका शत्रुजयकर्ममें विनियोग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

मूढा अमित्रा न्यर्बुदे जह्येषां वरंवरम् ।
अनया जहि सेनया ॥ २१ ॥

मूढाः । अमित्राः । निऽअर्बुदे । जहि । एषाम् । वरम्ऽवरम् ।
अनया । जहि । सेनया ॥ २१ ॥

हे न्यर्बुदे एतत्संज्ञक देव त्वम् अमित्रान् शत्रून् मूढाः त्वदीयया मायया मूढान् संजातमोहान् कर्तव्याकर्तव्यविभागज्ञानशून्यान् कुरु। एषां शत्रूणां मध्ये वरंवरम् श्रेष्ठं श्रेष्ठं जहि मारय। तथा अनया अस्मदीयया सेनया तान् जहि। त्वत्प्रसादाद्ध अस्मदीयापि सेना जयं लभताम् इत्यर्थः ॥

हे न्यर्बुदे ! आप अपनी मायासे शत्रुओंको कर्तव्य अकर्तव्यके ज्ञानसे शून्य अत एव मूढ़ करिये और शत्रुओंमेंसे छट्टा छट्टाको छाँट छाँट कर मारिये तथा इस हमारी सेनासे उनका संहार करिये अर्थात् आपके प्रसादसे हमारी सेना भी विजय पावे २१

द्वितीया ॥

यश्च कवची यश्चाकवचो३मित्रो यश्चाज्मनि ।

ज्यापाशैः कवचपाशैरज्मनाभिहतः शयाम् ॥ २२ ॥

यः। च। कवची। यः। च। अकवचः। अमित्रः। यः। च।
अज्मनि।
ज्याऽपाशैः। कवचऽपाशैः। अज्मना। अभिऽहतः। शयाम् २२

यः शत्रुः कवची कवचवान् तनुत्रेणावृतशरीरः यश्च शत्रु अकवचः कवचरहितः अनावृतशरीरः यश्च अमित्रः शत्रुः अज्मनि अजति गच्छत्यनेनेति अज्म रथादि यानम् तत्र वर्तते स सर्वः शत्रुः ज्यापाशैः स्वस्वधनुर्गतैर्मौर्वीपाशैः कवचपाशैः वर्मबन्धनपाशैः अज्मना रथादिना तत्रत्यैः पाशैश्च अभिहितः बद्धः शयाम् शेताम्। ❀ "लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तल्लोपः ❀। अयम् अर्थः। यद्यत् स्वरक्षणाय धनुःकवचादिकम् आबध्यते तदेव तस्य गतिप्रतिबन्धकं भवत्विति ॥

जो शत्रु कवच पहर रहा हो, जो शत्रु कवच न पहर रहा हो,

नङ्गा हो जो शत्रु रथ आदि सवारीमें बैठा हुआ हो वे शत्रु अपने कवच बाँधनेके पाशोंसे, प्रत्यञ्चापाशोंसे और रथ आदि के पाशोंसे बाँध कर शयन कर जाँय। तात्पर्य यह है, कि—अपनी रक्षाके लिये जिस धनुष कवच आदिको बाँधे वही उसकी गतिको रोक देय ॥ २२ ॥

तृतीया ॥

ये वर्मिणो येवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः ।
सर्वास्ताँ अर्बुदे हतांछ्वानोदन्तु भूम्याम् ॥ २३ ॥

ये । वर्मिणः । ये । अवर्माणः । अमित्राः । ये । च । वर्मिणः ।
सर्वान् । तान् । अर्बुदे । हतान् । श्वानः । अदन्तु । भूम्याम् २३

उक्त एवार्थो विव्रियते। ये शत्रवो वर्मिणः वर्मणा शस्त्रवारककवचेन युक्ताः ये अवर्माणः वर्मरहिताः च [अमित्राः] शत्रवो वर्मिणः वर्म कवचव्यतिरिक्तं शस्त्रनिवारकम् तद्युक्ताः। तदाच्छन्ना इत्यर्थः। हे अर्बुदे तान् सर्वान् त्वया हतान् मारितान् भूम्याम् पृथिव्यां निपातितान् श्वानः श्वसृगालाद्याः श्वापदाः अदन्तु भक्षयन्तु॥

जो शत्रु शस्त्रोंको रोकने वाले कवचोंको पहर रहे हैं, जो कवचरहित हैं, और कवचके अतिरिक्त अस्त्रनिवारक और वस्तुओंको पहिर रहे हैं, हे अर्बुदे ! आपके द्वारा उन सबके मारे जाने पर उन मरे हुओंको भूमिमें कुत्ते गीदड़ आदि खा जावें २३

चतुर्थी ॥

ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः ।
सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः २४

ये । रथिनः । ये । अरथाः । असादाः । ये । च । सादिनः ।

सर्वान् । अदन्तु । तान् । हतान् । गृध्राः । श्येनाः । पतत्रिणः२४

ये शत्रवो रथिनः रथारूढाः ये च अरथाः रथरहिताः ये च असादाः अश्वादियानरहिताः पदातयः ये च सादिनः अश्वारूढाः हे अर्बुदे त्वत्प्रसादेन अस्माभिर्हतान् मारितान् तान् सर्वान् शत्रून् गृध्रादयः पक्षिणो रदन्तु विलिखन्तु । नखैर्मुखेन विलिख्य भक्षयन्त्वित्यर्थः । ❀ रद विलेखने इति धातुः ❀ ॥

जो शत्रु रथसवार हैं, जो रथहीन हैं, जो घोड़े आदि सवारी से रहित पैदल हैं और जो घुड़सवार हैं, हे अर्बुदे ! आपके प्रसादसे उन सब मारे हुए शत्रुओंको गीध आदि पक्षी चोंच और नाखूनोंसे कुरेदें ॥ २४ ॥

पञ्चमी ॥

सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम् ।
विविद्धा कक्कजाकृता ॥ २५ ॥

सहस्रऽकुणपा । शेताम् । आमित्री । सेना । सम्ऽअरे । वधानाम् । विऽविद्धा । कक्कजाऽकृता ॥ २५ ॥

आमित्री अमित्रसंबन्धिनी शात्रवी सेना अस्मदीयाम् सेनां प्राप्य वधानाम् हननसाधनानाम् आयुधानां समरे संगमने सति विविद्धा विविधशस्त्रपातेन हता सहस्रकुणपा असंख्यातशवयुक्ता सती कक्कजाकृता कुत्सितजनना विलोलजनना वा कृता भवतु ॥

शत्रुओंकी सेना हमारी सेनाके पास आकर आयुधोंका सम्मेलन होने पर बड़ी घायल हो सहस्रों ल्हाशोंसे पट जाय और कुत्सित जन्म वाली होजाय ॥ २५ ॥

षष्ठी ॥

मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु दुश्चितं मृदितं शयानम् ।

१४-१०-३०

नङ्गा हो जो शत्रु रथ आदि सवारीमें बैठा हुआ हो वे शत्रु अपने कवच बाँधनेके पाशोंसे, प्रत्यञ्चापाशोंसे और रथ आदि के पाशोंसे बाँध कर शयन कर जाँय । तात्पर्य यह है, कि—अपनी रक्षाके लिये जिस धनुष कवच आदिको बाँधे वही उसकी गतिको रोक देय ॥ २२ ॥

तृतीया ॥

ये वर्मिणो येवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः ।
सर्वांस्ताँ अर्बुदे हतांछ्वानोदन्तु भूम्याम् ॥ २३ ॥

ये । वर्मिणः । ये । अवर्माणः । अमित्राः । ये । च । वर्मिणः ।
सर्वान् । तान् । अर्बुदे । हतान् । श्वानः । अदन्तु । भूम्याम् २३

उक्त एवार्थो विव्रियते । ये शत्रवो वर्मिणः वर्मणा शस्त्रवारककवचेन युक्ताः ये अवर्माणः वर्मरहिताः च [अमित्राः] शत्रवो वर्मिणः वर्म कवचव्यतिरिक्तं शस्त्रनिवारकम् तद्युक्ताः । तदाच्छन्ना इत्यर्थः । हे अर्बुदे तान् सर्वान् त्वया हतान् मारितान् भूम्याम् पृथिव्यां निपातितान् श्वानः श्वसृगालाद्याः श्वापदाः अदन्तु भक्षयन्तु॥

जो शत्रु शस्त्रोंको रोकने वाले कवचोंको पहर रहे हैं, जो कवचरहित हैं, और कवचके अतिरिक्त अस्त्रनिवारक और वस्तुओंको पहिर रहे हैं, हे अर्बुदे ! आपके द्वारा उन सबके मारे जाने पर उन मरे हुओंको भूमिमें कुत्ते गीदड़ आदि खा जावें २३

चतुर्थी ॥

ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः ।
सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः २४

ये । रथिनः । ये । अरथाः । असादाः । ये । च । सादिनः ।

सर्वान् । अदन्तु । तान् । हतान् । गृध्राः । श्येनाः । पतत्रिणः२४

ये शत्रवो रथिनः रथारूढाः ये च अरथाः रथरहिताः ये च असादाः अश्वादियानरहिताः पदातयः ये च सादिनः अश्वारूढाः हे अर्बुदे त्वत्प्रसादेन अस्माभिर्हतान् मारितान् तान् सर्वान् शत्रून् गृध्रादयः पक्षिणो रदन्तु विलिखन्तु । नखैर्मुखेन विलिख्य भक्षयन्त्वित्यर्थः । ❀ रद विलेखने इति धातुः ❀ ॥

जो शत्रु रथसवार हैं, जो रथहीन हैं, जो घोड़े आदि सवारी से रहित पैदल हैं और जो घुड़सवार हैं, हे अर्बुदे ! आपके प्रसादसे उन सब मारे हुए शत्रुओंको गीध आदि पक्षी चोंच और नाखूनोंसे कुरेदें ॥ २४ ॥

पञ्चमी ॥

सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम् ।
विविद्धा ककजाकृता ॥ २५ ॥

सहस्रऽकुणपा । शेताम् । आमित्री । सेना । समऽअरे । वधानाम् ।
विऽविद्धा । ककजाऽकृता ॥ २५ ॥

आमित्री अमित्रसंबन्धिनी शात्रवी सेना अस्मदीयाम् सेनां प्राप्य वधानाम् हननसाधनानाम् आयुधानां समरे संगमने सति विविद्धा विविधशस्त्रपातेन हता सहस्रकुणपा असंख्यातशवयुक्ता सती ककजाकृता कुत्सितजनना विलोलजनना वा कृता भवतु ॥

शत्रुओंकी सेना हमारी सेनाके पास आकर आयुधोंका सम्मेलन होने पर बड़ी घायल हो सहस्रों ल्हाशोंसे पट जाय और कुत्सित जन्म वाली होजाय ॥ २५ ॥

षष्ठी ॥

मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु दुश्चितं मृदितं शयानम् ।

१४-१०-३०

य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युयुत्सति ॥२६॥

मर्माविधम् । रोरुवतम् । सुऽपर्णाः । अदन्तु । दुःचितम् । मृदितम् । शयानम् ।

यः । इमाम् । प्रतीचीम् । आऽहुतिम् । अमित्रः । नः । युयुत्सति

सुपर्णैः शोभनपतनैः शरैः मर्माविधम् मर्मसु स्तनमूलादिस्थानेषु विध्यमानम् । ❀ व्यध ताडने इत्यस्मात् मर्मशब्दोपपदात् संपदादिलक्षणः कर्मणि क्विप् । "ग्रहिज्या०" इत्यादिना संप्रसारणम् । "नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ" इति पूर्वपदस्य दीर्घः ❀ । मर्मव्यधनादेव रोरुवतम् अत्यर्थं क्रोशन्तं दुश्चितम् दुःखैः पूरितं मृदितम् चूर्णीकृतम् अत एव भूमौ शयानम् एवंभूतं शत्रुम् अदन्तु श्वसृगालादयो भक्षयन्तु । यः अमित्रः शत्रुः नः अस्माकं संबन्धिनीम् इमां पृषदाज्येन हूयमानाम् आहुतिं प्रतीचीम् प्रतिमुखम् अञ्चन्तीं प्रतिनिवृत्तगतिं कर्तुं युयुत्सति योद्धुम् इच्छति । तम् एवंभूतं भक्षयन्तु इति पूर्वत्र संबन्धः ॥

जो हमारा शत्रु हमारी पृषदाज्यहुतिको लौटा कर हमसे युद्ध करना चाहता है उसके मर्मस्थान बाणोंसे छिन्नभिन्न होजाँय, मर्मोंमें पीड़ा होनेसे वह रोने लगे, और वह दुःखोंमें पड़ कर पृथ्वी पर गिर पड़े इस दशामें कुत्ते गीदड़ आदि उसको खाने लगें

सप्तमी ॥

यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराधनम् ।
तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण त्रिषंधिना ॥ २७ ॥

याम् । देवाः । अनुऽतिष्ठन्ति । यस्याः । न । अस्ति । विऽराधनम् ।
तया । इन्द्रः । हन्तु । वृत्रऽहा । वज्रेण । त्रिऽसंधिना ॥ २७ ॥

यां पृषदाज्याहुतिं देवा अनुतिष्ठन्ति वज्रोत्पादनाय आचरन्ति। यस्या आहुतेर्विराधनम् विराद्धिर्मोघवीर्यता नास्ति। अप्रतिहता शक्तिर्विद्यत इत्यर्थः। तया आहुत्या उत्पादितेन त्रिसंधिना संधित्रयोपेतेन वज्रेण वृत्रहा वृत्रासुरं हतवान् इन्द्रः हन्तु अस्मदीयान् शत्रून् हिनस्तु। "सर्वांल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया" [१२] इत्यनया ऋचा पृषदाज्याहुतेर्वज्ररूपता प्रागेवोक्ता॥

पञ्चमेनुवाके षष्ठं सूक्तम्॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः॥ १॥

श्रीमद्राजाधिराजराजपरमेश्वरश्रीवीरहरिहरमहाराजसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते अथर्वसंहिताभाष्ये एकादशकाण्डः समाप्तः॥

देवता वज्रको उत्पन्न करनेके लिये जिस पृषदाज्याहुतिको करते हैं जो पृषदाज्याहुति कभी निष्फल नहीं होती है, उस आहुति के द्वारा प्रकट हुए वज्रसे वृत्रासुरके नाशक इन्द्र हमारे शत्रुओंको मारें॥ २७॥ (३०)

पञ्चम अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (४९०)

पञ्चम अनुवाक समाप्त

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका एकादशकाण्ड ऋषिकुमार
प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका
सम्पादक ऋ० कु० प० रामचन्द्र
शर्मा कृत सायणभाष्यानुकूल
भाषानुवाद सहित
समाप्त.

॥ एकादशः काण्डः समाप्तः॥

वालमीकि-रामायण

श्लोक और भाषाटीका-सहित

रामायण और महाभारत हिंदुओंके परमोत्तम ग्रंथ हैं, इनकी कथाएँ मधुर भाषामें उपदेश देने वाली हैं। रामायणमें भगवानके अवतार लेनेकी कथा है, उनके जीवन चरित्रका पाठ करनेसे पुण्य और उपदेश प्राप्त होता है। रामायणमें आदर्शजीवनके अनेक उदाहरण मिलते हैं पिताका पुत्र पर प्रेम देखना हो तो दशरथका चरित्र देखो, पति-पत्नीके प्रेमका उदाहरण देखना हो तो सीताका चरित्र देखो और भाई भाईके प्रेमका दृष्टान्त रामायणमें राम लक्ष्मणके व्यवहारसे समझमें आवेगा, परस्त्री-सेवनसे क्या दशा होती है, इसका उदाहरण रावण है। अतः यदि आपको अपने घरमें सुख और शान्ति फैलानी हो तो रामायण पढिये। फिर इतने सस्ते मूल्य में रामायण मिलना कठिन होगा।

पुस्तक दो खण्डोंमें है। पूर्वार्धमें ७५० पृष्ठ हैं और उत्तरार्धमें १२०० मूल्य ७) डाकमहसूल का १।=) अलग लगेगा।